हिन्दी के प्रतिनिधि नाटकों का शैली वैज्ञानिक अध्ययन

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुत कर्त्री

(कु०) रीता सिंह

निर्देशक

डा० हरदेव बाहरी

हिन्दी विभाग

प्रयाग विश्व विद्यालय, इलाहाबाद

१९७९

विषय सूची

चौथा अध्याय:वाक्यगत शैली

पाँचवा अध्याय:कथन शैली

छठा अध्याय:भाषा-भेद

सातवाँ अध्याय:आलंकारिक शैली

आठवाँ अध्याय:रस

नवाँ अध्याय:शैली चिन्ह

दसवाँ अध्याय:उपसंहार

भूमिका

शैली :

हिन्दी साहित्य में 'शैली' शब्द का प्रयोग सामान्यतः 'साहित्यिक अभिव्यक्ति के ढंग या तरीके' अर्थ में होता है । संस्कृत साहित्य में शैली के स्थान उससे मिलता-जुलता शब्द 'रीति' प्रयुक्त होता है । रीति और शैली शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हैं, फिर भी इनमें भिन्नता है । रीति में काव्य के वस्तुतत्व की प्रधानता रहती है,और शैली में वस्तुतत्व व साहित्यकार के व्यक्तित्व दोनों का सम्मिलित रूप रहता है । इस प्रकार शैली साहित्यकार की व्यक्तिगत विशिष्टताओं तथा उसके साहित्य में निहित भाषा की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष विशिष्टताओं से सम्बन्धित हैं । शैली साहित्यकार के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित होती है । साहित्यकार का जिस प्रकार का व्यक्तित्व होगा , उसके अभिव्यक्ति का ढंग भी उसी प्रकार का होगा ।

शैली के विषय में शैली वैज्ञानिकों के निम्नलिखित विचार हैं :

'शैली भाषा की उस विशेषता का नाम है जो किसी के भाव अथवा विचार को ठीक ठीक व्यक्त करती है' - मरी[1]

'शैली का अर्थ कलात्मक अभिव्यक्ति में व्यक्तित्व की विद्यमानता है'
- शेरन[2]

'शैली रचना का वह उच्च और सक्रिय सिद्धान्त है,जिसके द्वारा लेखक अपने विषय की गहराई में उतर कर विषय के अंतस् का उद्घाटन करता है' - गेटे[3]

---

1. Style is a quality of language which communicates precisely emotions or thoughts.
2. The term 'style) simply indicates the presence of Personality in the manner of artistic expression.
3. Style as a higher and active principle of composition by which the writer penetrates and reveals the inner from of his subject.

उपर्युक्त परिभाषाओं में किसी ने शैली को अभिव्यक्ति से, किसी ने व्यक्तित्व से और किसी ने विषयवस्तु से जोड़ा है परंतु मेरे विचार से शैली लेखक की साहित्यिक अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग है, जिस पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप रहती है। शैली में वे सामान्य तत्व नहीं सम्मिलित हैं, जो सामान्यतः व्यवहृत होते हैं, बल्कि शैली में उन विशिष्टताओं को लिया जाता है, जिसको लेखक विशेष ने अपनाया है।

शैली विज्ञान

शैली विज्ञान साहित्यकार की शैली का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। 'शैली' शब्द का प्रयोग साहित्य के संदर्भ में होता है, अतः शैलीविज्ञान भी साहित्यिक भाषा से जुड़ा है। शैली विज्ञान साहित्य में निहित विशिष्टताओं का अध्ययन तथा विश्लेषण करता है।

इस विषय में शैली वैज्ञानिकों के विचार निम्नलिखित हैं :

'शैली विज्ञान का मुख्य प्रयोजन है एक पाठ का व्यवस्थित और सांगोपांग विवरण प्रस्तुत करना' (Crystal 1972. 112).

'शैली विज्ञान भाषागत अभिव्यक्तियों की उन विशेषताओं का अध्ययन करता है जो पाठक पर अपने सोचने के ढंग को आरोपित करने के लिए वक्ता द्वारा व्यवहार में लायी जाती है। इस प्रकार शैली विज्ञान शैलीगत उपकरणों की सत्ता के अन्वेषण तक सीमित है, वह केवल व्याख्या करता है, मूल्यांकन नहीं' (Riffaterre 1964).

उपर्युक्त परिभाषाओं में शैली वैज्ञानिकों ने शैलीविज्ञान को शैली के वैज्ञानिक अध्ययन से सम्बद्ध किया है। मेरी दृष्टि से शैलीविज्ञान भाषा प्रयोग की विशेषता से सम्बद्ध है। बात कैसे कही है। कई ढंग है। प्रत्येक भाषा में अभिव्यक्ति की अनन्त सम्भावना है। कोई

लेखक इस संभावना का कैसे, कहाँ तक और क्यों उपयोग करता है, यही शैलीविज्ञान का मुख्य विषय है। लेखक किसी विशेष प्रसंग में, किसी विशेष भाव की अभिव्यक्ति में, भाषा के भंडार से किन शब्दों का चयन करता है, उन शब्दों का कैसे और किस सीमा तक संयोजन करता है, किस स्थिति के साथ भाषा क्यों बदल जाती है।

शैली पर लेखक की मोहर होती है, कोई छोटे - छोटे सरल वाक्य लिखते हैं, कोई जटिल, कोई सरल शब्दों का प्रयोग करते हैं, कोई पंडिताऊ, कोई विदेशी शब्दों से परहेज करता है, कोई संस्कृत शब्दों से, किसी में अभिधा शक्ति मिलती है, किसी में लक्षणा, किसी में व्यंजना। कोई बड़ी लच्छेदार कवित्वपूर्ण भाषा का प्रयोग करता है, कोई सीधी - सादी गद्यात्मक भाषा लिखता है। किसी में भावों का प्राधान्य है, तो किसी में विचारों का। किसी में लालित्य है, तो किसी में गाम्भीर्य। कोई अपनी भाषा को सजाने के लिए अलंकारों की भरमार कर देता है, कोई मुहावरों का, कोई गद्य को पद्यमय बना देता है, कोई पद्य को गद्यात्मक कर देता है। कोई जानबूझकर अर्थ की उलझन या द्विविधा पैदा करता है किसी की रचना में द्विविधा या संदिग्धार्थता आ जाती है। इसी अभिव्यक्ति के ढंग से हम जान जाते है कि, यह सूर की भाषा है, तुलसी की है या कबीर की है।

शैली विज्ञान का महत्व :

शैली विज्ञान भाषा की संरचना के अध्ययन की नयी विधा है, जो पाठविश्लेषण और साहित्यविश्लेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। शैलीविज्ञान मे साहित्यक पाठों के अध्ययन और विश्लेषण की प्रक्रिया रहती है, जिसके द्वारा साहित्य मे निहित छोटी से छोटी जानकारी मिलती है, साथ ही साहित्य मे आयी हुई भूल व त्रुटियाँ भी प्रकाश मे आ जाती हैं। इस प्रकार शैलीविज्ञान साहित्य के संशोधन में भी काफी सहायक होता है।

प्रस्तुत अध्ययन :

काव्य व गद्य की भांति नाटक की भी अपनी एक अलग शैली है । गद्य तथा पद्य की शैली पर शोध कार्य हो चुका है, गद्य में शैली विज्ञान और प्रेमचन्द की भाषा व काव्य में निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन प्रकाशित भी हो चुका है । विचारगोष्ठियों में, मधुकर हम न होंगे वे दिन, क्या पूजा क्या अर्चन रे, विवशता, मुक्ति, हर रहेंगे, रुक कर जाती हुई रात, कविताओं का विश्लेषण प्रकाश में आया है । शैली विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष पर रीति विज्ञान, शैलीविज्ञान और आलोचना की नई भूमिका, शैली और शैली विज्ञान, शैली विज्ञान (डा० नगेन्द्र) शैली विज्ञान (भोला नाथ तिवारी) शैलीविज्ञान की रूपरेखा, अभिव्यक्ति विज्ञान पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं । अब तक जो शैली वैज्ञानिक अध्ययन सामने आया है वह किसी एक पुस्तक का या किसी एक रचनाकार का है, परंतु किसी एक वर्ग साहित्य के क्रमिक व तुलनात्मक अध्ययन की ओर अभी तक प्रयास नहीं हुआ है । प्रस्तुत शोधप्रबंध 'हिन्दी के प्रतिनिधि नाटकों का शैली वैज्ञानिक अध्ययन' को नाटकों की शैली के क्रमिक विकास, नाटककारों की अपनी शैली की विशेषता व औरों से कितनी भिन्नता इसी परिप्रेक्ष्य में चुना गया है । इसमें भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक युग तक के प्रतिनिधि नाटककारों के प्रतिनिधि नाटकों का अध्ययन, अन्य नाट्य आलोचनात्मक प्रबंधों से भिन्नता व नवीनता लिए हुए है । अब तक नाटकीय शैली की समीक्षा एक सीमित दायरे में हुई । जिसमें नाटक के सब तत्वों को सूक्ष्मता से नहीं प्रकाशित किया है । इस प्रबन्ध में अध्ययन दृष्टि पूर्णतः नाटकीय भाषा तथा अभिनय के प्रत्येक पक्ष पर रही है । ध्वनि से अध्ययन आरम्भ हुआ है । ध्वनि के बाद शब्द, शब्द के बाद पद और पद के बाद उसके विस्तार वाक्य, कथन तथा भाषा को लिया है । शैली चिन्हों का आद्य साहित्य के संदर्भ में नया अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। शैली विवेचन का दृष्टिकोण इसमें सामान्य व व्यक्तिगत दोनों ही रूप से रहा है । नाटकों में निहित गुण - दोषों को भी प्रकाश में लाया गया है। शैली वैज्ञानिक अध्ययन के दो आधार है - एक तो सांख्यिकीय आधार,

दूसरा प्रभाव का आधार । मैंने शैलीवैज्ञानिक अध्ययन के दोनों आधारों का इस प्रबंध में निर्वाह किया है ।

प्रथम अध्याय का शीर्षक 'अभिव्यक्ति और भाव' के पहले खंड 'ध्वनि और भाव' में, भावों की अभिव्यक्ति मे ध्वनियों के प्रभाव पर विस्तार से विचार हुआ है। कोमल व कठोर ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति में सहायक रही है । नाटककारों ने इनके निर्वाह में कहाँ तक सफलता पाई है । बलाघात, आनुप्रासिक प्रयोग, लयात्मकता और अनुकरणात्मक ध्वनियों को नाटककारों ने भावों के संदर्भ मे इस प्रभाव हेतु व्यवस्थित किया है.। ध्वनि व्यवस्था का भावों के प्रदर्शन में नाटककारों का दृष्टिकोण तथा उनके प्रयोग मे नाटककार कहाँतक सफल रहे हैं,इस पर भी ध्यान रखा है।

प्रथम अध्ययन के दूसरे खंड में 'भावों की वाचिक अभिव्यक्ति' को लिया है ,जिसमें प्रत्येक भाव में शब्दों के चयन, बोलने के ढंग की विशिष्टता पर दृष्टि रही है । कभी - कभी भावों की अभिव्यक्ति क्यों सफलता पूर्वक नहीं हो पायी है, इसको भी स्पष्ट किया है ।

दूसरे अध्याय में नाटकों मे व्यवहृत तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, अशिष्ट, अभ्यास, पुनरुक्त, युग्म, सहचरी शब्दों, समास,उपसर्ग, प्रत्यय की समीक्षा है । नाटकों मे इन शब्दों के चुनाव का प्रयोजन, इनका प्रभाव व सांख्यिकीय आधार से आँकड़ों को मुख्यतः व्यक्त किया है। समास, उपसर्ग तथा प्रत्यय की रचनात्मकता पर भी दृष्टि डाली गयी है ।

तीसरे अध्याय में नाटकों में प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण, सम्बन्ध बोधक,समुच्चयबोधक, विस्मयादि बोधक पदों के प्रयोग की विशिष्टता प्रकट हुई है । नाटककारों ने व्याकरणिक

नियमों से हटकर प्रयोग किस प्रभाव हेतु किए हैं, इनके प्रयोग में क्या नवीनता है व किन नाटककारों ने पद प्रयोग में त्रुटियाँ की हैं ।

चौथे अध्याय में अध्ययन के विषय , पदबंध, मुहावरे, एक, दो, तीन शब्द वाले वाक्य, अपूर्ण वाक्य, पूर्णवाक्य, सरल, मिश्र व संयुक्त वाक्य, प्रश्नात्मक, नकारात्मक, पर्यायवाचिता तथा औपचारिक वाक्य हैं । इनको नाटककारों ने किन-किन स्थितियों तथा कैसे प्रभाव के लिए अपनाया है । पदबंधों में क्या रचनात्मक विशिष्टता नाटककार लाये हैं, मुहावरों का रूप परिवर्तन किन कारणों से हुआ है । किस कोटि के वाक्य नाटककार को अधिक प्रिय रहा है । वाक्यों का प्रयोग कई बार प्रभावशाली नहीं हो सका है, इनको कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

पाँचवें अध्याय में नाटकों में व्यवहृत विविध कथन शैलियों, कहावत सूक्तियों, नाटकीय स्थिति के कथन, स्वगत कथन, कथोपकथन, गीत तथा पद्य के विशिष्ट प्रयोगों का विवेचन हुआ है । इन कथनों को नाटककारों ने किस विशिष्ट अभिव्यक्ति हेतु चुना है । ये कथन शैलियाँ कहाँ तक उपयुक्त व प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं । नाटकों में कई बार कथन शैली स्वाभाविकता से परे हो गयी है । किस नाटककार का रुझान कौन सी शैली की ओर अधिक है इस पर भी दृष्टि रखी है ।

छठे अध्याय में अध्ययन का विषय , पात्रानुसार भाषा , प्रसंगानुसार भाषा है । इसमें लिंग के अनुसार भाषा , उच्च व निम्न वर्ग के पात्रों की भाषा , शिक्षित तथा अशिक्षित पात्रों की भाषा , जाति तथा धार्मिक संस्कारों के अनुसार भाषा, व्यवसाय के अनुसार पात्रों की भाषा को, उनके स्वभाव, प्रवृत्तियों संस्कारों के संदर्भ में प्रकट किया है । पात्रानुकूल भाषा का निर्वाह नाटककार कहाँ तक कर पाये हैं । विविध प्रसंगों में भाषा का स्वरूप क्या रहा है , प्रसंगानुसार भाषा के अन्तर्गत इसकी समीक्षा की है । प्रसंगानुसार भाषा न होने पर नाटक की स्वाभाविकता पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है ।

सातवाँ अध्याय 'आलंकारिक शैली' का है, जिसमें विवेच्य है विषय अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब हैं । नाटकों में शब्द शक्तियों के प्रयोग का क्या आधार रहा है व किस शब्दशक्ति की नाटकों में प्रधानता है । किस शब्दशक्ति की व्यवस्था कैसे प्रसंग तथा भाव के प्रकटीकरण में हुई है । नाटककारों ने किस प्रकार की अभिव्यक्ति में कौन से अलंकार का सहारा लिया है । अनुपयुक्त अलंकार प्रयोग से नाटकों में सुन्दरता की बजाय असुन्दरता आ गयी है । प्रसंग, भाव के अनुरूप प्रतीकों का व्यवहार किन नाटककारों को इष्ट हुआ है । परंपरागत व नवीन प्रतीकों को किन नाटककारों ने चुना है । प्रतीकों की अधिकता का कथन पर क्या प्रभाव पड़ा है । बिम्बयोजना कथानक के अनुरूप भी नाटकों में हुई है । जैसे ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक नाटकों में युद्ध से सम्बन्धित, स्वर्ग वाले तथा प्राकृतिक बिम्बों की योजना है । सामाजिक नाटकों में अधिकतर भावों को प्रदर्शित करने वाले, वस्तु अथवा घटना के चित्र स्थापित करने वाले बिम्ब है । भाव, संवेदना, अभिव्यक्ति की भिन्नता भी बिम्बों में नाटककारों ने रखी है । कहीं-कहीं नाटककार सफलता पूर्वक बिम्ब स्थापित नहीं कर पाये हैं ।

आठवें अध्याय मे नाटककारों की रस योजना की विशिष्टता पर प्रकाश डाला है। कुछ नाटककारों ने जिस दृश्य को सजीव तथा दर्शकों के मन की गहराइयों मे उतारना चाहा है, वहाँ रस योजना की है । कई बार नाटककारों ने रस के तत्वों को पूरे नाटक में बिखेर दिया है, अतः नाटक के अन्त मे रस का निश्चय हुआ है । कथावस्तु के अनुरूप भी रस योजना हुई है । आधुनिक प्रतीकवादी, यथार्थवादी नाटकों मे रस योजना की बजाय केवल भावों से पाठक व दर्शक को आनन्दित किया है ।

नवें अध्याय में शैली चिन्हों के प्रयोग का प्रयोजन विवेचित किया है । किस चिन्ह को किस उद्देश्य से महत्त्व दिया है । आरम्भिक व आधुनिक नाटकों मे इनके प्रयोग की क्या भिन्नता प्रकट हुई है । ~~आरम्भिक व आधुनिक नाटकों मे इनके प्रयोग की क्या भिन्नता प्रकट हुई है ।~~ चिन्हों

का अभाव व अतिशयता से कथन पर क्या प्रभाव पड़ा है।

दसवें अध्याय में अध्ययन व विश्लेषण के आधार पर नाटककारों की शैली की विशिष्टता उजागर की है । आरंभिक नाटककारों की शैली किन कारणों से अधिक प्रभावशाली नहीं हो पायी, आधुनिक नाटककारों की शैली के आकर्षक तत्व क्या है । किन नाटकों की शैली अधिक प्रभावपूर्ण व स्वाभाविक बन पड़ी है ।

इस प्रबंध में वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाया गया है । वैसे भी भाषा का अध्ययन चाहे वह साहित्यिक भाषा की हो अथवा बोलचाल की भाषा का, व्यक्ति या आलोचकका निजत्व बहुत हस्तक्षेप नहीं करता, इसमें भाषा के तत्वों को साहित्य की परख के लिए जैसा का तैसा रख देना ही मेरा ध्येय रहा है । इस दृष्टि से किसी नाटककार अथवा उसकी रचना के बारे मे कोई पक्ष लेने का प्रश्न ही नहीं उठता अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि, यह प्रबंध निष्पक्ष दृष्टि कोण से लिखा गया है । प्रबंध की योजना के लिए मुझे कोई संतोषजनक मॉडल नहीं मिला, हिन्दी में प्रकाशित सभी पुस्तकों को, अंग्रेजी में प्रकाशित कतिपय पुस्तकों को मैंने पढ़ा लेकिन ध्वनि से लेकर वाक्य तक ही नहीं बल्कि, पूरी रचना तक की शैली का अध्ययन कहीं नहीं मिला । अतः यह दावा है कि, अध्यायों का गठन और उनमें की सारी सामग्री का संयोजन मेरे अपने चिन्तन का फल है और मौलिक है ।

प्रबंध का प्रस्तुत विषय सुझानेवाले सदैव दिशा निर्देश करने वाले सहृदय विद्वान श्रद्धेय डा० हरदेव बाहरी के प्रति मेरी श्रद्धा एवं कृतज्ञता साग्रह समर्पित है ।. इनका पाण्डित्यपूर्ण निर्देशप्रेरक शक्ति के रूप मे मुझे प्रोत्साहित और अनुप्राणित करता रहा ।श्रद्धेय गुरुवर की कृतज्ञता को जीवन पर्यन्त नहीं भुलाया जा सकता । प्रस्तुत शोध कार्य मे कई अन्य विद्वानों विशेषकर श्री दूधनाथ सिंह और डा० रमेश तिवारी ने जो मेरी सहायता की उसके लिए मै सदैव उनकी आभारी रहूँगी । श्री जगदीश केशरवानी और श्रीमती सरिता गुप्ता के उपकार को भी मै नहीं भुला पाऊंगी ।

रीता सिंह
२०.११.६९

प्रथम अध्याय

अभिव्यक्ति और भाव

ध्वनि और भाव

भाषा के माध्यम से भावाभिव्यक्ति में क्रमशः तीन तत्व आते हैं - भाषा, अभिव्यक्ति एवं भाव। अभिव्यक्ति से दो अभिप्राय लिये जा सकते हैं - विचारों की अभिव्यक्ति तथा भावों की अभिव्यक्ति। भाव रागात्मक होता है, अधिकांश विद्वानों ने भाव को साधारण तौर पर दो कोटियों में विभाजित किया है - सुखद एवं दुखद। मुख्य रूप में ये भाव माने गये हैं - क्रोध, भय, घृणा, शोक, विस्मय, उत्साह, प्रेम, वात्सल्य, हास्य तथा निर्वेद। इनमें क्रोध, भय, घृणा, शोक दुखद भावों में तथा वात्सल्य, हास्य, प्रेम, सुखद के अन्तर्गत आते हैं। उत्साह तथा विस्मय, सुखद व दुखद दोनों ही स्थितियों में आते हैं। निर्वेद भाव सुखद तथा दुखद भावों से परे एक विशिष्ट भाव है।

सामान्य रूप से भाव की अभिव्यक्ति शब्दों या वाक्यों से होती है, लेकिन ध्वनियों में भी भावों की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है और शैलीकार इसका उचित लाभ उठाते हैं। ध्वनियों के अतिरिक्त बलाघात, यति, आवृत्ति, आरोह-अवरोह, लय तथा अनुकरणात्मक ध्वनि भी भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं।

ध्वनियाँ मुख्य रूप से दो प्रकार की मानी जाती हैं - कठोर एवं कोमल ध्वनियाँ। स्वर सामान्यतः कोमल होते हैं तथा व्यंजन अपेक्षाकृत कठोर। संयुक्त व्यंजन कठोर होते हैं, क्योंकि उनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियाँ अधिक तन जाती है। व्यंजनों में सघोष व्यंजन, अघोष व्यंजनों की अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं और अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण व्यंजनों की अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं। व्यंजनों में कोमल व कठोर ध्वनियों का विभाजन इस प्रकार माना गया है

कठोर ध्वनियाँ का - क, ख, घ, ङ, च, छ, ट, ठ, ड, ढ, ण, थ, फ,
ध, घ, भ, श, ष, ह, स़, ड़, ढ़।

कोमल ध्वनियाँ - ग, ज, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, स।

स्वर ध्वनियों में कोमल व कठोर ध्वनियों के वातावरण के कारण भी कोमलता व कठोरता आ जाती है ।

स्त्रियों की भाषा में पुरुषों की भाषा की अपेक्षा सामान्यतः कम कठोर ध्वनियां प्रयुक्त होती हैं। इसी प्रकार बच्चों की भाषा में प्रौढ़ों की भाषा की अपेक्षा अधिक कोमलता रहती है । शिक्षित तथा अशिक्षित की भाषा में भी इसी प्रकार का अन्तर देखा जा सकता है । यही कारण है कि कोई जब बोलता है तो हम पहचान जाते हैं कि शिक्षित व्यक्ति है या अशिक्षित है । देशानुसार भी भाषा में ध्वनि परिवर्तन मिलता है । सामान्यतः दक्षिण की भाषा में 'ट' वर्ग का अधिक प्रयोग मिलता है, जिसके कारण भाषा में अधिक कठोरता लगती है । इसी प्रकार पश्चिम की भाषा पूर्व की भाषा से कठोर है, इन पर सांस्कृतिक प्रभाव भी है । इसी संदर्भ में हिन्दी नाटककारों के ध्वनि प्रयोग को समझना समीचीन होगा ।

नाटकों में क्रोध के भाव में कठोर ध्वनियों का प्रयोग अधिक हुआ है । विशेषतया क्रोध में पुरुषों की भाषा में कठोर ध्वनियाँ अधिक प्रयुक्त हुई हैं । उदाहरण -

- चाणक्य - खींच ले ब्राह्मण की शिखा । शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते । खींच ले । परन्तु यह शिखा-नन्दकुल की काल सर्पिणी है, तब वह तक न बंधन में होगी, तब तक नन्दकुल निःशेष न होगा ।
  (चन्द्र० ६८)
- आज पीछे ऐसी बात से न निकलना, छोटा मुंह बड़ी बात अच्छी नहीं होती । किमखाब में टाट का पैबंद अच्छा नहीं लगता । टाट का पैबंद टाट ही में लगता है, कोई अपना सा घर ढूंढो ।
  (भारत०प्र०१५)
- दुष्ट कुल्टा पापी । नाहक हमको डरा दिया । भंगी इस को ही कोड़े लगें । (अंधेर० १४)

- अबे बुज़दिल ; नमकहराम, लड़ाई से भागकर अपनी जान बचाना चाहता है । तूने ही मेरे भाई का कत्ल किया है । मुझे कैद हो जाने या मर जाने का खौफ नहीं है, सिर्फ तेरे खून का प्यासा हूं । (दुर्गा० १२०)
- ज़बान सम्भाल के नहीं बोलता । कसम कुरान की खाल उधेड़ दूंगा । (उद्ध० २६)

क्रोध में त, ग, श, ज, च, ट, क, क, ड, ट, ख, ध, प, भ, फ, ब, ढ, घ, ज, ड कठोर ध्वनियों का अधिक व्यवहार हुआ है । कोमल ध्वनियों में अ, उ, आ, न, ए, ब, म, ल, स, त, र, व, द, ह, का प्रयोग हुआ है । स्वर कठोर ध्वनियों के साथ आने पर कठोर हो गये हैं , कोमल ध्वनियों की भी कोमलता कठोर ध्वनियों के आधिक्य के कारण दब गयी है ।

नाटकों में सामान्यतः स्त्रियों ने क्रोध की अभिव्यक्ति में कठोर ध्वनियों का पुरुषों की तुलना में काफी कम प्रयोग किया है । कठोर ध्वनियों के कम प्रयोग का कारण उनका भावुक स्वभाव भी है । क्रोध के भाव में स्त्रियों की भाषा में ध्वनि प्रयोग के उदाहरण प्रस्तुत है -

- (क्रोध से) स्त्रियों का मानापमान क्या । पुरुष-समाज की इतनी धृष्टता । स्त्रियों के सौन्दर्य की चाह पर फिसलनेवाली पुरुष जाति ने आज से नहीं, सदा से स्त्रियों का अपमान किया है । (वि०ञ० ७७)
- (आपे से बाहर होकर) अपने उद्वेग का वास्तविक कारण मैं स्वयं हूं और किसी को यह अधिकार मैं नहीं देती कि वह मेरे उद्वेग का कारण बन सके । आर्य मैत्रेय यदि जाना चाहते हैं तो उन्हें भी जाने दीजिये । (छत्री० ५२)

इसमें ह, ध, ज, ट, क, ब, ण, क, च, ञ कठोर ध्वनियों का तथा म, न, द, प, स व, र, ल, औ, आ, य, व कोमल ध्वनियों का प्रयोग हुआ है । कठोर ध्वनियों का आधिक्य न होने के कारण क्रोध का भाव उग्र रूप में नहीं व्यक्त हुआ है ।

नाटकों में कहीं-कहीं स्त्रियों का क्रोध पुरुषों की तुलना में अधिक उग्र रूप में प्रकट हुआ है, जिसमें वह पुरुषों की तुलना में अधिक कठोर ध्वनियों का व्यवहार करती है। उदाहरण -

- (पैर पटककर) चुप रहो। प्रवंचना के पुतले। स्वार्थ के घृणित प्रपंच। चुप रहो। (ध्रुव० ५६)
- मीठे मुँह की डायन। अब तेरी बातों से मैं ठगी नहीं होने की। ओह। इतना साहस इतनी कूट चातुरी। आज मैं उसी हृदय को निकाल लूँगी, जिसमें यह छल भरा था। माधवी, सावधान। मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ। (ज्यारा० १०५)
- क्या डिप्टी कलक्टर होने से अपने ख़ान्दान से तुम अलग हो गये ? मज़हब को छोड़ बैठे ? इनसानियत को खो बैठे ? खानदानी, मज़हबी कौमी, मुल्की और इन्सानी हमदर्दी फ़रायज़ को भूल गये ? आदमियों से जानवरों की तरह भड़कने लगे ? मुँह चुराने लगे ? (उलट० ३५)

च, प, ग, ड, क, ठ, भ, ट, ह, घ, ख़, थ, ढ, छ, ज़, फ़, क़, द, ब, कठोर ध्वनियाँ तथा र, ल, न, म, ली, आ, य, व, स, कोमल ध्वनियों का व्यवहार हुआ है। स्वर ध्वनियाँ कठोर ध्वनियों के साथ आने पर अपना अस्तित्व समाप्त कर कठोर हो गयी है। कोमल ध्वनियों से भी कठोर ध्वनियों के वातावरण में आने के कारण कठोरता व्यक्त हो रही है।

क्रोध के भावों में ध्वनियों का सफल प्रयोग कुछ नाटककारों ने किया है जिनमें जयशंकर प्रसाद, जी० पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी तथा उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) है। इन नाटककारों स्त्री-पुरुषों दोनों के क्रोध-भाव को नाटकों में प्रकट किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (नील देवी में) वृंदावन लाल वर्मा ने स्त्रियों के क्रोध भाव में कठोर ध्वनियों का अधिक प्रयोग करवाकर सफल तथा प्रभावशाली अभिव्यक्ति करायी है। प्रताप नारायण मिश्र, मोहन राकेश, जगदीश चन्द्र माथुर, सत्यव्रत सिन्हा के नाटकों में भी क्रोध के भाव आये हैं, परन्तु उनमें प्रयोग

कम है, साथ ही क्रोध का उग्र रूप कम आया है। अतः कठोर ध्वनियाँ जयशंकर प्रसाद, जी०पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट तथा हरिकृष्ण प्रेमी की तुलना में कम आयी हैं। गोविन्द वल्लभ पंत, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सुरेन्द्र वर्मा, मणिमधुकर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस तथा विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों में भी क्रोध के प्रसंग कम हैं और क्रोध की अधिकता नहीं है। इनमें कठोर ध्वनियाँ कोमल ध्वनियों की तुलना में तो अधिक हैं, परन्तु कठोर ध्वनियों का आधिक्य नहीं है।

घृणा के भाव में भी कठोर ध्वनियाँ ही अधिक रही हैं, क्योंकि घृणा का भाव अधिकतर आवेग या क्रोध के साथ आया है। क्रोध में भी कठोर ध्वनियों की अधिकता है, अतः घृणा के भाव में भी कठोर ध्वनियों का आधिक्य हुआ है।

घृणा के भाव में ध्वनियों के प्रयोग के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- (पैर छुड़ाकर) विवशा। पिशाची !! हट जा ; नहीं जानती, मैंने आजीवन कौमार व्रत की प्रतिज्ञा की है। (स्कन्द० १५८)

- चुप रह अभागिनी। मैं तेरे कोई भी शब्द नहीं सुनना चाहता। जा, मैंने तेरा परित्याग किया। तुझे अपने घर की दुर्गंधि समझ झाड़कर फेंक दिया। जा, मैंने तुझे अपने अंग का कोढ़ जान काटकर दूर कर दिया। खबरदार। मुंह न दिखाना। मेरे घर में अब तेरे लिए जगह नहीं। (कुरु० ४६)

- और वैसे तो मुझे उस कुत्ते से नफ़रत थी। उसकी आँखें बेवकूफों जैसी थी और उसकी बेतुके ढंग से कलौठी थी। फिर वह हर किसी पर भौंकता था। और बहुत भद्दे तरीके से भौंकता था। बल्कि भौंकने से मना करने पर वह मुझ पर ही भौंकने लगता था।
(तिल० १०)

- मैं देशद्रोही हूँ। नीच हूँ। अधम हूँ। आह कहाँ जाऊँ, मैं क्या करूँ, जिसमें मुझ पर किसी की दृष्टि न पड़े। (चन्द्र० १८८)

इसमें कठोर ध्वनियों के संपर्क में आने के कारण कोमल ध्वनियों का प्रभाव समाप्त हो गया है और वे कठोर अभिव्यक्ति कर रही हैं । कठोर ध्वनियों में ध, थ, ट, ह, ज, ठ, क, श, ग्र, ध, फ, त, फ, क़, प, क, ढ, ग, ह, थ, ब और कोमल ध्वनियों में र, म, ला, न, ल, उ, व, ल, ब, ए, आ, य, प्रयुक्त हुई हैं । स्वर ध्वनियाँ जो कठोर ध्वनियों के साथ लगी हुई हैं, वे भी कठोर अभिव्यक्ति कर रही हैं ।

नाटकों में घृणा का भाव भी ध्वनियों के प्रयोग से काफी प्रभावित हुआ है । जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पन्त तथा मुद्राराक्षस नाटककारों ने घृणा के भावों को अन्य नाटककारों की तुलना में अधिक महत्व दिया है । इन्होंने भाव के अनुरूप कठोर ध्वनियों का अधिक चयन किया है । रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर (कोणार्क नाटक में) उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय तथा अंजो दीदी नाटकों में) घृणा के भाव में आवेश है क्रोध की अधिकता नहीं है अतः कठोर ध्वनियों की मात्रा बहुत अधिक नहीं है, फिर भी इनमें भाव की अभिव्यक्ति के लिए कठोर ध्वनियाँ कोमल ध्वनियों की तुलना में अधिक है । सत्यव्रत सिन्हा तथा मणि मधुकर ने भी घृणा के भावों को नाटक में प्रदर्शित किया है, परन्तु उसकी सफल अभिव्यक्ति नहीं हुई है, कठोर ध्वनि प्रयोग तो इन नाटककारों ने किया है, परन्तु घृणा में क्रोध अधिक प्रदर्शित हुआ है घृणा कम ।

नाटकों में उत्साह के भाव में भी कठोर ध्वनियों की अतिशयता है, क्योंकि इसमें ओज गुण की प्रधानता है और ओजता लाने का सामर्थ्य कठोर ध्वनियों में है ।
उदाहरण -

> - जाओ, वीरो आज अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए प्रलय की भाँति राठौर सेना पर टूट पड़ो । नगर के द्वार खोल दो । जहाँ कोई राठौर मिले मृत्यु के घाट उतार दो । सब जगह हमारे आक्रमण का शोर मचा दो । आज अपने प्रिय राघव की मृत्यु का देश को दासता की बेड़ियों में जकड़ने का अत्याचारों का सब का खून बदला लो ।   (जय० १६८)

जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी तथा उपेन्द्रनाथ अश्क (जय पराजय नाटक में) है । इन नाटककारों ने भावानुकूल कठोर ध्वनियों को अधिक अपनाया है । उदय शंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी , जगदीश चन्द्र माथुर तथा वृंदावन लाल वर्मा के नाटकों में उत्साह का भाव युद्ध के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों में आया है, जिसमें अपेक्षाकृत कम कठोर ध्वनियां आयी हैं, फिर भी कठोर ध्वनियां अपना प्रभाव कोमल ध्वनियों पर डालकर भाव की अभिव्यक्ति कर रही है ।

नाटकों में वात्सल्य, निर्वेद तथा प्रेम के भावों की अभिव्यक्ति में कोमल ध्वनियों को प्रधान रूप में रखा है ।

वात्सल्य मधुर भाव है, जिसकी कोमल ध्वनियों के द्वारा ही अधिक सफल अभिव्यक्ति हो सकती है । नाटककारों ने भी वात्सल्य भाव में निहित मधुरता को दृष्टि में रखते हुए , कोमल ध्वनियों को अधिक महत्व दिया है । वात्सल्य भाव के प्रदर्शन में नाटककारों ने ध्वनि व्यवस्था किस प्रकार की है, प्रस्तुत है -

- पिता ! (आर्द्र स्वर) मैं यह कैसे भूल गया कि अवध नरेश तुम दोनों का पिता भी है ? इधर आओ राम ! इधर आओ लक्ष्मण ! मेरे निकट ! ---- तुम्हें हृदय से तो लगा लूं ! (स्नेहालिंगन) —
(दश० ३१)
- भोली लड़की ! अरे यह क्या ? (ठुड्डी पकड़कर) तू उदास क्यों हो रही ? माँ ने खफा कर दिया ! आह, तू मां का दिल जान पाती ! (अम्ब० १३)
- नहीं लाल ! तुम यहां दुनिया में फूलो फलो ! (कुरु० ६६)
- बेटी मधुना ! अच्छा तू भी आ गयी ! (अजात० १३७)
- चलो मेरे लाल ! तुम्हारी माता प्रतीक्षा कर रही होगी !
(जय० १२५)

इसमें ल, म, य, ल, न, व, र , न, आ, ओ, त, अ, प, द, कोमल ध्वनियां आयी हैं इनके साथ क, प, ड, ड़, थ, भ, छा, भ, क, ट, ख, ण, कठोर ध्वनियां व्यवहृत हुई हैं कठोर ध्वनियों के आगे-पीछे प्राय: कोमल ध्वनियां आयी हैं, जो उनकी कठोरता को कम रही है । कई बार कठोर ध्वनियों की कठोरता

भावों में ध्वनियों के प्रयोग की ओर काफी ध्यान दिया है । इन नाटककारों ने वात्सल्य के प्रयोग में अन्य नाटकों की तुलना में अधिक रखी हैं । मोहन राकेश (आधे अधूरे नाटक में) उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय, स्वर्ग की झलक तथा अंजोदीदी में) लक्ष्मी नारायण मिश्र (मुक्ति का रहस्य में) आदि नाटककारों ने भी वात्सल्य के भाव को भी अपने नाटकों में रखा है । इनके नाटकों में कोमल ध्वनियों का प्रयोग कठोर ध्वनियों की तुलना में तो अधिक है, परन्तु कोमल ध्वनियों की भरमार नहीं है । इसका कारण यह भी है कि इन नाटककारों ने वात्सल्य को अन्य आवेशात्मक भावों के साथ जोड़ दिया है । सत्यव्रत सिन्हा, वृंदावन लाल वर्मा तथा विष्णु प्रभाकर ने भी इस भाव को महत्व तो दिया है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति खुलकर नहीं की गयी है, फिर भी इन भावों में कठोर ध्वनियों की तुलना में कोमल ध्वनियों को अधिक रखा है ।

निर्वेद शान्त भाव है, जिसमें ओजता का गुण नहीं है । नाटककारों ने इस भाव की अभिव्यक्ति में कोमल ध्वनियों को अधिक रखा है । निर्वेद में नैराश्यता मुख्य रूप से है, जो कोमल ध्वनियों द्वारा सफल रूप में व्यक्त हुई है । निर्वेद के भाव में ध्वनियों का प्रयोग प्रस्तुत है -

- आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है । आकाश के नीचे पथ पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है, और जीवन संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक अकाण्डताण्डव करता है । फिर भी प्रकृति उसे अंधकार की गुफा में ले जाकर उसका शान्तिमय, रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है, परन्तु वह कब मानता है ? मनुष्य व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में मरता है + + + (अजात० २७)

- + + सुखों का यही परिणाम है । कोमल, सुगन्धित कुसुम का अन्त मिट्टी है । मृत्यु संसार का प्रस्तुत है, जहाँ सब विचार धाराएं, सारे आत्म विश्वास, समूची कल्पनाएं शान्त और

क्षीण हो जाती है। यहाँ न समाज के बंधन हैं, न उसके आदर्श।

(विशा० ८६)

- [illegible] की नाव टूट चुकी है, क्योंकि। वह अपनी जलसमाधि स्पष्ट देख रही है - जल समाधि या सम्यक् समाधि।

(जनमे० १०६)

- महाराज जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है। इस क्षुद्र हलचल का उद्देश्य शान्ति है, फिर जब उसके लिए व्याकुल पिपासा जग उठे, तब उसमें विलम्ब क्यों करे ?

(अजात० ३६)

निर्वेद के भाव को कोमल ध्वनियों की अधिकता से प्रकट किया है। कोमल ध्वनियों में आ, न, व, न, म, ल, उ, ङ, ग, य, प, स, र, ह, द का अधिकतर प्रयोग हुआ है। कठोर ध्वनियों में क्ष, ब, ख, ढ, त, क, ड, फ, घ, च, ट, ज, ठ, छ, श प्रयुक्त हुई हैं। इन्हें कठोर ध्वनियाँ जहाँ आई हैं नाटककारों ने उनके साथ प्रायः कोमल ध्वनियों को रखकर उनकी कठोरता को कम किया है।

निर्वेद के भावों की ध्वनियों द्वारा सफल अभिव्यक्ति जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में हुई है। हरिकृष्ण प्रेमी तथा उदयशंकर भट्ट के नाटकों में निर्वेद के भाव की अभिव्यक्ति कई बार सफल रूप में नहीं हुई है। इन नाटककारों ने निर्वेद में पूर्ण निराशा नहीं रखी है जिसके कारण कठोर ध्वनियाँ अधिक आ गयी हैं और भाव की अभिव्यक्ति सफल रूप में नहीं हो पायी है। प्रेम का भाव माधुर्य गुण युक्त भाव है, अतः नाटककारों ने भाव के गुण को देखते हुए उसमें कोमल ध्वनियों की प्रधानता रखी है। प्रेम के भाव के दो पक्ष हैं (1) संयोग पक्ष (२) वियोग पक्ष। नाटकों में इन दोनों पक्षों के भावों को व्यक्त किया है। दोनों पक्षों में ध्वनि प्रयोग में भिन्नता है।

संयोग की स्थिति में नायक-नायिका में आवेश तथा उत्साह भरा है, अतः इस पक्ष की अभिव्यक्ति में कठोर ध्वनियाँ वियोग पक्ष की तुलना में कुछ अधिक आयी है। उदाहरण -

- कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन । कितने संकोच से भरा था । नियति ने आज भाव से मानो छू के तपी हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन में सायंकालीन शीतल-गगाय से मिला दिया हो । (ध्रुव० ३३)

- किन्तु मैं निवेदन करना चाहती हूँ कि तुम्हारे लोचनों में स्नेह सागर लहराता हुआ देखकर मैं कितनी पुलकित होती हूँ, प्रज्वलित ज्वालामुखी देखकर भी उतनी ही प्रफुल्लित । ([illegible] ७४)

- अहा ! रचना का भी कैसा ... ! सुन्दरी तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी, वैसी ही तुम भी । एक बार उस तीव्र मादक को और पिला दो । पागल हो जाने के लिए इन्द्रियाँ प्रस्तुत हैं ।
(अजात० ७६)

- (मादक सम्मोहन) तुम्हारा यह राशि-राशि वैभव, आर्य ! --- एक ही स्पर्श में युगों का आमंत्रण । -- ओह यह स्पर्श ! -- यह कुछ तुम्हारी देह का सागर --- ओह मैं हूँ कि गहराइयों में खोता जाता हूँ --- और थाह की तलहटी ही नहीं -- मिलती ही नहीं ---- । ओह तुम्हारी देह का सागर आर्य !
(प०रा० २८)

- अशान्त हृदय की वीणा में आशावरी का मधुर राग गानेवाली तुम कौन हो ? अहा विधाता के सब प्रयत्नों का जोखिम प्रयास --? इसमें कलियों की मुस्कान, हिम की शीतलता, चन्द्र का आह्लाद और हृदय की वेदना ---- सब कुछ एक ही जगह सब --- क्या यही है मेरे प्राणों का स्वप्न, मेरे प्रेम संस्कारों की प्रतिमा ?
(वि०ज० २७)

उपर्युक्त कथनों में कोमल ध्वनियों का आधिक्य है । त, न, म, ल, प, ह, द, ग, य, आ, र, भ, स, उ, ह, व कोमल ध्वनियाँ अधिकतर प्रयुक्त हुई हैं । कठोर

ध्वनियों में दा, णा, ज, रा, स, क, व, उ, ट, थ, ण, व्यवहृत हुई है । स्वर ध्वनियाँ भी आनी लायी है जो भाव की मधुरता को बनाये रखने में सहायक हुई है । कोमल ध्वनियों की अधिकता के कारण कठोर ध्वनियों का पूर्ण अभाव नहीं पड़ पाया है फिर भी कठोर ध्वनियों के कारण उत्तेजना आ गयी है ।

वियोग पक्ष में विह्वलता तथा करुणा का समावेश हो गया है । अतः इस पक्ष के भाव प्रदर्शन में नाटककारों ने संयोग पक्ष की तुलना कोमल ध्वनियों की कुछ अधिकता रखी है तथा संयोग पक्ष की तुलना में कठोर ध्वनियों की मात्रा भी कम रही है । जैसे -

- परन्तु प्यारे तुम भी गुननेवाले हो ? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो, प्यारे । जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं (नेत्रों से आँसू गिराते हैं) प्यारे । जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों ? (श्रीचन्द्रा० १८)

- मझे, मैं सपनों से परेशान हूँ । मेरी मधु कहाँ, मेरा अरुण कहाँ ? अरुण ---- (चिल्लाती है) (अम्बा० २४)

- हाय वे दिन कहाँ गए जब तुम मेरे लिए सिंह की दाढ़ों में सोने की प्रतिज्ञा कर रहे थे । मेरे लिए संसार छोड़ देना चाहते थे । (वि० ता० ७६)

वियोग में ए, प, र, न, य, त, म, व, अ, आ, ळ, ग, द, स, व कोमल ध्वनियाँ तथा श, च, ध, ह, ष, ख, ड, ढ़, भ, ण, कठोर ध्वनियों के द्वारा भावाभिव्यक्ति की गई है ।

प्रेम में संयोग पक्ष के भाव अधिकांश नाटकों में आये हैं । जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी (शपथ में) उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) जगदीश चन्द्र माथुर (पहला राजा में) लक्ष्मी नारायण मिश्र ने संयोग पक्ष को मुख्य रूप से प्रदर्शित किया है । इन्हीं नाटककारों ने कोमल ध्वनियों को प्रधान रूप में अपनाया है । वियोग पक्ष में [illegible] ध्वनियों का सफल प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "श्रीचन्द्रावली" नाटक में हुआ है ।

रामवृक्ष बेनीपुरी, डी०पी०श्रीवास्तव ने भी वियोग पक्ष का xxx प्रदर्शन किया है । मोहन राकेश के नाटक (आषाढ़ का एक दिन) में अन्य नाटकों से भिन्न उत्कृष्ट कोटि का प्रेम प्रदर्शित किया गया है । भाव की सफल अभिव्यक्ति के लिए कोमल ध्वनियों को प्रधान रूप में रखा है ।

नाटकों में भय के भाव की अभिव्यक्ति दो प्रकार हुई है । पहले प्रकार में भय के आधिक्य में कभी-कभी पात्र तीव्रता से बोलता है । इनमें भय तथा आवेश दोनों भाव मिश्रित हैं भय के कारण कोमल तथा आवेश में कठोर ध्वनियाँ प्रयुक्त हुई हैं । इस प्रकार भय की इस दशा में कोमल तथा कठोर ध्वनियों का लगभग समान प्रयोग हुआ है ।

> किन्तु यह भयानक काली रात, आँधी का यह अट्टहास, यह घन, गर्जन, यह प्रलय का शोर मेरा हृदय धड़क रहा है । तुम जाओ दासी । मंत्री को बुला लाओ । (जय० १८५)

> (भयभीत होकर देखता हुआ) ओह भयावनी पुच्छवाला धूमकेतु । आकाश का उच्छृंखल पर्यटक । नक्षत्र लोक का अभिशाप । (ध्रुव०७६)

> वह देखिए आसमान की ओर टूट फूटा है ओह । कितना बड़ा --- कितना बड़ा --- सारा आसमान उजेला हो गया । मालूम हो रहा है मर गया । लौट चलिये --- लौट चलिये ---
>
> (सिन्दूर० १२६)

> भूचाल आ गया । भूचाल आ गया । रक्षा करो । राजा भोज ! रक्षा करो । (रक्ष० ४४)

> (घबड़ाकर) है । यह क्या है ? ये क्यों एक साथ इतना कोलाहल हो रहा है । वीर सिंह । वीर सिंह । जागो । गोविन्द सिंह दौड़ो । (नील० १५)

> ओह । कहाँ - कौन है ? ओह भागिए ! - कौन है वहाँ ? कौन है ? (तिल० ५)

इसमें क, भ, छ, थ, ट, ज, ख, ड, ब, झ, ६, ट, डा, स, ग, व कठोर ध्वनियाँ तथा न, ल, य, ळ, र, आ, ब, म, औ, व, उ, प, ग, इ, ए, स, द, व कोमल ध्वनियाँ आवृत्त हुई हैं ।

भय की दूसरी दशा जिसमें व्यक्ति अत्यधिक शिथिल हो गया है, उसमें शिथिलता व्यक्त करने हेतु कोमल ध्वनियाँ अपेक्षाकृत अधिक आवृत्त हुई हैं ।

- भाग --- जाओ --- भाग --- जाओ ---- आग लगी ---
जल --- जाओगे ---- जल ---- जा---- ओ ।
(मुक्ति० १००)

- (कांपते हुए) अब क्या हो सकता है हुजूर ?
(कातर दृष्टि से उनकी ओर देखता है) (सिन्दूर० २८)

इसमें ल, न, ओ, आ, अ, य, स, त, व कोमल ध्वनि प्रयुक्त हुई है तथा ब, भ, क, ह कठोर ध्वनियों को महत्व मिला है । भय की आवेशात्मक स्थिति नाटकों में अधिक आयी है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जयशंकर प्रसाद, मणिमधुकर, उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) विष्णु प्रभाकर गोविन्द वल्लभ पन्त तथा मोहन राकेश ने(लहरों के राजहंस में) भय की पहली दशा को ही रखा है, जिसमें कठोर तथा कोमल ध्वनियों का लगभग समान प्रयोग हुआ है । लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने नाटकों में भय की दोनों स्थितियों को प्रदर्शित किया है । इन दोनों स्थितियों में नाटककार ने ध्वनियों के प्रयोग में अंतर रखा है । भय की आवेशात्मक स्थिति में कोमल तथा कठोर ध्वनि का लगभग समान तथा भय की शिथिलता में कोमल ध्वनियों का अधिक प्रयोग किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (अंधेर नगरी में कहीं-कहीं) सत्यव्रत सिन्हा , उदयशंकर भट्ट ने भय के भाव का प्रदर्शन सफलतापूर्वक नहीं किया है । भय के साथ अन्य भाव मिश्रित कर दिये हैं जिससे भय प्रकट न होकर दूसरा भाव प्रकट हो रहा है इसलिए ध्वनियों की व्यवस्था भी उपयुक्त नहीं रह पायी है ।

शोक एक विस्तृत भाव है । इसमें भी भाव की भिन्न-भिन्न दशाओं में ध्वनियों के प्रयोग में भी भिन्नता आयी है । यों शोक में कोमल ध्वनियों की अधिकता है,

पर शोक के साथ जहाँ आवेश तथा क्रोध के भाव आये हैं, वहाँ कठोर ध्वनियाँ अन्य स्थितियों से कुछ अधिक आयी है ।

- हाय मेरे पुत्र । (उसके ऊपर गिर जाती है । विक्षिप्त-सी होकर अम्बा से) जाओ, बेटी जाओ, जहाँ तुम्हारे सींग समाएँ वहाँ जाओ । यहाँ न रहो । मैं पागल हो जाऊँगी । जाओ, जाओ, चली जाओ । उफ् प्राण छूटे जा रहे हैं ।

  (वि०उ० ७४)

- मैंने अपने हृदय के टुकड़े को अपने हाथों गला डाला, अपनी आँखों की ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले को स्वयं अंधकार में परिणत कर दिया - आज मैं माँ होकर भी डायन हो गयी ।

  (अय० ११७)

- हाय- हाय, बेचारी फूल-सी बच्ची । विधाता ने उसे मसलकर रख दिया । (कुरो० २५)

- अरे । हम अन्धरी कोय गमन । ऊ कहाई, तू सब कहाई । अब हम काव करी । (बकरी ५५)

- हाय । मेरा सब कुछ बिगाड़कर , मेरे पास जो अमूल्य रत्न था उसे छीनकर , उस पर भी !---- उस पर भी ।

  (मुक्ति० ८२)

इसमें द, म, र, ओ, ल, प, य, न, त, व, ऊ, उ, ब, न, आ, ए, स, व कोमल ध्वनियाँ तथा ख, ट, ह, ट, थ, फ, ड़ , छ, घ, च, ग, भ, क, ण, कठोर ध्वनियाँ प्रयुक्त हुई है । शोक में कष्ट का भाव प्रमुख है । नाटकों में जिस प्रकार का कष्ट है, उसके अनुरूप ध्वनियों का संगठन हुआ है जैसे शारीरिक कष्ट की अभिव्यक्ति में कठोर ध्वनियाँ कुछ अधिक हैं । उदाहरण -

- ओफ् । फाँसी की महारानी !! राम रे !!! मेरी तो कमर टूट गई !!!! पसलियाँ चूर हो गई !!!! कपनी के मारे हड्डियाँ घुस हुई जा रही है, घुस !!!!!

  (फाँसी० ७०)

- आह ! मार डाला ! मार डाला बदमाशों ने हड्डियां टूट गई हैं । (सिन्दूर० ६५)

इसमें कोमल ध्वनियों की प्रधानता शोक के भाव के कारण हुई है । कोमल ध्वनियों में ओ, न, र, म, ल, ग, ई, प, ढ, य, ब, आ, द का तथा कठोर ध्वनियों में फ, क, क, ठ, ह, ट, भ, को प्रयुक्त किया है ।

शारीरिक कष्ट की तुलना में मानसिक कष्ट की अभिव्यक्ति में कठोर ध्वनियां कुछ कम हैं, क्योंकि इसमें आवेश की बजाय शिथिलता अधिक है । उदाहरण -

- हाय ईश्वर क्या इस ही लिये जन्म दिया था । क्या मेरे दुखों का कभी अंत न होगा । मेरे पिताजी तुम तो मुझे बड़ा प्रेम करते थे , तुम कहां हो, क्या मुझसे रूठ गये, जहां तुम गए हो, वहीं मुझको भी बुलालो, क्या सब सुख तुम्हारे लिये था, मेरे लिये कुछ भी नहीं, मेरी मैया तू कहां है देख आज तेरी लड़की पर क्या विपत्ति पड़ी है ।
(भारत० पृ० ३६)
- हम सब गली-गली भीख मांगत फिरत हैं । अउर कोई एक मुट्ठी भीखौ न ही देत है । हाय राम । आगे अउर कउन ई दशा होई । यहि कुछ जो पछिलवा सोचित तो हमार अस दुरगत काहे होत ? (उत्ट० १३२)
- मैं किस लिए पैदा हुई थी और क्या हो गयी ? (मुक्ति० ४६)

इस शोक की दशा में कठोर ध्वनियां दूसरी अवस्थाओं से कम आयी हैं । कठोर ध्वनियों में क, थ, ह, ब, प, त, ड़, ठ, फ, फ, ख, ख की दशा है ।
कोमल ध्वनियों की अधिकता है इसमें य, ई, म, ल, र, न, त, ह, स, आ, ए, द, प, ग, ब, उ और व ध्वनियां प्रयुक्त हुई हैं ।

नाटकों में शोक के भाव में कोमल ध्वनियों की प्रधानता सभी नाटककारों ने रखी है। शोक के भावों में ध्वनियों का सफल प्रयोग जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर

भट्ट, वृंदावनलाल वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रताप नारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा जी०पी० श्रीवास्तव ने किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) जी०पी० श्रीवास्तव, गणेश्वर प्रसाद के नाटकों में शोक में आवेग का भाव मिश्रित है अतः कठोर ध्वनियाँ कुछ अधिक व्यवहृत हुई हैं। वृंदावनलाल वर्मा, लक्ष्मी नारायण मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, प्रताप नारायण मिश्र तथा (कहीं-कहीं) जी०पी० श्रीवास्तव के नाटकों में मानसिक तथा शारीरिक कष्ट की शोक रूप में अभिव्यक्ति हुई है जिसमें कोमल ध्वनियों की प्रधानता है, कठोर ध्वनियाँ शोक का उद्वेगात्मक स्थिति में कम व्यवहृत हुई हैं। विपिन कुमार अग्रवाल तथा मणिमधुकर के नाटकों में मानसिक कष्ट भाव प्रकट किये गये हैं।

हास्य एक मधुर भाव है। हास्य की मधुरता को बनाये रखने के लिए नाटककारों ने इस भाव की अभिव्यक्ति में कोमल ध्वनियों को प्रधानता दी है। हास्य में प्रसन्नता का भाव प्रमुख है। नाटकों में प्रसन्नता को कोमल ध्वनियों की अधिकता से व्यक्त किया है। जैसे -

- उई, उई, उई। अरे मिल गई, मिल गई। (बकरी २१)
- (चाकर खुश होकर अनौपचारिक होने की कोशिश में) अरे, तुम मिस्टर मोहल ए०डी० बिटिया हो? तब तो तुम मेरी भी बेटी हो। (कुत० ३६)
- वाह! वाह! बच्चा। इतनी मिठाई कहाँ से लाया? किस धर्मात्मा से भेंट हुई? (अंधेर० १२)

प्रसन्नता में उ, र, ल, म, ग, ई, ज, त, व, ह, न, स, य, ब कोमल ध्वनियाँ आयी हैं। कठोर ध्वनियाँ इसमें कम आयी हैं अतः कोमल ध्वनियों की अधिकता के कारण से अपना प्रभाव नहीं डाल पायी हैं। कठोर ध्वनियाँ ट, छ, ड़, ठ, क, ख, घ, भ व्यवहृत हुई हैं।

नाटकों में जहाँ हास्य के साथ व्यंग्य मिश्रित है, वहाँ कठोर ध्वनियाँ कुछ अधिक आयी हैं। कठोर ध्वनियों से व्यंग्य को तीक्ष्ण बनाया गया, वैसे भी व्यंग्य तीक्ष्ण होता है। नाटकों में हास्य के साथ व्यंग्य का मिश्रण काफी अधिकार रखा गया है।

हास्य व्यंग्य में ध्वनि प्रयोग के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- वाह! वाह! यह तो वही हुआ कि पढ़े फ़ारसी और बेचे तेल। क्षमा जान आप धन्यवाद करें। (उठ० ८६)

- कितना सूक्ष्म वर्णन करते हैं आप! --- ऐसा लगता है कि कादम्बरी लिखने से पहले बाणभट्ट आपकी सेवा में उपस्थित हुए होंगे। (ना०का०वि० ६८)

- हे भगवान, यह खाँसी है कि गले की फाँसी!! गाँठें बंधा है पूरी आफत!! जरा छेड़ दो तो बस जैसे भौंरों की मशीन चल गई - (खाँसी०७५)

- लो बन चुकी आप सिनेमा की स्टार। बाहर, अपने घर पधारिए और पर्दा डाल सपना झुलाते हुए गुनगुनाइए - "आ जा री निंदिया, तू आ क्यों न जा।" (अंगूर०४४)

- अरे दीदी! ------ तुम तो व्यर्थ में गृहस्थी की चक्की में अपना माथा फोड़ रही हो। तुम्हें तो सेना में कैप्टन या छोटी-मोटी लैफ्टिनेंट हो जाना चाहिए। (नवा० ४४)

- मोटा भाई बना बनाकर मूँड लिया। एक तो कुछ ही सब पंडिया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, बाँय-बाँय गिनी गई, वर्णमाला कंठ कराई, बस शादी के लाए कैद हो गए।

(भारत०प्र० २८)

इसमें कोमल ध्वनियों की प्रधानता तो है, परन्तु कठोर ध्वनियाँ प्रसन्नता के भाव से अधिक व्यवहृत हुई हैं। कोमल ध्वनियों में व, य, स, म औ, र, ब, ल, न, ढ,

द, ध, ल, ऐ, न, उ, ऊ, यँ, ए, स, व प्रयुक्त हुई है । छ, ढ, फ, थ, ख, ट, ठ, ब, घ, क, ड, ख, ठ, ग, ड़, क, ण कठोर ध्वनियाँ हैं । कहीं [illegible] ध्वनियाँ कठोर ध्वनियों से बाँध जाती हैं जिनके कारण कठोर ध्वनियाँ अधिक कठोरता नहीं आने पा रही है और हास्य का भाव बना हुआ है ।

इस प्रकार नाटकों में हास्य में व्यंग्य के भाव मिश्रित हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा में) जयशंकर प्रसाद, जी०पी०श्रीवास्तव, उदय शंकर भट्ट, उपेन्द्र नाथ अश्क (स्वर्ग की झलक तथा अंजो दीदी) वृंदावन लाल वर्मा, गोविन्दवल्लभ पन्त, मणिमधुकर तथा सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में हास्य के साथ व्यंग्य के भाव मिश्रित हैं । इन नाटककारों ने व्यंग्य में तीक्ष्णता लाने के लिए कठोर ध्वनियों का काफी प्रयोग किया है, परन्तु कोमल ध्वनियों की तुलना में वे कम हैं । रामवृक्ष बेनीपुरी , सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में प्रसन्नता के भाव अधिक आते हैं जिनमें व्यंग्य की तुलना में कठोर ध्वनियाँ कम हैं । विस्मय एक विस्तृत भाव है , जिसका संबंध सुखद तथा दुखद दोनों ही भावों से है । विस्मय का भाव प्राय: अन्य भावों के साथ आया है । विस्मय के कारण अन्य भाव की ध्वनियाँ भी प्रभावित हुई हैं । यों तो क्रोध तथा घृणा के भाव में कठोर तथा ध्वनियों की प्रधानता है परन्तु जहाँ विस्मय का भाव क्रोध तथा घृणा के साथ आया है वहाँ उसकी अभिव्यक्ति में कठोर तथा कोमल ध्वनियों का लगभग समान रूप में प्रयोग हुआ है । जैसे -

क्रोध और विस्मय

- (क्रोध और आश्चर्य से) इतनी नीचता । अभी उस लज्जाजनक अपराध का प्रकट करना बाकी ही रहा उलटा अभियोग । प्रमाणित करना होगा फिलिप्स । नहीं तो खड्ग इसका न्याय करेगा ।

(चन्द्र० ८२)

- हाय हाय । तू आया उस नटिये की पिचकारी खाने ? आ जाये तेरे सरीखे पाच तो क्या बिगाड़ सकूँगी, क्या !

(कार्ती० ७४)

इसमें च, भ, ग, घ, ट, ड, फ, त, क, ह, च, छ, ढ कठोर ध्वनियाँ तथा ए, ग, न स, उ, म, र, ल, ग, स, य, प, व, ज, व कोमल ध्वनियाँ हैं ।

घृणा और विस्मय

- छि: छि: भी मैं तो भीख माँग लाओगी । (भारत०भा०२४)
- कितना वीभत्स है । सिंहों की विकराल खोह में शृगाल बृंद पड़ी लोथ नोच रहे हैं । (स्कंद० १४१)

घृणा भाव के साथ विस्मय भाव के आने पर छ, भ, त, भ, क, ह, घ, ड़, ढ़, ब, कठोर ध्वनियाँ तथा स, लो, ग, न, व, र, ल, प, द कोमल ध्वनियाँ व्यवहृत हुई हैं ।

विस्मय जब उत्साह भाव के साथ व्यक्त हुआ है, तो कठोर ध्वनियों की अल्पता तथा कोमल ध्वनियों की अधिकता हो गयी है क्योंकि विस्मय के कारण उत्साह की ओजता कम हो गयी ।

उत्साह और विस्मय

- भगव । भगव । सावधान। इतना अत्याचार । सहना असंभव है । तुझे उलट दूंगा । (चन्द्र० ५६)
- हत्या कर दूँ । मारवाड़ी सारे रहते हैं उनकी हत्या कर दूँ । मैं राठौरों का अस्तित्व दूंगा । (जय० १०४)

विस्मययुक्त उत्साह भाव में भ, ब, भ, ट, फ, ह, ठ, क कठोर ध्वनियाँ तथा स, न, प, ग, इ, त, अ, य, र, ल, उ, द, व, कोमल ध्वनियाँ व्यवहृत हुई हैं । विस्मय के कारण उत्साह का मानो जोश शिथिल हो गया है जिसके कारण कोमल ध्वनियों की अधिकता हो गयी है ।

हास्य भाव में कोमल ध्वनियों की अधिकता है, विस्मय के साथ जब हास्य प्रयुक्त हुआ है तो कोमल ध्वनियों की कुछ अल्पता हो गयी है, फिर भी कोमल ध्वनियों की प्रधानता रही है । विस्मय अधिकांशत: व्यंग्यभावों में प्रयुक्त हुआ है ।

हास्य और विस्मय

- वाह । वाह । यह तो वही हुआ कि पढ़े फारसी बेचे तेल । अपनी शान आप बरबाद करें । (उलट० ८६)

- बेटी पद्मा ! कहाँ तू भी आ गयी ।.(अजात० १०७)

इनमें वात्सल्य में ह, क, ट, म, कठोर तथा ब, र, त, आ, म, न, ता, ग, प, व कोमल ध्वनियाँ आयी हैं ।

विस्मय, प्रेम में अधिकतर संयोगावस्था में आता है । विस्मययुक्त प्रेम में कठोर ध्वनियाँ अधिक आ गयी हैं, जिससे कोमल ध्वनियों की मात्रा कुछ कम हो गयी है ।

प्रेम और विस्मय

- अहा ! श्यामा का-सा कंठ भी है ! सुन्दरी, तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी, वैसी ही तुम हो ! (अजात० ७६)
- तुम्हारा यह राशि-राशि वैभव, नंदिनि ! ---- एक ही स्पर्श में युगों का आमंत्रण !" ---- ओह यह स्पर्श ! --- यह तुम्हारी देह का सागर --- और मैं हूँ कि गहराइयों में खो जाता हूँ --- और सागर की तलहटी ही नहीं --- सिकुड़ी ही नहीं ! --- ओह तुम्हारी देह का सागर नंदिनि ! (प०ना० २८)

विस्मय जब प्रेम के साथ प्रयुक्त हुआ है तो भी उसमें कोमल ध्वनियों की प्रधानता है । उपर्युक्त कथन में कोमल ध्वनियों में अ, य, म, स, न, र, व, लो, प, ग, औ, ल, ह, त, ना, द प्रयुक्त हुई हैं । कठोर ध्वनियों में ठ, क, र, ह, ज, न, स, ट, च, म, आयी हैं ।

कई बार नाटकों में विस्मय के भाव अकेले आये हैं परन्तु ऐसे स्थल कम हैं । अकेले विस्मय भाव में कोमल ध्वनियों की अधिकता है । उदाहरण -

- अरे जी ! मदनसिंह जी ! आप कहाँ ? आपका यह कैसा भेष ? (दुर्गा० ४६)
- (आश्चर्य से) मिस ? यानी कुमारी ---- ! (भूल० ११०)
- ओह, आप ! (मादा० ३८)
- (चकित) राजकुमारी , तुम ! (रस० २२)

विस्मय में आ, ओ, ब, र, प, य, म, स कोमल ध्वनियाँ तथा स, क, ह, म, च कठोर ध्वनियाँ व्यवहृत हुई हैं ।

नाटकों में विस्मय का भाव अधिकतर अन्य भावों के साथ आया । अकेला विस्मय भाव कम आता है । जैसे विस्मय के भाव की उपमी नारायण लाल, मुद्राराक्षस वृंदावन लाल वर्मा के नाटकों में अधिक स्थान मिला है । इनके अतिरिक्त लक्ष्मी नारायण मिश्र नाटकों में अधिकतर विस्मय के भाव अन्य भावों के साथ आये हैं । जयशंकर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर ,वृंदावन लाल वर्मा, बद्रीनाथ भट्ट, लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा मोहन राकेश के नाटकों में अन्य नाटककारों की तुलना में ध्वनियों का भावानुकूल तथा सफल प्रयोग हुआ है ।

कई बार नाटककारने कोई भाव प्रकट करना चाहा है, परन्तु कथन में ध्वनियों की असंगत व्यवस्था के कारण कोई अन्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है और इस प्रकार ध्वनि तथा भाव में संगति नहीं हो पायी है । क्रोध में जब बनावटी पन लाया गया है, कठोर ध्वनियों की तुलना में कोमल ध्वनियों की अधिकता हो गई है -

- (बनावटी रोष के साथ) सरकार के सामने मुँह से गाली नहीं निकलती परन्तु यदि उस अंग्रेज जनरल को पा गई- इस मुल्क की का नाम रोज़ है, जनरल रोज़ - तो तोप, बन्दूक या तलवार से सच्चा नाम लिये बिना न मारूँगी ।

(झाँसी० ८३)

कभी-कभी नाटककार नाटक में भय का संकेत किया है परन्तु कथन में भय न व्यक्त होकर क्रोध व्यक्त हुआ है । ऐसे स्थलों में कठोर ध्वनियां काफी आयी हैं जिनसे भय की सफल अभिव्यक्ति नहीं हुई है। जैसे -

- जो प्रबल वह तो आँधी से भी प्रबल है । याद आते ही कलेजा मुँह को आने लगता है । भगवान ने न जाने कहा से साथ बाँध दी । (वि०उ० ५७)

- (घबड़ाकर) फिर वही नाम ? मंत्री तुम बड़े खराब आदमी हो । हम रानी से कह देंगे कि मंत्री बेर बेर तुमको मौत बुलाने चाहता है । नौकर । नौकर । शराब - (कीर० १४)

उत्साह उत्पन्न करने के लिए कई बार ऐसे कथन आते हैं, जिनमें नाटककार उत्साह की अभिव्यक्ति करना चाह रहा है परन्तु कठोर ध्वनियों की अधिकता के कारण ओजस्विता प्रकट नहीं हो पा रही, कथन उत्साह की अपेक्षा उपदेशात्मक अभिव्यक्ति करते लगते हैं। जैसे -.

- (कंपण गम्भीर हुए) एक ही त्याग, एक ही मरण, एक ही जन्म से स्वराज्य सिद्ध नहीं होता। कर्तव्य पालन करते हुए मरना जीवन का दूसरा नाम है। यह रण कंपण जीवन और मृत्यु की मैत्री का प्रतीक है, उत्साह और दूरदर्शिता का समन्वय, शक्ति और भक्ति का सामंजस्य, त्याग और पौरुष का रसायन, शौर्य और विवेक का वाहन, तपस्या और ओज का पाणिग्रहण।   (कांती० ६८)

कई बार नाटकों में तुकबंदी से हास्य की सृष्टि करने का प्रयत्न हुआ है, परन्तु कठोर ध्वनियों की अधिकता के कारण हास्य से क्रोध का भाव प्रकट होने लगता है। जैसे -

- वही वही सीता की सखी मंदोदरी की नानी त्रिजटा। कहाँ है भाग्यपुष्प ज्योतिषी जी तुम। अपने को कवि भी लगता था। अब दांत पीसकर हाथ उठाकर शिखा खोलते हुए चाणक्य का लकड़दादा बन जाऊँगा। (स्कंद० १०३)

निर्वेद के भाव कहीं कहीं ऐसे प्रकट किये हैं, जिनमें अशान्ति तथा क्षोभ बना रहने के कारण कठोर ध्वनियों की मात्रा अधिक हो गयी है और भाव सफलता-पूर्वक नहीं व्यक्त हो रहे हैं। उदाहरण -

- राजन, संपूर्ण विश्व ही विधाता का क्रीड़ा कौतुक है। न यहाँ कोई प्रजा है, न कोई नर्तकी, न कोई कवि है, न यह शिप्रा की धारा। सब कुछ नास्तित्व के आकाश में माया का खेल है।   (सपन० ७१)
- मैं तो मरना चाहता हूँ तब भी नहीं मरता। मेरे अशोक की जगह भगवान मुझे उठा ले गया होता तो अच्छा था। अब इस बुढ़ापे में -   (लौटन० ६२)

कुछ नाटकों में जहां आवेश या फुंफकलाहट की स्थिति बनी रही है, उन नाटकों में कठोर ध्वनियां अधिक प्रयुक्त हुई हैं। कभी-कभी भाव के अनुरूप न होते हुए भी इन ध्वनियों का व्यवहार हुआ है। जी०पी० श्रीवास्तव, मणि मधुकर, वृंदावन लाल वर्मा तथा मोहन राकेश के(आधे अधूरे में) नाटकों में ध्वनियों का भी प्रयोग हुआ है। जयशंकर प्रसाद तथा हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में भी कहीं-कहीं ध्वनि प्रयोग की यह विशिष्टता प्रकट हुई है।

बलाघात भी भावाभिव्यक्ति में काफी सहायक हुए हैं। कथन में जिस शब्द पर नाटककार ने जोर देना चाहा है, उस पर बलाघात का प्रयोग किया है। प्रायः जिस शब्द पर बलाघात हुआ है, उसके पूर्व या पश्चात् में बलाघातहीन शब्दों को रखा है जिससे मुख्य शब्द अधिक उभर कर आ जाय। भावों में बलाघात का प्रयोग प्रस्तुत है -

क्रोध :

- (क्रोध से फड़ककर) निकलो। माँ निकलो, यहाँ ऐसी निर्लज्जता का नाटक मैं नहीं देखना चाहती। (ध्रुव० ६८)
- ले चाण्डाल पापी। मुझको जान आहत करने का फल ले महाराज के वध का फल ले। (नील० ३२)
- अरे ई का बोलिहै। इही कसाई है कसाई। (बकरी ५७)
- नहीं कोई बूढ़ा सा नहीं। मैं उस बुड्ढे का मुंह नहीं देखना चाहता। (अंगू० ७५)
- (तड़ातड़ जूते - चप्पल के पड़ने की आवाज़) छः बदचलन! शर्म नहीं? (अमृत० ७०)

इसमें निकलो, ले, कसाई, नहीं तथा बदचलन शब्दों पर बलाघात किया गया है जो कथन के मुख्य शब्द हैं।

घृणा :

- इसमें घृणा प्रदर्शित करनेवाले शब्दों या तिरस्कार करनेवाले शब्दों पर अधिकतर बल दिया है।

- छि: पुरुष होकर नर्तकी से अंग-विक्षेप में प्रतिद्वन्द्विता करोगे ?
  (ध्रुव० ३)

- जा, मैंने तेरा परित्याग किया । तुझे अपने घर की दुर्गन्ध समझ कर झाड़कर फेंक दिया । जा, मैंने तुझे अपने अंग का कोढ़ मान काटकर दूर किया । (अंगूर० ४६)

- वैसे भी मुझे उस युग से नफ़रत थी । (विश० १०)

छि: , जा, नफ़रत शब्दों पर बल देकर घृणा की अभिव्यक्ति की गयी है ।

भय :

भय में भय के कारण या पलायन के लिए शब्दों पर प्राय: बल दिया है । जैसे -

- फाँसी । अरे बाप रे बाप फाँसी !! मैंने किस की जान लूटी कि मुझको फाँसी । (भैर० २०)

- ओह । भयावनी पूंछवाला धूमकेतु । आकाश का उच्छृंखल पर्यटक । नक्षत्र लोक का अभिशाप । (ध्रुव० ४६)

- महारानी भागो । महारानी भागो । (अज० ११६)

- महाराज भागिये । महादेवी हटिए । (ज्वाला० ५८)

भागो, भागिये, फाँसी और धूमकेतु , पर्यटक, अभिशाप, शब्दों पर बलाघात कर भावाभिव्यक्ति को सफल बनाया है ।

शोक :

शोक के भाव में, शोक के कारण पर प्राय: बल देकर भावाभिव्यक्ति की गई है । जैसे -

- खा गए, हाय जी खा गए । (करी० ५५)

- छीन लिया, गोद से छीन लिया, सोने के लोभ से मेरे लालों को सूल पर के मांस की तरह सेंकने लगे । (स्कन्द० १४०)

प यों में 'ई' तथा शब्द के 'ठे' में 'ए' ध्वनियों को [illegible] बढ़ाकर कहा है। अन्य ध्वनियों को शीघ्रता से उच्चारित किया है।

घृणा :

- (क्रोध से) मुझे डाक्टर से नफ़रत है। नहीं हैट दिए।
(सिंह० ८५)

यहाँ 'हैट' में 'ए' ध्वनि को अवधि बढ़ाकर बोला गया है। हैट के पूर्व तथा पश्चात की ध्वनियों को शीघ्रता से बोला है ताकि 'हैट' शब्द अधिक उभर सके।

- जा मैंने तुम्हें अपने दिल का कोढ़ जान काटकर दूर फेंक दिया।
(अंगूर० ४६)

घृणा में तिरस्कृत करनेवाले शब्द 'जा' में 'आ' ध्वनि में दीर्घता बलपूर्वक अभिव्यक्ति के लिए लायी गयी है।

भय :

- भेड़ ! भयावनी मुँहवाला भूकम्प ! (ध्रुव० ४६)

'भेड़' में 'ए' ध्वनि का उच्चारण दीर्घता से हुआ है। अन्य ध्वनियाँ कम अवधि में बोली गयी हैं।

- महारानी भागी ! महारानी भागी ! (जय० १९६)

इसमें 'ई' ध्वनि को दीर्घतर प्रयुक्त किया है तथा 'भा' में 'आ' ध्वनि को अपेक्षाकृत कम समय में बोला है।

शोक :

- (रोकर) प्यारे ! मुझको अकेला किसके भरोसे छोड़ जाते हो ? नहीं नहीं मुझको भी साथ ले चलो ! मैं तुम्हारे बिना यहाँ तड़प-तड़पकर मर जाऊँगी। (उत्त० ८०)

प्यारे में 'ए' को दीर्घ करके और 'नहीं - नहीं' में 'ई' ध्वनि शीघ्रता से प्रयुक्त की गई है।

शोक में कष्ट के आधिक्य में भी उच्चारण अवधि में भिन्नता आती है -

-(कलम पर हाथ रखते हुए) आह, दर्द ! उफ् !!

(जम्बू० ६७)

इनमें " आह " में " आ " ध्वनि खींचकर कष्ट के आधिक्य की अनुभूति करायी है । " उफ् " में ध्वनियाँ तेजी से उच्चरित की है ।

विस्मय :

- ऐ ----- ऐ ---- ऐ --- क्या कर रहे हो भीष्म ।

(भी० ४४)

- (आश्चर्य से) हैं ! यहाँ भी नहीं है । (दुर्गा० ११६)

इनमें " ऐं " में " ऐ " है " में " ऐं " ध्वनि को विस्मयात्मक अभिव्यक्ति के लिए खींचकर बोला है तथा अन्य ध्वनियों को अपेक्षाकृत शीघ्रता से बोला है ।

- (चौंककर) शिव ! शिव ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ? (रक्षा० ८)

- बस, बस नागरिकों ! मैं आज का समाचार लिखकर ही चला हूँ । (जम्बू० ७५)

विस्मय के कारण शिव ! शिव ! बस-बस , विस्मयादिबोधक शब्दों को कम ध्वनि में बोला है तथा " क्या " ही में " आ ", ई " ध्वनियों पर जोर देते हुए उनकी अवधि बढ़ाकर कहा है ।

उत्साह :

- तुम वीर हो, इस समय देश को वीरों की आवश्यकता है ।

(स्कंद० १५८)

उत्साह बढ़ाने के लिए " वीर " कहा है, जिसमें " वीर " में " ई " को दीर्घता के साथ बोलकर शब्द के प्रभाव को बढ़ाया है । उत्साह में तीव्रता के कारण अन्य ध्वनियों को शीघ्रता से बोला है ।

कभी-कभी उत्साह में आवेश की अधिकता में सभी ध्वनियों का उच्चारण शीघ्रता से हुआ है -

- मारने के लिए हाथ और मरने के लिए सिर फड़फड़ा रहे हैं ।

(कार्नी० ६७)

- उठो पूरी शक्ति के साथ शत्रु सेना पर टूट पड़ो । (रक्षा० ३२)

वाक्य में विस्मयात्मक शब्द " दादा " दादा " में " दादा " में पहले " दा " की " आ " ध्वनि तथा " रे " की ए ध्वनि को खींचकर बोला है वाक्य की अन्य ध्वनियाँ सम गति में बोली गयी हैं ।

- वाह, वाह दीवान जी क्या बात है । अब तुम पक्के शायर हो गए ।(बकरी ०४८)

" वाह, क्या " में प्रयुक्त हुई " आ " ध्वनि तथा " पक्के " में " ए " ध्वनि के द्वारा व्यंग्य प्रकट करने के लिए लम्बा करके बोला है ।

निर्वेद

निर्वेद में व्यक्ति शान्तचित्त होकर बोलता है अतः इसमें ध्वनियों को खींचकर तो बोला गया है परन्तु आवेश के भाव न होने के कारण ध्वनियाँ शीघ्रता से नहीं बोली गयी हैं । जैसे -

- आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है । (अजात० २७)

" आह " में " आ " ध्वनि का दीर्घ करके उच्चारण किया है ।
निर्वेद में कभी-कभी ध्वनियों के उच्चारण की अवधि में कोई अंतर नहीं आया है क्योंकि व्यक्ति शान्त तथा निराश होकर बोलता है ।

- अश्वघाटी की नाव टूट चुकी है, पर्यंके । वह अभी तक समाधि स्पष्ट देख रही है - जड़ समाधि या सम्यक समाधि ।
(अम्बा० १०६)

नाटकों में अनुप्रास का भी भावाभिव्यक्ति में काफी योगदान रहा है । नाटकों में आनुप्रासिक शैली का प्रयोग कई प्रयोक्ताओं ने किया गया है । कई बार भाव को प्रभावशाली या प्रखर बनाने के लिए और कई बार शैली में सौन्दर्य लाने के लिए प्रयुक्त किया है । क्रोध के भाव में अनुप्रासात्मक प्रयोग द्वारा आवेश व्यक्त किया है ।

- मंडोवर के नाटकीय कीड़े नीच, पापी, नराधम । अब तेरा अन्तिम समय है । आज अपने अपमान का, नगर की निर्दोष निरीह कन्याओं

के अपमान का, कुमार राघव के अपमान का उनकी हत्या का - सब का इकट्ठा बदला चुकाऊँगी । (जय० १४२)

- दुष्ट ! इस रक्ताक्त से मेरे गुरु हृदय को निकालना ही होगा ।

(आषा० ५७)

- कमबख्त अब फिर किसी पर हमारी हुकूमत करने की हिम्मत करता है ।

(उल्ट० ७६)

- मुझे कुछ भी नहीं चाहिए आपसे । आप चाहती हैं कि आपके इशारे पर चल पड़ें । सब को अपनी हथेली में रखकर आपने पीस डालना चाहा है । अब आप भूल जाइए कि मैं आपका बेटा हूँ । (अमृत० ६६)

- बंद करो यह नमकहरामी । मुझे यह बिलकुल बर्दाश्त नहीं ।

(माधा० ३७)

घृणा में भी ध्वनियों के आनुप्रासिक प्रयोग से भावाधिक्यता की अभिव्यक्ति की है । जैसे-

- जा मैंने तुझे अपनी अंग का कोढ़ जान काटकर दूर कर दिया । खबरदार ! मुँह न दिखाना । मेरे घर में अब तेरे लिए जगह नहीं । मेरे लिए तू मर चुकी , मेरे लिए मैं मिट चुका ।

(अंगूर० ५६)

- कितना बीभत्स है । गिद्धों की शिकार स्थली में झाड़-झंखाड़ सड़ी लाश नोच रहे हैं । (स्कंद० १४१)

- (घृणा से मुँह सिकोड़ती) वे पतित, वे नीच, वे नराधम । वैशाली उन्हें नहीं क्षमा कर सकती, महामात्य । (अम्ब० ८३)

नाटकों में ध्वनियों के आनुप्रासिक व्यवहार से भय की अतिशयता की व्यंजना की है, भय में कभी-कभी व्यक्ति इतना घबरा गया है कि वह ध्वनियों को बार-बार बोलता गया है ।

- भागो-भागो ! वह राजा का अहेरी चीता पिंजरे से निकल भागा है, भागो, भागो । (चन्द्र० ६२)

प्रेम के प्रसंगों में आनुप्रासिक प्रयोग प्राय: शैली सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहा है ।

- एक और मधु-मय-मादक गान । (अंग० १६)

- इस संगीत के साथ सौन्दर्य और सुरा ने मुझे अभिभूत कर दिया है । (अजात० ६२)

उपालम्भ के आवेग को ध्वनियों की आनुप्रासिक व्यवहार द्वारा व्यक्त किया है ।

- क्या कठोर और क्रूर कर्म करते-करते तुम्हारे हृदय में कौतुक की गुदगुदी और कोमल स्पन्दन नाम को भी अवशिष्ट नहीं है ? (अजात० ६६)

देशप्रेम के भाव को प्रकट करने में भी ध्वनियों का अनुप्रासात्मक प्रयोग किया है ।

- मेरा देश है । मेरे पहाड़ है । मेरी नदियाँ है और मेरा जंगल है, इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणु से बने हैं । (चन्द्र० ८१)

वात्सल्यातिरेक की स्थिति को भी ध्वनियों की आवृत्ति से प्रकट किया है ।

- ठीक कहते हो बेटा । मैं माँ हूँ जिसकी आँखों में ममता के आँसू हैं और अंचल में दीर्घायुष्य का दूध, वाणी में मंगल-कामना । मैं जाती हूँ, बेटा । मैं कुछ कहूँगी । (वि० अ० ३६)

- (उसे गोद में लेते हुए) वाह रे मोहन बेटे, तू तो बड़ा होकर टैगोर के कान काटेगा । खूब कविता किया कर । अब के कलकत्ता पहुँचकर मैं तेरे लिए कविता की बड़ी सरल और सुन्दर किताबें भेजूँगा । (कौ० १२०)

बच्चों के द्वारा एक ही ध्वनियों को कई बार दुहराकर वात्सल्य प्रदर्शित कराया है । अपनी प्रसन्नता की अधिकता में ध्वनियों की आवृत्ति कर रहे हैं ।

- माँ, मेरी माँ । मेरी आई । (कामा० १०४)

नाटकों में हास्य भाव की पुष्टि के उद्देश्य से ध्वनियों का आनुप्रासिक व्यवहार किया है ।

- सालता रुपल केर उढ़ाई ओकरे आगे फूठ होएगी । बक-बक बक बक बक भार बशस्यार के पिटपिट लाल का ढेर के दिहिस । औसर पितराग अंखियाँ सूखे बशस्यारन । मुला हमार उजियरा किन्नी नाहीं बला । घर घर बाहस । कलम फाड़-फाड़ लिखिस । रामकोचाई जब लड़ा जग लुटा कि काव कहीं भइया बस फुफुर केहू । (उल्ट० २७)

- + + शिष्टाचार शादी का, यों कह लो, कि बंधन का प्रतीक है । उधर आपकी शादी हुई, इधर आपके गले में शिष्टाचार का जुआ पड़ा । है आपकी सास है - इनके सामने सिर नीचा किये शिष्टाचार से यों मुस्कराओ, मानो आपके सारे दांत झड़ गये हैं । (अंबो० ५०)

- अपने घर पधारिये और पर्दा डाल पलना झूल गये हुए गुनगुनाइए- (अंगूर० ४४)

ग्राम्यता की अभिव्यक्ति को भी ध्वनियों के अनुप्रासात्मक प्रयोग द्वारा स्पष्ट किया है ।

- रुपये तो कसम कुरान की कदम - कदम पर मिलते हैं । (उल्ट० १७)

नाटकों में निर्वेद भाव में ध्वनियों का आनुप्रासिक प्रयोग न के बराबर हुआ है, क्योंकि निर्वेद शान्त भाव है और आनुप्रासिक प्रयोग से आवेश का मिश्रण हो जाता है । जहाँ आनुप्रासिक प्रयोग किया है, वहाँ शुद्ध निर्वेद भाव नहीं है । आनुप्रासिक प्रयोग द्वारा भावों को स्पष्ट करने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, जी०पी० श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ मणिमधुकर और गोविन्द वल्लभ पंत नाटककारों ने अधिक रुचि ली है । वृंदावन लाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, उदय शंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मी नारायण लाल, लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा सुरेन्द्र वर्मा ने भी ध्वनियों के ऐसे प्रयोग से भावाभिव्यक्ति की है, परन्तु इनके नाटकों में ध्वनियों का ये व्यवहार बहुत कम हुआ है । सत्यव्रत सिन्हा, मुद्राराक्षस, विपिन कुमार तथा विष्णु प्रभाकर ने भी आनुप्रासिक प्रयोग में कम रुचि ली है ।

ध्वनियों के शैलीगत अध्ययन में लय का भी महत्वपूर्ण स्थान है । नाटकों में ध्वनियों के आघातपूर्ण प्रयोग ध्वनियों की आवृत्ति तथा आरोह अवरोह

- हृदय जोर से धक-धक करने लगा । (कथा० १३२)
- पाँव काँपते, होंठ थरथराते , गला रुँध जाता--- (हिमु० १६)
- महोदय । ताप के मारे थर-थर काँप रही थी ।
(ना०आ०वि० ४६)
- हृदय थरथरा रहा है । (अजात० ७८)
- उसका हृदय भी हो हाहाकार करे । (जन्म० ५७)

उल्लास, हास्य-विनोद तथा प्रेम भावों की अभिव्यंजना में कोमलतापूर्ण अनुकरणात्मक ध्वनियों को स्थान मिला है जैसे -

उल्लास में -

- कौशलपति का यह अनुपम सुख स्नेह देखकर मैं गद्गद हूँ ।
(राज्य० ३७)
- कुलकुलाती हवा अपनी मस्ती में झूमती है उद्दीप्त बच्चों की तरह खिलखिलाकर हँसते हुए ये फूल अपने आनन्द में डूबे नाचते हैं ।
(वि०ना० ५४)

प्रेम में -

- मर्द, मजा मर्द, गुदगुदाना कहाँ तक कहाँ तक रुलाई न आवे ।
(श्रीचन्द्रा० २८)
- + + तुम्हारे हृदय में बालक्रीड़ा की गुदगुदी और कोमल स्पन्दन नाम को भी अवशिष्ट नहीं है ? (अजात० ४६)

हास्य विनोद में -

हास्य व्यंग्य के प्रसंगों में अपेक्षाकृत कुछ अनुकरणात्मक ध्वनियों में तीक्ष्णता आ गयी है । जैसे -

- बैल की तरह बाँ-बाँ करके चिल्लाओगे । (रत्न० ६१)
- तेरी माँ मर रही थी और तू में में कर रही थी अं हैं हैं ।
(जन्म० ११)

- बड़े मियाँ बहुत पिटपिटाये पर उनका जूता उनके सिर ।
  (अंजो० ६६)
- महाराज का चेहरा बकरी के गले में थन की तरह
  फकफकाने लगा । (वि०उ० ७०)
- हाँफकर टिमिर टिमिर करे । (उ०ट० १०५)
- किंतु मेरे हृदय में इस समय कविता देवी बाहर निकलने के लिए
  कसमसा रही है । (दुर्गा० ६८)

अनुकरणात्मक ध्वनियों द्वारा भावाभिव्यक्ति की ओर कुछ नाटककारों की रुचि अधिक रही है, जिनमें जयशंकर प्रसाद, जी०पी० श्रीवास्तव, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, वृंदावन लाल वर्मा तथा मणिमधुकर मुख्य हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश , उपेन्द्र नाथ अश्क और बद्रीनाथ भट्ट की दृष्टि भी अनुकरणात्मक ध्वनि प्रयोग की ओर रही है, परन्तु इन नाटककारों ने अपेक्षाकृत कम अनुकरणात्मक ध्वनियों का व्यवहार किया है । लक्ष्मी नारायण मिश्र, [illegible] सिन्हा, सुरेन्द्र वर्मा तथा लक्ष्मी नारायण लाल की रचनाओं में भी इन ध्वनियों को कहीं-कहीं प्रयुक्त किया है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटक में भी इन ध्वनियों को स्थान मिला है, परंतु ये ध्वनियाँ भाव से संबद्ध होकर अधिकांशतः नहीं आयी हैं । विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस तथा विष्णु प्रभाकर का रुझान अनुकरणात्मक ध्वनि की ओर अत्यल्प रहा है ।

भावों की वाचिक अभिव्यक्ति

भाव के मुख्य दो पक्ष होते हैं - अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष । काव्यशास्त्र में अभिव्यक्ति के लिए अनुभाव शब्द का प्रयोग हुआ है । अनुभाव के भी दो पक्ष हैं (१) कायिक (२) वाचिक । ये दोनों पक्ष भाव के प्रकटीकरण में सहायक होते हैं । भावों के प्रकटीकरण में जितना महत्वपूर्ण स्थान शारीरिक चेष्टाओं का है, उतना ही वाचिक अभिव्यक्ति का महत्व है । प्रत्येक भाव में शारीरिक चेष्टाओं में जैसे परिवर्तन आता है, उसी प्रकार शब्दों के चयन, बोलने के ढंग में भी भिन्नता आ जाती है । नाटकों में वाचिक अभिव्यक्ति को नाटककारों ने किस प्रकार प्रकट किया है, इस पर दृष्टि डालें ।

क्रोध

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है । नाटकों में क्रोध का भाव अनेक स्थितियों में उत्पन्न हुआ है । क्रोध के भाव का प्रभाव शब्दों पर बहुत पड़ा है । शब्दों के प्रयोग में काफी परिवर्तन आ गया है । इस भाव में शब्दों में तीव्रता, अस्पष्टता अधिक आ गयी है । इसके अतिरिक्त व्यंग्य, कटूक्तियाँ, प्रताड़ना, भर्त्सना वाले शब्दों द्वारा भाव का स्वरूप प्रकट हुआ है ।

नाटकों में क्रोध की अभिव्यक्ति कुछ विशिष्ट विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा हुई है, जिनमें अरे, हाय हाय, ऐं रे, अरी, ओह शब्द मुख्यतः आये हैं -

- अरे ई का बोलत है । हमी कसाई हैं कसाई। (बकरी १७)
- ओह, तेरी यह हिम्मत ! ---- बदतमीज ---- । (माधवी ७१)
- हाय हाय ! तू आया उस मंदिर की भिखारी बनने ?
(कांसी० ७४)
- अरी ---- रे ---- रे ---- क्या कर रही हो भीष्मा !
तुम्हें शर्म नहीं आती ? (बोधी० ५४)

अपशब्दों को अधिकांशत: आरंभिक नाटककारों ने रखा है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा के नाटकों अपशब्दों का आधिक्य है । आधुनिक नाटककारों में एकाध नाटकों में अपशब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति हुई है जिनमें सत्यकृत लिप्सा, मणिमधुकर के नाटक मुख्य हैं । विष्णु प्रभाकर ने भाव को सशक्त बनाने के लिए अपशब्दों का व्यवहार किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र , जयशंकर प्रसाद, जी०पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, (पहला राजा तथा कोणार्क में) विष्णु प्रभाकर, वृन्दावन लाल, हरिकृष्ण प्रेमी , उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) तथा मोहन राकेश (आधे अधूरे में) ने क्रोध के उग्र रूप को तथा क्रोध की विभिन्न दशाओं को रखा है । इन नाटककारों ने क्रोध के लगभग सभी रूपों को अपनाया है । प्रताप नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, कुमाराराम गोविन्द वल्लभ पंत, मुद्राराक्षस, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विपिन कुमार अग्रवाल तथा सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में क्रोध का बहुत उग्र रूप नहीं प्रकट हुआ है । अपशब्दों की बजाय इन नाटककारों ने कटु वाक्यों तथा व्यंग्यात्मक शब्दों तथा वाक्यों द्वारा भावाभिव्यक्ति अधिक की है।

घृणा

घृणा शुद्ध रूप में आवेगहीन भाव है, नाटकों में इसके प्रदर्शन में भाषा में कोई विशिष्टता नहीं आ पायी है । घृणा की अभिव्यक्ति शुद्ध रूप में छि: विस्मयादिबोधक शब्द से हुई है । इस प्रकार की अभिव्यक्ति कुछ नाटककारों ने की है। जैसे -

- नंगी नारी मूर्ति । जिसकी छुतिया में से एक कुत्ता निकल रहा है । —छि: (प०रा०६८)
- छि: पुरुष होकर स्त्री से अंग विशेष में प्रतिद्वन्द्विता करोगे ? (सप्त० ३)
- छि: छि: कुकुर । राम राम राम -------- । (मादा० ६८)
- छि: छि: । जीओगे तो भीख माँग खाओगे । (भारतज०२४)

कहीं-कहीं घृणा की व्यंजना 'राम-राम' विस्मयादिबोधक शब्द से भी की है।

फल , घट, दूर हो तथा परित्याग किया, फाड़कर फेंक दिया, छोड़ जानकर दूर कर दिया आदि शब्दों से तिरस्कार व्यक्त हो रहा है, जो घृणा को प्रकट कर रहा है ।

तृतीय मिश्रित-घृणा में कहे जाते, मुँह न दिखाना" आदि शब्द समूह द्वारा भी भाव की अभिव्यक्ति हुई है । उदाहरण -

- स्त्री : बस बस बस बस बस बस बस । कितना सुनना चाहिए था, उससे बहुत ज्यादा सुन लिया है । आपसे मैंने । बेहतर यही है कि आप यहाँ से चले जायें क्योंकि ---- । (आ०१०८)

- चुप रहो, ऐसे उद्दण्ड को मैं कभी नहीं क्षमा करता, और सुनो चन्द्रगुप्त, तुम भी यदि इच्छा हो तो इसी ब्राह्मण के साथ जा सकते हो, अब कभी मगध में मुँह न दिखाना । (चन्द्र० ६०)

- खबरदार । मुँह न दिखाना । मेरे घर में अब तेरे लिए जगह नहीं । मेरे लिए तू मर चुकी। (अंगूर० ४६)

कहीं-कहीं निषेध के रूप में भी घृणा प्रदर्शित की है । इसमें निषेधात्मक अभिव्यक्ति अधिकतर शब्द समूहों द्वारा की गयी है । जैसे -

- मैं उन धुआखोरों की धुआकटी में नहीं जाता । मैं तुमसे भी कहूँगा, न जाओ । (अंगूर० ३१)
- जाने दीजिए, दुर्गंध है । मैं तो उसकी ओर देखना नहीं चाहता ।
(मुक्ति० ११९)

" नहीं जाता" तथा देखना नहीं चाहता" से निषेधात्मक अभिव्यक्ति हुई है । घृणा के भाव की सबल अभिव्यक्ति निषेध से अधिक निन्दा से की गयी है । इसमें व्यक्ति दोषों को भी गिनाता है । इस प्रकार की भावाभिव्यंजना अधिकतर नाटकों में हुई है ।

- डूब मरो चुल्लू भर पानी में । मेवाड़ पर संकट आया है और तुम मौज मना रहे हो, तुम्हें आनन्द आ रहा है । (रक्षा० ४०)
- हाय क्यों मोहनदास तुमने ब्राह्मण के घर जन्म लिया था । राम-राम तुम कहाँ पड़े थे? नाली में और गंदी से गंदी कीच सूँघनेवाला कुत्ता तुम्हारा मुँह चाट रहा था ।। (अंगूर० ११)

घृणित दृश्यों को देखकर घृणा की अभिव्यक्ति जयशंकर प्रसाद तथा मुद्राराक्षस ने की है।

कई बार नाटककारों ने घृणा के भाव को छुपाकर व्यक्त किया है, जिसमें पात्रों से यह कहलाया है कि मुझे नफरत है, घृणा है। उदाहरण -

- और वैसे तो मुझे उस मुँह से नफरत थी। (सिन्दू० १०)
- ऐसे पामर प्राणियों को पास बैठाने से भी मुझे घृणा है।
(उपन्या० २५)

कई बार नाटककारों ने क्रोध मिश्रित घृणा की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है, जिसमें क्रोध का आधिक्य प्रकट हो रहा है, परन्तु घृणा भाव नहीं। जैसे -

- (घृणा दरशाकर) कितने नम्र, कितने शिष्ट हो तुम लोग।
(रत० २३)

- (अतीव घृणा से) अदलपीव कहीं के। और पानी के बताशे दही-बड़े और चाट खाकर ------ (अंधो० ४०)

घृणा के भाव का शुद्ध तथा उग्र रूप जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी तथा मुद्राराक्षस के नाटकों में प्रयुक्त हुआ है। इन नाटककारों ने घृणा की लगभग उपर्युक्त सभी दशाओं को महत्व दिया है। कुछ नाटककारों ने क्रोध मिश्रित घृणा को मुख्य रूप से रखा है, जिसमें भर्त्सना, प्रताड़ना, निन्दा, विरोध द्वारा घृणा व्यक्त हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, रामवृक्ष बेनीपुरी, उपेन्द्र नाथ अश्क, गोविन्द वल्लभ पन्त, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण मिश्र (मुक्ति का रहस्य में) तथा मोहन राकेश (आधे अधूरे में) के नाटकों में घृणा के ये रूप मुख्यतः व्यक्त हुए हैं। सत्यव्रत सिन्हा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों में घृणा के भाव के प्रकटीकरण में क्रोध का आधिक्य है, जिसके कारण घृणा न व्यक्त होकर क्रोध व्यक्त हुआ है।

भय

मनुष्य की मूलप्रवृत्तियों में पलायन भी एक प्रवृत्ति है, जिससे संबंधित संवेग

को भय का नाम दिया है । दुरता की भावना से मनुष्य रक्षा की प्रक्रिया को अपनाता है । जो भय को प्रदर्शित करती है । भय का भाव क्रोध के बिल्कुल विपरीत है । नाटकों में कुछ विशिष्ट विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा, भय की अभिव्यक्ति हुई है । डरपोक, कायर प्रवृत्ति वाले पात्रों द्वारा इन शब्दों का प्रयोग अधिकतर किया गया है । विस्मयादिबोधक शब्द प्रयोग के उदाहरण प्रस्तुत है -

- शकराज - (भयभीत होकर उधर देखता हुआ) ओह । भयानकी धूमवाला धूमकेतु ! आकाश का उच्छृंखल पर्यटक । नक्षत्रलोक का अभिशाप । (ध्रुव० ४६)
- भा० - (डरता और कांपता हुआ होकर) अरे यह विकराल बदन कौन मुंह बाये मेरी ओर दौड़ता चला आता है ? हाय हाय इससे कैसे बचैंगे ? (भारत० भा० २४)
- ओफ, ये कुत्ते । लगता है दरवाजे तोड़कर अंदर घुस जायेंगे । (तिल० १०)

उपर्युक्त कथनों में ओह, अरे तथा ओफ विस्मयादिबोधक शब्द प्रयुक्त हुए हैं । भय में भी विस्मय की भांति विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु इसमें उच्चारणगत भिन्नता है ।

भय में व्यक्ति विस्मित भी रहता है, जिसमें वह कभी-कभी लगातार प्रश्नवाचक शब्दों का प्रयोग कर रहा है । भय की ऐसी दशा लक्ष्मी नारायण मिश्र ने सिंदूर की होली तथा मुद्राराक्षस के 'तिल चट्टा' नाटक में प्रकट हुई है ।

- पैर : ओफ । - कहां - कौन है ? ओह माचिस । कौन है वहां ? कौन है ? (तिल० ५)

भयभीत व्यक्ति ने कभी-कभी आतंक दिखाते हुए भी ऐसे शब्दों की भी आवृत्ति की है । यहाँ कहीं-कहीं शब्द समूहों की भी आवृत्ति हुई है । जैसे -

- भागो-भागो । यह राजा का अहेरी चीता पिंजरे से निकल भागा है, भागो, भागो । (चन्द्र० ६२)
- रोकिये, रोकिये इस जादूगरनी को । (प०रा० २०)

- भूचाल आ गया । भूचाल आ गया । रक्षा करो, राजा भोज । रक्षा करो । (रस० ४४)

भागो, रोकिये, रक्षा करो शब्दों की आवृत्ति से भय के आधिक्य को व्यक्त किया है। भय में व्यक्ति ने कभी-कभी ईश्वर का स्मरण किया है या दुहाई की है, अथवा किसी व्यक्ति को रक्षा के लिए पुकारा है । इन्हीं शब्द समूहों द्वारा भाव की अभिव्यक्ति मुख्यतः होती है ।

- दुहाई परमेश्वर की, और मैं नाहक मारा जाता हूँ । (अंधेर० २९)
- हे भगवान । अब क्या होगा । (मुगी० ४२)
- हाय राम । (उठकर उनके पैर पर गिरते हुए) अब क्या होगा सरकार ? (सिन्दूर, २६)

भूचाल आ गया । भूचाल आ गया । रक्षा करो, राजा भोज । रक्षा करो । (रस० ४४)

भय की इस कोटि की अभिव्यंजना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, लक्ष्मी नारायण मिश्र, मणि मधुकर, विष्णु प्रभाकर तथा हरिकृष्ण प्रेमी ने की है ।

नाटकों में भय की वाचिक अभिव्यक्ति में सब से स्वाभाविक स्थिति कंठावरोध की है । भय में प्रयत्न करने पर भी शब्द नहीं निकलते । यथा -

- भाग ---- जाओ ---- भाग ---- जाओ ---- भाग --- अभी --- वह ---- आओगे ---- वह --- आ --- रहे । (मुक्ति० १००)
- बापजी - भाभी ! (कंठावरोध) (रक्षा० ६३)
- (कांपकर) शैलेन्द्र । विश्वास । ऐसी नहीं -- और भयानक --- (आँखें बंद कर लेती है) (अजात० ६४)

भय में कभी-कभी ऐसी स्थिति आ गयी है कि व्यक्ति प्रयत्न करने के बाद भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति नहीं कर पाया है शब्दों तथा शब्द समूह की आवृत्ति करता गया है । इस प्रकार की स्थिति के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

- मिस मेहता : क्या साहब मैं --- मैं ---- . (अमृत० ६३)
- इस बारे में --- इस बारे में ---- (सिन्दूर० १३५)

भय में घबराहट की अधिकता में कभी-कभी , सारे शब्द कंठावरोध की स्थितियों को जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सत्यव्रत सिन्हा, उपेन्द्र नाथ अश्क तथा कुमारदास ने प्रकट करने में रुचि ली है । नाटकों में भय में व्यक्ति कभी-कभी अभिव्यक्ति तो पूर्ण रूप से कर देता है परन्तु घबराहट के कारण शब्दों की आवृत्ति करता है -

- (दीर्घ निःश्वास छोड़कर) मैं सोचा था, मैं डरती थी । सो भागूँ, किधर भागूँ, हाथ-पाँव फूल रहे हैं । (अजा० ११६)
- वह देखिए आसमान की ओर तुम फूटा है बीच । कितना बड़ा --- कितना बड़ा --- सारा आसमान उजेला हो गया । मालूम हो रहा है भर गया । लौट चलिये --- लौट चलिये ---- आह ! आह !
  (सिन्दूर० १२६)

घबराहट भी भय की एक स्थिति है, इसमें भी पात्र कभी-कभी इतना घबरा गया है कि वह शब्दों की आवृत्ति करता है, कभी अधूरे शब्द भी बोलता है ।

- वह आया तो मैं समझी तुम्हारे शत्रु ---- (घबराकर) कि बोला ही है कि---- (बेतरह घबराकर) कि---कि---- तुम्हारे कोई शत्रु हैं । (अंबा० ३४)

भय की एक ऐसी स्थिति भी है, जिसमें व्यक्ति निरंतर भय का सामना करते-करते वह इतना उन्मत्त हो गया है कि, वह भय को भय नहीं समझता है और भय का सामना करने के लिए तैयार हो गया है । इसमें वह भय से स्वयं सावधान होता है तथा दूसरों को भी सावधान करता है । उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है -

- रामगुप्त - (सशंक और भयभीत -सा इधर उधर देखकर) तुम सब पाखण्डी हो, विद्रोही हो । मैं अपने न्यायपूर्ण अधिकार को तुम्हारे जैसे कुत्तों के भौंकने पर न छोड़ दूंगा । (ध्रुव० ६४)

(भयाक्रांत) मैंने सुपरिंटेंडेंट के सामने कभी तुम्हारी निन्दा नहीं की । जब-जब उसने पूछा, मैंने यही आश्वासन दिया कि-अच्छे लोग हैं । मिल जुलकर रहते हैं । कड़ी मेहनत करते हैं । गाली गलौज करना तो जानते ही नहीं । अनुशासित रहकर जेल के नियमों का पालन करते हैं ।

(रस० ६६)

इन कथनों से भय नहीं व्यक्त हो रहा है, जबकि नाटककार ने भयाक्रांत का संकेत किया है । भय में विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति प्रायः सभी नाटककारों ने की है । भय के भाव का प्रदर्शन मुद्राराक्षस ने अधिक किया है । उन्होंने भय में आवृत्तिमूलक , कंठावरोध तथा प्रश्नवाचक शब्दों द्वारा भय के भाव को प्रकट किया है । जयशंकर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी , उपेन्द्रनाथ, लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भय की आवेगात्मक स्थिति को प्रायः रखा है । प्रसाद ने भय में भय की आवृत्ति द्वारा व्यक्त किया है । मोहन राकेश ने 'लहरों के राजहंस' में भय को अधिकतर शब्दों की आवृत्ति तथा कंठावरोध से प्रकट किया है । सत्यव्रत सिन्हा ने भी एक-दो स्थल पर कंठावरोध की स्थिति द्वारा भय को प्रकट किया है, जिसमें आवृत्तिमूलक प्रयोग भी हुआ है ।

शोक

शोक, दुखात्मक भाव में प्रमुख है, जिसमें कष्ट, पीड़ा, दैन्य, विषाद, असंतोष प्रमुख रूप से आये हैं । नाटकों में शोक के प्रदर्शन में विस्मयादिबोधक शब्द को हा, हाय, आह, उफ काफी अपनाया गया है । शोक में मुख्यतः निम्न प्रकार के विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग नाटकों में हुआ है । -

- हाय-हाय, बेचारी फूल-सी बच्ची । विधाता ने उसे मसलकर रख दिया । (सुगी० २५)
- ओफ । झाँसी की महारानी !! राम रे !!! मेरी तो कमर टूट गई !!!! (झाँसी० ७०)
-(आँसू पोंछती हुई) हा महारानी जी ने अनगिनती घाव खाए हैं ।
(दुर्गा० १२०)

- अरी ! हम [illegible] जीव गरल । ऊ कहाँ, तु तब कहाँ । अब हम जाय करी । (बकरी ५५)
- आह, दर्द ! उफ़ !! (अम्ब० ६७)
- ओह, लगता है मेरा सिर फट जायगा । (नादा० ५१)
- किन्तु हाय ! आज मैं अपने सौभाग्य से वंचित हो गयी हूँ । हृदय थरथरा रहा है, कण्ठ भरा आता है - (ज्वाला० ७८)
- उफ़ --- मेरा सिर चक्कर खा रहा है --- (कोणार्क ५)
- हाय ! राम ! कहूँ के नाहीं भइल । धोबी के कुकुर अस न घर के भइल न घाट के भइल । (उलट० १२१)

शोकों में विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति लगभग सभी नाटककारों ने की है, परन्तु कुछ नाटककारों ने इसका आधिक्य रखा है । जी०पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, वृंदावन लाल वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, उपेन्द्र नाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट ने नाटकों में विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है । शोकाधिक्य में कभी-कभी कंठावरुद्ध हो गया है और व्यक्ति एक-दो शब्द बोलकर आवेशवश आगे नहीं बोल पाया है । इनमें एक दो शब्दों से हृदय की संपूर्ण व्यथा प्रकट हुई है -

- बालुका की आवाज़ : आह । (कोणार्क ६८)
- प्रभु : (वज्रपात-सा) क्या ? (प०रा० ६५)
- ओफ़ ! सरकार !! ([illegible] १३१)
- अम्मी, आह । (अम्ब० १०६)

कंठावरोध द्वारा भावाधिक्य की व्यंजना हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, वृंदावन लाल वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी ने मुख्यतः की है । नाटककारों ने शोक के आधिक्य को व्यक्ति की वाणी में शिथिलता लाकर भी प्रकट किया है । शोक भाव में अपेक्षाकृत धीरे-धीरे शब्दों को बोला है, जबकि क्रोध और भय में अधिक तीव्रता से शब्दों का उच्चारण किया है । वाणी में शिथिलता के उदाहरण देखिए -

- सन्यासी : तुमने ---- मेरे ---- साथ ---- अंध --- का वैर ---- निकाला ------ (रास० ६८)

- मोतीबाई - (टूटे हुए स्वर में) इस गोदी में सिर रखे हुए मरना चि --- र --- सौ --- भा --- ग्य --- में . (झाँसी १०३)

शब्दों में शिथिलता लाकर भावाभिव्यक्ति वृंदावन लाल वर्मा, लक्ष्मी नारायण मिश्र, जगदीश चन्द्र माथुर तथा मणि मधुकर ने की है।

शोक में शब्दों की आवृत्ति भी प्रायः मिलती है। इनमें वक्ता ने जिस शब्द को अधिक मुखरित करना चाहा है उसकी आवृत्ति की है। जैसे -

- मैंने अपने हृदय के टुकड़े को अपने हाथों मसल डाला, अपनी आँखों की ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले को स्वयं अंधकार में परिणत कर दिया - (दप० १२७)

- हाय मेरे पुत्र। (उसके ऊपर गिर जाती है। विक्षिप्ता-सी होकर कहती है) जाओ, बेटा, जाओ, जहाँ तुम्हारे प्राण समाएँ वहाँ जाओ। यहाँ न रहो। मैं पागल हो जाऊँगी। जाओ, जाओ, चले जाओ। उफ़, प्राण छूटे जा रहे हैं। (बेहोश हो जाती है।) (वि०३००४)

उपर्युक्त कथनों में 'अपने' तथा 'जाओ' शब्दों की आवृत्ति है।
शोक में शब्द समूहों की भी आवृत्ति नाटकों में हुई है।

- हाय! मेरा सब कुछ बिगाड़कर, मेरे पास जो अमूल्य रत्न था उसे छीनकर, उस पर भी --- उस पर भी। (पुकि० ८२)

- विपदी : आ गए, हाय आ गए। (युवक को देखकर जोर से रोने लगती है) अब हम काय करी बापू (बकरी ५५)

कभी-कभी आवृत्ति न करके पर्याप्त शब्द समूह द्वारा भाव की अभिव्यक्ति की है। जैसे-

- हा हमारा पुस्तकालय !!! वेद, शास्त्र, पुराण भस्म किए जा रहे हैं !!! काव्य और नाटक फुँके जा रहे हैं !!!! हा कालिदास, कालिदास को राख किया जा रहा है !!!!! (झाँसी १०२)

इनमें भस्म किए जा रहे हैं, फुंके जा रहे हैं, राख किया जा रहा है शब्द समूह पर्याय रूप हैं। शोक की अभिव्यक्ति में कभी पात्र ने अपने भाग्य को कोसा है तथा कभी-कभी ईश्वर पर दोषारोपण किया है। इनमें हे भगवान हे ईश्वर जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण -

- हाय ! राम ! कहूँ के नाहीं रहल ! धोबी के कुकुर अस न घर के रहल न घाट के रहल ! हमनी महतारियन तो कौने के अस अपने बाप के मुँह मा कपरी उगाइस ? (उलट० १३९)

- हाँ ! अब मैं जी के क्या करूँगा ? जब भारत जैसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और मैं उसका उद्धार नहीं कर सकता तो मेरे जीने पर धिक्कार है ! (भारत० भा०४६)

- मैं तो मरना चाहता हूँ तब भी नहीं मरता ! मेरे अशोक की जगह भगवान मुझे उठा ले गया होता तो अच्छा था ! अब इस बुढ़ापे में - (लौटन० ६२)

शोक में जीवन के प्रति अरुचि तथा मृत्यु कामना इन कथनों में हुई है। शोक में इस प्रकार की वाचिक अभिव्यक्ति श्री बद्रीनाथ भट्ट, बी०पी० श्रीवास्तव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गोविन्द वल्लभ पन्त तथा विपिन कुमार अग्रवाल ने मुख्यतः की है।
ईश्वर के प्रति दोषारोपण करते हुए —

- (आँसू पोंछती हुई) जो महारानी जी ने अनगिनती पाप किए हैं ! हे भगवान, क्या तू नहीं देखता कि यह क्या हो रहा है ? क्या तू न्याय नहीं करेगा ? (कुणा० १२०)

- ओ मृत्युलोक के देवताओं ! --- लाओ, मेरे प्राणप्रिय पुत्र बेन के प्राण वापस करो ! (प०रा० १३)

कभी-कभी शोक में ईश्वर की सहायता की याचना भी की है कि दुःख सहने की शक्ति दे। यथा -

- हे प्रभु ! मुझे बल दो - विपत्तियों को सहन करने के लिए बल दो ! (अजात० ७८)

शोक की इस प्रकार की अभिव्यक्ति वाक्यों के द्वारा अधिकांशतः हुई है। जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर ने कहीं-कहीं बद्रीनाथ भट्ट ने शोक के अभिनय में ईश्वर से याचना करवायी है।

शोक के भाव को कुछ नाटककारों ने बड़े स्वाभाविक रूप में व्यक्त किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा में) जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी, वृंदावन लाल वर्मा, लक्ष्मी नारायण मिश्र ने शोक की वाचिक अभिव्यक्ति में आवृत्तिमूलक प्रयोग, कंठावरोध की स्थिति को रखा है। उदय शंकर भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सुरेन्द्र वर्मा तथा मोहन राकेश के नाटकों में शोक की आवृत्ति द्वारा प्रायः प्रकट किया है। इन नाटककारों ने विस्मयादिबोधक शब्दों को अपेक्षाकृत कम अपनाया है।

विस्मय

विस्मय एक विस्तृत भाव है। नाटकों में इसकी उत्पत्ति आश्चर्यजनक वस्तु, घटना आदि के दर्शन से हुई है। नाटकों में विस्मय के भाव की अभिव्यक्ति में क्यों, अरे, ऐं, ओह आदि विस्मयादिबोधक शब्द प्रयुक्त किये हैं। इन विस्मयादिबोधक शब्दों का स्थान कभी-कभी संज्ञा या सर्वनाम ने भी ले लिया है। —

- क्यों ! यह बात क्या है ? (भादा० १)
- (श्रीमती अशोक को देखकर) ओह, आप हैं ! (स्वर्ग० ९६)
- है सखी यो तुम्हारी क्या दशा है, तुम तो अब योगी हुई हो !
  (भारतप्र० ५५)
- ऐं, तुम सब जानती हो ! (ध्रुव० ३८)
- (आश्चर्य से) हैं ! यहाँ भी नहीं है। कहाँ गईं श्री महारानी जी ?
  (दुर्गा० ११८)
- (स्वर को किसी तरह संभालती) आप ? (अभि० ४८)
- तुम ! नहीं मेरी मालिनी ! मेरे हृदय की आराध्य देवता - देवया ! असंभव ! (स्कंद० १२५)
- आप ---- आ ---- आप ---- ! (लहरों ८६)
- है कहाँ ! (संबो० ११)
- (आश्चर्य) भिक्षुणी ! (सम्रा० १११)
- तुम ! --- तुम यहीं ! (प०रा० ७८)

विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति को कई नाटककारों ने काफी महत्व दिया है जिनमें बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मी नारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, वृंदावन लाल वर्मा है। अन्य नाटककारों ने भी विस्मयादिबोधक शब्दों का व्यवहार किया परन्तु अपेक्षाकृत कम है। कई नाटककारों ने विस्मयादिबोधक की बजाय तथा, सर्वनाम शब्दों से विस्मय अधिक(तर) प्रकट किया है जिसमें जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, जयशंकर प्रसाद तथा हरिकृष्ण प्रेमी हैं।

नाटककारों ने हे भगवान, अरे, हरे आदि विस्मय उत्पन्न करनेवाले शब्दों द्वारा भी कहीं-कहीं भाव को प्रकट किया है। शोक में भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु उच्चारण में भिन्नता है। शोक में इन शब्दों में शिथिलता आ गयी है तथा विस्मय में शिथिलता नहीं आयी है।

- हरे ! हरे ! कैसा घोर कर्म होने लगा है। (युगे० ४०)

विस्मय की आकस्मिक अभिव्यक्ति में प्रश्नात्मक शब्दों का प्रयोग लगातार भी किया है। जैसे -

- (आश्चर्य से) क्या ? क्या ?? क्या ??? (ध्रुव० २६)
- आखिर क्यों - किसको ? --- किससे ? कब ? मैं तो नहीं ---- जानता --- क्या ? (सिन्दूर० ३३)
- ये लोग ? --- कहाँ जा रहे हैं ? कौन हो ? कहाँ जाते हो ? क्यों ? कहाँ ? कैसे ? किधर ? किसके लिए ? (मादा० ६२)

विस्मय के आधिक्य को प्रश्नात्मक शब्दों द्वारा जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल तथा मुद्राराक्षस ने प्रकट किया है।
विस्मय में कभी-कभी पात्रों ने शब्दों को दोहराया है। कभी-कभी शब्द समूहों की भी आवृत्ति की है। उदाहरण -

- (चौंककर) शिव ! शिव ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ? (रक्षा० ७८)
- वन ! वन ! वन कुछ किधर है — जो कहता है ? (उलट० १२१)
- फाँसी ! अरे बाप रे बाप फाँसी !! मैंने किसकी क्या लूटा है कि मुझको फाँसी। मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फाँसी।
(अंधेर० २०)

- चमत्कार ! यह तो चमत्कार ही हो गया ! न विवाह, न गौना, न टटका, न टोना और केवल सन्तान प्राप्ति ! - (रा० ७६)

- (चौंककर) आप ? -- आप कब आए ? अभी अभी तो मैं.------ !
(अकरी०४१)

- उई, उई, उई ! मैं मिट गई, मिट गई ! (अकरी० २१)
- कौन है ? यह कौन है ? देख , जरा अभी बताना ! (सिंह० ६)

आश्चर्य से सम्बद्ध शब्द को भी कभी कभी दोहराता है जैसे -

- (आश्चर्य से) मित्र ? यानी कुमारी ---- ! (अमृत० ११०)

इसमें मित्र और कुमारी शब्द जो आश्चर्य का विषय है उसको दोहराया है । विस्मय में आवृत्तिमूलक प्रयोग द्वारा भाव को व्यक्त करने की शैली लगभग सभी नाटककारों ने अपनायी है ।
नाटकों में विस्मय भाव के प्रदर्शन में कंठावरोध अत्यन्त स्वाभाविक स्थिति है । इसमें आवेग की अधिकता के कारण कंठावरोध हो गया है । कभी कुछ शब्द बोलकर , कभी-कभी एक-दो शब्द बोलकर मौन हो गया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार से द्रष्टव्य हैं -

- उमी --- और ---- अब्बा ! (जड़ीभूत-सा) दोनों---दोनों !!
(प०रा० १६)

- (आश्चर्य ! विशु !! (कोणार्क ६५)
- (आश्चर्य में आँखें फाड़कर) अरे ! (अम्ब० ७२)
- (चकित) राजकुमारी, तुम ! (रक्ष० २२)

- कनकवती - ए बीबी जी ---- (रत्ना० ८२)

विस्मय में कंठावरोध की स्थिति को सब नाटककारों ने नहीं अपनाया है । भाव की यह अभिव्यक्ति जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, रामवृक्ष बेनीपुरी, मणि मधुकर, उपेन्द्र नाथ अश्क के नाटकों में हुई है । कहीं-कहीं " गजब हो गया " , " आश्चर्य " आदि कहकर विस्मय की अनुभूति कराती है । जैसे -

- उधर देखिए, गजब हो गया, लोग डाकगाड़ी पर चढ़ने की कोशिश कर रहे हैं और गिर रहे हैं। यह देश भी अजीब है।

(लौटन० ५०-५१)

- उफ ! गजब हो गया। (उलट० १३४)
- आश्चर्य ? ---- मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा कि तुम तुम हो, और मैं भी तुम्हें देख रही हूँ, वास्तव में मैं मैं ही हूँ।

(आषाढ़० १०२)

विस्मयाभिव्यक्ति को आवृत्ति द्वारा अधिकांशत: नाटककारों प्रकट किया है। विस्मय का भाव मोहन राकेश के "लहरों के राजहंस" तथा लक्ष्मी नारायण लाल के "मादा कैक्टस" में अधिक है। मोहन राकेश ने अधिकांशत: आवृत्ति द्वारा भाव को प्रकट किया है। लक्ष्मी नारायण लाल ने विस्मय बोधक शब्द, आवृत्ति तथा प्रश्नवाचक शब्दों द्वारा प्राय: भाव को व्यक्त किया है। कई नाटककारों ने विस्मय को अपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्त करने में रुचि ली है, जिनमें हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क, मोहन राकेश, सत्यव्रत सिन्हा, मणि मधुकर हैं। सुरेन्द्र वर्मा ने विस्मय में रुक-रुककर शब्द प्रयोग तथा आवृत्तिमूलक प्रयोग किया है। विपिन कुमार अग्रवाल ने इस भाव को बहुत कम महत्व दिया है। इनके नाटकों में जहाँ विस्मय आया भी है वाचिक अभिव्यक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है।

उत्साह

उत्साह का भाव वाणी के माध्यम से उत्कट रूप में व्यक्त होता है। नाटकों में उत्साह भाव के प्रदर्शन में विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। उसके स्थान प्राय: उद्बोधक चेतावनीवाले शब्दों को रखा गया है जिन्होंने विस्मयादिबोधक शब्दों की भांति कार्य किया है। उदाहरण -

- मगध । मगध ! सावधान । इतना अत्याचार । अक्षम्य है। तुझे उलट दूँगा। (चन्द्र० ५६)

- उठो भूखे सिंह की तरह शत्रु सेना पर टूट पड़ो । (रक्षा० ३२)
- उठो स्कंद । आसुरी वृत्तियों को नाश करो । (स्कंद० १४२)
- सावधान । मुझ पर हाथ बढ़ाने की चेष्टा न करो । (कोणार्क ५६)
- (प्रतीक्षा) राम । - आगे बढ़ो राम । (प्र०उ० ४५)

इसमें सावधान, उठो, आगे बढ़ो शब्दों द्वारा उत्साह प्रकट हो रहा है । उत्साह में पात्र ने आत्म विश्वास प्रकट करते हुए, उत्तम पुरुष शब्दों पर अधिक ज़ोर देने के लिए उनकी आवृत्ति भी की है । यथा -

- विजय - मैं रक्त की होली खेलूंगा माँ । मैं युद्ध में जाऊँगा आकाश की ओर आँख उठाकर देख, माँ, देख । (रक्षा० ५०)
- यहाँ हूणों को रोकना मेरा ही कर्तव्य है, उसे मैं ही करूँगा । महाबलाधिकृत का अधिकार मैं न छोड़ूंगा । (स्कंद० १०६)
- (दूर से स्वर सुनाई पड़ता है) नहीं माँ मुझे जाना होगा । मैं जाऊँगा । यही अवसर है देश के लिए प्राणदान का प्रतिज्ञा का (कहा जाता है) (वि०अ० ३५)

इसमें मैं, मेरा, मुझे उत्तम पुरुष शब्दों का आवृत्ति के साथ प्रयुक्त किया है । कभी-कभी अहं प्रदर्शन के लिए पात्र ने स्वयं को अन्य पुरुष के रूप में संबोधित किया है ।

- भीष्म : आज भीष्म आप लोगों से इसी पाप का प्रायश्चित करेगा । शान्तानुपुत्र आज आपको दिखा देगा कि वह उन कन्याओं को सब के सामने कैसे ले जा सकता है । (वि०अ० ६८)
- पर्वतेश्वर : सेनापति । देखो, उन कायरों को रोको । उनसे कह दो कि आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है । (चन्द्र०१०७)
- चंद्र - अधिकार । आप दुःखी न हों पिताजी, राजपूत का अधिकार उसकी तलवार है और उसके बल पर उससे कोई नहीं छीन सकता । रहा यह राज्य । सो पिताजी, चंद्र आपके चरणों पर ऐसे सहस्रों राज्य निछावर कर सकता है । (कप० ६६)

उपर्युक्त कथनों में मैं के स्थान पर गर्व प्रदर्शन हेतु अन्य पुरुष में भीष्म पंचीरवार तथा चंद्र शब्दों का प्रयोग किया गया है । उत्साह के भाव के प्रदर्शन में उत्तम पुरुष शब्दों की आवृत्ति तथा अन्य पुरुष के रूप सम्बोधित करने की शैली को जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट तथा उपेन्द्रनाथ अश्क ने (जय पराजय में) अपनायी है ।

उत्साहपूर्ण आवेश में दृढ़ता रहती है । नाटकों में दृढ़ता की अभिव्यक्ति कुछ विशिष्ट शब्दों द्वारा भी हुई है । जैसे -

- हां माँ । अब कुछ न कहो । आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य होगा । (अजात० ५४)
- निश्चय ही होगा । (म्यान से तलवार निकालकर) महाकाल के इस बिजली के समान चमकनेवाले अस्त्र की शपथ खाकर कहता हूँ कि बर्बर हूणों को भारत की सीमा से निर्वासित किए बिना अब यह अपनी म्यान में मुँह नहीं छिपाएगी । (स्कन्द० ५)

उपर्युक्त कथनों में " लक्ष्य होगा" तथा "निश्चय ही होगा" शब्दों द्वारा दृढ़ता व्यक्त हुई है।

उत्साह में आवेश की स्थिति में वाक्यांशों की आवृत्ति भी हुई है । इस आवृत्ति से कहीं-कहीं निश्चितता भी व्यक्त हुई है ।

- (आकाश की ओर) राघव ! राघव । तुझे दण्ड भोगना होगा, मेरे और भारमली के बीच कूदने का दण्ड भोगना होगा, मेरे विरुद्ध षड्यंत्र करने का दण्ड भोगना होगा । (जय० १२३)
- राघवदेव- हत्या कर दें । भारमली हमारे रहते थे उनकी हत्या कर दें । मैं तैयार हूँ राठौरों का अस्तित्व मिटा दूंगा । (जय० १०४)

इसमें " दण्ड भोगना होगा" हत्या कर दें । शब्द समूह की आवृत्ति हुई है । दण्ड भोगना होगा से निश्चितता भी व्यक्त हुई है । नाटकों में उत्साह की दृढ़ता को प्रतिज्ञा द्वारा भी प्रकट किया है ।—

- हाँ माँ, मेरे स्वांसों का संकल्प है कि पिताजी की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर ही शांत नहीं हो जाऊँगा । (अजात० ११)

- इन दुष्ट चाण्डाल यवनों के रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर लेंगी हम कुमार की शपथ करके प्रतिज्ञा करके कहती है कि हम पितृऋण से कभी उऋण न होंगी। (नी०दे० २४)

- माँ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के कारण इन शत्रुओं का एक बार अवश्य संहार करूँगा। (अजात० ५४)

इनमें उत्साह का संकल्प है, शपथ करके प्रतिज्ञा करके कहती है, प्रतिज्ञा करता हूँ आदि वाक्यों से प्रकट किया है।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (नील देवी में) जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, बद्रीनाथ भट्ट, उदय शंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा उपेन्द्र नाथ अश्क ने (जय पराजय में) प्रतिज्ञा द्वारा दृढ़ता व्यक्त की है।
नाटकों में उत्साह के आवेश तथा निश्चितता को वाक्यांशों के पर्याय रूप में भी व्यक्त किया है। उदाहरण -

- नहीं आचार्य! कोई दुविधा नहीं। मैं उस विनाश लीला को नष्ट करूँगा। मैं मुण्डकी का वध करूँगा (धनुष और खड्ग हस्त में लेकर) (प०रा०७७)
- मगध! मगध! सावधान! इतना अत्याचार! सहना असंभव है। तुझे उलट दूँगा। नया बनाऊँगा, नहीं तो नाश ही करूँगा। (चंद्र० ५६)
- भगवान ने क्यों नहीं कह दिया कि ये मुस्लिम चाहे कितने समृद्ध हों चाहे उनका कितना प्रभाव हो, मैं उन्हें उखाड़ डालूँगा, नष्ट कर दूँगा। (सम्ब० ६४)

उपर्युक्त कथनों में नष्ट करूँगा, वध करूँगा, उलट दूँगा, नाश ही करूँगा! उखाड़ डालूँगा, नष्ट कर दूँगा। शब्दों में विनाश का अभिप्राय है।
उत्साह की अभिव्यक्ति अत्युक्तिपूर्ण शब्दों द्वारा भी हुई है। इन शब्दों में अतिशयोक्ति भरी है। उदाहरण स्वरूप -

- असंभव! मैंने डाकुओं के सभी दलों को नष्ट कर दिया। अब किसकी हिम्मत कि मेरे अनुचरों का बाल भी बाँका करे? (प०रा०६१)

- उन्हें कह दो कि रणभूमि में पक्षीश्वर पर्वत के समान अचल है । जय पराजय की चिन्ता नहीं । उन्हें बतला देना होगा कि भारतीय क्षत्राणी जानती है । बादलों से पानी बरसने की जगह वज्र बरसें, सारी गज-सेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथ हों, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परन्तु एक पग भी पीछे हटना पक्षीश्वर के लिए असंभव है ।
(चन्द्र० १०२)

- मेवाड़ की एक-एक वीरांगना अभेद्य दीवार है । जब तक हमारे हाथों में तलवार है, देह में प्राण है, तब तक शत्रु-दल की एक चिड़िया भी चित्तौड़ में नहीं घुस सकती । सुसज्जित तोपखाना तो क्या, विधाता का वज्र भी हमें नहीं हटा सकता । (रत्ना० ६६)

- जयदेव - जब तक भारतीय युवक के प्राण में शक्ति है तब तक बर्बर हूण तो क्या यमदूत भी उसे कैद बनाने का दुस्साहस नहीं कर सकते ।
(अप्रा० २६)

अत्युक्तिपूर्ण कथनों में कभी-कभी चुनौती भी है, उपर्युक्त कथन में "किसकी हिम्मत", "नहीं घुस सकती, नहीं हटा सकती" शब्दों से चुनौती व्यक्त की गयी है ।

कभी-कभी पात्र ने दूसरे को निराश तथा काम के गर्त में जाता हुआ देखकर उसमें उत्साह का संचार करने के लिए प्रोत्साहन देनेवाले स्फूर्ति प्रदान करनेवाले शब्दों का प्रयोग किया है । ऐसे स्थलों पर उत्साह जागृत करने में उद्बोधन शब्दों तथा वाक्यों का मुख्यतः प्रयोग किया गया है -

- उठो स्कंद ! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोनेवालों को जगाओ और रोनेवालों को हँसाओ । आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा, और आर्यपताका के नीचे समग्र विश्व होगा । उठो वीर ! (स्कंद० १४२)
- कार्यक्षेत्र में दीन असहाय आत्मप्रवंचना है - इसलिए चलिये रणभूमि की ओर, चढ़कर जन्मभूमि की ओर आकर, मैं आपके मस्तक पर विजय-तिलक लगाऊँ । (चन्द्र० ८०)
- उठो, भूखे सिंह की तरह शत्रु सेना पर टूट पड़ो । लड़ो और लड़ते-लड़ते मेवाड़ की मान रक्षा करो । विजय और वीर गति दोनों श्रेयस्कर हैं । जो हाथ आ जाय उसी को गले लगाने के सिवा तुम्हें क्या करना है ।

- तुम राजपूत हो, क्षत्रिय हो, अग्निपुत्र हो, प्रलय और भूकंप की भाँति अजेय हो, अनिवार्य हो । तुम्हारी हुंकार से शत्रु की छाती टूक टूक हो जायगी । उठो, अब देर किस लिए ? (रक्षा० ३१-३२)
- एक प्रलय की ज्वाला अपनी तलवार से फैला दो । भैरव के भैरी नाद से शत्रु हृदय कंपा दो । वीर । बढ़ो ।. (स्कंद० ४७)
- महत्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुण्ड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वे ही भाग जाएँगी । मल्लिका तो क्या, राजलक्ष्मी तुम्हारे पैरों पर लोटेगी । पुरुषार्थ करो । इस पृथ्वी पर जिओ तो कुछ बनकर जिओ, नहीं तो मेरे दूध का अपमान करने का तुम्हें अधिकार नहीं ।

(अजात० ५४)

उठो, बढ़िए, बढ़ो, साहस के साथ सामना करो आदि के द्वारा उत्साह को उद्बुद्ध किया है ।

निर्बल वस्तुओं से उपमा देकर अथवा डरपोक-कायर-कहकर भी उत्साह उत्पन्न किया गया है -

- (जोर से) बोलो, क्या तुम लड़ाई में मर्दों की तरह तलवार से खेलना पसन्द करते हो या घरों में जाकर मुर्गी की तरह बिल्लियों के दाँतों से काट दिये जाना ? बोलो । (दुर्गा० ६६)
- विजय का पथ हमेशा ही कीचड़ से भरा और खून से सना होता है । जो कायरता और खून से डरे उसे सिर से मुकुट उतारकर हाथ में भिक्षापात्र ले लेना चाहिए । (चन्द्र० ८७)
- तुम्हें क्या हो गया माधव । तुम्हारे पौरुष को धिक्कार है । तुम मर्द होकर एक नारी की ओट में छिपना चाहते हो । (अंगूर ६७)

सान्त्वना द्वारा भी निराश व्यक्ति में उत्साह पैदा किया गया है। ऐसे स्थलों पर भी उद्बोधन शब्दों को भी प्रयुक्त किया गया है । जैसे -

- कौन कहता है तुम अकेले हो । समग्र संसार तुम्हारे साथ है ।
स्वानुभूति को जागृत करो । यदि भविष्यत् से डरते हो कि प्राण ही समीप है, तो उस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ । (स्कन्द० १४२)

- सिंहरण : कुछ चिंता नहीं दृढ़ रहो । समस्त मालव सेना से कह दो कि सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा । (चन्द्र० १२४)

समग्र संसार तुम्हारे साथ है , कुछ चिंता नहीं" शब्दों से सान्त्वना दी है ।
जातीय गर्व के भाव को उभाड़कर भी उत्साह का संचार किया है । यथा -

- (प्रवेश करके) धन्य वीर । तुमने क्षत्रियों का सिर ऊँचा किया है । तुमने महत् उद्देश्य के कारण साम्राज्य के प्रति अपनी स्वाधीनता देकर भी साम्राज्य को क्रय कर लिया । बंधुवर्मा आज तुम महान हो, हम तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं । (स्कंद० ७५)

- चंपावती - मेवाड़ के सपूतों । मेवाड़ के अभिमान तुम्हीं हो । तुम्हारी कीर्ति अमर हो । जाओ, रणभूमि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। (रक्षा० ३५)

- धिक्कार है उस क्षत्रियाधर्म को जो इन आंधियों के मुख में प्रवृत न हो । (भीष्म० २५)

प्रशंसा तथा निन्दा दोनों के द्वारा उत्साहवर्धन किया जा रहा है । इनमें धन्य वीर, धिक्कार है शब्दों का प्रयोग प्रशंसा तथा निन्दा में किया गया है ।
कहीं-कहीं नाटककार ने कोष्ठक में उत्साह भाव का संकेत दिया है, किन्तु उत्साह के भाव की अभिव्यक्ति कथन में नहीं हुई है ।

- (उत्साह के साथ) अच्छा लगता रहा, कुछ भी कहिए डा० मौदगल, मर्दों के बीच औरतों के होने से कुछ इस ढंग से करीनापन न यानी सफाई यानी शाइस्तगी , यानी कुछ-कुछ नुकसानी आ जाती है कि वह सब मियाँ-बीबी के रिश्तों में नहीं मिलता । (अमृत० २५)

कुछ नाटककारों ने उत्साह की उपर्युक्त इसी वाचिक अभिव्यक्तियों को रखा है ।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (नीलदेवी में) जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी,

उदयशंकर भट्ट, बद्रीनाथ भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर (पहला राजा तथा दशरथ नन्दन में) तथा उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) ने उत्साह भाव को इसी प्रकार से प्रकट किया है । इन नाटककारों ने भाव की सशक्त तथा प्रभावशाली व्यंजना की है । इनकी तुलना में वृंदावन लाल वर्मा ने उत्साह का प्रभावशाली प्रदर्शन नहीं किया है । इनके नाटक में उत्साह के आवेश से शब्दों की आवृत्ति तथा अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों द्वारा व्यक्त किया है ।

प्रेम

इच्छा, तृष्णा, लालसा, स्नेह, चाह, अनुरक्ति आदि अनेक रूप प्रेम के हैं । नाटकों में प्रेम की अभिव्यक्ति विभिन्न स्थितियों में विशिष्ट प्रकार से हुई है । प्रेम की प्रारंभिक अवस्था में जब नायक-नायिका को एक दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ है और वे उसको प्रकट नहीं कर पा रहे हैं, ऐसे स्थलों पर उनकी मनोदशा का वर्णन कर प्रेम के रूप को प्रदर्शित किया गया है । जब तक प्रेम प्रकट नहीं हो पाया है मानसिक उत्कण्ठा बनी हुई है ।

- नहीं गाया जाता, जबान कुछ कहती है, मन कुछ कहता है,
  वह मन का साथ नहीं देती, मन उसका साथ नहीं देता ।
  (जय० ३१)
- एक मैं हूँ जो सूर्य की किरणों से रंजित बने हुए कांतिहीन हीरे की तरह जल रही हूँ । मेरी स्वच्छता मेरी जलन का कारण है । महाग्नि की आग में बेचैनी से उबलती जल-कुण्ड में मछली की तरह तड़प रही हूँ । मनुष्य उस उमड़े हुए मेघ के समान है, जिसमें पानी और आग दोनों का वास है । प्यासी और मादक आँखों की कोर से उस नवयुवक ने हृदय में बिजली सी छहरा दी है।
  (विक्रम० ३६)
- ध्रुवस्वामिनी । तुमने क्षमा किया, जिससे मैं बचाती रही । तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह

(हृदय पर उँगली रखकर) इस छोटे स्थल में दो हृदय हैं क्या ? जब भीतर से वह करना चाहता है, तब ऊपरी मन "ना" क्यों कहला देता है ? (ध्रुव० ३३)

मेरा हृदय मुझसे अनुरोध करता है, मचलता है, रूठता है, मैं उसे मनाती हूँ । कभी प्रणय-कलह उत्पन्न कराती है, फिर उत्तेजित करता है, बुद्धि झिड़कती है, मन कुछ सुनता ही नहीं ।
(स्कंद० ९८-९९)

उपर्युक्त कथनों में मानसिक द्वन्द्वता के रूप को प्रदर्शित किया है । प्रेम की इस अवस्था को जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट तथा उपेन्द्र नाथ अश्क ने (जय पराजय में) व्यक्त किया है।

प्रणय की दूसरी अवस्था मिलन में, प्रेम की अभिव्यक्ति में नायक तथा नायिका को अत्यधिक लज्जा तथा संकोच हो रहा है, जिसमें कंठावरोध की स्थिति हो गयी है । कभी-कभी शब्दों को धीरे से भी बोलकर प्रकट किया गया है।

- (क्षणभर उसकी ओर देखकर --- उसका मुख लाल हो उठता है आँखों में चमक निकलने लगती है) पर --- मैं भी तुम्हें प्रेम ----
(मुक्ति० १४५)
- (उसके कंधे से सिर लगा लेती है । कुमार चौंकते हैं, पर उठते नहीं ।) - कुमार !

राघव - (तन्मयता से उसके बालों को सुलझाते हुए) मालती !
(जय० ८२)
- अम्बा : (धीरे से) युवराज शाल्व, हृदयाराध्य । (वि०अ०२८)
- (दीर्घ उच्छ्वास के साथ, धीमे स्वर में) नाथ, मेरा अरुण !
(अम्ब० २७)

जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा उपेन्द्र नाथ अश्क ने (जय पराजय में) प्रेम के भाव को गहराई से व्यक्त किया है । इन नाटककारों ने उपर्युक्त लज्जा की स्थिति को व्यक्त किया है ।" प्रेम की अभिव्यक्ति सम्बोधन शब्दों से भी हुई है, जिसमें पुरुष पात्रों ने प्रिय, प्रियतम आदि शब्दों से पुकारा है -

- हृदयेश्वरी । (वि०अ० ५१)
- स्नेहमयी । (अजात० ३४)

- प्रिय ! (अजात० १०६)
- प्रिये ! (विजय० ४१)
- प्रिये ! (अय० ५५)

प्रेम में स्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त हुए सम्बोधन शब्द प्राय: आदरणीयता है जैसे -

- प्राणनाथ ! (श्रीचन्द्रा० १६)
- नाथ ! (अजात० ३४)
- आर्यपुत्र ! (प्रता० ६६)
- महाराज यह क्या ? (झांसी ३४)
- स्वामी ! (रत्ना० ६८)
- हा नाथ, (दुर्गा० ५८)
- राजा, (ध्रुव० ४६)
- प्रभु ! (अजात० ३८)
- मेरा स्वामी ---- (स्कंद० ६७)
- भगवान ! (मुक्ति० १५४)
- मेरे देवता ! (मुक्ति० १४०)

आधुनिक नाटकों में "डार्लिंग" शब्द का प्रयोग हुआ है -

- मनि डार्लिंग (युग० ७१)

आरम्भिक नाटकों में तथा ऐतिहासिक , पौराणिक, सांस्कृतिक नाटकों में नाटककारों ने कथावस्तु की दृष्टि में रखते हुए अधिकतर नाथ, स्वामी, राजा प्रभु, प्राणनाथ, आर्यपुत्र आदि सम्बोधनों को व्यवहृत किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद , हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, आदि नाटककारों ने उपर्युक्त सम्बोधनों को अपनाया है। सामाजिक समस्यामूलक नाटकों में प्रिय, प्रियतम , देवता , प्यारी आदि सम्बोधनों को रखा है।वी०पी० श्रीवास्तव, लक्ष्मी नारायण मिश्र ने इसी प्रकार का प्रयोग किया है। आधुनिक नाटकों में तथा जिन नाटकों में अत्यन्त आत्मीयता को प्रकट किया है, उनमें नायक-नायिका एक दूसरे

को उनके नामों से पुकारती है । रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटक में पात्रों में अत्यन्त आत्मीयता को प्रकट किया है अतः इस प्रकार का प्रयोग हुआ है । विष्णु प्रभाकर तथा लक्ष्मी नारायण लाल ने पात्रों को नामों से सम्बोधित करवाया है ।

प्रेम प्रदर्शन में शब्द लाघव की प्रवृत्ति भी आयी है । स्नेह में अपनत्व लाने के लिए भी इनका प्रयोग हुआ है। उदाहरण - .

- अनि डार्लिंग (कुो० ७१)
- तुम्हारा यह राशि-राशि वैभव अर्पि (प०रा०२८)
- आह, मेरा अरुण (सम्प० २७)

उपर्युक्त कथनों में अनिरुद्ध को " अनि " अर्चना को अर्पि तथा अरुण व्यक्ति को अरुण कहा गया है ।

शब्द लाघव द्वारा अभिव्यक्ति जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी , जगदीश चन्द्र माथुर तथा विष्णु प्रभाकर ने की है । पात्र ने अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रशंसात्मक तथा अतिशयोक्ति पूर्ण शब्दों द्वारा व्यक्त किया है, जिसमें खुशामद का भी प्रदर्शन हुआ है -

- (मादक सम्बोधन) तुम्हारा यह राशि-राशि वैभव,अर्पि ।
  --- एक ही स्पर्श में युगों का आमंत्रण । --- और यह स्पर्श)
  --- यह तुम्हारी देह का सागर -- और मैं हूं कि गहराइयों
  में ही जाता हूं --- और सागर की तलहटी ही नहीं ---
  मिलती ही नहीं --- । और तुम्हारी देह का सागर अर्पि ।
  (प०रा० २८)
- तुम सौन्दर्य में उर्वशी को लज्जित करनेवाली हो -
  (ध्रुव० ६४)
- क्या, विधाता के इन प्रयत्नों का सीमित प्रयास ?
  इसमें कलियों की मुस्कान , हिम की शीतलता, चन्द्र का
  आह्लाद और हृदय की बेसुधी -- सब कुछ, एक ही जगह सब --
  क्या यही है मेरे प्राणों का स्वप्न, मेरे प्रेम संस्कारों की
  प्रतिमा ? कितनी सुन्दर है, उस चित्र की प्रतिमूर्ति,
  (विशा० २७)

- वह भी आह, कितना आकर्षक है । कितना तरंग संकुल है ।
(चन्द्र० ६१)

- अहा । श्यामा का-सा कंठ भी है । सुन्दरी, तुम्हारी जैसी
प्रशंसा सुनी थी, वैसी ही तुम हो ! (अजात० ७६)

कभी-कभी प्रशंसात्मक उक्तियों में प्रिय इतना भावावेश में हो गया है कि कविता करने लगता है जैसे -

- आहा प्यारी तुम्हारी चोटीली बातें तो और भी गजब ढाती है

- किसी ने दिल लिये तो कुलाकुला के लिये ।
मगर हुजूर ने कमर लगा लगा के लिये । (उग्र० ७७)

सौन्दर्य से प्रभाव की अभिव्यक्ति भी प्रेम में हुई है -

- शाल्व : हृदयेश्वरी, चित्र-दर्शन से आज तक विक्षिप्त की तरह
घूम रहा हूँ । नीले आकाश में, सांझ की लालिमा में, प्रातःकाल
की ऊषा में, तुम्हारी ही मधुर मूर्ति --- (वि०ना० ४१)

और अंतर में छाया की तरह घूमा करती हो । (वि०ना० ४१)

- आह । मालिनी । मेरे शून्य भाग्याकाश के मंदिर का द्वार खोलकर
तुम्हीं ने उनींदी ऊषा के मधुर झांका था और मेरे भिखारी संसार
पर स्वर्ण बिखेर दिया था । (स्कंद० १२४)

- राघव - और ठंडी हवा के झोंके । ऐसे में तुम्हारा थरथराता
हुआ मादक गीत । मालती, पागल हो जाता हूँ । अपने को भूल
जाता हूँ । तुम जादू करती हो । (जय० ८१)

- ओह, मैं बेसुध हो रहा हूँ - इस संगीत के साथ सौन्दर्य और
सुरा ने मुझे अभिभूत कर लिया है । (अजात० ६२)

- कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन । कितने संतोष
से भरा । नियति ने अज्ञात भाव से मानो लू से तपी हुई वसुधा को
क्षितिज के निर्जन से सायंकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो ।
(ध्रुव० ३३)

- मैं किस पर अधिक मुग्ध हूँ ---- तुम्हारी सुन्दरता पर या तुम्हारी माधुरी पर । (ध्रुव० ६२)

प्रिय के सौन्दर्य के आकर्षण से बेसुध होने तथा विक्षिप्त होने या अत्यधिक प्रसन्नता से गदगद होने की स्थिति उपर्युक्त कथनों में व्यक्त हुई है ।

नाटकों में प्रेम में समर्पण का भाव है । प्रेम के आधिक्य में व्यक्ति सर्वस्व समर्पण करने को तत्पर है ।

-मैं मिलन-रागिनी गानेवाली कल्लोलिनी की भाँति तुम्हारी गोद में मुँह छुपा हूँ । (स्कन्द० ७५)

- लेकिन कभी भी - तुम्हारे कंठ में तुम्हारे चरणों की गति में, मालती के दर्शन कर उसके चरणों में अपने हृदय का पुष्प अर्पित किया है । (स्कन्द० ६४)

- तुम्हारे लिए यह प्राण प्रस्तुत है । (अजात० ७०)

- तब प्राणनाथ । मैं अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पण करती हूँ -(अजात० ११०)

- मैंने अपना हृदय निकालकर तुम्हारे चरणों में रख दिया । (मुक्ति० १४२)

- कोई रात ऐसी नहीं कि मैं तुम्हारी चारपाई के पास घण्टों खड़ी न रही हूँ ---- तुम्हारे पैताने अपना सर रख देती थी --- जब कभी तुम्हारा पैर मेरे मुँह पर पड़ जाता था --- समझती थी वरदान मिल गया । पूजा सफल हो गई । कभी-कभी तुम्हारे पैर की उँगलियों पर आँख रखकर पलकों से उन्हें दबाती थी । (मुक्ति० १४३)

- नाथ । मैं आपकी ही हूँ, मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती । (राक्षस० १५४)

उपर्युक्त कथनों में मुँह छुपा हूँ, पुष्प अर्पित किया है, समर्पण करती हूँ, अपने को दे दिया आदि से समर्पण भाव प्रकट हुए हैं । समर्पण के उपरान्त आराधक तथा आराध्य का अन्तर मिट गया है और आलम्बन को व्यक्ति अपना सब कुछ मानने लगा है । अपने अस्तित्व को मिटा देता है । प्रिय की इस स्थिति के कथन प्रस्तुत हैं-

- अम्बा (बीच बीच में उसाँसे लेकर रुककर) शाल्वराज (आकाश की ओर ताककर) आओ यह हृदय तुम्हारी ही स्तुति करता है क्या है तुम्हारी आकांक्षाओं की प्रकृति से गतिमान है, प्रिय ।
(चित्रा० ४९)
- मेरे नाथ ! इस जन्म के सर्वस्व ! और परजन्म के स्वर्ग ! तुम्हीं मेरी गति हो और तुम्हीं मेरे ध्येय हो । (अजात० ५७)

प्रेम के समस्त भावों में प्रिय की मंगल कामना प्रमुख रही है। प्रिय की सुरक्षा, आनन्द, सुख की कामना यही प्रेमी की प्रमुख इच्छा रही है । ~~xx xxxx~~ इसकी भाषागत अभिव्यक्ति शुभ कामना, आशीर्वचन के रूप में हुई है । अपने बराबर वालों के प्रति शुभ कामनाएँ व्यक्त की गयी हैं -

- हे ईश्वर मेरे अपराधों को क्षमा कर मुझको दुख सहने की शक्ति दे, पर उनको अवश्य सुखी कर जा रहे हैं । (भारत०प्र३३)
- जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो ।
(आषाढ़० ५०)
- प्रियतम ! मेरे देवता युवराज !! तुम्हारी जय हो । (स्कन्द० ८६)

छोटों के प्रति आशीर्वचन प्रयुक्त हुए हैं -

- मधुकर, यह भी कामना है मेरी, कि अनंतकाल तक मेरा आशीर्वाद राम के चरणों का अनुगामी बना रहे । (कर्ण० ३४)
- जीवक, तुम्हारा कल्याण हो । (अजात० ३७)
- कल्याण हो । शान्ति मिले !! (अजात० २९)

जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी (अपने नाटक में) उपेन्द्र नाथ अश्क ने (जय पराजय में) प्रेम के संयोग पक्ष को बड़े स्वाभाविक रूप में प्रदर्शित किया है । प्रेम की दशाओं को क्रम से व्यवस्थित किया है । इन नाटककारों ने उपर्युक्त इसी प्रकार से संयोग पक्ष की वाचिक अभिव्यक्ति की है । कई नाटककारों ने प्रेम की कुछ ही दशाओं की अनुभूति करायी है । जगदीश चन्द्र माथुर ने अपने नाटकों में प्रतीकात्मक तथा अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों द्वारा भाव को प्रदर्शित किया है । प्रताप नारायण मिश्र

ने प्रेम के भाव की सफलता ही नहीं प्रकट किया है । प्रेम की अनुभूति समर्पण शब्दों द्वारा करायी है। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने प्रेम को व्यक्त करने के लिए समर्पण की दशा तथा कंठावरोध की दशा को चुना है, इन दशाओं की वाचिक अभिव्यक्ति की गई है । मोहन राकेश के नाटकों "आषाढ़ का एक दिन" तथा "लहरों के राजहंस" में उत्कृष्ट कोटि का प्रेम प्रदर्शित किया है । भाव के प्रकटीकरण में प्रशंसात्मक उक्तियाँ तथा मंगल कामनाओं को मुख्यतः रखा है । वी०पी०श्रीवास्तव ने प्रेम को प्रदर्शित करने के लिए प्रशंसात्मक उक्तियाँ तथा कविताओं को अपनाया है । प्रेम में उपालम्भ की स्थिति संयोग तथा वियोग दोनों ही स्थिति में आयी है, जिसमें प्रिय की धृष्टताओं पर दुष्ट, निष्ठुर, छलिया आदि सम्बोधनों का भी प्रयोग मिलता है । उपालम्भ के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- जितना मैं तुम्हें पकड़ने दौड़ती हूँ उतना ही तुम भागते हो निष्ठुर । तुमने क्या कर दिया ? (वि०अ० ६१)

\+ + + + +

- हंसावती - आप मुझे बनाया करते हैं ।
  छत्रसिंह - यह तुम कहती ही हो ।
  हंसावती - (रूठने के भाव से) और क्या । यहाँ आये तो मेरी प्रशंसा कर दी, वहाँ गये तो उनकी प्रशंसा के पुल बांध दिये । (अप० ८६)

- देखो दुष्ट को, मेरा हाथ छुड़ाकर भाग गया, अब न जाने अब कहाँ खड़ा बैठा क्या रहा है । अरे छलिया कहाँ छिपा है ? (श्रीचन्द्रा० 22)

- तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को भी चाहता है । बस, अब मैं गाली दूँगी । और क्या कहूँ, बस आप ही हैं, देखो गाली में भी तुम्हें मैं [illegible] । क्या कहूँगी - झूठे, निर्दय, निर्गुण, निर्दय हृदय कपाट बटोहिया और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं । (श्रीचन्द्रा० १८)

कभी-कभी उपालम्भ में अशिष्ट शब्दों का प्रयोग न करके व्यंग्य शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

उपालम्भ द्वारा प्रेम की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उदयशंकर भट्ट तथा उपेन्द्र नाथ अश्क ने (अब पराजय में) किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उपालम्भ की स्थिति में अपशब्दों का काफी व्यवहार किया है ।

प्रेम में वियोग की स्थिति में प्रेम की अभिव्यक्ति भिन्न हुई है ।

वियोग में प्रिय के गुणों का स्मरण किया गया है । युद्ध के समय में नायिका को अपने पति के शौर्य का स्मरण हो आता है-

- इस समय मेरे स्वामी नहीं हैं । उनके रहते मेवाड़ की ओर आँख उठाने का किसमें साहस था ? उनके आतंक से मेवाड़ के बाहर भी दूर-दूर तक अत्याचारियों के प्राण काँपा करते थे । मेवाड़ की सीमा में पैर रखने का तो साहस ही किसे हो सकता था ? (रक्षा०३५)

- (आकाश की ओर देखकर हाथ जोड़कर) प्रियतम ! तुम मेरी प्रतीक्षा कर रहे हो । जिस मेवाड़ के लिए तुमने अपने शरीर पर कितने घाव झेले हैं, जिसके चरणों पर अपने प्राण निछावर कर दिये हैं, उसी के गौरव की रक्षा के लिए मैं इतने दिन जीवित रही हूँ उसी को गृह-कलह और बाहरी शत्रु, दोनों से बचाने के लिए ।
(रक्षा० ६३)

प्रिय से संबंधित चर्चा में उसके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है -

- वह वन की कली थी । चट्टान को फोड़ कर बहनेवाली निर्द्वन्द्व, निष्कलुष जलधारा । मदभरे पावस सी उन्माद, पुष्पगुणा, कामिनी-सी संपन्न । (कोणार्क २५)

वियोग में मिलन के समय का मधुर स्मरण किया गया है ।

- एक दिन उन्होंने मुझे प्यार किया था, समुद्र की तरह उमड़कर मुझे अपनी लहरों में लीन किया था। (रक्षा० १५)

वर्षा ऋतु में प्रिय का स्मरण हो आया है -

- यह वर्षा है तो सही । मेरा वह आनन्द का घन कहाँ है ? हाँ ! मेरे प्यारे ! प्यारे ! कहाँ बरस रहे हो ? (श्रीचन्द्रा० २४)

विरह में मिलन कामना तथा आतुरता व्यक्त हुई है, जिसमें नायिकाने नायक के आगमन की आतुरता से प्रतीक्षा की है -

- पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि शकुन हुआ है तो जरूर आवेंगे । (श्रीचन्द्रा० ४७)
- मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंचा आता है । हाय ! अब तो मुख दिखला प्यारे ! (श्रीचन्द्रा० ५१)
- अश्वपाली - (कातरता से) नहीं, मैं अपनी से परेशान हूं । मेरी मधु कहाँ, मेरा अरुण कहाँ ? अरुण --- (चिल्लाती है) (अम्ब० २४)

नाटकों में वियोग में प्रताड़ना तथा भर्त्सना की गई है -

- प्यारे ! जिनके नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं । (नैनों से आँसू गिरते हैं) जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों ? (श्रीचन्द्रा० १८)
- हाँ ! क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती ? लोग तो हाथ पैर संग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है । नहीं नहीं तुम्हारा तो ऐसा सुभाव नहीं था, यह नई बात है, यह नई बात है या तुम आप नये हो गये हो ? भला कुछ तो लाज करो । (श्रीचन्द्रा० १९)
- शाल्व, वे- दिन कहाँ गए जब तुम मेरे लिए शिव की पहाड़ी में होने की प्रतिज्ञा कर रहे थे । मेरे लिए संसार छोड़ देना चाहते थे । मेरे पैर में लगे हुए काँटों को आँखों से निकालना चाहते थे । जीवन के ध्येय में सब से मुख्य स्थान मेरा था । किन्तु नहीं, अम्बा सब कुछ समझ गई । ऐश्वर्य, पद, मर्यादा का आडम्बर रखनेवाले मनुष्य ! सहस्रों सूर्यों के उज्ज्वल और प्रचण्ड प्रकाश में हजारों शपथ लो पर भी तुम्हारा विश्वास नहीं किया जा सकता । (विज्ञ० ७६-७७)

अपनाया क्यों, लाज करो, विश्वास नहीं किया जा सकता शब्दों द्वारा भर्त्सना तथा प्रताड़ना व्यक्त हुई है ।

विरह में प्रकृति, पशु पक्षियों से भी प्रिय के विषय में वार्तालाप किए गये हैं ।

- अरे वृक्षों ! बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रे मोरो, इस समय नहीं बोलते ? नहीं तो रात को बोल-बोल के प्राण खाए जाते थे । कहो न वह कहाँ छिपा है ? (श्रीचन्द्रा० २२)

विरह में मिलन के लिए आग्रह भी किया गया है -

- प्यारे ! चाहे मारो, चाहे तारो, इन दासों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं । (श्रीचन्द्रा० २४)

-(नैनों से आँसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहाँ चले गये ? नाथ ! आँखें बहुत प्यासी हो रही हैं इनको रूप-सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे ! बैनी की लट बंध गई है इन्हें कब सुलझाओगे ? (रोती है) नाथ, इन आँसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछनेवाला भी नहीं है ।
(श्रीचन्द्रा० २६)

पुनर्मिलन की स्थिति में प्रिय के भावों की अभिव्यक्ति में आभार प्रकट हुआ है ।

- तुम्हारे उपकार सिर पर हैं । तुमने मेरे मरु-आंगन में फिर हरियाली सींच दी । (अंगूर० १०५)

प्रेम के विरह-पक्ष को कुछ ही नाटककारों ने रखा है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के " श्रीचन्द्रावली नाटिका" में तो विरह" पक्ष की ही अभिव्यक्ति हुई है । इन्होंने विरह की दशाओं को गहराई से विचार कर प्रकट किया है । भारतेन्दु जी के नाटक में विरह की सभी दशाओं को प्रदर्शित किया है । हरिकृष्ण प्रेमी उदयशंकर भट्ट तथा जगदीश चन्द्र माथुर ने (कोणार्क में) विरह भाव की अनुभूति करायी है । हरिकृष्ण प्रेमी ने गुणों तथा मिलन क्षणों को स्मरण करते तथा उदयशंकर भट्ट ने भर्त्सना व प्रताड़ना द्वारा तथा जगदीश चन्द्र माथुर ने भी सौन्दर्य प्रशंसा करते हुए भाव की व्यंजना की है । रामवृक्ष बेनीपुरी ने आगर दशा में कंठावरोध को प्रदर्शित कर विरह का अनुभव कराया है ।

आलम्बन के साथ-साथ प्रेम का रूप भी कुछ न कुछ परिवर्तित होता जाता है । ईश्वर प्रेम, गुरु प्रेम एक प्रकार का अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं । इनमें प्रेम की अभिव्यक्ति कोमल तथा विनयपूर्ण शब्दों से हुई है ।

ईश्वर प्रेम प्रसंग में कृतज्ञता के भाव भी हैं यथा -

- भगवान ! आज तेरी कृपा से मेवाड़ का भाल एक बार फिर उन्नत हुआ है । (जय० १५)

गुरु प्रेम की अभिव्यक्ति भी विनयपूर्ण शब्दों से हुई है -

- मुनिवर के आगमन की अनुकम्पा से मैं इतना अभिभूत हूँ कि उनकी पावन-रज से अपने वक्षों तक को वंचित किए रहा । (बद०३१)
- भगवान की अमृतवाणी की धारा प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी । मैं कृतार्थ हुआ । (अजात० ३०)
- भगवान, मैं कृतार्थ हो गई । सारी वैशाली में भगवान को मेरी ही आम्रवाटिका पसंद आई । आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना ! (अम्बा० ४२)

ईश्वर प्रेम की उपेन्द्र नाथ अश्क ने जय पराजय में तथा गुरु प्रेम की जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा जगदीश चन्द्र माथुर ने क्रमशः बन्धन में व्यक्त किया है । देश पर गर्व करते हुए देशप्रेम की अभिव्यक्ति की गई है । शब्द की आवृत्ति से गर्व की अनुभूति कराई है ।

- मेरा देश है । मेरे पहाड़ है । मेरी नदियाँ हैं और मेरा जंगल है, इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक अंश उन्हीं परमाणु से बने हैं । (चन्द्र०८१)

इसमें 'मेरा' शब्द से गर्व प्रदर्शित किया गया है ।

देश के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन तथा गुणों के प्रशंसा में प्रशंसात्मक उक्तियों द्वारा भी देशप्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है ।

- सिन्धु का यह मनोहर तट जैसे मेरी आँखों के सामने एक नया चित्रपट उपस्थित कर रहा है । इस वातावरण से धीरे-धीरे उठती हुई प्रशान्त स्निग्धता जैसे हृदय में घुस रही है । लम्बी यात्रा करके, जैसे मैं वहीं पहुँच गयी हूँ जहाँ के लिए चली थी । यह कितना निसर्ग सुन्दर है, कितना रमणीय है । (चन्द्र० ८६)
- भारत केवल भारतवासियों का ही नहीं है यह समग्र विश्व का है और संपूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम-पाश में आबद्ध है । अनादि काल से ज्ञान की मानवता की ज्योति यह विकीर्ण कर रहा है । वसुन्धरा का हृदय-

सुनैणप्रयोग में कभी-कभी " रे" का प्रयोग भी हुआ है जैसे -

- अब तो तू सयाना हुआ रे । (अम्ब० १५)
- क्यों रे, मेरा अपमान करता है । (रक्षा० ३८)

" रे " शब्द का व्यवहार रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने नाटक में किया है । वात्सल्याभिव्यक्ति के लिए नाटककारों ने अपने विशिष्ट सम्बोधनों को भी प्रयुक्त किया जैसे आंखों के तारे, हृदय के प्रकाश आदि । उदाहरण स्वरूप कथन प्रस्तुत है -

- आ -- मेरे आत्मसम्मान, आ । हृदय की तीव्रता, आ ।
(वि०उ० ३५)
- आओ मेरी आंखों के तारे । मेरे हृदय के प्रकाश । (रक्षा० ५२)

उपर्युक्त कथनों में सन्तान को माता ने अपनी सब से प्रिय तथा महत्वपूर्ण वस्तु के नाम से सम्बोधित किया है । जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी तथा उदयशंकर भट्ट ने अपने नाटकों में विशिष्ट सम्बोधनों से पुकारा है जो वात्सल्याभिव्यक्ति में सहायक हुए हैं । वात्सल्य के भाव में विह्वलता के कारण शब्दों की आवृत्ति भी हुई है ।

- सुनना - बेटा, बेटा , मेरी ओर देखो । (अम्ब० १००)
- (पीछे आती हुई) बेटा-बेटा, सुन तो । (कुणा० ६०)

कथन को स्पष्ट करने के लिए भी " शब्दों" की आवृत्ति हुई है ।

- आ, आ मेरे पास आ । (स्वर्ण० ४४)
- सोजा रानी सोजा । (स्वर्ण० ३१)

आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं वाले वाक्यों से भी वात्सल्य प्रकट हुआ है -

- प्रभावती : जीते रहो वत्स । सुखी रहो । ---- साम्राज्य और साहित्य - दोनों के ही इतिहास में स्वर्णाक्षर बनकर चमको ।
(हेतु० २६)
- जीती रहो बेटी । मेरे देश की दूसरी झांसी की रानी बनो ।
(कुणा० ५०)
- (वशिष्ठ से) कुंवर, यह भी कामना है मेरी कि अनन्तकाल तक मेरा आशीर्वाद राम के चरणों का अनुगामी बना रहे ।
(यज्ञ० ३४)
- चिरंजीव हो बेटा । (कथ० ५४)

- मेरे लाल (जय० १२५)
- आँखों के तारे । मेरे हृदय के प्रकाश । (रक्षा० ३५)
- मेरे सूने आकाश के एक मात्र नक्षत्र (रक्षा० ५२)
- मेरे आत्म सम्मान , (विष० ३५)
- मेरा प्राण । (स्कंद० १२१)
- मेरी सोने की बहू (अजात० १३८)

बेटा शब्द का प्रयोग स्त्री तथा पुरुष दोनों ही पात्रों ने किया है परन्तु पुरुषों के वात्सल्य प्रकरण में सम्बोधन शब्दों में कुछ और है, उन्होंने नाम से बच्चे को प्राय: सम्बोधित किया है ।

- जीती रहो बेटी । (ध्रुव० ५०)
- बेटी पद्मा । (अजात० १३७)
- मामा, मेरे बच्चे, मेरे बेटे । (कोणार्क ६४)
- तुम कौन हो भैया (अजा० ११६)
- इधर आओ राम । इधर आओ लक्ष्मण । मेरे निकट ----
  तुम्हें हृदय से लगा लूं । (स्नेहालिंगन) (दश० ३६)

आशीर्वाद तथा शुभवचनों में भी भिन्नता है, स्त्री पात्रों द्वारा कहे गये वचनों में प्राय: सन्तान के सुख तथा स्वास्थ्य की कामना की गई है । जैसे

- मैं आशीर्वाद देती हूँ बेटा । तुम मेवाड़ के राजवंश की कीर्ति बढ़ाओ । (रक्षा० १७)
- तुम सुखी होगे, बेटा । तुम्हारा सुख ही तो मेरी आँखों की ज्योति है । (विष० ११३)
- नहीं लाल । तुम सदा दुनिया में फूलो फलो । (सुनि० ६६)
- चिरंजीव हो बेटा । (जय० ५४)
- जीते रहो वत्स । सुखी रहो । (सेतु० २६)

पुरुषों के आशीर्वचनों में सन्तान की उन्नति तथा भविष्य की शुभ इच्छाओं की कामना है । जैसे

- जीती रहो बेटी । मेरे देश की सुन्दरी मालती की रानी बनो । (ध्रुव० ५०)
- अंतकाल तक मेरा आशीर्वाद राम के चरणों का अनुगामी बना रहे । (दश० ३४)

कभी-कभी वात्सल्य प्रदर्शन में अस्वाभाविकता आ गयी है, जो खटकने लगती है

- (छोटी लड़की के पास जाता) अरे ! यह तो रो रही है । (उसके सिर पर हाथ फेरता) क्यों, क्या हुआ मुनिया को ? किसने नाराज कर दिया ? (पुचकारता) अरी बेटे इस तरह अच्छा नहीं लगता । अब आप बड़ी हो गयी इसलिए --- । (लागि० ६०)

इसमें "आप" कहकर सम्बोधित करने से वात्सल्य का प्रभाव कुछ घट रहा है ।

वात्सल्य भाव की प्रभावशाली अभिव्यक्ति जगदीश चन्द्र माथुर के "दशरथ नन्दन" नाटक में हुई है । उन्होंने प्रशंसात्मक वाक्यों तथा आशीर्वचनों द्वारा वात्सल्य का प्रदर्शन किया है । जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्र नाथ अश्क ने भी अपने नाटकों में वात्सल्य भाव को प्रदर्शित किया है । इन नाटककारों ने विशेष सम्बोधन शब्दों तथा प्रशंसात्मक वाक्यों द्वारा भाव की अनुभूति करायी है । आशीर्वचनों को जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्र नाथ अश्क;(अंधी दीदी) लक्ष्मी नारायण मिश्र (मुक्ति का रहस्य) विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा सुरेन्द्र वर्मा ने(सेतुबंध में) अपने नाटकों में वात्सल्य प्रदर्शन के लिए रखा है । कई नाटककारों ने वात्सल्य प्रदर्शन में कुछ विशिष्टता रखी है । सी०पी० श्रीवास्तव ने अनुतान द्वारा भाव प्रदर्शन में आग्रह तथा शिकायतों को तुतलाकर कहलवाया है । मोहन राकेश ने माता द्वारा बच्चे की भांति तुतलाकर शब्दों का उच्चारण वात्सल्याभिव्यक्ति के लिए कराया है । लक्ष्मी नारायण मिश्र ने मुक्ति का रहस्य तथा जगदीश चन्द्र माथुर ने कोणार्क में बच्चों को पुकारते हुए कंठावरोध की स्थिति द्वारा भावाभिव्यक्ति को प्रदर्शित किया है । उपेन्द्र नाथ अश्क ने "स्वर्ग की झलक" में लोरी गीत को भी भावाभिव्यंजना हेतु रखा है । वृंदावन लाल वर्मा ने "झांसी की रानी" नाटक में वात्सल्य को प्यार भरे शब्दों से पुकार कर प्रकट किया है ।

नाटकों में शब्दों का श्लेषपूर्ण प्रयोग भी हास्य में हुआ है -

- कम काटा है बबुए ?

  वाह, क्या सुन्दर योजना है बबुए । ब्राह्मण अग्निमुख होते हैं, इसलिए यह विभाजन इस तरह से ठीक है । (. विक्र० २९-३०)

इसमें 'बबुए' शब्द सम्बोधन के रूप में कहा है, परन्तु दूसरा पात्र 'बबुए' का कुछ अन्य अभिप्राय लेता है, जिसने हास्य को उत्पन्न किया है ।

तकिया कलाम में प्रयुक्त शब्दों के द्वारा भी हास्य की सृष्टि हुई है । पात्र किसी भी परिस्थिति में तकिया कलाम में बोलते हैं उनसे हास्य की स्थिति बन गयी है ।

उदाहरण -

- अरे बच्चा गोवर्धनदास । तेरी यह क्या दशा है ? (अंधेर० २३)
- कसम कुरान की साड़ ढूँढ़ लूँगा । (उलट० २६)
- हमारे नाना जी कहते थे, नौकरों को सदा साफ सुथरा रखना चाहिए । (कैदी० ३४)

अरे बच्चा, कसम कुरान की तथा हमारे नाना जी कहते थे" का प्रयोग पात्रों ने अपने कथनों में अधिकतर किया है ।

तकिया कलाम द्वारा हास्य उत्पन्न करने की शैली भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (अंधेर नगरी में) जी०पी० श्रीवास्तव, उपेन्द्र नाथ अश्क ने (अंजो दीदी में) ने अपनायी है ।

नाटककारों ने कभी-कभी बेतुकी बातों से हास्य उत्पन्न किया है, इसमें शब्दों का बेतुका व्यवहार हुआ है । जैसे -

- राजा । - (नौकर से) कल्लू बनियां की दीवार को अभी पकड़ लाओ । (अंधेर० ६५)
- क्यों बे भिश्ती । गंगा जमुना की किश्ती । इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई ? (अंधेर० ६६)

" दीवार को पकड़ लाओ", बकरी के गिरने से दीवार दब गई" में असंगत प्रयोग हास्य की दृष्टि से किया है ।

- क्यों बे कसाई के गड़ेरिया । ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई ? (अंधेर० ६७)

कलम पकड़ पकड़ लिखिए । रामदीवाड़ बगड़ा बगड़ा कि काव कहीं मकया क्या कुकुर कहुँ । (उत्त० २३)

- मैं अंधकार और हैरानी की उमंग लाकर कहता हूँ कि मैं शेर की तरह दहाड़ता रहूँगा - फाड़ता रहूँगा कपड़े और कागज - कील की गर्द फाड़ता रहूँगा - मैं का मैं चित्रण करूँगा और चांद-सितारों से दुनिया की कसौटी करूँगा । (रा० ४४)

इन कथनों में हास्य के उद्देश्य से ध्वन्यात्मक रूप बार-बार लाकर, कलम पकड़ पकड़ लिखिए, दहाड़ता रहूँगा , फाड़ता रहूँगा, फाड़ता रहूँगा, चित्रण करूँगा, कसौटी करूँगा, प्रयुक्त हुआ है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी शब्दों का ध्वन्यात्मक व्यवहार हास्य के लिए किया है -

- क्यों बे भिश्ती । गंगा जमुना की किश्ती । (अंधेर० ६६)

नाटककारों ने इस भाव को उपहास, मसखरी अथवा खिल्ली उड़ाते हुए भी व्यक्त किया है । इनमें हास्यपूर्ण उपमाओं बेतुकी सम्मतियों तथा व्याख्याओं से उपहास या खिल्ली उड़ाई गई है ।

- अरे दीदी । -- तुम तो व्यर्थ में गृहस्थी की चक्की से अपना माथा फोड़ रही हो । तुम्हें तो सेना में कैप्टन या छोटी -मोटी लेफ्टिनेंट हो जाना चाहिए । (कौ० ७४)

- यह है कुमारी कन्या । ठीक है किसी पके हुए फल के गिरने की ताक में बैठी होगी । हो सकता है कि किसी बूढ़े के पीछे भिन रही हो । है यह क्या । अधिक लड्डू खाकर उफने हुए पेटवाले ब्राह्मण के समान यह ऊपर की ओर उचाट क्यों हो रही है । (वि०अ० ५०)

- (हँसते हुए) हमारे यहाँ आशीर्वाद देनेवाले इतने ब्राह्मण इकट्ठे हो गये हैं कि एक-एक ब्राह्मण यदि एक-एक लड्डू भी छोरों पर फेंक दें तो उनके सिरों पर लड्डुओं का विन्ध्याचल पर्वत खड़ा हो जायगा और वे दबकर मर जायेंगे । (कर्पूर० २२)

- (हँसते हुए) भाई हमारे देवर को तो ऐसी लड़की चाहिए जो अशोक की पत्नी की तरह साड़ी पहन सके, श्रीमती राजेन्द्र की तरह [illegible] पचीस तरीकों से बाल बना सके और उन लेडी डाक्टर की भाँति घर की सफाई--
(स्वर्ग० १६)

नाटकों में सन्त, महात्माओं के उपदेश तथा संपर्क से भी विरक्ति उत्पन्न की है, जिसमें व्यक्ति ने मोक्ष की कामना से वैराग्य ग्रहण किया है -

- जिसने एक बार प्रकाश की किरण देख ली, उसकी आँखें मुँद नहीं सकती हे भगवान । इसी से आज वैशाली की राजनर्तकी भिक्षुणी बनने को भगवान के चरणों की शरण में आई है । (घुटने टेककर सिर झुका देती है)   (अम्बा० १११)

विरक्त मनःस्थिति में व्यक्ति ने वैराग्य के रहस्य तथा उससे संबंधित बातें भी की है -

- अब समझ में आई है दुनियाँ कि आदमी क्यों विराग लेता है, क्यों भिक्षु बनता है । कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जो स्वभाव से ही दुनिया के रागरंग से परे होते हैं । उनका मन प्रशान्त सागर होता है, जिसमें कितनी ही नदियाँ पानी डालें, जिसके ऊपर कितनी ही हवाओं से चन्द्रमा चमके, लेकिन न तो बाढ़ आती है, न लहरें उठती हैं- (उँगली से बुद्ध-मूर्ति को दिखाती) देख रहा और । कैसी शाश्वत शान्ति ! कामना या भावना की एक रेखा भी कहीं पाती है ? (अम्ब० १००)

सांसारिक सम्बन्धों के प्रति निराशा, जीवन मृत्यु के चक्र ने भी पात्र के हृदय में विरक्ति भर दी है ।

- कुणालिनी - मृत्यु के बाद कौन किसे बुलाता है, बहिन । संसार के सारे संस्कार में ही रह जाते हैं । मनुष्य मरकर मनुष्य योनि में ही जाता है यह भी तो हमें ज्ञात नहीं । तब तुम मर कर अपने स्वामी को पा सकोगी इसका भी तो विश्वास नहीं ।

(शपथ० १३४)

नाटकों में विरक्ति के भाव में जब विराग का भाव भी नाटक में सम्मिलित हो गया है तो अभिव्यक्ति में शिथिलता की बजाय थोड़ा तेजी आ गयी है और भाव की उत्कट अभिव्यक्ति नहीं हो पायी है ।

- राजन , संपूर्ण विश्व ही विधाता का क्रीड़ा कौतुक है । न यहाँ कोई प्रजा है, न कोई नर्तकी है न कोई राजा है, न यह शिप्रा की

पारा । सब कुछ अस्तित्व के आकाश में माया सा बैठ है ।
(रूपक० ७९)

मैं तो चाहता हूँ अब भी नहीं मरता । मेरे अशोक की तरह भगवान मुझे उठा ले गया होता तो अच्छा था । अब इस बुढ़ापे में
(कोटन० ६२)

निर्वेद के भाव को भिन्न हुये नाटककारों ने अपने नाटकों में स्थान दिया है । जयशंकर प्रसाद के "अजातशत्रु" नाटक में इस भाव की अधिकता है । उन्होंने भाव को बड़ी गहराई से व्यक्त किया है । इसमें उपदेशात्मक उक्तियाँ तथा सूक्तियाँ द्वारा भाव को अधिकतर व्यक्त किया है । रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी नाटक की कथावस्तु देखते हुए निर्वेद भाव का चुनाव किया है । इन्होंने विषाद तथा निराशा से उत्पन्न निर्वेद भाव को प्रकट किया है । भावाभिव्यक्ति में अधिकांशतः पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में निर्वेद के भाव एक दो स्थल पर व्यक्त हुए हैं । जीवन के प्रति निराशा तथा सांसारिक दुःख से विरक्ति भाव उत्पन्न हुए हैं ।

दूसरा अध्याय

शब्द - प्रयोग

तत्सम, तद्भव , देशी तथा विदेशी शब्द

हिन्दी नाटकों में नाटककारों ने भावाभिव्यक्ति में शब्द-प्रयोग की भिन्न-भिन्न शैली अपनायी है । शब्दों का प्रयोग नाटककार की शैलीगत भिन्नता को प्रकटकर रहा है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों में काल, पात्र, धर्म-जाति, संस्कार, परिस्थिति तथा वातावरण आदि को दृष्टि में रखते हुए शब्दों का प्रयोग किया है । उनके प्रत्येक नाटक में शब्द प्रयोग की शैली कुछ बदली हुई है ।

" नीलदेवी " नाटक में नाटककार ने पात्रों की जाति तथा पद के आधार पर शब्द चयन किया है । हिन्दू वर्ग के पात्रों द्वारा हिन्दी का प्रयोग करवाया है । हिन्दू वर्ग में भी उच्च कुल तथा पद पर आसीन पात्रों से तत्सम शब्दों का व्यवहार अधिक करवाया है, इन शब्दों को नाटककार ने पात्र की भाषा में शुद्धता, गंभीरता या रोबीलापन लाने के लिए प्रयुक्त किया है । तद्भव तथा देशज शब्दों को उनके कथनों में अल्प स्थान मिला है । साधारण तौर पर जिन तद्भव तथा देशज-शब्दों का प्रयोग व्यक्ति करता है, उनको भी इन पात्रों के कथनों में अपनाया गया है ।

मुसलमान पात्रों से नाटक में स्वाभाविकता लाने के लिए उर्दू-अरबी-फ़ारसी के शब्दों को बुलवाया गया है । इन मुसलमान पात्रों ने भी साधारण देशज शब्दों को कहीं-कहीं अपनाया है । मुसलमान पात्र द्वारा शब्दों का प्रयोग देखिए-

शरीफ़ - कभी उस बेईमान के सामने लड़कर फ़तह नहीं मिलनी है । मैंने तो अब जी में ठान ली है कि मौक़ा पाकर एक दफ़ा उसको सोते हुए गिरिफ़्तार कर लाना । और अगर खुदा को इस्लाम की रोशनी का जिल्वा हिन्दोस्तान बुतपरस्तिस्तान में दिखाना मंज़ूर है तो बेशक मेरी मुराद बर आवेगी ।

(नील० ८)

नाटककार ने निम्न वर्ग के मुसलमान पात्रों द्वारा मिले-जुले शब्दों का प्रयोग करवाया है। उनकी भाषा में अरबी-फारसी देशज तथा हिन्दी के तद्भव शब्दों की अधिकता दी है। निम्न वर्ग के तथा अशिक्षित पात्रों द्वारा तद्भव तथा देशज शब्द व्यवहृत हुए हैं। जिनका प्रयोग उचित बन रहा है। उदाहरण-

> नौकर। - खुदावन्द निआमत। एक परदेश की गानेवाली बहुत ही अच्छी ड्योढ़ी के दरवाज़े पर हाज़िर है। वह चाहती है कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखाइए। जो इरशाद हो बजा लाऊँ।
>
> (श्रीच० २८)

" श्रीचन्द्रावली " में नाटककार ने कथा तथा देश की भाषा के अनुरूप ब्रजभाषा को अपनाया है। जिसमें तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दों का मिला-जुला रूप है। इसमें प्रत्येक पात्र से ब्रजभाषा को बुलवाया है, अतः इस की भाषा में शब्दों का प्रयोग एक सा हुआ है। जो कि नाटक के लिए उचित प्रतीत होता है।

" भारत दुर्दशा " में नाटककार ने तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्दों को स्थान दिया है। इस कृति में पात्रों की मनोदशा, परिस्थिति तथा वातावरण के अनुसार शब्दों का चुनाव किया है।

शोकपूर्ण स्थलों पर या गम्भीर घटनाओं की चर्चा करते हुए नाटककार ने तत्सम शब्दों को अधिक रखा है। ऐसे ही एक प्रसंग में शब्दों का प्रयोग देखिए -

> भाई भारत! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ। मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता। इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ। (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्वान्तर्यामी! हे परमेश्वर! जन्म-जन्म मुझे भारत सा भाई मिले। जन्म-जन्म गंगा-जमुना के किनारे मेरा निवास हो!
>
> (भारतदु० ४१)

हास्य की पुष्टि के लिए तद्भव, देशी-विदेशी शब्दों को अधिक महत्त्व दिया है

क्योंकि तत्सम शब्दों की अपेक्षा ये शब्द भावाभिव्यक्ति में अधिक सफल रहे हैं जैसे -

> मोटा भाई बना बनाकर मूंड़ लिया । एक तो खुद ही यह सब पंडिया के लाला, उस पर फुटकी चढ़ी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धांय-धांय गिनी गई, वर्णमाला कंठ कराई बस हाथी के खाए कैथ हो गए ।
>
> (भारत भा० २८)

> अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ़ किए । फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया ।
>
> (भारत०भा० २८)

हास्य के लिए कुछ संस्कृत-शब्दों को भी नाटककार ने प्रयुक्त किया है ।

> जो पढ़तव्यं सो मरतव्यं, जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं, तब फिर दंतकटाकट किं कर्तव्यं ?
>
> (भारत० भा० ३२)

विदेशी पात्र जब हिन्दी भाषी पात्रों से वार्तालाप कर रहे हैं तो नाटककार ने उनसे हिन्दी के शुद्ध शब्दों का प्रयोग न करवाकर तद्भव शब्दों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग करवाया है, ताकि कथन में स्वाभाविकता आ जाय ।

> सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है । इसका पेशतर कि भारत दुर्दैव हमलोगों का सिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है किन्तु एवं है कि हमलोग उसका दमन करने सकता कि हमारा वीर्य्यबल के बाहर की बात है ।
>
> (भारत०भा० ३८)

"अंधेर नगरी" नाटक में तो नाटककार ने वातावरण तथा पात्रों को देखते हुए शब्दों का चयन किया है । नाटक में बाजार के दृश्य में व्यापारियों की यथार्थ भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है । दृश्य में व्यापारी अपनी वस्तुओं को तरह-तरह से मिलाकर बेच रहे हैं, वहाँ नाटककार ने देशज शब्दों को प्रधान रूप दे रखा है, क्योंकि इस दृश्य में पात्र नए-नए शब्दों को गढ़कर गा रहे हैं ।

चने बनावै घासीराम । जिनकी झोली में दुकान ।।
चने खुरखुर खुरखुर बोले । बाबू खाने को मुंह खोले ।।
चना खावै तौकी मैना । बोलै अच्छा बना चबैना ।।
(अंधेर० ७)

नाटक में पात्रों की प्रकृति को देखते हुए भी शब्द प्रयोग करवाया है । मन्त्री तथा उनकी स्वभाव के राजा के द्वारा हास्य उत्पन्न करने के लिए तत्सम शब्दों की बजाय देशी, तद्भव तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग करवाया है ।

चुप रहो । तुम्हारा न्याव यहाँ ऐसा होगा कि जैसा
जम के यहाँ भी न होगा - बोलो क्या हुआ ?
(अंधेर ० १५)

इसके विपरीत महन्त पात्र की भाषा में संस्कारों के कारण तथा गंभीरता लाने के लिए तत्सम शब्दों का व्यवहार कराया है ।

महन्त । मैं तो इस नगर में अब क्षण भर नहीं रहूँगा ।
देख, मेरी बात मान, नहीं तो पीछे बहुत पछतायेगा ।
मैं तो जाता हूँ, पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े
तो हमारा स्मरण करना ।
(अंधेर० १३)

नाटक के अन्य पात्र व्यावहारिक भाषा को अपनाते हैं जिसमें शब्दों का मिला जुला रूप है ।

भारतेन्दु जी के नाटकों में कहीं-कहीं शब्द प्रयोग में अस्वाभाविकता भी आ गई है । "भारत दुर्दशा" में तत्सम शब्दों के साथ देशज शब्द का प्रयोग

"कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है । बाकी साकी अभी सरंजाम डालता हूँ "
कुछ खटकता है ।" भारत दुर्दशा" में भी आलस्य नामक पात्र द्वारा कथन में प्रारंभ में तत्सम शब्दों का प्रयोग तथा उसके बाद तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों का मिला जुला प्रयोग, फिर संस्कृत और देशज शब्दों और अन्त में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का आना अटपटा लगता है । भारतेन्दु जी ने सब पात्रों से एक से शब्दों का प्रयोग नहीं करवाया । इनके नाटकों में न तो अरबी फारसी बहुलता है न ही संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार । उन्होंने संस्कृत के सरल शब्दों, उर्दू, अरबी फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी के उन शब्दों को अपनाया है जो व्यावहारिकता को न खोयें ।

प्रताप नारायण मिश्र ने" भारत दुर्दशा " में यों तो पूरे नाटक में जनसाधारण की भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्द सभी आये हैं । परन्तु कुछ स्थलों पर किन्हीं विशेष शब्दों को अधिक महत्व दिया है। शिक्षित वर्ग के पात्रों के वार्तालाप में कुछ औपचारिकता है जिसमें तत्सम शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं -

> सरूप - उसके लिए मैं क्षमा मांगता हूँ और आशा करता हूँ कि आप उन बातों को अपने हृदय में स्थान न दें ।
>
> (भारतदु० २२)

गम्भीर व महत्वपूर्ण घटनाओं को सामान्य से भिन्न बनाने तथा अधिक उभारने के लिए भी तत्सम शब्दों को प्रधानता दी है -

> अपना और मेरा विवाह होने के पहले से मुझसे प्रेम करते थे मेरी सखी के पिता को उन्होंने सूचित कर दिया था , अपने पिता से भी यह बात कह दी थी पर उनके पिता ने उनका विवाह मेरे साथ करना स्वीकार न किया और मेरी सखी से उनका विवाह कर दिया मेरी सखी को सब सुख देते थे पर यह कह दिया था कि मैं और स्त्री

नाटक में तत्सम शब्दों को देखते हुए तत्सम शब्दों का, देशज तथा तद्भव शब्दों की तुलना में कुछ कम प्रयोग हुआ है। विदेशी शब्दों में व्यवहार पर प्रयोग में आनेवाले शब्द प्रयुक्त हुए हैं। शब्दों के प्रयोग में किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं आ पाया है। मिश्र जी के नाटक पर भारतेन्दु जी के नाटकों का प्रभाव दिखाई देता है।

"दुर्गावती" में भी बद्रीनाथ भट्ट ने पात्रानुसार भाषा तथा वातावरण के अनुरूप भाषा को देखते हुए शब्दों का चयन किया है। हिंदू पात्रों में उच्च वर्ग के पात्रों से तत्सम शब्दों का अधिक तथा विदेशी, देशी तथा तद्भव शब्दों का अल्प प्रयोग करवाया है। यह शब्द व्यवस्था पात्र के पद को देखते हुए उसके कथनों को गंभीर तथा दृढ़ बनाने के लिए किया है। इसके विपरीत निम्न तथा अशिक्षित वर्ग के हिंदू पात्रों से तद्भव तथा देशज शब्दों का अधिक व्यवहार कराया है। जैसे -

> मेरे भैया, राजा परमेश्वर का रूप है, वो बात झूठी थोड़े ही है।
>
> (दुर्गा० ६६)

मुसलमानी पात्रों के कथनों में उर्दू, अरबी-फारसी के शब्दों को अधिक महत्व दिया है उदाहरण -

> जहाँपनाह, बदनसीबी का तकाजा जो कुछ भी इस गुलाम से हुआ, वह दिल के सबब। इसके लिए यह गुलाम भी बहुत ही शर्मिंदा है और जहाँपनाह से और राजा साहब से मुआफी का ख्वास्तगार है।
>
> (दुर्गा० २४-२५)

नाटककार ने पात्रानुसार भाषा को प्रदर्शित करने के लिए इस प्रकार की शब्द योजना की है। वातावरण के कारण भी नाटककार ने पात्रों की भाषा में शब्द परिवर्तन कर दिया है। जैसे मुसलमान पात्र हिंदू पात्र से वार्तालाप कर रहा है तो, मुसलमान से हिंदी के तत्सम शब्दों का प्रयोग करवाया तथा हिंदू पात्र जब मुसलमान से बातचीत कर रहा है तो वह उर्दू के शब्दों को बोल रहा है। इस प्रकार का शब्द प्रयोग प्रस्तुत है -

गढ़मंडल की जमींदारी श्री महारानी दुर्गावती देवी जी
को अकबर का प्रणाम । भगवान की कृपा से यहाँ सब
अमन-चैन है । आशा है, आपके यहाँ भी सब तरह
आनन्द होगा ।

(दुर्गा० ३५)

अकबर - (शांति के साथ) जहाँपनाह, कुछ न पूछिए,
महारानी का इरादा अपना राज आपको भेंट देने का था ।

(दुर्गा० ५९)

नाटककार का मुसलमान पात्र द्वारा तत्सम शब्दों का तथा हिन्दू पात्र द्वारा उर्दू के शब्दों का प्रयोग करवाना कुछ अनुचित लगता क्योंकि इन पात्रों की भाषा में अपनी भाषा की कोई छाप नहीं दिखती। एक स्थल पर राजकर्मचारी-ग्रामीणों को प्रोत्साहित करने के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग कर रहा है जिससे भाषा में क्लिष्टता आ गयी है , यह प्रयोग अस्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि सामान्यत: ग्रामीणों की इतनी बुद्धि कहाँ कि वे इतने क्लिष्ट शब्द प्रयोग को समझ सकें ।

प्रसाद के नाटकों में शब्द प्रयोग की बिल्कुल भिन्न शैली अपनायी गयी है। प्रसाद भारतीय संस्कृति के पुजारी थे, अत: उन्होंने अपने नाटकों में संस्कृत-निष्ठ भाषा को महत्त्व दिया है । दूसरी बात यह है कि नाटक की कथा को देखते हुए प्रसाद ने उसके देशकाल को ध्यान में रखते हुए संस्कृत के निकट की तत्सम शब्द प्रधान भाषा की रचना उपयुक्त समझा । शब्द प्रयोग की इस शैली से उनके नाटकों में साहित्यिकता तो आ गयी है, जो कि नाटक के पठन में आनंद प्रदान कर सकती है, परन्तु अभिनय की दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि, प्रसाद ने इस बात को सोचा नहीं कि ये नाटक अभिनीत भी किए जायेंगे । तत्सम शब्दों के आधिक्य से भाषा में क्लिष्टता आ जाती है और यह क्लिष्टता नीरसता भी उत्पन्न कर देती है ।

नाटक में गंभीर प्रवृत्तिवाले तथा उच्चवर्ग के हिन्दू पात्रों द्वारा तो तत्सम शब्दों का अधिक व्यवहार कराया ही है, इसके अतिरिक्त विदेशी,

हुए उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों को भी प्रधानता दी है ।" शपथ" नाटक में कथा ऐतिहासिक तथा प्राचीन काल की है, जिसके लिए तत्सम शब्द प्रधान भाषा को अपनाना ही अधिक उचित लगता है । यों तो नाटक में तत्सम शब्दों का सरल रूप है, परन्तु गहन विचारों की अभिव्यक्ति के लिए कुछ क्लिष्ट तत्सम शब्दों को भी स्थान मिला है ।" शपथ" नाटक के पात्र प्राचीन भारत की सांस्कृतिक चेतना से संपन्न है , अतः तत्सम शब्दों का बाहुल्य उनके कथनों में है । तद्भव देशज शब्दों की तत्सम शब्द की तुलना में अल्पता है । विदेशी शब्द एक भी नहीं आने पाया है ।" रक्षा बन्धन" में पात्रों की जाति, धर्म, पद को भी दृष्टि में रखते हुए उन्होंने अपने पात्रों की भाषा को लोक सामान्य की भाषा के निकट लाने का प्रयास किया । प्रेमी जी ने मुसलमान पात्रों द्वारा उर्दू-अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग प्रधान रूप से तथा उसके साथ तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग तो करवा दिया है, परन्तु उनके मुख से शुद्ध तत्सम शब्दों को बुलवाने के पक्ष में वे नहीं है । मुसलमान पात्रों के कथनों में शब्दों का चयन किस प्रकार किया गया है देखिए -

> हुमायूं - दुश्मनी आँखों की रोशनी नहीं छीन लेती ।
> शेर खाँ की बहादुरी इन लड़ाइयों में साफ़ रोशन हो
> चुकी है । केवल उसकी आँखों से बिजली की चमक, भौंहों
> में कमान का खिंचाव और चेहरे पर बहादुरी का नूर नज़र
> आता है । उसकी मज़बूती से बंद मुट्ठियों से मालूम होता
> है गोया वह ज़िन्दगी और मौत - दोनों को मुट्ठी में
> लिए घूमता है । ऐसे दुश्मन से लोहा लेना भी फ़ख़्र की
> बात है ।
>
> (रक्षा० ४३)

प्रेमी जी ने हिन्दू वर्ग के पात्रों से तत्सम शब्द प्रधान भाषा का प्रयोग करवाया है, जिनमें देशी तथा तद्भव शब्दों को कम स्थान मिला है । नाटक में उच्च वर्ग के हिन्दू पात्रों द्वारा तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग तो ठीक लगता है,

परन्तु ग्रामीण द्वारा तत्सम शब्दों के अधिक प्रयोग से पात्रों में भिन्नता नहीं प्रकट हो पा रही है ।

कहीं-कहीं हिन्दू पात्र जब मुसलमान से वार्तालाप कर रहा है, तो उसके कथन में उर्दू अरबी-फ़ारसी के शब्दों को भी महत्व दिया गया है, जो कि परिस्थिति के कारण स्वाभाविक लग रहा है ।

> विक्रम - आज मैं चाहे जो भी, प्रकृति के ऐश्वर्य का उपभोग करने के लिए कुछ बचाने की ज़रूरत नहीं । वह तो माँ की तरह गरीब और अमीर सभी को अपना आँचल बिछाकर बुलाती है । शाहज़ादा साहब । यह तो स्वार्थ का राक्षस है, जो हमारे हृदय में बैठकर हम से एक दूसरे के गले पर छुरी चलवाता है ।"
>
> (रक्षा० १८-१६)

उदय शंकर भट्ट का "किंकिणी कन्या" पौराणिक नाटक श्रीमद्भागवत की कथा से संबंधित है, अतः नाटककार ने भागवत की संस्कृत भाषा को देखते हुए संस्कृत के तत्सम शब्द प्रधान भाषा को महत्व दिया है । नाटक में तत्सम शब्दों की अधिकता से क्लिष्टता नहीं आने पाई है । नाटक में प्रत्येक पात्र तत्सम शब्दों को प्रधान रूप से अपना रहा है । गंभीर कथनों में तत्सम शब्दों की अधिकता है। हास्य, उल्लास वाले कथनों में तत्सम शब्दों के साथ देशज तथा तद्भव शब्द भी आ गये हैं । यों तो सामान्य रूप से प्रयोग में लाये जानेवाले तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं पूरे नाटक में हुआ है परन्तु उनकी संख्या अल्प है । तद्भव शब्दों में हाथ, बिजली, रात, आँसू, कान, आग, काँटा, धुआं, दूध, साँप, घी, दाँत, भौंरा, मुँह जैसे शब्द आये हैं । देशज शब्दों में पत्तियाँ, कीचड़, झटपट, काई, चोर, लड़की, बैसाखी, चिम्मी, बैलुआ, झींगुर, झाड़ी, गुदगुदी साधारण शब्द आये हैं । विदेशी शब्दों में उर्दू फ़ारसी के भी कुछ प्रयोग हुए हैं जिनमें दुरुस्त, जल्द, इनाम, हुनर, वाहियाती, काबिल आदि हैं । ये प्रयोग नाटक के देशकाल को देखते हुए कुछ अस्वाभाविक लगते हैं । अंग्रेजी शब्दों को कहीं भी स्थान नहीं मिला है ।

'अम्बपाली' नाटिका में भी नाटककार ने कथा को दृष्टि मे रखते हुए शब्दों का चयन किया है । इसमें नाटककार ने पात्रों के पद, संस्कारों को ध्यान मे रखते हुए राजा पात्रों तथा संत पुरुषों द्वारा तत्सम शब्दों को अधिक बुलवाया है ताकि उनके कथनों में गम्भीरता तथा दृढ़ता आ जाय । इसके अतिरिक्त उपदेश देते हुए या दार्शनिक विषयों पर चर्चा करते हुए, गहनता लाने के लिए भाषण देते हुए कथन मे बल लाने के लिए तत्सम शब्द को अधिक महत्व दिया है। ग्रामीण पात्रों से नाटककार ने कुछ भिन्न शब्द प्रयोग कराये हैं । इनकी भाषा में देशी, तद्भव शब्दों के साथ तत्सम तथा विदेशी शब्द प्रयुक्त हुए हैं । अत: तत्सम शब्दों की प्रधानता नहीं रह पाई । पात्रों के संस्कारों तथा देश काल को देखते हुए उनके शब्दों का प्रयोग कृत्रिम नहीं लगता ।

विदेशी शब्दों मे उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों को रखा है परन्तु उनकी भी संख्या अलग है । आशिका, गुस्ताखी , चीज़, ज़ख्म, नाज़ुक, गुलजार, मातम, मेहरबानी, उम्र आदि शब्द आये हैं । अंग्रेजी के शब्दों को नाटककार ने कथा को देखते हुए कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया है ।

जगदीश चन्द्र माथुर ने अपने नाटकों में शब्दों का चुनाव कथानक की माँग पर किया है । कोणार्क तथा पहला राजा में, नाटककार ने तत्सम शब्दों को अधिक अपनाया है । 'कोणार्क' नाटक के विषय में दिल्ली के अंग्रेजी समाचार पत्र में अभिनय की दृष्टि से कोणार्क की आलोचना की है । इस नाटक का बहिष्कार होना चाहिए क्योंकि लेखक ने यह नाटक संस्कृतमयी हिन्दी के प्रचार के लिए लिखा है । पहलाराजा मे पुरातन कथ्य के अनुरूप तत्सम शब्दावली को अधिक महत्व मिला है । तत्सम शब्दावली के साथ तद्भव, देशज तथा उर्दू , फारसी केशब्दों को कुछ संख्या में अपनाया है। 'पहला राजा' में तो सूत्रधार द्वारा अंग्रेजी केशब्दों का प्रयोग करवाया गया है, इन अंग्रेजी शब्दों का नाटक की कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है इसलिए नाटक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । 'शारदीया नन्दनमें नाटककार ने रामचरितमानस के पद्य भाग को लेकर उसमें गद्य रूप को जोड़कर रचना की है , जिसमें पद्य

भाग को लेकर उसमें गद्य रूप को जोड़कर रचना की है जिसमें पद भागोंमें

तो अवधी, कृष्णाकाव्य मानस के समान प्रयोग हुआ है, परन्तु गद्य भाग में नाटककार ने तत्सम शब्दों को अधिक अपनाया है, क्योंकि तत्सम शब्द प्रधान भाषा में कथा के अनुकूल है । तद्भव शब्द भी नाटकों में स्थान-स्थान पर आये हैं ।

हाथ, लोहा, कान, सिर, आग, सपनो, सच, छांह, सांस, अंधेरे, भीख, पंछी, सूरज, बिजली, दिन, गांव, काम, बरसों, रात, नींद, सिर, पांत,[1] पंछी, सांस, रात, उँगलियाँ, दूध, घी, सूरज, चांद, कुम्हार, लोहा, मिट्टी, कभी, धुआं, पूरव,[2] दाकुन, वीर, विपति, सुमरिन, धरम, स्याम, सनेह, सोभा, गुन ज्ञानी[3] आदि तद्भव शब्द आये हैं । नाटककार ने भाषा को स्वाभाविक तथा क्लिष्टता से बचाने के लिए उसमें देशी तथा विदेशी शब्दों को भी स्थान दिया है । यहाँ तक कि दशरथ नन्दन में भी विदेशी शब्द आ गये हैं। देशी शब्दों में टीलो, बबवह, भुग्गु, भंडाफोड़, छैने, डमरू, छैनी, टापों, कुदाली, हथौड़ी, माला आदि आये है विदेशी शब्दों में रोज, मिहनत, जिम्मा, गजब, निगाह, खुमार, अरमान, खुशामद,[2] बैलाव, बेदम कामयाबी, गज़ब, गायब, जाहिर, खुशामद,[2] इशारे, बेचारा, अहसान, निगाह[3] दशरथ नन्दन में गिने-चुने उर्दू के शब्दों को स्थान मिला है ।

वृंदावन लाल वर्मा ने माथुर जी के नाटकों से कुछ अलग शैली अपनाई है । वर्मा जी ने व्यावहारिकता को दृष्टि में रखकर शब्द चयन किया है । पात्रों के स्तरानुसार भाषा में शब्द व्यवहृत हुए है । उच्च वर्ग के हिन्दू पात्र व्यावहारिक हिन्दी को अपना ते हैं, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द यथा स्थान छटा दिखाते हैं । ग्रामीणों के कथन बुंदेलखण्डी में है । जिसमें ग्रामीण देशज तथा तद्भव प्रधान रूप से प्रयुक्त हुए है । कभी-कभी उच्चवर्ग के पात्र ग्रामीण पात्रों से बातचीत करते हुए ग्रामीणों की भांति ग्रामीण, तद्भव देशज शब्दों को व्यवहार में लाते हैं ।

1- कोणार्क

2- पहला राजा

3- दशरथ नन्दन

हिन्दी अनुवाद भी कर दिया है । वर्मा जी ने व्यक्ति तथा वर्ग के अनुसार शब्दों का प्रयोग करवाने का काफी प्रयत्न किया है । उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव तथा देशी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है ।

उपेन्द्र नाथ " अश्क " ने नाटकों की कथा तथा देशकाल को देखते हुए भाषा को भी अपनाया है । उनकी रचना " जय पराजय " की कथा इतिहास के राजपूतकाल से ली गई है, जिसके लिए नाटककार ने तत्सम शब्द प्रधान भाषा को चुना है, जो कि कथा को देखते हुए उचित लगती है । नाटककार ने पात्रानुसार भाषा में शब्द भेद नहीं रखा है ।

तद्भव तथा देशी शब्दों का अल्प प्रयोग मिलता है । इनमें वे ही शब्द आये हैं जो सामान्यतः व्यवहार में लाये जाते हैं जैसे - तद्भव शब्दों में सपना, साथ, अंधेरा, नींद, सांप, दूध, सीप, मिट्टी, उंगलियों, राज-काज, दिन, रात, किला, सिर, मुंह, पांव, कान, छोप आदि ।

देशी में - फाजलू, सौंट, झपट, धक्का, फंफा आदि ।

विदेशी शब्दों में भी कुछ इक्के-दुक्के उर्दू के शब्द आये हैं जैसे दौलत, सबर, पोशाक, गिरफ्तार, आबाद, कसूर, जागीर, सिलसिला, दिलचस्पी, निगाहें गुम, कदम, कुर्बानी आदि । अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कथा की दृष्टि में रखते हुए कहीं भी नहीं हुआ है । तत्सम शब्दों के साथ अन्य शब्दों के आने से भाषा में क्लिष्टता नहीं आने पाई है ।

अश्क जी ने एक और कथानक के आधार पर तत्सम शब्द प्रधान भाषा को तो अपनाया है, परन्तु दूसरी ओर वे नाटकों को बिलकुल साहित्यिक भी नहीं बनाना चाहते, जिसके लिए उन्होंने उर्दू, तद्भव तथा देशज शब्दों को भी अपनाया है । इस प्रकार उन्होंने अतीत के कथानकों तथा बोलचाल की भाषा के बीच की दीवार हटाने का प्रयत्न किया है । आधुनिक समस्यामूलक नाटकों में नाटककारों ने भाषा को पाठक के करीब लाने के लिए बोलचाल की सरल तथा स्वाभाविक भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र ने "सिन्दूर की होली" तथा "मुक्ति का रहस्य" में भाषा को सरल, स्वाभाविक, बोधगम्य तथा प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। इन्होंने पात्रों से मिश्रित भाषा का प्रयोग करवाया है। नाटक में तत्सम व तद्भव शब्द के साथ सामान्य रूप से व्यवहार में लाये जानेवाले उर्दू तथा देशज शब्दों का भी व्यवहार हुआ है। उर्दू के शब्दों में जैसे :- अदालत, मुमकिन, तनख्वाह, बदनाम, अखबार, ताल्लुक, यकीन, रंज, तकदीर, जब्त, बरदाश्त[1] गरीब, कैदी, कयामत, बेखौफ, शक, नाजुक, रहम[2]।
देशज शब्दों में गड़बड़, डुग्गी, रिमझिम, लीद, लाठी, चपत, माला, झूठी, इक्का, तांगा आदि व्यवहृत हुए हैं।

नाटककार ने कृतियों की समस्याओं को जन-जीवन की न रखके आधुनिक शिक्षित मध्यम वर्ग की बनायी है जिसके अनुसार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी नाटककार ने करवाया जो कि स्वाभाविक लगता है।

उपेन्द्र नाथ अश्क ने "स्वर्ग की झलक" तथा "अंजो दीदी" में भी आधुनिक शिक्षित परिवारों की समस्याओं को विषय बनाया है। इन्होंने देशकाल, पात्र, परिस्थिति को समझते हुए भाषा में शब्दों का चुनाव किया है। इनके पात्र तत्सम, तद्भव शब्द युक्त भाषा को अपनाते हैं, जिसमें शिक्षित व्यक्तियों की भांति उर्दू, अंग्रेजी तथा देशी शब्दों को भी स्थान मिला है। नित्य प्रति व्यवहार में लानेवाले शब्दों को मुख्यत: रखा है।
नाटककार ने अपनी आंचलिक छाप भी नाटकों में पंजाबी शब्दों का प्रयोग कर छोड़ी है। अंजो दीदी में एक पंजाबी पात्र से पंजाबी शब्दों का प्रयोग करवाया है।

> बादशाहो, अगर सारी भी हजूरात इत्थे रहिंदी तां अस
> भी कभी आपको तंग करने न आउंदे।
>
> (अंजो० ६५)

गोविन्द वल्लभ पन्त ने "अंगूर की बेटी" में आधुनिक समय की समस्या का चयन किया है जिसमें नाटक को लोकप्रिय बनाने तथा पात्रानुकूल प्रदर्शित करने के लिए

१- मुक्ति का रहस्य
२- सिन्दूर की होली

व्यावहारिक भाषा को महत्व दिया है । इनके नाटक के शिक्षित पात्र तत्सम , तद्भव शब्दों के साथ-साथ अवसरानुकूल अंग्रेज़ी ,उर्दू तथा देशज शब्दों को अपनाते चलते हैं । साधु प्रवृत्ति वाले भक्त पात्रों से तत्सम तद्भव का अधिक प्रयोग करवाया है ।

पुलिस के सिपाहियों तथा न्यायालय के जज द्वारा नाटककार ने पात्रानुकूल भाषा को बुलवाया है, उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग न के बराबर हुआ है । उर्दू-फ़ारसी तथा तद्भव शब्दों को उनकी भाषा के अनुरूप प्रयुक्त किया है । जैसे

> जज : मैं श्री माधव की गिरफ़्तारी और तलाशी का
> हुक्म देता हूँ । (कागज़ पर हुक्म लिखकर दस्तख़त
> करता है ।) फौजदार ! तुम रिहा हुए ।
>
> (अंगूर० ६४)

मोहन राकेश ने अपने दो नाटकों से बिलकुल भिन्न शैली की समस्या प्रधान नाटक " आधे-अधूरे " में रची है । नाटक के पात्र आधुनिक विचारोंवाले तथा शिक्षित वर्ग के हैं जो शिक्षित व्यक्तियों के समान तत्सम, तद्भव शब्द युक्त भाषा को अपनाते हैं । साथ ही व्यावहारिक भाषा में प्रयुक्त होनेवाले अंग्रेज़ी उर्दू-फ़ारसी तथा देशज शब्दों को भी महत्व देते हैं । नाटककार ने भाषा को क्लिष्टता से बचाने तथा व्यावहारिक बनाने के साथ-साथ उसमें स्वाभाविकता लाने का पूरा प्रयत्न किया है । इस नाटक की भाषा पर नाटककार की अपनी भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है । पात्रों की मनोदशाओं का सफल चित्रण करने के लिए कहीं तत्सम शब्दावली कहीं उर्दू की नफ़ासत और कहीं अंग्रेज़ी का प्रयोग हुआ है । मानसिक असंतोष में प्रयुक्त भाषा का उदाहरण प्रस्तुत है -

> + + + घर में मिन्नत- खुशामद से लोगों को
> घर घर बुलाऊँ और वे आने पर उनका मज़ाक़ उड़ाये
> उनके कार्टून बनाये ------ ऐसी चीज़ें अब मुझे बिलकुल
> बरदाश्त नहीं है ।
>
> (आधे० ५६)

'होटल' में नाटककार ने नाटक की समस्या आधुनिक यांत्रिक जीवन से ली है। जिसके लिए व्यावहारिक तथा सरल भाषा को महत्व दिया है जिसमें तत्सम, तद्भव शब्दों को प्रधानता दी है। उसके साथ रोजमर्रा वाले अंग्रेजी, उर्दू तथा देशी शब्दों को रखा है। नाटक में सभी पात्रों ने एक सा ही शब्द प्रयोग किया है। परिस्थितिवश कहीं-कहीं शब्दों के चयन में भिन्नता आ गयी है। हिन्दू पात्र द्वारा मुसलमान व्यक्ति की नकल बनाते हुए उर्दू के शब्दों को बुलवाया है -

(नकल करते हुए)
------ मियां किशोर, यह छड़ी मेरे उस्ताद के उस्ताद
मम्मी साहब की है, मम्मी साहब ने इसी से मेरे उस्ताद
अली अकबर साहब को तैयार किया, फिर मेरे उस्ताद
अली अकबर साहब ने इससे मुझे तैयार किया और
मियां किशोर, अब इसी से मैं तुझे तैयार करूंगा कि तू भी
आगे चलकर मेरे उस्ताद की तरह और मेरी तरह इस
छड़ी के मिज़ाज को रौशन करेगा ---- अब न रहे उस्ताद,
न रहा छड़ी का ज़माना, + + +

(होटल १६)

एक दृश्य में डुग्गीवाले के कथन को नाटककार ने यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। जिसमें तद्भव तथा विदेशी शब्दों की प्रधानता है -

डुगडुगी की आवाज़ : नगर के नागरिकों, नगर के
नागरिकों, आपको होशियार किया जाता है कि
जान-माल का ख़तरा है। जो जहाँ खड़ा है वहीं खड़ा
हो जाये, खड़ा हो तो बैठ जाये, बैठा हो तो लेट
जाये। चारों तरफ से ख़तरा आ सकता है। उसकी
कोई भी शकल हो सकती है। सामान की कमी के कारण
हर चीज़ लाइन लगाकर, राशनकार्ड दिखाकर खरीदें --
जान-माल का ख़तरा है।

(होटल ५६)

" सिलपट्टा" नाटक की भाषा को नाटककार ने संवेदनाओं से जोड़ा है और उसको व्यावहारिक रूप दिया है। शिक्षित वर्ग के द्वारा बोले जानेवाली भाषा को अपनाया है। जिसमें अंग्रेजी के सरल शब्दों तथा उर्दू के भी नित्य प्रयोग में आनेवाले शब्दों का चुनाव किया है। नाटककार ने कृति को पठनीय साहित्य से दूर न करने के लिए शब्दों का सरल तथा स्वाभाविक प्रयोग किया है। तद्भव शब्दों की अपेक्षाकृत अल्पता है।

" युगे युगे क्रान्ति" में विष्णु प्रभाकर ने तीन पीढ़ी के पात्रों की रचना की है। जिनकी भाषा को भी उनके युग के अनुरूप प्रदर्शित किया है। नाटककार ने सब पीढ़ी के पात्रों से व्यावहारिक भाषा को ही बुलवाया है, जिसमें तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग करवाया है। पुरानी पीढ़ी के पात्र उर्दू के शब्दों का प्रयोग करते हैं परन्तु अंग्रेजी के शब्दों को महत्व नहीं देते क्योंकि वे इतने शिक्षित नहीं हैं। मध्यम पीढ़ी के पात्र कुछ अंग्रेजी शब्दों को बोलते हैं। आधुनिक युग के पात्र सब से अधिक अंग्रेजी शब्दों को व्यवहार में लाते हैं, क्योंकि उनको नाटककार ने पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भी प्रदर्शित किया है। परिस्थितिनुसार कुछ संस्कृत के शब्दों को भी स्थान दिया है। विवाह के दृश्य में कुछ संस्कृत के शब्द बोले गये हैं। इस प्रकार का शब्द प्रयोग नाटककार ने प्रत्येक पीढ़ी के पात्रों में भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए किया है।

लक्ष्मी नारायण लाल ने शिक्षित वर्ग के पात्रों द्वारा सरल भाषा को महत्व दिलाया है। नाटककार ने अंग्रेजी तथा उर्दू के शब्दों को भाषा में अधिक स्थान दिया है। विदेशी शब्दों में ऐसे शब्दों का अधिकार रहा है, जिनको प्रत्येक वर्ग का पात्र समझ सकता है। विदेशी शब्दों में अंग्रेजी के वाइफ, डांस, टेम्प्रेचर, फर्नीचर, कैम्पट, कायरिंग, आर्टिस्ट, गार्ड, ब्यूटीफुल, कार्ट, पेंटिंग टाइम, इन्वीटेशन आदि नित्य प्रयोग में आनेवाले शब्द आये हैं। उर्दू में मजनू, ताज्जुब, रोशनी, तामझाम, तारीफ, अखबार, इत्तिफाक, शरीफ, लाजवाब, बीबू, कामयाब, बेहद, बदतमीजी जैसे शब्दों को स्थान मिला है। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ स्थल-स्थल पर देशज शब्द भी व्यवहृत हुए हैं। नाटककार ने नाटक की भाषा

को सुबोध और जन-सामान्य की समझ के योग्य बनाने के लिए व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, क्योंकि भाषा में साहित्यिकता लाने पर अभिनय में दुरुहता कृत्रिमता आ जाती है और दर्शक नाटक का आनन्द नहीं उठा सकता है।

सुरेन्द्र वर्मा की कृतियों " सेतुबंध " तथा " नायक खलनायक विदूषक " में तत्सम शब्दों का आधिक्य है। नाटककार ने ऐतिहासिक कथावस्तु तथा सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप तत्सम शब्द को प्रधानता दी है। उर्दू के गिने-चुने शब्दों का जिसमें बेहद नजरे, पैंतरा, साबित, कोर जैसे शब्द आये हैं। तद्भव शब्दों में काम, होंठो, कानों, घर, हाथ, ब्याह, सीख, सच, सुई, सांसों, खेत, रात, पावों, नित्य व्यवहार में आनेवाले शब्दों को रखा है। देशज शब्द का भी चयन किया है जिसमें धरधराते, धागों, चौकी, रहिया, लाई, टोकरी, भाला, जूड़ा, चौपट जैसे शब्द व्यवहृत हुए हैं।

नाटक में तत्सम शब्दों का बाहुल्य होने के कारण नाटक में साहित्यिकता आ गयी है जो अभिनय की दृष्टि से अस्वाभाविक लगती है। लगातार क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से नाटक में नीरसता भी आ गई है।

मणि मधुकर में " रस गंधर्व " में पात्रानुसार तथा परिस्थितिनुसार शब्दों का चुनाव किया है। इनके पात्र व्यावहारिक तथा जन साधारण की भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसमें सभी प्रकार के शब्दों का मिला-जुला क्रम है। लेखक पात्र को साहित्य का ज्ञाता दिखाते हुए नाटककार ने तत्सम शब्दों को उसके द्वारा बुलवाया है।

> - लेखक : संपूर्ण राज्य में वसन्तोत्सव की तैयारियां हो रही हैं। चारों ओर कितना उत्साह, कितना आनन्द है। वन-उपवनों में नाना प्रकार के पुष्प खिले हैं। शीतल, सुवासित पवन ने स्त्री-पुरुषों को उसी भाँति उन्मत बना दिया जैसे कामाभिषव ने तरु-लताओं के सौन्दर्य को ! किंतु प्रकृति की इस मनमोहिनी लीला में मेरा चित्त व्याकुल है। चिन्ता की मन्द-मन्द ज्वाला में झुलस रहा है।
>
> (रस० २१)

जादूगर की भाषा तथा रंगियों की भाषा को नाटककार ने सामान्य

पात्रों की भाषा से भिन्न रखा है । वहीं नाटककार ने उर्दू-फारसी, तद्भव संस्कृत, देशज, तत्सम शब्द का मिला-जुला प्रयोग किया है ।

जादूगर की भाषा में नाटककार की शब्द कल्पना देखिए -

- ज: (जादूगर) इन्द्रपुरी का खेल, काली बंगाल का जादू, कर दे सब के मन को काबू । ये काली कलकत्ते वाली, तेरा वचन न जाये खाली । ओ साहिबान, कद्रदानों, बजाइये एक बार जो ताली । ऐसा लगे कि ताली की आवाज़ आसमान से फूटी है । देखिए, देखिए, मेरे हाथ में वह चमत्कारी बूटी है, जागी अन-धन-गंध से भरी हुई संजीवनी बूटी है---।

(पृ०२०)

प्रार्थना में नाटककार ने संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग करवाया है जो कि अस्वाभाविक नहीं लगा है । अंग्रेज़ी के सरल शब्दों को भी यथास्थान अपनाया गया है ।

नाटककार ने नाटक को लोकप्रिय तथा अभिनय के योग्य बनाने के लिए भाषा को क्लिष्ट शब्दों से बचाया है तथा जनसामान्य की समझ के योग्य बनाया है ।

अशिष्ट शब्द

नाटकों में अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नाटककारों ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किया है । भावों की अभिव्यक्ति में सजीवता लाने के लिये भी इनको स्थान मिला है ।

क्रोध में निन्दा करते हुए तथा झुंझलाहट में अशिष्ट शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति की गई है । उदाहरण -

- भी०ले० - ऐ चाण्डाल पापी । (भीष्म० ३२)

- मैं नीच हूँ, पतित हूँ, पैरा द्रोहिणी हूँ + . + . +
  (उमय १६)

अशिष्ट शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति की शैली हिन्दी के प्राचीन नाटकों में अधिक है । अशिष्ट शब्दों का यह प्रयोग नाटककारों के संस्कारों तथा शैक्षिक स्तर अधिक उच्च न होने के कारण भी हुआ है । इसकी तुलना में आधुनिक नाटकों में इसकी दिन प्रतिदिन अल्पता होती जा रही है, क्योंकि नाटककारों के शैक्षिक स्तर में भी परिवर्तन आ गया है तथा वे औपचारिकतावश भी इनको अधिक प्रयोग में लाने के पक्ष में नहीं है ।

नाटकों में शिक्षित तथा अशिक्षित वर्ग के पात्रों के अनुसार भी अशिष्ट शब्द प्रयुक्त हुए हैं । शिक्षित वर्ग के पात्रों से, सभ्य प्रकृति के पात्र होने के कारण अशिष्ट शब्दों को कम कहलवाया है, जो अशिष्ट शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनमें अश्लीलत्व न आने की कोशिश की गई है । उदाहरण -

- (उबलता है) गधे, गंवार, चोर और बदतमीज़ !
  (कैदी० ३३)
- + + जितने नाकुछ आदमी तुम हो + + +
  (आधे० २०)
- जाने दीजिए, कुत्ता है । (मुक्ति०१११)
- + + + खूँख्वार हत्यारे ! क्या बकता है ।
  (अमृत० ६६)
- बड़ा पाजी है । (तिल० १५)
- कहाँ वह कुतिया रहती है ? (कहरी ४६)
- नीचकमीन ! (माया० १६)
- तुम्हें क्या बदमाश नहीं लगता ? (कोटन० ४०)
- मार डाला बदमाशों ने पसलियाँ टूट गयी । (सिंदूर० ६५)
- चुप रह अभागिनी ! मैं तेरे कोई भी शब्द नहीं सुनना चाहता ।
  (अंगूर० ४६)

- तेरे हिसाब से यहाँ सब कुतिये बसती हैं । (कलरी० ५६)

- मुफ्तखोर कहीं का । (कोणार्क ३१)

- ऐ तेरी यह हिम्मत । हरामी पिल्ले । (कुली० २६)

- यह औरत तो बड़ी डाकिन निकली । (कसरी २६)

अशिष्ट शब्दों के व्यवहार में, भारतेन्दु के नाटकों में अशिष्ट शब्द अवहेलना लिए हुए भी प्रयुक्त हुए हैं । इन शब्दों के स्थान पर अन्य शब्द भी प्रयुक्त हो सकते थे । प्रताप नारायण मिश्र ने इनको कुछ कम स्थान दिया है । इन दोनों की तुलना में प्रसाद के नाटकों में इनका आधिक्य है । इनके नाटकों में निम्न वर्ग के बजाय उच्च वर्ग के पात्र अशिष्ट शब्द अधिक प्रयोग में लाते हैं । इन अशिष्ट शब्दों के आधिक्य का कारण क्रोध तथा घृणा पूर्ण स्थलों की अधिकता है ।

बी०पी०श्रीवास्तव के "उलट फेर" नाटक के सभी पात्र पीड़ित एवं व्याकुल हैं, जो झुंझलाहट में अशिष्ट शब्द कहकर ही संतोष प्राप्त करते हैं । दूसरा निम्न, ग्राम्य व अशिक्षित पात्रों की अधिकता के कारण इन शब्दों की भरमार है ।

उदयशंकर भट्ट की विद्रोहिणी अम्बा व बद्रीनाथ भट्ट की दुर्गावती , गोविन्द वल्लभ भट्ट की "अंगूर की बेटी" रचनाओं में इनकी अल्पता है । अत्यधिक क्रोध व घृणा में अशिष्ट शब्द बोले गये हैं । हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक व रामवृक्ष बेनीपुरी का नाटक "अम्बपाली" भी अशिष्ट शब्दों से अछूता नहीं है । क्रोध, घृणा व शोक के भावों में ये शब्द मुख्यत: आये हैं ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के पात्र शिक्षित वर्ग के हैं, अत: नाटककार ने उनके वर्ग को देखते हुए अशिष्ट शब्दों को कम महत्व दिया है । इनकी तुलना में अश्क ने पात्रों की उग्र प्रवृत्ति को देखते हुए अशिष्ट शब्द अधिक जुटाये हैं। क्रोध, घृणा व निन्दा के प्रसंगों में इनको रखा है ।

जगदीश चन्द्र माथुर ने अशिष्ट शब्दों को बहुत कम अपनाया है । मोहन राकेश भी इन शब्दों के द्वारा भावों को प्रकट करने के पक्ष में कम रहे हैं । "झाँसी की रानी" में वृंदावन लाल वर्मा ने लगभग हर वर्ग के पात्रों द्वारा अशिष्ट शब्द बुलवाये हैं ।

आधुनिक नाटकों में भी क्रोध व घृणा के आधिक्य को अशिष्ट शब्दों द्वारा व्यक्त किया है । सत्यव्रत सिन्हा के "अमृत पुत्र" नाटक में शिक्षित वर्ग के पात्रों द्वारा भी भावों में स्वाभाविकता लाने के लिए इनका प्रयोग करवाया है ।

"युगे युगे क्रान्ति" में विष्णु प्रभाकर ने दकियानूसी विचारों वाले पात्रों द्वारा तनावपूर्ण स्थितियों में अपशब्दों को बुलवाया है । क्रोध की अतिशयता में अशिष्ट शब्दों का व्यवहार करवाया है ।

कुछ नाटकों में नाटककारों ने अशिष्ट शब्दों को बहुत कम महत्व दिया है । लक्ष्मी नारायण लाल के "मादा कैक्टस" में ३,४ स्थल पर ये शब्द आये हैं । विपिन कुमार के "लोटन" में एक स्थल पर "कमाई" शब्द आया है । सुरेन्द्र वर्मा ने तो इन शब्दों को कहीं भी नहीं अपनाया है ।

इन आधुनिक नाटकों की लीक से हटकर मणिमधुकर ने अपने नाटक "रस गंधर्व" में अशिष्ट शब्दों की भरमार की है । स्वांग नाटक की कोटि का होने के कारण भी इनके नाटक में ये विशिष्टता आ गयी है । अशिष्ट शब्दों में अश्लीलत्व भी भरा है । जो आधुनिक नाटकों के विपरीत प्रवृत्ति को प्रदर्शित कर रहा है ।

अभ्यास शब्द

नाटककारों ने किसी-किसी पात्र द्वारा ऐसे शब्द का अधिकांश प्रयोग करवाया है , जो उसकी जुबान पर चढ़ गया है । ऐसे शब्द, अभ्यास

शब्द के रूप में प्रयुक्त हुए हैं । नाटककारों के सम्बोधन शब्दों के प्रयोग में भी शैलीगत भिन्नता दृष्टिगोचर हो रही है । कुछ ही नाटककारों ने इन शब्दों का चयन किया है ।

" अंधेर नगरी" कृति में भारतेन्दु जी ने महन्त पात्र द्वारा " बच्चा " शब्द का प्रयोग करवाया है, जो साधुओं की सम्बोधन प्रवृत्ति को प्रकट कर रहा है ।

- बच्चा नारायण दास । (अंधेर० ५)
- बच्चा गोबरधन दास । (अंधेर ० ६)
- बच्चा बहुत लोभ मत करना । (अंधेर० ६)
- देख बच्चा, पीछे पछताएगा । (अंधेर० १३)

" श्री चन्द्रावली" में स्त्री पात्रों द्वारा " सखी" शब्द ब्रजवासियों की भाषा शैली के दर्शन कराने के लिए रखा है । भारतेन्दु ने साथ ही पात्रों के अपनत्व भाव को प्रदर्शित करने के लिए भी यह प्रयोग हुआ है, परन्तु निरंतर " सखी" शब्द का प्रयोग कृत्रिमता भी प्रकट कर रहा है ।

- पर सखी । अब कोई रोग हो तब न ? (श्रीचन्द्रा०११)
- वाह सखी । क्यों न हो , (श्रीचन्द्रा० १२)
- सखी । तू धन्य है, (श्रीचन्द्रा० १५)

" अम्बपाली" में बेनीपुरी जी ने पात्रों की परस्पर घनिष्ठता को व्यक्त करने के लिए " रे" शब्द का अधिकतर व्यवहार कराया है ।" रे" शब्द वाक्य के प्रारंभ तथा अन्त दोनों ही स्थितियों में प्रयुक्त हुआ । वाक्य के अन्त में " रे" का प्रयोग तीव्रता प्रकट कर रहा है तथा आरंभ में प्रयोग अल्प तीव्रता को व्यक्त कर रहा है ।

- तू चुप नहीं होती रे (अम्ब० १०)
- क्यों नहीं जागती रे । (अम्ब० १५)

- हाँ है, इसे ही पीकर देवता अमर हुए । (अमृ० १८)

"दशरथ नन्दन" में जगदीश चन्द्र माथुर ने संस्कृत नाटकों की शैली को अपनाया है । पात्रों द्वारा संस्कृत नाटकों के प्रयुक्त संबोधन शब्दों का निरंतर पात्रों से व्यवहार करवाया है । जैसे -

- राघव ! अब मैं अन्तिम आहुति देता हूँ । (दश०११)
- आज्ञा दीजिए राघव ! (दश० ११)
- आर्यपुत्र आपने मुझे ही बुलाया ? (दश० १५)
- हाँ आर्यपुत्र ! (दश० १६)

"लहरों के राजहंस" में सम्मानपूर्वक "देवि" शब्द का प्रयोग स्त्री पात्रों के लिए करवाया गया है । मोहन राकेश ने यह शैली संस्कृत नाटकों से ली है ।

- हाँ देवि ! (लहरों० ३७)
- रहस्य मुझे जानती हैं, देवि ! (लहरों० ३७)
- हुआ कुछ नहीं देवि ! (लहरों० ३८)

"नायक खलनायक विदूषक" में सुरेन्द्र वर्मा ने छोटे पद पर आसीन पात्रों द्वारा उच्च पदवाले पात्रों के लिए "श्रीमान" शब्द को अपनाया है । यह प्रयोग नाटककार ने छोटे पद पर आसीन पात्रों की प्रवृत्ति को दृष्टि में लाने के लिए किया है ।

- नट : प्रस्तुत हूँ श्रीमान ! (पृ० ४६)
- प्रणाम श्रीमान ! (पृ० ४६)
- कम्पनी का पत्र, श्रीमान ! (पृ० ४७)

"उलट फेर" में किशन जी नाम का आस्थावादी पात्र अपनी बात पर विश्वास करवाने के लिए "कसम कुरान की" शब्द का प्रयोग करता है । इन शब्दों

- अजी जनाब वकील साहब । (उल्ट० १०)

- कहाँ जनाब । (उल्ट० १२)

- अजी जनाब, यह क्या कहते हैं आप ? (उल्ट० १२)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगदीश चन्द्र माथुर, सुरेन्द्र वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, बी० पी० श्रीवास्तव, उपेन्द्र नाथ अश्क, मुद्राराक्षस, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मी नारायण लाल तथा मोहन राकेश ने भी अपने- अपने नाटकों में अभ्यागत शब्दों को विशेष उद्देश्य से प्रयुक्त किया है ।

पुनरुक्त शब्द

पुनरुक्त शब्द का अभिप्राय उन शब्दों से है जिनकी आवृत्ति हुई हो । अर्थ तथा रचना की दृष्टि से ये बहुत महत्वपूर्ण हैं । शब्दों की पुनरुक्ति से शब्दों का अभिप्राय बदल जाता है । नाटकों में पुनरुक्त शब्दों की विविधता मिलती है, जो नाटककारों की शैली के दर्शन करा रही है ।

(१) पुनरुक्त संज्ञा शब्द :- संज्ञा शब्दों की पुनरुक्ति से कहीं- कहीं शब्दों का अर्थ 'अनेक' से है जैसे - ग्राम-ग्राम का अर्थ 'अनेक ग्राम' से लिया गया है । इस कोटि के पुनरुक्त संज्ञा शब्द नाटकों में काफी व्यवहृत हुए हैं । उदाहरण-

(अ) - टुकड़े- टुकड़े हो गया । (बन्द० २१)

- हमें अभी ग्राम-ग्राम जाकर एक बड़ी सेना एकत्र करनी है । (रक्षा० ६२)

- यों ही नित्य ही घर-घर डोलता फिरूँ । (श्रीचन्द्रा० ५८)

- अब मुझे दर-दर भटकाकर मेरा और अपमान न कीजिए । (विक० ७६)

- इन सात दिन और सात रातों ने घूंट-घूंट करके मुझमें से जीवन की सारी आकांक्षा निचोड़ ली है। (चित्र० ३७)
- पर घूंट-घूंट करके पीना कठिन है। (रजा० ८५)
- मैं रातों-रात अलबेला मस्त बनाता हूँ। (रा० ३२)
- जो सूली पर रातों रात चढ़ा दिया जाय। (अषाढ़० ७४)

(ख) ऐसा शब्दों के मध्य में कहीं-कहीं अन्य शब्दों का प्रयोग कर उनमें है लिए किया गया है। कहीं-कहीं पुनरुक्ति में एक अभिप्राय लिया गया है, जैसे दोष ही दोष का अर्थ सब दोष से है।

- और तुम्हारी यथार्थ दृष्टि केवल दोष ही दोष देखती है? (अषाढ़० २४)
- रात की रात में सब कुछ करना है। (कोणार्क ५६)
- इन तीनों की ठोकरों से मुक्ति ही मुक्ति है। (स्कंद० ६१)
- अब तो आनन्द ही आनन्द है। (अषाढ़० १२८)
- आराम ही आराम है। (कान्०रा० ११३)
- तुम आ गयी तो तो आराम ही आराम है (अंगूर० ८६)
- तभी बंगले भर में चारों ओर सैनिक ही सैनिक हैं। (मादा०७५)
- तुम्हें तो प्रेम ही प्रेम सूझता है। (चन्द्र० १८७)

(२) (क) पुनरुक्त सर्वनाम शब्द :- सर्वनाम शब्दों की पुनरुक्ति से भी अर्थ-परिवर्तन किया गया है। कई बार सर्वनाम की आवृत्ति में अनेक अर्थ लिया है - यथा :-

- जो-जो बातें तुमने कहीं हैं। (आषा० १०८)
- जो-जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते हैं (चीनच्छ्र०२१)

- अब उसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर पिघल न जाना । (सुहि० ६०)
- रात को भयानक-भयानक स्वप्न देखता था । (शुतु० ११२)
- आप नहीं जानते, जोक कैसी-कैसी बातें - (लौटन ४५)

(घ) संख्या वाचक विशेषण में पुनरुक्ति एक ही समय की संख्या को बताने के लिए की गई है । जैसे -

- एक मूर्ख भारतीय श्वान चार-चार पूर्ण सिंहों को चुनौती देता है । (शपथ १६)
- हर गांव के दस-दस नौजवान मेरे साथ रहेंगे । (प०रा० ४७)
- एक-एक शिल्पी पांच-पांच सैनिक के तुल्य था । (कोणार्क ६१)
- चार-चार छ:छ: लोग एक-एक वृक्ष के नीचे बैठ गये । (उर्वशी०७३)
- मैं पहाड़ों के पीछे दिन में दस-दस योजन घूमा हूं । (आषाढ़ ७०)
- वे आगामी वर्षों में पांच-पांच , छ:-छ: करके सैनिक यहां भेजते रहे । (कथ० ६१)
- देखा है कभी सात-सात गोद के लालों को भूख से तड़प कर मरते ? (चन्द्र० १४३)
- दो-दो, तीन-तीन मटकन में कुआं से पानी भर के लाउत (कर्मा०३०)
- सासी पीसी, उड़ाये दो-दो (सैरी० ७५)
- जीने की इच्छा को कितने- कितने प्रश्नों ने एक साथ घेर लिया है। (उर्वशी ६८)
- कई बार संख्या वाचक विशेषण का अर्थ प्रत्येक से है ।
  - सब को एक-एक लड्डू बनवा दो । (कर्मा ७६)
  - सब के लिए बना रही हूं एक-एक "प्याली" । (आषा० ७२)
  - जरा उसके एक-एक अंग को देखो (अम्ब० २०)
  - उसमें एक-एक क्षण का महत्व है (आषाढ़० ७५)
  - मैं उसके एक-एक शब्द से सहमत हूं (स्वर्ग ६२)

- अब ठीक-ठीक बताइये । (डोटन ४७)
- मैं अभी इसे ठीक-ठीक नहीं पहचान सकी । (कुणा० ११)
- कारण ठीक-ठीक नहीं बता सकता (अंगूर० २६)
- आर्य चाणक्य ! आपकी बातें ठीक-ठीक नहीं समझ में आती । (चन्द्र० ७६)
- साफ़-साफ़ बताओ सुमेनसिंह । (बकरी०१६)
- जी साफ़-साफ़ कहो । (अमृत० १२०)
- जनार्दन मैं साफ़-साफ़ तुमसे कहना चाहता हूँ (मा०ल०प्र०१५)
- मगर आपने उसे साफ़-साफ़ कह दिया । (उद्ध० ८)

(ग) कहीं-कहीं पुनरुक्ति से '[illegible]' अर्थ व्यक्त किया है -

- जिस प्रकार कृपण अपनी सम्पत्ति को बार-बार छूकर देखता है । (रस०२२)
- बार-बार मेरे लौट आने की आशाएं आने लगी हैं । (चन्द्र० १२५)
- मुझे बार-बार अनुभव होता है । (आषा० १००)
- इस प्रवाह की उमड़ती नदी पर बार-बार बनावों के पुल बने । (प०रा०११)
- + + + घूम-घूमकर उनकी नारे फिर-फिर उड़ बैठे । (ना०स०वि० ४७)
- मन को तरह-तरह से समझा लिया था । (सिंदु० ३५)
- पल-पल उसने पूछा। (रस० ६६)

(घ) कुछ ऐसे क्रिया विशेषण व्यवहृत हुए हैं जिनमें निरर्थक शब्दों की आवृत्ति अनिवार्य है । पुनरुक्ति से ही भाव की अभिव्यक्ति हो रही है जैसे -

- हाँ बजन टिमिर टिमिर बरे । (उद्ध० १०५)
- टुहुर-टुहुर काठ धुना करत है । (उद्ध० २१)

- इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से किलकिला कर दया की भीख मांगू । (चन्द्र० ७२)
- मेंढक की चार पुड़ियां शायद कुछ टर्र-टर्र करें ।(भारत०भू०२४)
- छम-छम करती वो बहुर आ गई । (वि०भा० ७२)
- कड़-कड़, धड़-धड़ करते हुए नाचती कूदती आनेवाले करते ।(रंगा०७८)
- नीचे यमुना कलकल कर रही । (अम्बा० ३८)
- छाती में धक-धक करते दम घुट रहा है । (वि०भा० ३३)
- ताप के मारे थर-थर कांप रही थी । (मा०भा०वि० ४६)
- कितना चमक-चमक करती है यह । (कासी १२)
- इतनी देर से हब्बड़-हब्बड़ खाये चले जा रहे थे । (रंग० ४६)
- मच्छर भाँय-भाँय करते हैं । (वि०भा० ८२)

(६) (क) विस्मयादि बोधक पुनरुक्त शब्द : विस्मयादिबोधक शब्दों की पुनरुक्ति से भावों की अभिव्यक्ति में अंतर प्रकट किया है । पुनरुक्ति से भाव को अधिक प्रबल बनाया गया है जैसे छी: शब्द से घृणा का आवेग अधिक नहीं व्यक्त हो रहा है जितना कि छि: छि: शब्द से हो रहा है । विभिन्न भावों में पुनरुक्ति के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- छी ---- क्या कह रही थी ? (सिन्दूर० ५०)
- छि: छि: , दूर ! (मावा० ८)
- छि: छि: बोलोगे तो भीख मांग खाओगे (भारतभा०२४)
- छी, छी, यह क्या करती है बहू ? (अम्बा० १७)

(ख) शोक सूचक शब्दों में "हाहा" शब्द की अपेक्षा "हाय-हाय" शब्द द्वारा भाव की अधिकता व्यक्त हो रही है :

- वाह ! हा हा ! शाबाश ! शाबाश ! (भारतभा० २७)

(ङ) विस्मय में शिव या राम शब्द का एक बार प्रयोग करने से भाव की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, अतः उसकी आवृत्ति की गई है -

- शिव-शिव-शिव ! वह हिंसा की भावना ---- । (आषा० ५६)
- शिव ! शिव ! मैं यह क्या देख रहा हूँ । (स्क० ८)
- छि: छि: हुजूर ! राम राम राम । (मादा० ८)
- राम-राम ! मैं तो बोलत-बोलत हार गई (श्रीचन्द्रा० २१)
- राम-राम ! तुम कहाँ पड़े हो ? (अंगूर० ११)
- अरे ! अरे कैसा घोर अनर्थ होने लगा है । (कुरु० ४०)

(च) भावातिरेकता को भी विस्मयबोधक शब्दों की पुनरुक्ति से प्रकट किया है -

- अरे अरे ---- (वत्स० १०७)
- ओह ! ओह ! ओह ! (आषा० ५५)

(छ) अनुमोदन शब्दों में बल लाने के लिए उनकी पुनरुक्ति की है -

- हाँ हाँ, आप कहाँ जा रहे हैं ? (मादा० ४१)
- हाँ हाँ सच है (मालवकु० ६८)
- हाँ-हाँ-हाँ यही नाम है न ? (आषा० ५८)
- हाँ, हाँ, यही । (होटल ४४)
- हाँ, हाँ । यही ---- (कोणार्क ६३)
- हा हाँ अवश्य । (अमात० ६४)
- अच्छा अच्छा अच्छा । (मादा० ६)

- कलम फक्कू फक्कू लिखिए । (उलट० २३)

- झाँक झाँक तक मेरी सेना आयी जाती है । (कां०सी० ६१)

कहीं-कहीं पुनरुक्त शब्द पद्यों में भी आ गये हैं -

- पानी झुक-झुक झुकाती जा पाती है । (अनूप० २५)

पुनरुक्त शब्दों को अपने नाटकों में सभी नाटककारों ने स्थान दिया है, परन्तु शब्दों की कोटियों तथा उनके अनुपात में भिन्नता मिलती है ।

भारतेन्दु जी के नाटकों में विस्मयबोधक तथा संज्ञा पुनरुक्त शब्दों की अधिकता है, इसके अतिरिक्त सर्वनाम, क्रियाविशेषण, पुनरुक्त भी प्रयुक्त हुए हैं । क्रिया की पुनरुक्ति कम हुई है । भारतेन्दु की तुलना में प्रताप नारायण मिश्र की " भारत दुर्दशा" कृति में पुनरुक्त शब्दों की अल्पता है । विस्मयादिबोधक पुनरुक्त शब्द अत्यल्प हैं । निरर्थक पुनरुक्त शब्द गिने-चुने हैं । प्रताप नारायण मिश्र की अपेक्षा बद्रीनाथ भट्ट की रचना " दुर्गावती" में इन शब्दों को अधिक महत्व मिला है । भट्ट जी ने सभी प्रकार के पुनरुक्तों को यथास्थान अपनाया है । निरर्थक पुनरुक्त शब्द अपेक्षाकृत अल्प हैं ।

प्रसाद के नाटकों में पुनरुक्त शब्द कम-कम मिले हैं । पुनरुक्त शब्दों में संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाविशेषण पुनरुक्त शब्द अधिकांशतः प्रयुक्त हुए हैं, इसकी तुलना में सर्वनाम क्रिया पुनरुक्त शब्द कम हैं । निरर्थक तथा विस्मयादिबोधक शब्दों की अत्यल्पता है ।

जी०पी०श्रीवास्तव ने भी अभिव्यक्ति में पुनरुक्त शब्दों को अधिक चुना है । प्रसाद के नाटकों की तुलना में इनके नाटक " उलट फेर" में विस्मयादिबोधक तथा निरर्थक पुनरुक्त शब्द अधिक हैं । संज्ञा पुनरुक्तों की आधिक्य है, सर्वनाम, विशेषण शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं । इनकी तुलना में क्रिया पुनरुक्त कम है ।

" छिड़ीछिड़ी अम्मा" में उदयशंकर भट्ट ने पुनरुक्त शब्दों को अधिक नहीं अपनाया है । जो शब्द आये हैं उनमें विशेषण पुनरुक्त शब्द अधिक हैं ।

क्रियाविशेषण शब्द विशेषण शब्दों की तुलना में कम है । निरर्थक शब्द कई स्थलों पर आये हैं । क्रिया तथा विस्मयादिबोधक शब्दों की पुनरुक्ति अत्यल्प है । संज्ञा पुनरुक्ति भी कम हुई है ।

" उदयशंकर भट्ट की अपेक्षा रामवृक्ष बेनीपुरी की " अम्बपाली " इन शब्दों ने अधिक महत्वपूर्ण स्थान पाया है । विशेषण तथा विस्मयादिबोधक शब्दों की अधिकता है । क्रिया तथा संज्ञा शब्द भी यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं । निरर्थक शब्द भी भट्ट जी की तुलना में उन्होंने अधिक रखे हैं । हरिकृष्ण प्रेमी भी पुनरुक्त प्रयोग में अधिक उन्मुक्त रहे हैं । उन्होंने सभी प्रकार के पुनरुक्त शब्दों को अपनाया है । संज्ञा विशेषण क्रिया विशेषण पुनरुक्ति की अधिकता है । विस्मयादिबोधक तथा क्रिया व निरर्थक शब्दों की संख्या अल्प है ।

उपेन्द्र नाथ अश्क ने क्रिया विशेषण, विशेषण पुनरुक्त शब्दों की अधिकता रखी है, अन्य कोटि के पुनरुक्त शब्द अपेक्षाकृत अल्प हैं । किन्तु निरर्थक तथा विस्मयादिबोधक क्रिया शब्दों की संख्या सब से कम है ।

मोहन राकेश के नाटकों में विशेषण तथा क्रिया विशेषण पुनरुक्त शब्दों की अधिकता है । उनके आधे-अधूरे" नाटक में अन्य नाटकों की तुलना में निरर्थक ,विस्मयादिबोधक शब्द अधिक आये हैं ।

जगदीश चन्द्र माथुर तथा मणि मधुकर के नाटकों में भी इनका आधिक्य है । मणि मधुकर के " रस गंधर्व" में विस्मयबोधक तथा निरर्थक शब्द माथुर जी के नाटकों की तुलना में अधिक हैं । अन्य सभी कोटि के पुनरुक्त शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं । क्रिया पुनरुक्त शब्दों की अल्पता है । सुरेन्द्र वर्मा भी इन शब्दों के अधिक प्रयोग के पक्ष में हैं । उन्होंने संज्ञा विशेषण, क्रिया विशेषण शब्दों को अधिक रखा है । विस्मयबोधक तथा क्रिया पुनरुक्तों की संख्या कम है ।

गोविन्द वल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर ने पुनरुक्त शब्दों को अपनाया है परन्तु

इनका आधिक्य नहीं है । अधिकांशत: संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण पुनरुक्त शब्द व्यवहृत हुए हैं । विस्मयबोधक शब्दों को लक्ष्मी नारायण लाल तथा विष्णु प्रभाकर ने अन्यों की तुलना में अधिक रखा है । क्रिया पुनरुक्त शब्द अल्प हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'बकरी' कृति में भी पुनरुक्त शब्द बहुत नहीं रखे गये हैं । विस्मयबोधक पुनरुक्त शब्दों की अधिकता है । संज्ञा तथा विशेषण पुनरुक्त कहीं-कहीं आये हैं ।

इन नाटकों की तुलना में वृंदावनलाल वर्मा की कृति 'झाँसी की रानी' में पुनरुक्त शब्द अधिक हैं । विशेषण, संज्ञा शब्द अधिक आये हैं । निरर्थक शब्दों की तुलना में विस्मयबोधक पुनरुक्त का आधिक्य है । '[illegible]' नाटक इन शब्दों की अल्पसंख्या है जो शब्द प्रयुक्त हैं उनमें क्रियाविशेषण शब्द मुख्य है । विस्मयबोधक संज्ञा शब्द कुछ ही आये हैं । सत्यव्रत सिन्हा का नाटक 'अमृत पुत्र' भी इससे अछूता नहीं है फिर भी इनकी अधिकता नहीं है । विस्मयबोधक पुनरुक्त शब्द भी इन्होंने भावाभिव्यक्ति के सहायक रूप में रखे हैं ।

युग्म शब्द

युग्म शब्द वे हैं, जो जोड़े के रूप में आये हैं । नाटककारों ने विभिन्न अभिप्रायों से इनको अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है ।

नाटककारों ने कुछ सार्थक शब्दों को विशेष अर्थ देने के लिए जोड़े रूप में रखा है । इन शब्दों को यदि अलग अलग रखा जाय तो वह अर्थ नहीं व्यक्त हो सकता जो नाटककार करना चाहता है । नाटकों में आये हुए युग्म शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं -

- तुम्हें और तुम्हारे बाल-बच्चों (सारे परिवार) को भी महारानी की ओर से इनाम मिलेगा । (झाँ० १००)

- बड़े साहब बड़ा चिटपिटाये, (भय खाना, स्तब्ध होना) पर उनका जूता उनके सिर । (अंधो० ६६)

(५) कई नाटककारों ने ऐसे भी युग्म शब्दों का प्रयोग किया है, जिसके जोड़े में आने के कारण किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं आ पाई है । सार्थक शब्द ही विशेष अर्थ प्रकट कर रहा है, दूसरा शब्द एक प्रकार से सार्थक शब्द के प्रभाव को कम कर रहा है । उदाहरण -

- कई लोग तो कीर्तन-वीर्तन शुरू कर देते हैं । (अमृत० ८३)
- अब शादी-वादी में क्या । (अमृत० ५६)
- क्या तुम शादी-वादी करना चाहती हो । (अंधो० ५०)
- देख, कुछ भिक्षा उक्षा मिले । (कीर० ५)
- अरे छोड़ो । बापू-वापू क्या । (कथा० १००)
- मादर फादर को मारिये गोली । (जीटन० ७३)
- अंधी दीदी को याद देता हूं कि ऐन-मैन अपनी मूर्ति छोड़ गयी है । (अंधो० १२२)

युग्म शब्दों का प्रयोग लगभग प्रत्येक नाटक में हुआ है । परन्तु उनके प्रयोग के अनुपात में भिन्नता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व प्रताप नारायण मिश्र के नाटकों में इस प्रकार के युग्म शब्दों का व्यवहार हुआ है, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है । इनकी तुलना में प्रसाद के नाटकों में ये शब्द अधिक आये हैं, जिनमें समानार्थक, विपरीतार्थक व प्रतिलोम युग्म शब्द अधिक लाये गये हैं । बद्रीनाथ भट्ट ने समानार्थक तथा प्रतिध्वनित युग्मों को प्रधानता दी है । युग्म शब्दों का बाहुल्य जी०पी० श्रीवास्तव ने भी किया, जिनमें अर्थविस्तार वाले समानार्थक शब्द मुख्य हैं ।

उदय शंकर भट्ट ने विद्रोहिणी अम्बा में प्रधान रूप में प्रतिध्वनित युग्मों को रखा है ।" अम्बपाली" में बेनीपुरी जी ने इसी प्रकार के युग्मों को काफी स्थान दिया है । इसकी तुलना में" अंगूर की बेटी" में गोविन्दवल्लभ पन्त ने इन शब्दों को कम महत्व दिया है, जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनमें समानार्थक शब्दों की अधिकता है।

हरिकृष्ण प्रेमी तथा उपेन्द्र नाथ अश्क की दृष्टि भी युग्म शब्दों की ओर काफी रही है । इनकी रचनाओं में सभी कोटि के ये शब्द व्यवहृत हुए हैं, जिनमें निरर्थक शब्द वाले जोड़ों की काफी अल्पता है ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इन शब्दों के प्रयोग में कम रुचि ली है । मिश्र जी के नाटकों की अपेक्षा जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में इनको अधिक अपनाया गया है । माथुर जी के नाटकों में भी " दशरथ-नन्दन " ," कोणार्क " में " पहला राजा " की तुलना में काफी कम ये शब्द व्यवहृत हुए हैं ।

युग्म शब्दों की भरमार वृंदावन लाल वर्मा की कृति " झांसी की रानी " में है । इसमें समानार्थक युग्मों की प्रधानता है । प्रतिध्वनित तथा निरर्थक शब्दों की अपेक्षाकृत अल्पता है ।

मोहन राकेश के " आधे अधूरे " में उनके अन्य दो नाटकों " आषाढ़ का एक दिन "," लहरों के राजहंस " की अपेक्षा युग्म शब्दों का आधिक्य है । समानार्थक तथा प्रतिलोम शब्द अधिक हैं । निरर्थक युग्मों की " आधे अधूरे " में अधिकता है ।" आषाढ़ का एक दिन " में तो ये न के बराबर हैं ।

" युगे युगे क्रान्ति " में हर प्रकार के युग्मों का विष्णु प्रभाकर ने व्यवहार करवाया है । प्रतिध्वनित तथा निरर्थक युग्म शब्द कम हैं । मोहन राकेश तथा विष्णु प्रभाकर की तुलना में लक्ष्मीकान्त वर्मा की युग्म शब्द प्रयोग में अधिक रुचि रही है । युग्म शब्दों की सभी कोटियाँ इनकी कृति में हैं । कुछ नये निरर्थक शब्दों के जोड़े भी मिले हैं ।

सुरेन्द्र वर्मा तथा लक्ष्मी नारायण लाल ने युग्म शब्दों का अधिक व्यवहार उचित नहीं समझा है । इनके नाटकों में प्रतिध्वनित तथा निरर्थक युग्म शब्दों की अत्यल्पता है । सर्वेश्वर दयाल, मुद्राराक्षस तथा विपिन कुमार अग्रवाल ने इन शब्दों को काफी कम प्रयुक्त किया है । इन नाटककारों के विपरीत मणिमधुकर की कृति " रसगंधर्व " में युग्म शब्दों की भरमार है । सभी प्रकार के युग्म शब्द व्यवहृत हुए हैं ।

सहचरी-शब्द

सहचरी शब्द से अभिप्राय उन शब्दों से है, जो एक-दूसरे के साथ आते हैं । वाक्य विन्यास में सहचरी शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान है । नाटककारों ने इनका प्रयोग-विविध रूपों में किया है ।

व्याकरणिक नियमानुसार सम्बन्धबोधक परसर्ग तथा अव्यय संज्ञा व सर्वनाम के साथ संज्ञा व सर्वनाम के बाद में आते हैं । इन परसर्गों तथा अव्ययों को संज्ञा, सर्वनाम के साथ लगाकर वाक्य में आये अन्य शब्दों के साथ संबंध निर्धारित किया है । उदाहरण -

संज्ञा + परसर्ग

- पत्नी ने आत्महत्या की ----- (माया० ८)
- तुम उस शव को ले जाकर गाड़ो (भुव०५)
- ब्याह से नहीं बोलती रही । (आषे० १०७)
- वीणा, कला और गाथा का मर्म जानते थे । (रस० ३३)
- बसन्त के पूर्व की मीठी-मीठी सलोनी धूप । (कथ०२४)
- उसने अपनी डोरी बाहों में आकाश को बांध लेना चाहा था ।
(सिंदु० ३४)
- हम सभी शिला पर हैं । (स्कंद० ३०)

संज्ञा + अव्यय

- क्या राजमाता के पास हैं ? (सिंदु० १२)
- अपने नये स्वामी के पास यह अंगारों भरा संदेश ले जाओ ।
(कोणार्क ५१)
- उनके आतंक से मेवाड़ के बाहर भी दूर-दूर तक अत्याचारियों के प्राण कांपा करते थे । (रक्षा० ३५)
- नगर से बाहर रहने के कारण कोई न जाए । (उर्वशी०५४)

- साम्राज्य बिना-कर्णधार का पोत होकर डगमगा रहा है। (स्कं०१२१)

- मेरी बिना आज्ञा वह कुछ नहीं कर सकती। (ध्रुव० ५१)

- बिना विभीषण होने की शंका नहीं कर सकती थी।(अम्बा० ८२)

- उसी प्रकार छोटी-छोटी चींटियाँ भी पुल को बिना श्रम पार कर लेती है। (दशा० ३)

- जैसे कि बिना माँ-बाप का पुतला हो। (बापी० १०७)

- वह बिना ब्याह के ही त्याग कर देगी। (ना०अ०वि०७)

अव्यय + सर्वनाम

- विनय विमुख होकर तुम्हारी आराधना किये बिना मैं नहीं रह सकता। (सिन्दूर १०७)

- मैं तो अब बिना उसके जी नहीं सकता। (सिन्दूर१०८)

विशेषण शब्द अधिकांशतः सर्वनाम शब्दों के साथ प्रयुक्त हुए हैं।

सर्वनाम + विशेषण

- मैं बड़ी निर्लज्ज हूँ। (श्रीचन्द्रा० ३०)

- मैं इतनी बड़ी हूँ। (हिमु० १३)

- तुम कायर हो। (अम्बा० ७४)

- तू बहुत भावुक है। (उर्वशी ३८)

- हम ताकतवर हैं। (रक्त० ३४)

- यह उसकी ही खूबसूरत है। (नानका० २०)

पदक्रम के नियम के विपरीत भी नाटककारों ने भावावेश को प्रकट करने के लिए सर्वनाम के पूर्व में विशेषण को रखा है।

क्रियाविशेषण + क्रिया

- कपाट न खोलिये । (कोणार्क ७४)
- अब संकोच न करो । (पहा० ११३)
- ऐसे न बोलो । (अमृत० १८)
- यह प्रश्न अभी मत करो । (चन्द्र० १३०)
- गपड़चौथ मत करो (रक्त० ५१)
- नहीं, पर मैं मत जा । (झांसी० १०८)
- पहेलियाँ मत बुझाओ । (सेतु० ६)
- मुझे किसी ने नहीं बताया । (नागा० ११)
- मैं तुमसे बात नहीं बोलूंगा । (मुक्ति० ५५)
- मैं गलत काम नहीं कर सकता । (लौटन० १८)
- यहाँ एक क्षण नहीं रहना । (कौर० १३)
- + + + तुमको भी यह मुट्ठी बहुत कमजोर नहीं लगती ? (लाभ० ६२)

निषेधात्मक क्रियाविशेषण पर बल लाने के लिए कहीं-कहीं व्याकरण के नियम से हटकर, संयुक्त क्रिया के मध्य में या क्रिया के बाद में उनको रखा है ।

क्रिया + क्रियाविशेषण + क्रिया, क्रिया + क्रियाविशेषण

- मैं आपको अब मना छूटने न दूंगी । (रत्ना०२०)
- थी नहीं रुकी भी । (उर्वशी ८६)
- अब उन अनाथ मजदूरों के पास तो पहुंचना नहीं है । (पत्ना०६२)
- राजकुमारी ! आज से मुझे देखना मत । (स्कंद० ८६)
- रोको मत । (कथा० १२६)

संज्ञा व संज्ञा से निर्मित संज्ञा रूप, विशेषणों से बने विशेषण तथा क्रियाओं से बने क्रिया विशेषण रूप को मुख्यतः अपनाया है। इनकी तुलना में प्रसाद के नाटकों में इनकी भरमार मिलती है। संज्ञा व संज्ञा विशेषण संज्ञा से बने संज्ञा रूप काफी रखे गये हैं। इसके अतिरिक्त क्रिया-क्रिया से निर्मित क्रियाविशेषण व पुनरुक्तिवाले क्रिया विशेषण रूप की अधिकता है। सर्वनाम तथा संज्ञा से बने संज्ञा रूप भी स्थल-स्थल पर आये हैं। परन्तु सर्वनामों से बने सर्वनाम रूप गिने चुने हैं। संज्ञा+ संज्ञा से निर्मित विशेषण रूप व विशेषण + विशेषण से बने विशेषण रूपों को भी महत्त्व दिया है। क्रिया व क्रिया से बने विशेषण तथा क्रिया+क्रिया से बने क्रिया विशेषण रूप व अव्ययों से बने अव्यय रूप को कम स्थान मिला है। संज्ञा व अव्यय से बने क्रिया विशेषण भी अल्प संख्या में है।

प्रसाद की तुलना में "दुर्गावती" में बद्रीनाथ भट्ट ने समासों की ओर दृष्टि कम रखी है। संज्ञाओं वाले संज्ञा रूपों की अधिकता है। इसके अतिरिक्त विशेषण+संज्ञा से बने संज्ञा रूप विशेषणों से बने विशेषण व क्रियाओं से निर्मित संज्ञा रूपों को भी अपनाया है परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। क्रिया पुनरुक्ति व क्रिया विशेषणों की पुनरुक्ति से क्रियाविशेषण रूप बनाये हैं। अव्यय व संज्ञा से बने क्रिया विशेषण रूप बहुत अल्प है। संज्ञा व संज्ञा को संयुक्त करके क्रिया विशेषण रूप बहुत कम बनाये हैं।

जी० पी० श्रीवास्तव ने "उलटफेर" में संज्ञा व संज्ञा विशेषण व संज्ञा के योग से निर्मित संज्ञा रूपों की अधिकता है। क्रियाविशेषण पुनरुक्ति वाले क्रिया विशेषण रूप भी स्थल-स्थल पर आये हैं। उदय शंकर भट्ट ने "विद्रोहिणी अम्बा" में संज्ञाओं से बने संज्ञा रूप, विशेषण तथा संज्ञा के योग से संज्ञा रूप निर्मित हुए हैं। इन संज्ञा रूपों की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त क्रियाविशेषण पुनरुक्ति से बने क्रियाविशेषण रूप भी आये हैं। कुछ अन्य रूपों की अल्पता भी मिलती है जिनमें अव्यय+ अव्यय से बने अव्यय तथा अव्यय+संज्ञा से बने क्रियाविशेषण क्रियाओं से बने क्रियारूप मुख्य है। कुछ रूप अत्यल्प है जिनमें सर्वनामों से बने सर्वनाम रूप व अव्ययों से बने अव्यय रूप हैं।

गोविन्द वल्लभ पन्त ने समासों को कम महत्व दिया है । उन्होंने संज्ञाओं से बने संज्ञा रूप, विशेषणों से बने विशेषण रूप को अधिक रखा है । क्रियाविशेषण पुनरुक्ति से बने क्रियाविशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु संख्या में कम हैं । अव्यय तथा संज्ञा से बने क्रिया विशेषण व सर्वनाम, संज्ञा से बने संज्ञा रूप अल्प हैं। अंग्रेजी के शब्दों को भी पास-पास रखकर समास रूप दिया है ।

पन्त की अपेक्षा रामवृक्ष बेनीपुरी की कृति में समास काफी हैं । समासों के विभिन्न रूपों को उन्होंने अपनाया है । संज्ञाओं से बने संज्ञा रूप, विशेषण संज्ञा से बने संज्ञा रूप, विशेषणों से निर्मित विशेषण व क्रियाविशेषणों की पुनरुक्ति से क्रिया विशेषण रूप को अधिक महत्व दिया है । संज्ञा विशेषण से बने विशेषण रूप क्रियाओं से निर्मित क्रिया विशेषण रूप कुछ कम हैं । सर्वनामों से बने सर्वनाम व अव्ययों से बने अव्यय तथा क्रियाओं से बने विशेषण रूप अत्यल्प हैं । संज्ञा की द्विरुक्ति से क्रिया विशेषण रूप भी बहुत कम हैं ।

वृन्दावन लाल वर्मा ने संज्ञा व संज्ञा से संज्ञा रूप, विशेषण तथा संज्ञा से निर्मित संज्ञा रूप अधिक प्रयुक्त किये हैं । विशेषणों से बने विशेषण तथा क्रियाओं से संज्ञा रूप भी बनाये हैं ।

हरिकृष्ण प्रेमी की कृतियों में संज्ञाओं से संज्ञा रूप तथा संज्ञाओं से विशेषण रूप विशेषण संज्ञा से विशेषण रूप अधिक बनाये हैं । संज्ञा, विशेषण से विशेषण रूप तथा क्रियाओं से संज्ञा व क्रियाविशेषणों को कुछ कम बनाया है । अव्ययों से बने अव्यय तथा अव्यय और संज्ञा से क्रिया विशेषण कुछ ही लाये हैं । सर्वनामों से सर्वनाम रूप सर्वनाम संज्ञा से संज्ञा रूप तथा सर्वनाम, अव्यय से अव्यय रूप अत्यल्प बनाये हैं । कहीं-कहीं समास कुछ लम्बे भी हो गये हैं । संज्ञा तथा क्रियाविशेषण पुनरुक्ति से भी क्रिया विशेषण रूप तैयार किया है ।

वत्स ने संज्ञाओं से बने संज्ञा रूप, विशेषण संज्ञा से बने संज्ञा रूप, विशेषणों से विशेषण तथा क्रियाविशेषणों व संज्ञा की द्विरुक्ति से क्रिया विशेषण रूप को अधिक महत्व दिया है । अन्य कोटि के समास रूप को काफी कम अपनाया है । अधिकतर छोटे समास ही प्रयुक्त हुए हैं । विदेशी शब्दों से

समास को महत्व दिया है । " धुरी धुरी क्रान्ति" में संज्ञा शब्दों से संज्ञा रूप विशेषण शब्दों से संज्ञा रूप व संज्ञा विशेषण से निर्मित विशेषण रूप अधिकता है । संज्ञा तथा क्रिया से बने संज्ञा रूप अत्यल्प है । क्रिया विशेषण से बने क्रिया विशेषण तथा क्रियाओं से बने क्रिया रूप भी काफी कम है । छोटे समास ही प्रयुक्त हुए हैं । सर्वेश्वर दयाल के " काठी ", विपिन कुमार के " लौटना " में समास बहुत कम रह गये हैं । संज्ञाओं से संज्ञा रूप विशेषणों से विशेषण रूप अधिक बने हैं । क्रियाओं से क्रिया विशेषण रूप कम निर्मित हुए हैं ।

सुरेन्द्र वर्मा समासों की अधिकता के पक्ष में रहे हैं । उन्होंने लगभग सभी प्रकार के समासों को महत्व दिया है, जिसमें संज्ञाओं से बने संज्ञा रूप , संज्ञा तथा विशेषण से बने विशेषण रूप संज्ञा विशेषण से विशेषण संज्ञाओं से क्रियाविशेषण क्रिया विशेषण से क्रिया विशेषण रूप अधिक आये हैं । छोटे समासों की प्रधानता है । सुरेन्द्र वर्मा के विपरीत मुद्राराक्षस की कृति " तिलचट्टा " में बहुत कम समास प्रयुक्त हुए हैं । संज्ञाओं से संज्ञारूप, विशेषण से विशेषणरूप तथा क्रिया से क्रिया रूप अधिकतर निर्मित किए हैं । क्रिया विशेषण की प्रकृति से क्रिया विशेषण रूप अधिकतर बने हैं । अंग्रेजी शब्दों से भी समास योजना की है । जगह-जगह पर संज्ञा व क्रिया से संज्ञा रूप भी बनाये हैं ।

उपसर्ग तथा प्रत्यय

जिन शब्दांशों का अपना कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं होता तथा वाक्य में अकेले प्रयुक्त होने का जिनमें सामर्थ्य नहीं होता , परन्तु शब्दों के साथ संयुक्त होने पर वो अर्थ प्रकट करने लगते हैं, प्रत्यय कहलाते हैं । शब्दों के पूर्व में जुड़नेवाले उपसर्ग या पूर्वप्रत्यय तथा अन्त में जुड़नेवाले प्रत्यय या परप्रत्यय कहलाते हैं । शब्दों के रूप में परिवर्तन लाने तथा अर्थ में भिन्नता लाने में इनका बहुत योगदान है ।

नाटकों में इनके प्रयोग में भिन्नता मिलती है जो नाटककार की अभिव्यक्ति की रीति को प्रकट कर रहा है । उपसर्गों में संस्कृत, हिन्दी तथा विदेशी उपसर्ग नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं ।

(१) संस्कृत के उपसर्गों की संख्या नाटकों में काफी मिलती है । मुख्यतः जिन नाटकों की भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता है उनमें संस्कृत के उपसर्ग अधिक प्रयुक्त हुए हैं । संस्कृत के उपसर्गों में भी परंपरागत उपसर्गों की प्रधानता है । इन उपसर्गों के विशिष्ट अर्थ में तथा रूप में नाटककारों ने रखा है ।

'कु' , 'दुः' तथा 'दुर्' उपसर्गों का प्रयोग 'हीनता या बुरा' अर्थ में किया है तथा इससे संज्ञा तथा विशेषण शब्दों का निर्माण मुख्यतः किया है ।

संज्ञा -

- निष्ठुर दैवदल के कुचक्र से महाराज की जीवन-रक्षा होनी ही चाहिए । (अजात० ३५)
- कन्या ने बहकाकर कुमार्ग की ओर लगाया । (अंगूर० ४६)
- विधर्मियों और विदेशियों ने हमारी कुरीतियों से लाभ उठाया है । (सुनी० २२)
- उसका कुफल भी हमें भोगना पड़ा । (रत० ४६)
- मेरे बिना उनके रोते मन में आशंकाओं और दुःस्वप्नों का जमघट होगा । (प०रा० ७९)
- यदि युद्ध से किसी ने भारत पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया । (उफान ५६)
- तो फिर दुर्भाग्य कहीं मिटे भगवान । (अम्बा० १०८)

क्रियाविशेषण

- + + + उसके पास निःशस्त्र जाये । (कां०स्त्री०८०)
- अरे मूर्ख, निस्पन्द बना देता है । (कप० १००)
- निःसंकोच पूछ लीजिए । (कप० १००)
- तुम जाकर निस्संकोच स्टूल पर बैठ सकती थी । (रात० ६४)
- मेरी थी निर्दोष आँखों की निरंतर अनुनय ---(हेतु० १८)

'सम्' उपसर्ग को भी नाटकों में काफी स्थान मिला है । 'अच्छा या अच्छी तरह' अर्थ को लेकर शब्दों में संयुक्त किया है । इस उपसर्ग को संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के निर्माण के लिए प्रयुक्त किया है जिसमें संज्ञा शब्दों में से अधिकतर व्यवहृत हुआ है ।

संज्ञा -

- उनकी उदार सम्मति से राज का काज चलाऊँगी । (कां०स्त्री०६६)
- मेरी विनीत सम्मति है (अजात० ६३)
- आपको मेरा सम्मान करना चाहिए । (मुक्ति० ८३)
- केवल प्यार के सम्मोहन में ही जाऊँ (प०रा०६६)
- जहाँ नृत्य है, संगीत है (अम्बा० ६)
- इसी कोठे और संतोष कर (कुणा० २८)

विशेषण -

- सम्पूर्ण राज्य में महामहोत्सव की तैयारियाँ हो रही है । (रा०२१)
- सम्मोहक शरीर, चन्द्रमा सा मुख (सिन्दूर ६३)
- एक सम्भ्रान्त व्यक्ति से पूछा (सि०का० ६६)

क्रिया विशेषण -

- जिसे पहले सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किया जाता है ।(माधवा०२२)

- भामी यह तो विचित्र आदमी है । (स्कं० ६२)
- कथा कुलवाला उतनी विनम्र, उतनी विनीत थी । (कथ० १०६)
- मैं मनमीत होकर विनम्र भाव से पैर छू रहे हैं । (कथ० ११७)

क्रियाविशेषण —

- विस्मृति के गर्त में विलुप्त कर दे । (कथ० ३३)
- ऐसी बातों से अभिमान का मद विक्षुब्ध होता है ? (अजात० ८६)
- अपने को ज्योति में विलीन कर देती है । (स्कन्द० ८५)

* आ" उपसर्ग को" तक या इधर" अभिप्राय के लिए प्रयुक्त किया है । इसके संज्ञा तथा अव्यय रूप बने हैं । इस उपसर्ग का व्यवहार नाटकों में अल्प हुआ है ।

संज्ञा -

- स्वागत का आगमन हुआ नहीं । (कथ० २३)
- रात्रि के आगमन की सूचना दी गयी । (ध्रुव० ४१)
- किसी के चरित्र पर इस तरह का आक्रमण --- (वि०५३)

अव्यय -

- मैंने आजीवन कौमार व्रत की प्रतिज्ञा की है । (स्कन्द० १५८)
- वह आकण्ठ राजनीति में डूबा हुआ है । (ध्रुव० ६६)

* प्र" उपसर्ग भी नाटकों में व्यवहृत हुआ है । इसका अभिप्राय विशिष्ट अर्थ से लिया गया है । इस उपसर्ग को ~~अधिकार~~ संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के साथ संयुक्त किया है ।

संज्ञा -

- तुमने भगवान के प्रवचन सुने भी ? (अजात० ५७)

विशेषण -

- एक निराश्रिता और प्रपीड़ित राजकुमारी हूँ । (राज्य०१२)

- महत्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुण्ड में कूदने को प्रस्तुत हो जाती । (अजात०.५५)
- गंगा के प्रकम्पित प्रवाह में मुक्ति लाभ एक ओर ध्वनि सुनाई दे रही है । (विक्रम०२५)
- यूनानों के विरुद्ध प्रबल आक्रमण अपनी बाम विचार करने का —— (सेतु० १०)
- हम उस देश को प्रज्वलित करेंगे । (प०रा० ३३)

क्रिया -

- इन स्त्रियों का प्रवर्तन नहीं चाहती । (मादा० ४६)

'उप' उपसर्ग के कई अर्थ लिए गये हैं किसी के पास स्थित, कोई काम करने का विशिष्ट आभास, कुछ छोटा या हल्का, आदि । इससे संज्ञा व क्रियाविशेषण शब्द मुख्यतः बने हैं । इस उपसर्ग के लगने से लगभग एक से ही शब्दों को अधिकतर नाटककारों ने निर्मित किया है ।

संज्ञा -

- [illegible] किन्तु [illegible] करें । (स्कन्द० ४२)
- मेरी उपस्थिति का बोध नहीं होता । (सेतु० १३)
- उपहास है । ([illegible])
- उपवन ओर क्यों कूद पड़ने जा रहे हैं । (अजात० १७)

क्रियाविशेषण

- यही कहना उपयुक्त है । (विक्रम० ६१)

पीछे, बाद में, पास, प्रत्येक या हर एक, कई बार, तुल्य, सदृश या समान अर्थों के लिए शब्दों के पूर्व में 'अनु' उपसर्ग को जोड़ा है । जिससे अधिकतर संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया रूप बने हैं ।

संज्ञा -

- ग्रीष्म का अनुताप होता है । (विन्दु० ७४)

विशेषण -

- जिनके मुकाबिले पर औरतों तक स्वाधीन रानियां थीं । (दुर्गा० ८७)

सामने, विरुद्ध व प्रत्येक अर्थ के लिए 'प्रति' उपसर्ग का व्यवहार हुआ है । इससे संज्ञा शब्द अधिकतर निर्मित किये हैं । अव्यय शब्द अल्प ही हैं ।

संज्ञा -

- मेरी नदी उनका प्रतिबिम्ब ग्रहण नहीं करती । (सम्पा० ४)
- अपना टूटा हुआ प्रतिबिम्ब देखकर । (उर्वशी० ६६)
- मेरा दूसरा नाम प्रतिध्वनि है । (वि०अ० २३)
- यह है प्रत्याक्रमण में उठाई गई तलवार की झनझनाहट (सम्पा० ७५)
- केवल प्रतिक्रिया है । (मादा० ५७)

अव्यय -

- यह तो प्रतिक्षण भी भरनों में रहती है । (कथा० ४०)
- वे दुर्ग के आस-पास के गांवों में प्रतिदिन जाना आरंभ कर दें ।
(कुम० १३०)
- तो मैं प्रतिदिन इसे झोपड़ी-बुहारती थी । (आषाढ़ ८०)

'अधि' उपसर्ग को 'ऊपर' के अर्थ में लिया है निष्कर्षत: इससे संज्ञा रूप बनाये हैं । इस उपसर्ग को अल्प संख्या में अपनाया गया है ।

संज्ञा -

- मेवाड़ जैसे राज्य के अधिपति हैं । (कुम० २८)
- आप दोनों को वर्गों का अधिपति नियुक्त करता हूं । (प०रा० ७७)
- इसकी उपपीठ और अधिष्ठान में दीक्षित की है । (कोणार्क २६)
- गढ़मंडल की अधीश्वरी श्री महारानी दुर्गावती की जयकार का प्रणाम ।
(दुर्गा० ७४)

- तुम्हें बोलने का कुछ भी अधिकार नहीं है । (वि०अ०७६)
- अपने इसी सम्मेलन की अध्यक्षता कीजिए । (कम्बु० ५६)

- मेरे लिए पूर्व में उपवास ।(अंगूर० ६८)

उपसर्गों में भी कुछ संस्कृत उपसर्ग बहुत कम व्यवहृत हुए हैं । संस्कृत उपसर्गों में -

- आप उनका अभिनन्दन(अभि) करें । (ना०अ०वि० ५३)
- अपने चिरपरिचित (चिर)-नटको रंगपीठ पर देख । ना०अ०वि०७८)
- चिर स्थायी (चिर) बन कर रहें । (केतु० २१)
- तुम्हारी बुद्धि तुम्हारी चिरसंगिनी (चिर) रहे । अधारा०३७)

संस्कृत उपसर्गों की तुलना में हिन्दी उपसर्गों का अल्प प्रयोग हुआ है । आधुनिक नाटककारों ने भाषा को सरल तथा जनसामान्य की बनाने के लिए इनके व्यवहार पर अधिक महत्व दिया है । हिन्दी उपसर्ग अधिकतर तद्भव व देशज शब्दों के साथ जुड़े हैं, तत्सम शब्दों के साथ कम आये हैं ।

" अ ", " अन " उपसर्ग को " नहीं " अर्थ में लिया गया है । इनके जुड़ने पर विशेषण क्रिया विशेषण शब्द मुख्यतः बने हैं ।

विशेषण -

- मैं इस समय तुम्हारे योग्य-अयोग्य का विवेचन नहीं करना चाहती ।
(आषाढ़० ३७)
- उन्हें मेरे साथ रहने का अबाध अधिकार है । (मुक्ति० ६८)
- नीच अवाक हूं । (वि०अ०७०)
- वे अनाहूत बनकर आये थे । (कथ० २१)

- लेकिन कभी-कभी अनचाहे वक्त जिंदगी में आ भी जाते हैं ।(कुरु०८६)
- जब अनपढ़ झुके हैं उनका गुजारा भी हुआ । (स्वर्ग० १७)
- हां महारानी जी ने अनगिनती पाप धारे हैं । (कुणा० १२०)
- + + + अनजानी गहराइयों की टोह लेता भी रहता है ।(प०रा०५४)

क्रियाविशेषण -

- लगता है सुनकर भी अनसुना कर रही है। (अमृत० ४३)
- वह सामने खड़ी है और बोला अनजाने की सुध भी गई ?(प०रा०३०)
- मुझे लगता है जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश में भीषण संघर्ष खड़ाकर दिया है। (कोणार्क०१६)

" नि " उपसर्ग संस्कृत की भांति हिन्दी में भी प्रयुक्त हुआ है, इसका " बिना " अर्थ लिया है। इसके जुड़ने पर विशेषण तथा क्रिया विशेषण रूप अधिकांशतः बने हैं।

विशेषण -

- लालची और निडर। (कथा० ३४)
- निडर हो वह लगता है। (पुनी० ६५)
- पड़ा निकम्मा बैठा है। (अंधी० ५४)

क्रियाविशेषण-

- निडर होकर जाइए। (अमृत० ३१)
- जहाँ पहुंचकर वह निढाल हो जाता है। (नामी० ३१)

सु, सु उपसर्ग को " अच्छा " अभिप्राय के लिए प्रयुक्त किया है। इस उपसर्ग से संज्ञा तथा विशेषण शब्द निर्मित हुए हैं।

संज्ञा -

- देश के सपूतों को इसमें कुछ न कुछ अवश्य देना चाहिए। (उद्य०६)
- मेवाड़ के सपूतों, मेवाड़ के अभिमान तुम्हीं हो। (रक्षा० ३५)

विशेषण -

- क्या रूप-सरूप है। (फांसी० ८३)
- इतनी साफ सुथरी, इतनी सुघड़, इतनी सभ्य (अंधी० ३३)

इक, ईय क्त तथा इतर प्रत्यय विशेषण शब्दों की निर्मिति करने में आये हैं। इनका प्रयोग भी अधिकतर नाटकों में हुआ है।

- वो लोग धार्मिक (इक) कहाते हैं। (बीबन्द्रा० ६)
- विजय का धार्मिक(इक)उल्लास हृदय की भूख मिटा देगा ?(स्कंद ४६-५०)
- मुझको शारीरिक (इक) सुख नहीं चाहिए (भारत० प्र० ६५)
- मैं न्यायिक (इक) वाद्य पद्धति में विश्वास रखती हूँ।(रा०३६)
- बिल्कुल ठीक वैसी ही यांत्रिक(इक)। (सि०२)
- यह व्यावसायिक(इक) या कलात्मक नैतिकता के कितने विरुद्ध है।
  (भा०अ०वि०६३)
- लेकिन तुमने वैवाहिक (इक) मर्यादा का उल्लंघन किया। (सेतु० २६)
- किंतु लौकिक(इक) हैं मैं तेरा गुलाम हूँ। (कुणा० २०)
- आज देवगुणों की स्वर्गीय(ईय) आत्माएँ प्रसन्न होंगी। (कुब०४०)
- किन्तु फिर भी उसे कहीं बढ़कर आत्मिक बल नाम का ईश्वरीय(ईय) तोपखाना भी है। (कुणा० ११६)
- मानवीय (ईय) मनोभावों के अनेकानेक प्रकारों की अभिव्यक्ति है।
  (भा०अ०वि०६५)
- क्यों राष्ट्रीय(ईय) कांग्रेस की बातें हैं ? (अम्बा० ६३)
- आर्य शिल्पकला का शास्त्रीय(ईय) अध्ययन तो मैंने नहीं किया।
  (कोणार्क ३५)
- जातीय (ईय) अभिमान ---- (रा० ५२)
- नश्वरता के उत्तरीय(ईय) से तुम अपने भाग्य के आँसू का प्रोंछन मत करो। (अंधकार०३)
- सुना है आर्य मैत्रेय आप दीक्षित (क्त) हो गये हैं (उदयन०५)

- आई सब सारी , मादा तोती (मादा० १०)

- मुन्ना यू ठठुरा के ऊपर बिठाती । (उद्द० ६०)

- यह बीच वाली भाभिन है । (मादा० ३५)

- नहीं । तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है ।(श्रीचन्द्रा० २५)

- रसोइयिन या वर्कर कम नहीं चाहता । (स्वर्ण०७५)

- चार मिलनाचिमन के बीच बैठा था । (बकरी ३४)

- उड़न कबूतर (रुस० १६)

- तुम्हारे जड़ों का पड़ौसा था । (सिन्दूर०२०)

- तुम्हें पकड़ाई दे जाता (बेटी० ११४)

- वैदान्त पन की आड़ में बड़े-बड़े काम हो सकते हैं । (सुना० ५८)

- मुझे बनाकियापन बिल्कुल पसन्द नहीं । (रुस० ६६)

- कश्मीरी मुहल्ले के चौराहे से कादीखाने तक सिटान की रोशनी थी ।
(मा[illegible]० २६)

- अब तो आप भी बजाजत खाने में दिखाई तक नहीं देते । (उद्द०८६)

- और बनीचाराम तो हैं ? (सिन्दूर० २६)

- सेनापति के घराने के सौभर बन ठकदारी सूबेदारी करो ?
(कोसी०७७)

उपसर्गों तथा प्रत्ययों के प्रयोग में जहाँ नाटककारों के प्रयोग में जहाँ समानता है, वहाँ कुछ भिन्नता भी है । कुछ उपसर्ग तथा प्रत्यय जो परंपरागत है, उनको लगभग सभी नाटककारों ने अपनाया है जैसे उपसर्गों में कु, सु, अ, अ, अन, दु, पर, नि, अप, वि, बे अति आदि । प्रत्ययों में क, आ, आई, ई, क्या, नी, दार आदि है । उपसर्गों तथा प्रत्ययों का नाटकों में आगमन नाटक की भाषा के आधार पर मुख्यतः हुआ है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के उक्त नाटकों में उनके अन्य नाटकों से भिन्न संस्कृत के उपसर्गों तथा प्रत्यय की प्रधानता है। संस्कृत के उपसर्गों में वि, प्र, नि, निः, पर, निर, सम, अप, दुर, प्रति, उप, अनु, परि, अभि, अधः, मुख्य रूप से आये हैं। हिन्दी के उपसर्गों को भी यथास्थान महत्व दिया। हिन्दी उपसर्गों में अ, अन, दु, नि अधिकतर आये हैं। विदेशी उपसर्गों में ब, बद मुख्यतः आये हैं। प्रत्ययों में त्व, क्ता, क्त, मय, इक, इय, मान, ता, अनीय, अन, तव्य, पूर्वक, वश, आदि है। हिन्दी प्रत्ययों में आ, ई, इया, ऐरा, नी, पन, अधिकांशतः सभी नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं। जगदीश चन्द्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी तथा उदयशंकर भट्ट ने कार, दार, बार प्रत्ययों का भी स्थान- स्थान पर प्रयोग किया है।

जिन नाटककारों ने भाषा को बोलचाल के निकट की बनाया है उनकी कृतियों में संस्कृत के उपसर्गों तथा प्रत्ययों का कम तथा हिन्दी व विदेशी का अधिक प्रयोग हुआ है क्योंकि संस्कृत के उपसर्गों तथा प्रत्ययों से भाषा में सरलता की अपेक्षा दुरूहता आ जाती है।

उपेन्द्र नाथ अश्क के "अंजो दीदी" तथा "स्वर्ग की झलक" लक्ष्मी नारायण मिश्र के "सिन्दूर की होली तथा मुक्ति का रहस्य" मोहन राकेश के आधे अधूरे, लक्ष्मी नारायण लाल के "मादा कैक्टस", गोविन्द वल्लभ पन्त के "अंगूर की बेटी" तथा सत्यव्रत सिन्हा के "अमृतपुत्र" आदि नाटकों इस प्रकार का उपसर्ग तथा प्रत्ययों का चयन हुआ है। उपसर्गों में दुर, नि, निः, निर, सम, अनु, वि, अव, स्व, प्रति, प्र संस्कृत उपसर्ग आये तो हैं परन्तु उनका व्यवहार कम हुआ है इनकी तुलना में अन्य प्रकार के उपसर्ग तो कम आये हैं परन्तु उनका बार-बार प्रयोग होने के कारण उनकी अधिकता दिखाई देती है। हिन्दी तथा विदेशी उपसर्गों में अ, अन, क, दु, स, सु, नि, बे, बद, कम, गैर, हम, ला, का प्रयोग हुआ है। प्रत्ययों में संस्कृत के ता, इक, तव्य, अन, पूर्वक तथा हिंदी के प्रयोग में क, ता, ई, इया, ऐरा, नी, आवना, आहट, आवा, पन, तथा विदेशी में खाना, दार, दान, बाज, इयत, दा ई मुख्यतः आये हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र, सत्यव्रत सिन्हा, लक्ष्मी नारायण लाल, उपेन्द्र नाथ "अश्क" ने कुछ

परंपरा से हटकर नये प्रकार से उपसर्गों तथा प्रत्ययों का भी किया है ।

कुछ नाटकों में भाषा सरल व बोलचाल की प्रयुक्त हुई है, जिनमें उपसर्ग तथा प्रत्ययों को कम महत्व मिला है । इनमें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'बकरी', मुद्राराक्षस की " तिलचट्टा " तथा विपिन कुमार अग्रवाल की " लोटन " कृति है । इन नाटकों में संस्कृत के उपसर्ग प्रत्यय की अपेक्षा हिन्दी व विदेशी प्रत्यय अधिक प्रयुक्त हुए हैं । 'बकरी'-नाटक में प्र, उप, पर बद, बे, कम, ना उपसर्ग तथा आय, आई, इया, आना, आदि प्रत्यय मुख्यतः आये हैं । 'तिलचट्टा' में बद, गैर, बे, ना। पर, अप उपसर्ग तथा पान , आहट, वाला ईला, इया, दार, प्रत्यय अधिकांशतः है , बे, बद, दस, नि, स, ना, उपसर्ग तथा आया, पी, आई, आना , त्व, दार, पन, पन, प्रत्ययों को " लोटन " कृति में स्थान मिला है ।

तीसरा अध्याय

पद - प्रयोग

इनमें गौरी, दुर्गा, काली, लक्ष्मीबाई व्यक्तिवाचक नाम को "और स्त्री" के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

- किन्तु मेरी मेनका, तुमने मेरा तप भंग कर दिया। (उपका० १४१)
- कलिङ्ग साहब। वह मेरे घर की लक्ष्मी थी। (मुक्ति० १६३)
- उस घर की लक्ष्मी के कारण यह सब कुछ किसी को कब मालूम होता था? (अंकुर० ६३)

मेनका तथा लक्ष्मी व्यक्तिवाचक संज्ञायें, सौन्दर्यशालिनी तथा सुशील गुणवती स्त्री के अर्थ में व्यवहृत हुई हैं। दुष्ट स्त्रियों के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को जातिवाचक में परिवर्तित करके भी प्रस्तुत किया है -

- वही ताड़का, दरवाजे पर मेरी राह ताकती दिखाई दे रही है। (अंकुर० १२३)

मारकाटी प्रवृत्ति को देखते हुए गुणों के कारण जातिवाचक रूप में परिवर्तित किया है।

- मैं संसार में धूमकेतु की तरह हूँ। (वि०अ० ७३)

कहीं-कहीं जातिवाचक संज्ञा शब्दों को व्यक्तिवाचक रूप में प्रयुक्त किया है जैसे "देवी" शब्द जातिवाचक संज्ञा है, परन्तु दिव्य गुणों वाली के अर्थ में व्यवहृत होने के कारण तथा व्यक्तिविशेषण के लिए सम्बोधित करने पर वह व्यक्तिवाचक बन गया है।

- लगती तो ऐसी है जैसे साक्षात् देवी का रूप। (मुक्ति० २५)
- इस देवी ने उस विपत्ति में मुझे सहारा दिया। (मुक्ति० ६८)
- बहुत कष्ट में है देवि। (त्रिशु० ६)
- मैं देवी से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। (नाचनाटू० ६६)

कुछ जातिवाचक रूप प्रस्तुत है जो विशिष्ट व्यक्ति के प्रति प्रयुक्त होने के कारण व्यक्तिवाचक रूप में प्रकट हुए हैं।

- बहुत अच्छा!!! उन्नाव सिंह तुमने बहुत अच्छा कहा। (कीड़ा० २४)
- और फिर सरकार के राज्य में तो सब स्वभाव भूषण है। (भा०हा०भा० ७३)

कई बार विशेषण शब्दों को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए संज्ञा रूप में रखा गया है, क्योंकि विशेषण के द्वारा तो केवल उपमा देते हैं परन्तु संज्ञा बना देने पर उसका वास्तविक रूप प्रकट होता है, कोई भेद नहीं रह जाता । जैसे "बुढ़िया" शब्द को संज्ञा रूप में रखने पर विशेषण रूप की तुलना में पात्र के व्यक्तित्व पर अधिक प्रभाव पड़ रहा है -

- वो बुढ़िया कहाँ छिपा है ? (श्रीचन्द्रा० २२)
- दयानिधे ! बालक का अपराध मार्जनीय है । (कथात० ४६)
- मैं चेष्टा करूँगी वीर, (चन्द्र० ५३)
- हे वीर ! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके इस व्रत को ग्रहण करती हूँ । (ध्रुव० ३२)
- आ रे दुष्कुमार (कार्ति० ४६)
- लेकिन कुलनन्दन झलक नहीं पाती । (अमृत० १२१)
- मायाविनी तूने अपनों के जाल में मेरे प्रतिशोध की कल्पना को रोकना चाहा । (प०रा० ७८)
- मायामयी , तुम्हारे कौन से शब्द चरितार्थ हैं । (उपा० ७१)
- धर्मपुत्र ! मैं वन्दना करता हूँ । (ध्रुव० ५३)
- रघुकुलमणि मुस्करा उठे । (कल० ११४)

भाववाचक संज्ञाओं का नाटकों में अपना विशेष महत्व है । इनके प्रयोग से कथन काफी प्रभावित हुए हैं । भाववाचक संज्ञा में "त्व" प्रत्यय जुड़ने से संज्ञा में कोमलता तथा अधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति की क्षमता आ गयी है, इन संज्ञा शब्दों के स्थान पर इनसे मिलते-जुलते अन्य शब्दों का चुनाव किया जाय तो संभव है कि कथन में तथा शब्द में अधिक आकर्षण न आ पाये । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

"मनुष्यता" के अर्थ में प्रयुक्त हुए शब्द "मनुष्यत्व" में जितनी कोमलता तथा प्रभाव है उतना उसके पर्याय शब्द "इन्सानियत" में नहीं है । इन्सानियत में एक कड़ापन सा ही झलक रही है ।

- भ्रातृत्व और मनुष्यत्व पर विश्वास करके युगायु की परीक्षा की जाय ।
(रंगा० ३७)

- मनुष्यत्व के वैभव के सामने स्त्री की इतनी अवहेलना ? (वि०अ०७०)

- रमणाविकता को खो बैठे ? (उकट० ३५)

कुछ अन्य भी इस कोटि के संज्ञा शब्द हैं, जिनकी अभिव्यक्ति अन्य शब्दों से भी हो सकती है, परन्तु प्रभाव की दृष्टि से अन्य शब्द उतने सफल नहीं हो सकते । जैसे -

- मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं । (ध्रुव० २७)

- मातृत्व नारीत्व का चरम उत्कर्ष है । (जन्म० २५)

स्त्रीत्व, मातृत्व तथा नारीत्व शब्दों में स्त्रीत्व तथा नारीत्व से स्त्री के कोमल तथा नारीयोचित गुणों की अभिव्यक्ति व मातृत्व से ममत्वपूर्ण रूप सामने प्रकट हो रहा है ।

- जान पड़ता है बल्ब के चाँद पर उनका ब्राह्मणत्व प्रकट हो गया है ।
(शपथ० ३७)

- हम तुम्हारे व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर मुग्ध हैं । (रक्त० ४६)

- इनसे भी मैं निर्वाण और अमरत्व की बात कहूँ । (लहरों ३४)

उपर्युक्त संज्ञा शब्दों के स्थान पर इनके पर्याय भी कथन में यदि प्रयुक्त होते तो वे कथन से मेल न खाते वैशिष्ट्य के स्थान पर उसके पर्याय को रखते तब संगत न प्रतीत होता । स्त्री के सौन्दर्य वर्णन में कोमलता तथा सुन्दरता शब्द उपयुक्त ही प्रयुक्त हुए हैं -

- नारी की शोभा कोमलता और सुन्दरता है । (सुहा० ४१)

- स्त्री की सुकुमारता अलंकार है । (प०रा० ७९)

" सुकुमारता" के स्थान पर कोमलता नाजुकता शब्द भी प्रयुक्त हो सकता था परन्तु " सुकुमारता" से कोमलांगी की अभिव्यक्ति हुई है ।

कण्ठस्वर के गुणों के वर्णन में " सरसता" शब्द से " एक माधुर्यपूर्ण तथा भावपूर्ण " अर्थ प्रकट हो रहा है ।

कुछ जातिवाचक संज्ञा शब्द स्त्री-पुरुष दोनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं, यह शब्द उन स्थलों पर आये है, जहाँ जनसामान्य को सम्बोधित किया गया है । नाटकों में ऐसा प्रयोग सर्वत्र हुआ है ।

- सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं । (ध्रुव० ३८)

- मनुष्य अपूर्ण है । (स्कंद० १३३)

- आदमी मवेशी पटापट मर रहे हैं। (बकरी २८)

- हम भी इन्सान हैं । (बकरी ३६)

कहीं-कहीं स्त्रीलिंग बनाने के लिए व्यर्थ में प्रत्यय लगाए हैं, इससे शब्द का क्या स्पद भी लग रहे हैं । जैसे -

- यह बीच वाली मादिन है । (माद० ३५)
- रसोइनिया दुलहिन का नहीं जानता (स्वर्ग० ६५)
- बड़ी भारी प्रेमिन है (श्रीचन्द्रा० १५)
- आई एक भारी, मादा तोती (माद० १०)

कई बार संज्ञा शब्दों का स्थितिनुसार शब्द भी अर्थ भी बदल गया है जैसे शिक्षा के दो अर्थ लिए हैं ।

- जिसमें रहकर शिक्षा प्राप्त की (स्कंद० १८)

- आजकल की शिक्षा में शब्दों का खिलवाड़ खूब सिखाया जाता है (सिन्दूर० १०)

इसमें शिक्षा का अभिप्राय अध्ययन से है ।

- मैंने उसको उचित शिक्षा दी (दुर्गा० ६४)

- आपको दी कुछ शिक्षा हमारे अभियान के लिए नितान्त आवश्यक है (वध० ४६)

इसमें शिक्षा का अर्थ सीख से है ।

नाटकों में संज्ञा शब्दों के वचन में भी भिन्नता मिलती है । कुछ ऐसे संज्ञा शब्द व्यवहार में लाए गये हैं जिनको बहुवचन बनाने पर उनके रूप में परिवर्तन आ गया है । पुल्लिंग शब्द जहाँ आकारान्त है वहाँ अ को ए में परिवर्तित करके बहुवचन बनाया है।

- टूटे _पत्तों_ के ढेर तक समझने में असमर्थ (सिंदु० ६)
- _काँटों_ के भीतर एक फूल है (मादा० ५)
- + + सामने वाले के _सिपाहियों_ को दे दिया (सिन्दूर १६)

कई बार नाटककारों ने ने, को, से, का, के, की, के लिए आदि, कारक शब्दों से पूर्व आये संज्ञा एकवचन का रूप भी प्रयुक्त किया है । जैसे " टुकड़ा" एकवचन रूप परिवर्तित होकर टुकड़े हो गया है :-

- अपने फटे _टुकड़े_ को सीने की कोशिश की + + + (सम्प० ८१)
- मैंने अपने हृदय के _टुकड़े_ को अपने हाथों मसल डाला । (नय० १९७)
- तो किसी बड़े भारी खानदानी _कुवे_ को छोड़कर और किसी की तलाश नहीं (अंगूर ३६)
- आप _पेट_ में सनातनी हो हुई + + (प०रा०१७)
- आप _लड़के_ का मन और बिगाड़ रहे हैं । (मुजि० ५३)
- लेकिन _बच्चे_ का पिता कौन होगा ? (ना०अ०पि० ५७)
- + + बकरी के _गले_ में धन की तरह खड़खड़ाने लगा । (वि०म०५७)

जहाँ संज्ञा शब्द आदरार्थ प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ संज्ञा बहुवचन रूप में रखी गयी है, चाहे वह एक वचन हो । जैसे -

- पिता जी मरण शय्या पर पड़े हैं । (कप० ८५)
- पिता जी यदि आता है । (अंधा० ३१)
- पिताजी , आप अकारण ही क्रोध कर रहे हैं । (अंगूर० ४५)
- आप बड़े लोग हैं । (बकरी २५)

संबंधियों के लिए प्रयुक्त संज्ञा शब्द में बहुवचन का रूप भी एकवचन का ही है, अन्य शब्दों द्वारा बहुवचन का बोध कराया है जैसे -

- दुनिया के सारे _मामा लोगों_ की यही आदत है । (मादा० ११)

यहाँ सारे , लोगों , से बहुवचन प्रकट हो रहा है ।

- किसकी आंख से खून के आंसू नहीं टपकने लगे ? (सम्बा० ६६)

" आँखों " के स्थान पर" आंख" शब्द खटकता है ।

- यहाँ थोड़े-थोड़े कामों के लिए मुझे दो जगह जाना पड़ा । (अनुरा०५७)

" काम" को बहुवचन में प्रयुक्त किया है जो अटपटा लगता है ।

- आपके प्रकट होनेवाले गुणों और कर्म की वंदना करते हैं ।
(प०रा० ४५)

इसमें गुण और कर्मों बहुवचन रूप होना चाहिए ।

- साहब ने दो दिनों तक खाना नहीं खाया । (माधा० १५)

- छ: घण्टे लेटूंगा । (कौमा० ५५)

इसमें बहुवचन में" दिन" घण्टा" शब्द के स्थान पर दिनों घण्टे रखा है ।

- दोनों एक-दूसरे को फूटी आंखों नहीं सुहाते । (युग० ५२)

इसमें मुहावरे को परिवर्तित करके" आंख" के स्थान पर" आँखों" शब्द प्रयुक्त किया है ।
कहीं-कहीं एकवचन के स्थान पर बहुवचन भी बना दिया है । यथा -

- आपके दर्शनों के लिए आ रही है । (माधा० ४३)

इसमें" दर्शन" की बजाय दर्शनों व्यवहृत हुआ है ।

कभी-कभी एक वचन रूप भी ठीक नहीं प्रयुक्त किया है ।

- अशान्ति के कंटक-कानन में ही शान्ति की चिड़ियें का घोंसला है ।
(सम्बा० ११०)

" चिड़िया" के स्थान पर" चिड़ियें" शब्द प्रयोग हुआ है ।

नाटकों में संज्ञा शब्द के प्रयोग में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं ।
कुछ नाटकों में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को जातिवाचक संज्ञा रूप में भी रखा है । इनमें
जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, वृंदावन लाल वर्मा, गोविन्द

वल्लभ पन्त, विष्णु प्रभाकर, उदयशंकर भट्ट, बद्रीनाथ भट्ट के नाटक मुख्य हैं । अन्य नाटककारों ने इनका प्रयोग कम किया है । जातिवाचक संज्ञा को व्यक्तिवाचक संज्ञा की भाँति लगभग सभी नाटककार लाये हैं परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी , सुरेन्द्र वर्मा, सी०पी० श्रीवास्तव, जगदीश चन्द्र माथुर की रचनाओं में इनकी अधिकता है । विशेषण शब्दों को संज्ञा की भाँति प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की " श्रीचन्द्रावली " नाटिका में ऐसे प्रयोग काफी मिलते हैं । जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में इनकी अधिकता है । विष्णु प्रभाकर, सत्यव्रत सिन्हा, मणिमधुकर,वृन्दावन लाल वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, गोविन्द वल्लभ पन्त की कृतियों में भी विशेषण शब्दों से बने संज्ञा रूप व्यवहार में लाये गये हैं । भाववाचक संज्ञा को कुछ नाटककारों ने अधिक महत्व दिया है, जिनमें जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, मोहन राकेश , सुरेन्द्र वर्मा हैं ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र , गोविन्द वल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण मिश्र, उपेन्द्र नाथ " अश्क " , लक्ष्मी नारायण लाल तथा विपिन कुमार अग्रवाल, सत्यव्रत सिन्हा ने अंग्रेजी शब्दों के बहुवचन रूप हिन्दी की भाँति ही बनाये हैं ।

कई बार नाटककारों ने वचन प्रयोग में त्रुटियाँ भी कर दी हैं । ये त्रुटियाँ रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, सत्यव्रत सिन्हा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विष्णु प्रभाकर के नाटकों में अधिक हैं ।

विपिन कुमार अग्रवाल , मुद्राराक्षस के नाटकों में संज्ञा शब्दों का सामान्य रूप अधिकांशतः प्रयुक्त हुआ है ।

सर्वनाम

नाटकों में जहाँ संज्ञा शब्दों को नाटककार ने कहीं प्रयुक्त करना चाहा है, वहाँ सर्वनाम शब्दों को महत्व दिया है । सर्वनामों को नाटककारों ने अपने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है ।

- हम राजपूत आन पर मर-मिटना अभी भूले नहीं हैं (रक्षा० ३०)
- आज हम भी हैं वो किसकी बदौलत ? (कारी ५६)
- झूठा फ्लैट हम ताक करें । (कारीहौ ५२)

कई बार 'हम' बहुवचन शब्द को एक वचन में प्रयुक्त किया है, तो बहुवचन रूप में 'हमलोग' हम सब या हम सब लोग रूप को व्यवस्थित किया है । हमलोग तथा हमसब लोग रूप से भी अलग-अलग अभिप्राय प्रकट हो रहा है । हमलोग का अर्थ कुछ लोग या एक तरफ के लोग' है तथा' हम सब हम सब लोग' का अर्थ जितने लोग हैं सभी से है । यथा -

- आपसी में हमलोगों से क्या हैमफुड (कारी०५२)
- आश्चर्य ! हमलोग आज क्या स्वप्न देख रहे हैं ? (चन्द्र० १९८)
- इस लोक का उद्धार हमलोग बहुवारा है न किंतु कृपाण धारा है वैसे ।
(गीत० २४)
- हमलोग पेड़ बनाइयां है (कोणार्क ५२)
- मानो हम सब पर रोता है (पन्ना० ४२)
- हम सब लोग मिलकर आततायी देवकुल को उसके किए का दण्ड दें ।
(विश्वा० ६६)

नाटकों में 'हम' शब्द को उन स्थलों पर मुख्यत: रखा गया है, जहां किसी एक व्यक्ति के विचार नहीं हैं, बल्कि एक से अधिक के हैं ।

'हम' शब्द का प्रयोग निराभिमान अभिव्यक्ति के लिए भी किया गया है। 'हम' शब्द की अभिव्यक्ति शैली प्राय: राजा, सन्यासियों तथा मंच पात्रों द्वारा व्यवहृत कराई गई है ।

मध्यम पुरुष एकवचन 'तू' को भी नाटकों में कई दृष्टिकोणों से प्रयुक्त किया है ।

नाटकों में जिन पात्रों में अधिक 'आत्मीयता' प्रकट की गई है, उनसे 'तू' शब्द का व्यवहार कराया गया है ।

- मैंने तेरे पास एक पैसा भी न छोड़ा तू क्या करेगी (भारत०पृ०७०)
- तू मुझे गोद में लेकर इस प्रकार मेरी सेवा कर रही है । (कुणा० १२०)
- अच्छा, मैया ! भला तू कहाँ से यह उत्साह भरी बात कहने के लिए आ गयी ? (कुव० ३१)
- तू तो कहाँ गीता-पाठ में यह भी भूल गई (अपा० ८)
- तू ने कभी सोचा भी है (अंगूर० ६५)
- मेरे बच्चे तू समझता क्यों नहीं (कुमे० २८)
- काश तू मेरी अन्तर्व्यथा का अनुभव कर पाती ? (लम्ब० ४६)
- मेरी भैया तू कहाँ है (भारत० पृ० ३६)

ग्रामीण तथा अशिक्षित पात्रों द्वारा माता-पिता के लिए " तू " शब्द का प्रयोग करवाया है, क्योंकि नाटककार को ग्रामीणों की भाषा को संपन्न नहीं दिखाना है।

ईश्वर के प्रति भी अधिक आत्मीय भाव रखता है अतः उसको " तू " शब्द से सम्बोधित किया है ।

- हाय परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है (नील० २२)
- तुझे बारम्बार नमस्कार है !! (अय० १५)

क्रोध तथा घृणा के प्रसंगों में व्यक्त करने की दृष्टि से " तू " शब्द को अधिकतर अपनाया गया है, क्योंकि " तू " शब्द से भाव में तीक्ष्णता आ रही है । जैसे -

- ऐ रे, तू क्या अंग्रेजों का जासूस है ? (मलाहि० ७५)
- मेरे लिए तू मर चुकी (अंगूर० ४६)
- तू मुझे क्या सिखलाता है । (चन्द्र० ६०)
- तुझे भगवान का नाम और कहीं डूबकर मर जा । (भारत० १४)
- तू बात पूरी कर चुकी । (आषा० ५८)

व्याकरणिक दृष्टि से " तुम " सर्वनाम शब्द बहुवचन रूप है, परन्तु सामान्यतः व्यवहार में इसको एकवचन की भाँति ही प्रयुक्त किया जाता है । ऐसा प्रयोग नाटककारों ने

- हम तुम दोनों एक हैं । (वि०च० ३८)

यहाँ प्रयत्न लाघव की दृष्टि से सर्वनामों को एक साथ प्रयुक्त किया है । कहीं परिवर्तन की दृष्टि से भी संयुक्त सर्वनामों की व्यवस्था की गयी है ।

- मैं अपने आप में नहीं हूँ । (कथा० १४७)
- तुम लोगों ने मुझे अपना-अपना मत प्रदान कर विजयी बनाया । (रा० ३५)
- तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिला । (अँधेर० २१)

पुनरुक्त शब्द भी संयुक्त सर्वनाम के रूप में आये हैं, उनको नाटककार ने अर्थ विस्तार तथा अर्थपरिवर्तन की दृष्टि से प्रयुक्त किया है । जैसे -

- और क्या-क्या (अनेक बातें) मालूम है उन्हें भी ? (प०रा०५०)

इसमें सर्वनाम पुनरुक्ति से अभिप्राय बदल गया है । कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत है -

- कौन-कौन आ गया है , अम्बरमाला ? (मा०व०वि०४२)
- मगर किसी-किसी मरीज को चीरा-फाड़ी के पहले बेहोश कर देने की जरूरत होती है । (दुर्गा० २५)
- उन के पास अपने-अपने खण्डित स्वप्न होते हैं । (सेतु० ३६)
- दोनों अपने-अपने कृत्यों के लिए लाजवाब (स्वर्ग० ३४)
- तुम लोगों ने मुझे अपना-अपना मत प्रदान कर विजयी बनाया । (रा० ३५)
- दिन के वक्त कोई-न-कोई नौकर सोता हुआ मिलेगा (अंधा० ६८)
- कोई-न-कोई विपत्ति आनेवाली है । (सुहा० ६०)
- रात-दिन किसी-न-किसी से झगड़ती रहती है (अंगूर० ११८)
- आप-ही-आप आसमान से गिरा हूँ (अम्बा० ६०)

इसमें "आपकी" के स्थान पर "आपको" होना चाहिए था । कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत है -

- वो (वह) बोतल टूटी ही जाएगी (ककरी ४२)
- तैने (तूने) सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली (अंधेर० १७)
- ज्यों-ज्यों तु (तुम) प्रकाश की ओर दौड़ती थी ।(चन्द्र० १०८)
- हम सबों (हम सब) के प्राण काट लिये जायेंगे ? (कोणार्क ३३)
- यह (ये) लड़कियाँ क्या करेंगी (भारत० पृ० ३-४)
- अब मैठीक्य ललाम हुआ भारत कालिमा को यह (ये) दुष्ट यवन यथाशुभ दलन करेंगे । (नील० २२)
- इसमें छमा तो केवल उसकी (उसको) होती है (सिन्दूर० ३५)
- गीतें नहीं रह सकती, इन्हीं (इसी) प्रकाश के लिए तड़प रही थी । (चन्द्र० १४३)
- किसके -किसके (किस-किस के) लिए रोऊँ ? (सिन्दूर० ७६)
- मैं कुछ (कोई) ईंट-पत्थर तो नहीं हूँ । (श्रीचन्द्रा० ११)

छोटे पात्रों को "आप" से सम्बोधित करना भी अनुपयुक्त है । जैसे -

- अब आप बड़ी हो गयी हैं । (आषा० ६०)

नाटकों में सर्वनामों के प्रयोग में भिन्न-भिन्न शैली दिखाई देती है । पुराने तथा ऐतिहासिक ,सांस्कृतिक ,पौराणिक नाटकों में मैं, मैं सर्वनाम का प्रयोग मिलता है, साथ ही "हम" का भी प्रयोग आधुनिक नाटकों की तुलना में अधिक हुआ है । राजा, ऋषि-मुनि आदि पात्रों ने भी हम का अधिक व्यवहार किया है । पुराने नाटकों में "आप" सर्वनाम आदर में अधिक तथा औपचारिकता तथा व्यंग्य में कम प्रयुक्त हुआ है । बड़प्पन की अभिव्यक्ति के लिए उत्तम पुरुष सर्वनाम के स्थान पर अन्य पुरुष का भी प्रयोग किया है । "तू" को भी आधुनिक नाटकों की तुलना में अधिक स्थान मिला है । सर्वनामों का ऐसा प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रसाद

नारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, वृन्दावन लाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर की रचनाओं में मिलता है। प्रसाद के नाटकों में सर्वनाम दोष गिने चुने स्थल पर मिलता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, सी०पी० श्रीवास्तव, लक्ष्मी नारायण मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा के नाटकों में सर्वनाम प्रयोग में त्रुटियों के भी दर्शन होते हैं।

आधुनिक नाटकों में मैं, मैं उत्तम पुरुष सर्वनाम को अधिक महत्व दिया गया है। "हम" का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। "आप" औपचारिक शब्द के रूप में अधिक आया है। "तू" की तुलना में "तुम" अधिक प्रयुक्त हुआ है। इन नाटकों में अनावश्यक सर्वनामों को भी स्थान में रखा है। सर्वनामों का ये प्रयोग लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मी नारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर, गोविन्द वल्लभ पन्त, सुरेन्द्र वर्मा, विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस, मोहन राकेश की रचनाओं में मिलता है।

मणि मधुकर तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटकों में "तू" का अधिक प्रयोग मिलता। औपचारिकता तथा आदर में "आप" शब्द भी व्यवहृत हुआ है।

सर्वनामों की पुनरुक्ति जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, मणिमधुकर के नाटकों में अधिक मिलती है। सर्वनाम के अन्य रूपों का लगभग सभी नाटकों में मिला-जुला प्रयोग हुआ है।

वि शे ष ण

कथन में स्पष्टता तथा प्रस्तुत वस्तुओं से भिन्नता लाने के लिए विशेषण शब्दों को महत्व दिया गया है। जिस नाटक में जितने अधिक विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, वह उतना ही संपन्न प्रतीत हुआ रहा है। विशेषणों के माध्यम कथन अभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्ण तथा गौरव प्राप्त हुए रहे हैं।

- और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी - चौड़ी पूजा करने का प्रेम करती है। (श्रीचन्द्रा० २७)
- तूने स्त्री के हृदय को क्यों इतना कोमल बनाया है ? (दुर्गा० १२७)
- ओह --- बड़ा विलक्षण स्वप्न --- (वि०श० २७)
- मम्मी के छोटे भाई आये थे - बड़े फक्कड़, पियक्कड़ और सैलानी। (अंधी० ६१)
- वे कुछ फूलों से अधिक कोमल और वज्र से अधिक कठोर हैं। (कार्ती० २७)
- + + कला बहुत ही सुन्दर है। (उर्वशी० ८६)
- उफ़, बहुत ही डरावनी शक्ल है। (तिल० ५६-६०)
- + + निहायत बेवड़ी किस्म के लोग + + (सुत० १२२)
- + + बेचारा बड़ा गरीब लगता है। (लौटन० २७)
- बड़े भद्र और सुन्दर जेंटिलमैन। (अंगूर० ७८)
- यहाँ के राजपूत बड़े काफिर हैं (नील० ८)

उपमा भी नाटकों में विशेषण का कार्य कर रही है। ऐसा प्रयोग नाटकों में अतिशय मात्रा में हुआ है। वस्तु का रूप साक्षात प्रकट करने के उद्देश्य से उपमा रूप भी रखा गया है।

- इस्पात की तरह कठोर शरीर, आँखों में एक अपूर्व तेज, मुँह पर विलक्षण कान्ति, शरीर में राक्षसों जैसा अतुल बल ----- (वि०श० १७)
- उसमें कर्तव्य है, पत्थर की तरह सख्त, चट्टान की तरह दृढ़ (जय०३४)
- + + लहू-सी लाल मदिरा सी प्रदान करती है। (उमय० २३)
- लिए छोटा-नन्हा-सलोना - कितना -प्यारा -सा बीज - (तिल० ६१)
- नीलकमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह विस्मय। (आषाढ़० ८)

- देखने भी है क्या, लंगूर की तरह है (जोटन ३०)

- वह बहुत ठिगना और पिलपिला-सा आदमी है। (आधे०१०२)

उपर्युक्त कोटि का विशेषण प्रयोग भी सभी नाटककारों ने किया है, परन्तु कुछ नाटककारों ने जिनमें जयशंकर प्रसाद , उदय शंकर भट्ट, मोहन राकेश, रामवृक्ष बेनीपुरी, सी०पी० श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी आदि ने इसको अधिक महत्व दिया है।

सौन्दर्य वर्णन में विशेषण के वक्रतापूर्ण प्रयोग का काफी योगदान रहा है।

- अधकचरी डेढ़ पसली का मनुष्य, महादेव गंधर्व का सामना कैसे कर सकता है। (विज० ४८)

उपर्युक्त कथन में यदि "अधकचरी डेढ़ पसली का" के स्थान पर "निर्बल" कहा जाता तो पुरुष की हीनता कम प्रकट होती। कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत है जिनमें यदि साधारण विशेषणों को रखा जाता है तो प्रभावशाली अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। जैसे "कुछ" की तुलना में "मुट्ठीभर" अधिक ढंग से आकर्षण उत्पन्न करता है।

- देखते-ही-देखते हमारा नायक किसी बासी धुई बेरहम कोठी में छिपने लगा। (प०रा० २१)
- बूढ़ा-काठ का नायक थे और मोटी तनख्वाहें पाते थे श्रीयुत। (कार्तिकी ५२)

- बाहों से भिनभागी प्रशंसा सुनते-सुनते सुन रानी को घमण्ड किसान से भरे सतपने लगी थी। (कोणार्क ३२)
- इस मुट्ठी भर प्राणी की क्या है। (रजा० ८३)

- वसु सभी चिकने ढंग और तीखे दाढ़ सँवार रहे हैं। (रवीं० ३०)

- शैशव की स्निग्ध स्मृति। (चन्द्र० ५६)

- माँ की हत्या-सी उतार दे दिया । (दुर्गा०७७)
- हम निहायत बेहूदे वक्त से गुजर रहे हैं । (अनुत० ५६)

नाटकों में कहीं-कहीं विरोधमूलक विशेषणों के द्वारा भावाभिव्यक्ति की गई है । इन विशेषण में प्रायः व्यंग्य भाव छिपे हैं ।

- सब को भयानक पुरस्कार मिलेगा । (दुर्गा० ६८)
- उसी सुहागरात की शीतल आग (रक्षा० १७)
- + + + हृदयहीन वीरता का यह अभिमान । (रक्षा० १६)
- उसकी रूखी हँसी में खिलखिलाहट सौंपना पड़ता है । (विजय० ५४)
- यह शान्तिदायक दण्ड यदि स्वामी के कर कमलों से मिले ,
(अजात० ५७)

विशेषणों का कुशलतापूर्ण तथा विरोधमूलक प्रयोग कुछ नाटककारों को अधिक रुचिकर रहा है । जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, वृंदावन लाल वर्मा, उदय शंकर भट्ट तथा रामवृक्ष बेनीपुरी ने इस प्रकार का विशेषण प्रयोग प्रायः किया है । उपेन्द्र नाथ अश्क, सत्यव्रत सिन्हा तथा मोहन राकेश (आधे अधूरे में) के द्वारा भी ये शैली अपनायी गई है ।

व्यंग्य तथा उपहास में विरोधी विशेषणों द्वारा कथन में तीक्ष्णता लायी गयी है । यथा -

- और बनाने में तो सीता जी बस निपुण हैं । (स्वर्ण० २६)

यहाँ " निपुण" विरोधी गुण है जिसको व्यंग्य में प्रयुक्त किया है ।

- मेरे तो कभी उनका मधुर संभाषण हुआ ही नहीं । (कुल० १५)
- वह धोबी और तुम पापी । (अजात० २६)
- कैसे कैसे सज्जन लोग यहाँ बसे हैं । (उद्धा० १)
- + + तुमने नहाने का नादिरशाही हुक्म जारी कर दिया ।
(कोणा० ४३)

विशेषणों द्वारा व्यंग्यात्मक भाव को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा में) जयशंकर प्रसाद (अपने नाटकों में) उपेन्द्र नाथ अश्क (स्वर्ग की झलक कैसी दीदी में) वी० पी० श्रीवास्तव तथा मणि मधुकर ने मुख्यतः प्रकट किया है ।

नाटककारों ने कई बार विशेषणों के प्रयोग से निर्जीव तथा अमूर्त वस्तुओं में सजीवता का संचार किया है जैसे -

- सुप्रीलत से जैसे एक साकार घृणा निकलकर मुझे अपने पीछे लौट चलने का संकेत कर रही है । (ध्रुव० ५६)
- जब मैंने अपनी कुसुमित आशाओं को दो घूंटों के रूप में देखा था ।
(वि०अ० ६१)
- अरे, यह तो दीवार है न, बड़ी जाय है (रक्त० ५८)
- इन सब को स्वर्णदान देती हुई बसन्त के सूर्य की मीठी-मीठी सोनजयी धूप । (अथ० ४४)

निर्जीव , अमूर्त वस्तुओं के साथ सजीव की भांति विशेषण प्रयुक्त करने में जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदय शंकर भट्ट ने बड़ी निपुणता दिखाई है । उपेन्द्र नाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि ने भी नाटक में सजीवता लाने के लिए ऐसा प्रयोग किया है । वी०पी० श्रीवास्तव तथा मणि मधुकर ने भी विशेषणों की यह रीति अपनाई है, परन्तु वे अधिक सफल नहीं हो पाये हैं ।
नाटकों में विशेषण को सशक्त बनाने हेतु संज्ञा रूप में प्रयुक्त किया है । विशेषण का यह रूप लगभग सभी नाटककारों ने व्यवहृत किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के " श्रीचन्द्रावली" नाटक में इसकी प्रधानता है । जयशंकर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, मणिमधुकर ने भी यथास्थान रखा है । -

- हे कृपानिधान, जन रिश्वत देने के पक्ष में नहीं (रस० ४७)
- जा रे हुक्काचोर, किसी दूसरे मुहल्ले में ढुग्गी पीट । (क०सी० ४६)
- मायाविनी तूने सपनों के जाल में मेरे प्रतिशोध की सौगन्ध को रोकना चाहा । (भ०रा० ७८)

- मायामयी, तुम्हारे कौन से शब्द परिणाम हैं (उपा० ७९)

- दयानिधे । बालक का अपराध मार्जनीय है । (भारत० ४६)

- गिरफ्तारी को ठिकाने लगा दिया गया । (बकरी ४६)

- क्या कहता है बेईमान ? (सिन्दूर० ३०)

- हे वीर । मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके हस्त को ग्रहण करती हूँ ।
(कुण० ३२)

- लेकिन कुलनष्ट समझ नहीं पाते । (अमृत० १२६)

कहीं-कहीं नाटकों में गुणों को देखते हुए संज्ञा शब्दों को विशेषण की भाँति भी व्यवहृत किया है । विशेषण का ये प्रयोग नाटककारों ने व्यावहारिकता को दृष्टि में रखते हुए किया है ।

- बड़ी कसाई है , (बकरी ५७)

- यहाँ न आयो बुड्ढा बड़ा कसाई है (भारत०प्र१२)

- बड़ी सती छत्री स्त्री थी । (अंगूर० ४६)

- कल का छोकरा अभिनेता -- मोड़ी, प्रयोता क्या हो गयी ।
(ना०अ०चि० ५४)

नाटकों में कहीं-कहीं सार्वनामिक विशेषणों को महत्व दिया है परन्तु ये विशेषण, शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है । ये वाक्य की आवश्यकता है । इस कोटि के विशेषणों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

- हा । यह वही भूमि है (भारत० भा० २३)

- हाय फेर वही घर के व्यौहार करौ , फेर वही मदानी कहीं जानी कैसे जाते हाय । (नीलदेवी० २६)

- अक्सर वही जानवर उस इनाम को पा लेता है । (पo१० ४१)

- यह उड़ा उड़ा चेहरा, ये बिखरे-बिखरे बाल, ये कटी-कटी सी बातें,
(बया० ६५)

- रूपवती (सुन्दर) नारी जिसका बदन-बदन जगमगाता है । (अन्धा० २७)
- उसकी आग जैसी उज्ज्वल आँखों से डाली हुई लोहू सी लाल मदिरा की प्रदान करती है । (अधा० २३)

इसमें आग जैसी उज्ज्वल उपमा अशोभन प्रतीत हो रही है । कहीं-कहीं व्यर्थ में विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं । जैसे -

- लाज जीती-जागती बेचारी मुर्दा लाश सी पड़ी है । (अन्धा० ८५)

इसमें एक शब्द होना चाहिए मुर्दा या लाश ही ।

कुछ नाटककारों ने नये विशेषणों को अन्य विशेषण शब्दों के न मिलने के कारण भावाभिव्यक्ति के लिए चुना है -

- लेकिन कभी-कभी ऐसे अनचाहे वक्त जिन्दगी में आ ही जाते हैं । (अमृत० ८६)
- मैं तुम्हें सर्वोडी ग्रेजुएट लड़की ----- (स्वर्ग० ६४)
- बड़ी मौकापरस्ती है (करफ्यू ३५)
- अन्त में वही जगमगाती आदी गर । (नाटक० ४६)
- उल्लू बकूतर (रस० ६६)

विशेषणों की असंगति, दोष अधिकांशतः पुराने नाटकों में मिलती है जिनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, तथा उदयशंकर भट्ट के नाटक हैं । नये नाटककारों में मणि मधुकर, लक्ष्मी नारायण लाल, सत्यव्रत सिन्हा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कृतियों में विशेषणों का चटपटा तथा नया प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है । कुछ नाटककारों ने नाटक को संपन्न बनाने के लिए अधिक विशेषणों का सहारा लिया है । उनके नाटकों में भाषा कहीं-कहीं विशेषणों से बोझिल भी हो गयी है, परन्तु कथन की स्पष्टता को देखते हुए ये प्रयोग दोष नहीं लगता । विशेषणों को अधिक महत्व जयशंकर प्रसाद उदय शंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र

नाथ अश्क (जय पराजय में) तथा सुरेन्द्र वर्मा आदि नाटककारों ने किया है। जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा उदयशंकर भट्ट के नाटकों में कहीं-कहीं विशेष्य स्थापित करने में लगातार कई-कई विशेषण आ गये हैं, जिनमें विशेष्य लुप्त हो गया है। इन नाटककारों ने अधिकतर एक या दो विशेषणों को विशेष्य के साथ प्रयुक्त किया है। जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में विशेषणों का बहुलतापूर्ण प्रयोग भी काफी हुआ है। जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में विशेषणों का आवृत्तिमूलक प्रयोग भी मिलता है। उपमा विशेषण रूप में सभी नाटककारों ने प्रयुक्त किया है। विशेषणों के आधिक्य के कारण इन नाटकों में साहित्यिकता अधिक आ गयी है।

कई नाटककारों ने विशेषणों को महत्त्व तो दिया है, परन्तु उनकी अतिशयता नहीं की है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्ट जी०पी० श्रीवास्तव के नाटकों में विशेषणों की अधिकता से विशेष्य कहीं लुप्त नहीं पाया है। अधिकतर एक-दो विशेषणों से विशेष्य को स्पष्ट किया है। इनके नाटकों में कहीं-कहीं विशेषणों का दोषपूर्ण तथा अटपटा प्रयोग भी मिलता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की "श्रीचन्द्रावली" नाटिका में विशेषण संज्ञा रूप में स्थल-स्थल पर आये हैं।

वृन्दावन लाल वर्मा तथा मणिमधुकर की कृतियों में विशेषणों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इनके नाटकों में विशेषणों की भरमार न होकर कथन की स्पष्टता को देखते हुए विशेषणों को व्यवस्थित किया है। व्यंग्यात्मक स्थलों पर विशेषण अपना महत्त्व प्रकट कर रहे हैं। इनके नाटकों में सभी प्रकार के विशेषण आये हैं। प्राय: एक दो विशेषण विशेष्य के साथ रखे गये हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त, उपेन्द्र नाथ अश्क तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर ने विशेषणों का आधिक्य नहीं रखा है। जहाँ कथन में अधिक स्पष्टता लानी हुई है या प्रभावशाली बनाना हुआ है, वहाँ कई विशेषणों को व्यवस्थित किया है अन्यथा एक दो विशेषण कथनों में आये हैं। कहीं-कहीं बिना विशेषण के अभिव्यक्ति हुई है। इन नाटककारों ने भाषा को व्यावहारिक भाषा

के निकट का रखा है, जिसमें अधिक विशेषणों को उतना उपयुक्त नहीं समझा है। उपमा को विशेषण रूप में सभी नाटककारों ने रखा है। विशेषण भी नाटक की भाषा को देखते हुए सामान्य बोलचाल वाले अधिकांशत: प्रयुक्त हुए हैं। संज्ञा शब्दों से बने विशेषण तथा विशेषण से बने संज्ञा रूप गिने-चुने स्थल पर आये हैं। मोहन राकेश की कृतियों में विशेषण कथावस्तु को देखते हुए रखे गये हैं। " आषाढ़ का एक दिन तथा लहरों के राजहंस में भाषा को देखते हुए गंभीर तथा साहित्यिक कोटि के विशेषण आये हैं। " आधे अधूरे " के विशेषण एक तीव्र आघात सा करते हैं। प्रसाद के नाटकों की भाँति इनके नाटकों में विशेषणों की भरमार नहीं है। अधिकतर एक-दो विशेषण व्यवहृत हुए हैं। विशेषणों का कुशलतापूर्ण प्रयोग भी किया गया है। कई बार विशेषणों का अनोखा प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। सभी प्रकार के विशेषण रूप व्यवहृत हुए हैं।

सत्यव्रत सिन्हा तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ,लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में कोई-कोई बिल्कुल नया विशेषण आया है। विशेषणों का अटपटा रूप भी दिखाई देता है। इन नाटककारों ने विशेषणों को अधिक महत्व नहीं दिया है, परन्तु विशेष्य की स्पष्टता के लिए गिने-चुने स्थलों पर कई विशेषणों को एक साथ व्यवस्थित किया है। अधिक सशक्त अभिव्यक्ति के लिए विशेषणों के साथ प्राय: प्रविशेषणों को नियुक्त किया है। इन नाटककारों की तुलना में विपिन कुमार अग्रवाल तथा मुद्राराक्षस के नाटकों में विशेषणों की संख्या अल्प है। अधिकतर एक विशेषण या विशेषण के साथ ~~प्रतिविशेषण~~ प्रविशेषण आया है। गिने-चुने स्थलों पर बिम्ब योजना में कई विशेषण एक साथ आ गये हैं। पुनरुक्त विशेषणों की संख्या भी अल्प है। अधिकांशत: साधारण विशेषणों को महत्व दिया है।

क्रिया

शैली सौन्दर्य की दृष्टि से क्रिया का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। क्रिया के प्रयोग से पूरा वाक्य प्रभावित होता है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार " काव्य का काव्यत्व ही क्रिया के औचित्य पर आधारित है।

नाटकों में भी क्रिया की विविधता भावाभिव्यंजना में सहायक हुई है । कई बार नाटकों में एक से ही क्रिया शब्दों से भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हुई हैं । इन क्रिया शब्दों के बोलने के ढंग से अर्थ प्रकट हुआ है ।

लाओ, जाओ, करो आदि क्रियाओं को आदेश देते हुए प्रयुक्त किया है । आदेश में इनको कठोरता तथा गंभीरता से बोला गया है -

- दियासलाई की डिबिया लाओ । (अंजो० ५६)
- जाओ, लिवा लाओ । (अजात० ५०)
- मेरी ओर से राज्य वापिस करने की लिखा पढ़ी करो । (कणार्पी०४५)
- सेनापति ! देखो उन कायरों को रोको । (चन्द्र० १०२)
- और नमस्कार जताये करो (र० ८३)
- पकड़ो इसे ले जाकर दक्षिण के अंधकूप में छोड़ आओ । (लहरों०५६)
- इसको [illegible] में पकड़ो । (भारत० भा० २६)

अधिकांशत: आदेश प्रकट करनेवाली क्रियाओं को जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, वृंदावन लाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क तथा मोहन राकेश ने (लहरों के राजहंस में) नाटकों में स्थान दिया है ।

आग्रह तथा सम्मति में भी आदेशात्मक क्रियाओं की भाँति क्रियाओं का व्यवहार हुआ है, परन्तु इनमें क्रिया-शब्दों को कोमलता से बोला गया है, जिससे भिन्न भाव व्यक्त हुए हैं । जैसे -

आग्रह में -

- जल पी लो (अजात० ७१)
- जरा धीरे-धीरे बोलो । (कुम० १४)
- दो घड़ी हमारे यहाँ आ जाया करो । (भारत०प्र०७१)
- चलो ---- अभी-अभी चलो (मुक्ति० ३६)
- आओ प्रकट हो, मुँह दिखाओ ।(शीचन्द्रा० २८)
- मेरे पाँव में स्नेह की जंजीर मत डालो । (उषा० ३३)

सम्मति में -

- दूसरों की सेवा कर । सच बोल । त्याग कर । (करी०२४)

- जाइए विदूषक जी, आप इधर कैसे टूट पड़े । (वि०अ०२८)
- देवी जी, क्षमा, उग्रमूर्ति इस अपराधिनी को छाया प्रदान कीजिए ।
(अम्ब० ८)

हास्य-व्यंग्य में क्रिया का यह रूप उन नाटकों में व्यवहृत हुआ है, जिनमें व्यंग्यात्मक भाव अधिक है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा में) जी०पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, उपेन्द्र नाथ अश्क (स्वर्ग की झलक व अंजो दीदी में) रामवृक्ष बेनीपुरी तथा गोविन्द वल्लभ पन्त के नाटकों में इनको अन्य नाटकों की तुलना में अधिक स्थान मिला है । प्रताप नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, मणि मधुकर, सत्यव्रत सिन्हा ने भी भावस्वभाव व्यक्त करनेवाली क्रियाओं को व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति में तीक्ष्णता लाने के लिए व्यवहृत किया है । नाटकों में विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए क्रिया की द्विरुक्ति हुई है । यदि इन क्रियाओं की द्विरुक्ति के स्थान पर एक क्रिया प्रयुक्त होती है तो वह अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, जो नाटककार करना चाहता है । जैसे -

- महारानी भागो । (जय० ११६)
- भागो- भागो । वह राजा का अहेरी चीता पिंजरे से निकल कर भागा है । (चन्द्र० ६३)

इसमें एक बार क्रिया प्रयोग से भावात्मकता नहीं व्यक्त हुई है, इसकी सफल व्यंजना क्रिया की द्विरुक्ति से हुई है ।

क्रोध के आधिक्य को क्रिया की आवृत्ति से प्रकट किया है -

- बंद करो । बंद करो यह पिशाच लीला ।(प०रा०७८)
- जाओ, जाओ लेकिन सावधान । मेरे पौरुष का कंकल पूर्ण हुआ है । (प०रा० ५२)
- निकाल दो, निकाल दो, मैं स्वयं जाती हूँ । (वि०अ० ७७)

भय तथा घबड़ाहट की अधिकता को क्रिया की द्विरुक्ति से व्यक्त किया है । -

- देखिए,देखिए, वह तो बढ़ती ही चली आ रही है । (दुर्गा०१०४)
- (घबराकर) चलो, चलो । (अंजो० ६४)
- भागो-भागो । वह राजा का अहेरी चीता पिंजरे से निकलकर भागा है, भागो, भागो। (चन्द्र० ६३)

कई बार क्रिया की द्विरुक्ति से आग्रह भी व्यक्त हुआ है -

- उठिए, उठिए, महाराज । (अजात० ५८)
- आइए, आइए, मित्र बिंदु । (अंगूर० ३७)
- बैठिए बैठिए (माधा० ७)
- आइये- आइये अंदर । (आधे० ४६)

इनमें एक क्रिया से आग्रह भाव व्यक्त नहीं होते । क्रिया की द्विरुक्ति तिरस्कार तथा उपेक्षा के भाव को प्रकट करने के लिए भी हुई है ।

- चल-चल बन लिया क्रिकेट का कप्तान (कैदो० ५६).
- हट जाओ ---- हट जाओ -- मेरे साथ विश्वासघात । (मुक्ति० १४४)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर व उपेन्द्रनाथ अश्क ने क्रिया की द्विरुक्ति से विशिष्ट अभिप्राय प्रकट करने में अधिक रुचि ली है । लक्ष्मी नारायण मिश्र, गोविन्द वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा लक्ष्मी नारायण लाल ने भी क्रिया की द्विरुक्ति को कहीं-कहीं महत्व दिया है ।

भावाभिव्यक्ति की प्रभावशाली व्यंजना के लिए क्रिया पदों का मुहावरात्मक व्यवहार नाटककारों ने किया है । इन मुहावरात्मक प्रयोग के स्थान पर सामान्य क्रियापदों से भावों की सशक्त अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है । जैसे -

- वह बहुत नाराज हो गये ।
- वह आग बबूला हो उठे ।

इन दोनों वाक्यों में पहले वाक्य के क्रियापदों से क्रोध का उतना उग्र रूप नहीं प्रकट हो रहा है, जितना कि दूसरे वाक्य में मुहावरात्मक रूप से हो रहा है ।

नाटकों में क्रोध की आवेशात्मक स्थिति में क्रियापदों का मुहावरात्मक प्रयोग अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है । उदाहरण -

- आपकी मैं सारी कलई खोल दूंगा । (उल्ट० १२७)
- इसीलिए उस पर खार खाए बैठे हो (दुर्गा० ७०)
- वह आग बबूला हो उठे । (कुली० ३५)
- आप महज घास छीलते रहे । (अमृत० ५८)
- आयुपर्यन्त सभी कुँआ झुलाता रहेगा । (स्कं० ६)
- आ जायँ मेरे सरीखे पांच तो हवा बिगाड़ दऊँगी ।(काशी० ७४)

उपर्युक्त मुहावरात्मक रूप के स्थान पर सामान्य क्रिया द्वारा अभिव्यक्ति की जाती तो अधिक आकर्षक न बन पाती ।

शोक , कष्ट तथा वेदनापूर्ण स्थितियों की गहरी अनुभूति के लिए नाटककारों ने मुहावरात्मक क्रिया रूप का चयन किया है । इसमें इन क्रिया पदों के स्थान पर अन्य क्रिया रूप व्यवहृत हो सकते हैं, परन्तु उनसे प्रभाव में अंतर आ जाता । जैसे -

- कारागार की किसी अंधेरी कोठरी में एड़ियां रगड़ -रगड़कर मरे ? (सेतु० ३४)

इसमें एड़ियां रगड़-रगड़कर मरे' के स्थान पर' बहुत बुरी दशा में मरे' यह भी हो सकता था, परन्तु इससे कष्ट के आधिक्य की अनुभूति नहीं हो सकती, जितनी मुहावरात्मक प्रयोग से हुई है ।

कुछ अन्य उदाहरण -

- तब हमारा-तुम्हारा प्यारा हिमालय भी -- त्रिगर्त भी --- मटियामेट हो जायेगा । (प०रा० ४६)

- तुम्हारी आँखें भर आई हैं । (अंगूर० ६३)

भय, चिन्ता व घबराहट के आधिक्य की प्रभावशाली व्यंजना में मुहावरात्मक क्रिया रूप का काफी योगदान रहा है -

- + + किधर भागूं, हाथ-पाव फूल रहे हैं (जय० ११६)

इसमें क्रिया रूप, भय की शिथिलता को व्यक्त करने में काफी समर्थ रहा है । हाथ-पाँव फूल रहे हैं' के स्थान पर यह भी कहा जा सकता था कि, बड़ी घबराहट हो रही है,परन्तु इस रूप से शिथिलता की अनुभूति नहीं होती थी, जो उपर्युक्त क्रिया से हुई है।

- याद आते ही कलेजा मुंह को आने लगता है । (वि०ज०पु०)

- मैं तो जैसे अपनी सुधबुध खो बैठा हूं । (ना०क०वि० ४६)

नाटकों में क्रिया के मुहावरात्मक रूप द्वारा उत्साह भाव में, ओजस्विता का सशक्त प्रदर्शन हुआ है । -

- मेवाड़ की सिंहनियों से शत्रुओं के दांत खट्टे हो गये हैं । (जय०३८)

- कब्र में उसके पुरखे न हिल पड़े तो मूंछ मुड़ा दूंगा । (झांसी०९१२)

नाटककारों ने व्यंग्य भाव में तीक्ष्णता लाने हेतु मुहावरात्मक क्रिया रूप की सहायता ली है ।

- अपनी शासन की सफलता के ढोलपीटते हैं (ना०स०वि० ८०)
- मोटा भाई बना-बनाकर मूंड लिया । (भारतभा०२९)
- आप तो आगे कैसे पीछे बैठकर तीर (स्वर्ग० २३)
- यहाँ की औरतें बहुत सिर उठाने लगी हैं (कार्शी० ४६)

कुछ नाटककारों का मुहावरात्मक क्रिया प्रयोग की ओर अधिक रुझान रहा है। इन नाटककारों ने यह प्रयोग प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा व श्रीचन्द्रावली) बद्रीनाथ भट्ट, बी०पी० श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी , वृंदावन लाल वर्मा तथा मणि मधुकर ने अपने नाटकों में इसी शैली को अधिक महत्व दिया है। उपेन्द्र नाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण मिश्र, मोहन राकेश (आधे अधूरे में) तथा विष्णु प्रभाकर के नाटकों में मुहावरात्मक क्रिया रूप का सहारा लिया है, परन्तु ये क्रिया रूप अधिक नहीं व्यवहृत हुए हैं। सुरेन्द्र वर्मा, सत्यव्रत सिन्हा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि नाटककारों ने अभिव्यक्ति के लिए ये क्रिया रूप काफी कम अपनाये हैं। विपिन कुमार अग्रवाल तथा मुद्राराक्षस की रुचि इस प्रकार के प्रयोग की ओर न के बराबर रही है।

नाटकों में कई बार क्रिया के माध्यम से भावराशि की अनुभूति कराई है। इनमें क्रिया का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रयोग हुआ है। यदि इन क्रियाओं के स्थान पर सामान्य क्रिया व्यवस्थित की जाती तो, भाव की अतिशयता की व्यंजना न हो पाती। क्रोध के आधिक्य का प्रदर्शन खाल उधेड़ दूंगा से जितना हुआ है वह" बहुत मारूंगा" से नहीं होता। इनमें अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों का वास्तविक अर्थ न लेकर दूसरा अर्थ लिया गया है।" खाल उधेड़ दूंगा" से वास्तव में व्यक्ति खाल नहीं उधेड़ डालेगा, बल्कि इससे व्यक्ति ने अपने क्रोध के उग्र रूप को प्रकट किया है। नाटकों में भावराशि प्रदर्शित करनेवाले क्रिया रूप काफी प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण -

क्रोध के आधिक्य में क्रिया रूप किस प्रकार से व्यवहृत हुए हैं।

- कसम कुरान की खाल उधेड़ दूंगा । (उट० २५)
- पश्चाताप की आग में मेरा हृदय जल रहा है । (रुजा० १०)

- इस कमबख्त का मलीदा कर दूँ । (दुर्गा० ३४)
- मैं आज इसकी जान निकाल दूँगा । (सुगी० २८)
- मैं तुम्हें अपनी सबल बाहुओं में बाँधकर कचना चूर कर दूँगा । (स्वप्न० २८)
- मैं खोपड़ा तोड़कर पाँवों में डाल दूँगा । (रस० १५)
- जो अपनी जोरू को डाँट डाँट के खा गया । (मा०ल०प्र० २१)
- पता नहीं कब किसे नोच लेगा कब किसे फाड़ खायेगा । (आपे० १०२)

इसमें खाल उधेड़ दूँगा, मलीदा कर दूँ, जान निकाल दूँगा, कचनाचूर कर दूँगा और डाँट-डाँट के खा गया, फाड़ खायेगा क्रिया रूपों से क्रोध की अतिशयता व्यक्त हुई है ।

मानसिक वेदना तथा कष्टपूर्ण स्थितियों की व्यंजना में, क्रिया का, यह रूप काफी सहायक हुआ है ।

- ओह ध्यान आते ही हृदय चूर-चूर हो जाता है ।(वि०श०७६)
- मेरे कलेजे को टुकड़े-टुकड़े कर रही है । (उलट० ११८)
- कष्टों के मारे हड्डियाँ घुल हुई जा रही है । (फाँसी० ७०)
- इसके लिए महेन्द्र घर के अंदर रात-दिन छटपटाता है ।(आपे० ६६)
- विधाता ने उसे मसलकर रख दिया (सुगी० २५)
- ओह लगता है मेरा सिर फट जायगा । (माया० ५९)

इनमें क्रिया शब्दों का शाब्दिक अर्थ न प्रकट होकर भिन्न अर्थ व्यक्त हुआ है, जिसने भाव की स्थिति को व्यक्त किया है । प्रसन्नता की अतिशयता को, क्रिया के सामान्य रूप की तुलना में अत्युक्तिपूर्ण रूप से अधिक सशक्त रूप में व्यक्त किया है ।

- पर भी इसी भरोसे फूला जाता है (श्रीचन्द्रा० ४७)
- उनको देखकर प्रसन्नता से मेरी छाती फूल जाती है (जय० २६)
- जब मैंने उसके सामने तुम्हारा नाम लिया तो वह गदगद हो उठे । (सुगी० ४५)
- मेरे हृदय में गुदगुदी उठ रही है । (वि०श० ५२)
- इन्हें देखकर मेरा शरीर पुलकित है (यश० ६३)

प्रसन्नता में उपर्युक्त क्रिया पदों के स्थान पर सामान्य क्रिया" अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है" भी व्यवहृत हो सकती थी, परन्तु भाव की प्रभावशाली अभिव्यक्ति न होती ।

अत्यधिक विक्षुब्ध स्थिति के प्रदर्शन में भी क्रिया का सामान्य रूप नहीं व्यवहृत हुआ है । विक्षुब्ध होने के लिए अत्यधिक विक्षुब्ध हो गया हूँ की बजाय "धुन धुन हो बैठा" को अधिक प्रभाव डालने की दृष्टि से अपनाया गया है । इस स्थिति में व्यवहृत क्रिया रूप उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है :-

- उसने भरी-भरी नजर से पुतली को देखा और धुन-धुन हो बैठा ।
(रस० ३२)
- वह उस लड़के की सुन्दरता और सरलता पर अपने को खो बैठी ।
(सिन्दूर० ७२)

भावराशि के प्रदर्शन में क्रिया का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (श्रीचन्द्रावली में) जयशंकर प्रसाद, जी०पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, वृंदावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्र नाथ अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश तथा मणि मधुकर के नाटकों में अधिकतर हुआ है । लक्ष्मी नारायण मिश्र, सुरेन्द्र वर्मा, सेतुबंध में तथा लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में क्रिया का उपर्युक्त रूप अपेक्षाकृत कम व्यवहृत हुआ है । विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस ,सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और सुरेन्द्र वर्मा के (नायक खलनायक, विदूषक) नाटकों में उपर्युक्त क्रिया रूप बहुत कम अपनाया गया है ।

नाटकों में निर्जीव ,अमूर्त वस्तुओं तथा भावों में सजीवता प्रकट करने के लिए उनके साथ सजीव की भांति क्रिया प्रयोग किया है । नाटकों में ऐसे प्रयोग से शैली-सौन्दर्य की वृद्धि भी हुई है ।

- उन्हीं के कनार-कनार राजमुकुट हमारे चरणों की धूल चाटने लगते हैं । (अम्बा० २७)

यहाँ "राजमुकुट" निर्जीव वस्तु के लिए चाटने लगते हैं सजीव की भांति क्रिया प्रयोग किया है ।

- जिससे धरती धर्रा उठेगी (कोणार्क ५३)
- आतंक के हाथों पकड़ी हुई धरा सिसकेगी ।(कोणार्क ७०)
- परिस्थितियां हाथ फैलाये अपना दाय मांग रही है(सेतु० ३३)
- आफत करम ठोंक के रचि गये (उल्ट० २३)
- तभी तो मौत उसके लिए मुंह बाये खड़ी रहती है ।(रक्षा० ५०)
- + + मेरी आंखों में उसके हृदय का सत्य झांकता दिखाई देता है ।
(आषाढ़० ३७)

- कुल, समाज और धर्म की लाज को धोकर पी जाए । कुणा० ४४)

- यौवन पुकार-पुकार कर कहता है । (शपथ० १)

- स्त्रियों की गरिमा को धूल में लोटता हुआ देखकर --- (स्कंद० १२१)

उपर्युक्त शैली जयशंकर प्रसाद, सी०पी० श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश को अधिक प्रिय रही है । रामवृक्ष बेनीपुरी ,सुरेन्द्र वर्मा ने भी क्रिया के इस प्रयोग को महत्व दिया है । मणि मधुकर ने अपने नाटक में क्रिया के इस रूप को काफी अपनाया है,परन्तु नाटक में यह क्रिया प्रयोग कहीं-कहीं प्रभावशाली नहीं बन पाया है । नाटकों में सौन्दर्य निष्पत्ति तथा प्रभाव की दृष्टि से क्रिया का वक्रतापूर्ण प्रयोग हुआ है । सामान्य क्रिया की तुलना में वक्रतापूर्ण प्रयोग में अधिक आकर्षण उत्पन्न करने की क्षमता प्रकट हुई है । उदाहरण -

- उसी की गरदन उड़ाने पर तुले हुए हैं । (दुर्गा० १०१)

इसमें 'मारने का बहुत कोशिश कर रहे हैं' भी कहा जा सकता था, परन्तु इसमें उतना आकर्षण नहीं है जितना 'गरदन उड़ाने पर तुले हुए हैं' में है ।
वोट के हाथ' धुल रहे हैं' क्रिया जितनी प्रभावक है उतनी' ले रहे हैं' क्रिया नहीं ।

- अब वोट धुल रहे हैं (कारी ४७)

कुछ अन्य उदाहरण -

- यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा । (आषाढ़० ४८)

- इन धूर्त अंग्रेजों ने सारा राज्य निगल लिया । (झाँसी० ४३)

इन वाक्यों में' उखड़ जाऊँगा' के स्थान पर' अलग हो जाऊँगा' तथा' निगल लिया' के स्थान समाप्त कर दिया या छीन लिया' भी व्यवहृत हो सकता था परन्तु इससे प्रभाव तथा सौन्दर्य में अंतर आ जाता ।

- ओह, मेरा तो सिर घूम रहा है । (स्कंद० २७)

- मस्तिष्क में क्यों खलबल मची हुई है (ध्रुव० ६६)

इसमें' चकराने' की बजाय' घूम रहा है' अधिक प्रभाव डालने के लिए रखा है ।'बेचैनी' के लिए' खलबल मची है' पद अधिक दशा को व्यक्त कर रहा है ।
इसी प्रकार' समाप्त होने' के लिए' जल उठी' क्रिया को प्रभाव की दृष्टि से चुना है ।

- अत्याचार, पाप, क्रूरता - सब धू-धू करके जल उठेंगे । (जय० १३७)

भाग्य के साथ "उदय हुआ" क्रिया का व्यवहार सामान्य क्रिया की तुलना में अधिक उपयुक्त लगा है ।

- मेरे ईश्वर क्या मेरे भाग्य उदय हुए । (भारत० पृ०८०)

वक्रतापूर्ण क्रिया प्रयोग की ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर तथा मणिमधुकर की दृष्टि अधिक रही है । गोविन्द वल्लभ पन्त, मोहन राकेश तथा विष्णु प्रभाकर ने भी वक्रता में सौन्दर्य मानकर क्रिया का वक्रतापूर्ण व्यवहार किया है । नाटककारों ने विशेष क्रिया की अनुभूति कराने के लिए अनुकरणात्मक क्रिया का चयन किया है । "कुत्कर चीखें" के लिए अनुकरणात्मक क्रिया द्वारा व्यक्त अभिव्यक्ति हुई है । यह अनुकरणात्मक क्रिया के स्थान पर सामान्य क्रिया रखी जाती तो, क्रिया की अनुभूति कम हो जाती ।

- किटकिटाकर चीखने का मानो उन्हें पता नहीं । (कुत्र० २६-२७)

- बल्कि छटा-छटाकर चीख रहे (जन्म० ६)

क्रोध में भुनभुनाना तथा चिड़चिड़ाना अनुकरणात्मक क्रिया द्वारा एक विशेष प्रकार की क्रोध की क्रिया की अनुभूति कराई है ।

- तुमने भुनभुनाते हुए पूछा था । (तिल० ७१)
- वह तथाकथित आम आदमी सुबह उठा, चिड़चिड़ाता हुआ । (रस०22)

दयनीयता प्रकट करते हुए 'गिड़गिड़ा' शब्द ने अन्य क्रिया शब्दों की तुलना में अधिक सशक्त व्यंजना की है ।

- मेरे सामने गिड़गिड़ा रहा था (अमृत० ७८)

'छटपटाना' क्रिया द्वारा व्यथा की अधिकता व्यक्त की है ।

- इसके लिए महेन्द्र घर के अंदर रात-दिन छटपटाता है (आधे०२६)

आवेश को 'फड़फड़ा' तथा जंजीरों के बजने की क्रिया को 'खनखना' अनुकरणात्मक क्रियाओं से प्रकट किया है

- जैसे अंधकार के कैदी वृक्षों में पक्षियों की जंजीरों पर सूरज की चोट पड़ते ही वे खनखना उठती हैं । (प०रा० ४५)

- हमारी कलाही, मारने के लिए हम और मरने के लिए सिर फड़फड़ा रहे हैं । (कार्ती० ८७)

पक्षियों के पंखों को हिलाने की क्रिया की सूचना अनुकरणात्मक क्रिया द्वारा दी गयी है -

- कभी पंछी के जोड़े ने पंख फड़फड़ा दिए । (लहरों० ३६)

चिड़ियों के बोलने की क्रिया को सजीव बनाने के लिए "चहचह" क्रिया को व्यवस्थित किया है -

- + + चिड़ियों की चहचह में दूर से सुनाई पड़नेवाली कोयल की कुहू ।
(अम्बा० १)

बैल के बोलने को बाँ-बाँ अनुकरणात्मक क्रिया से स्पष्ट किया है -

- बैल की तरह बाँ-बाँ करके चिल्लाओगी । (रस० ६१)

अनुकरणात्मक क्रिया द्वारा भावाभिव्यक्ति में कुछ नाटककारों की रुचि अधिक रही है । इन नाटककारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'श्री चन्द्रावली' में, जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में, जगदीश चन्द्र माथुर ने 'पहला राजा' में, रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपनी कृति 'अम्बपाली' तथा मोहन राकेश ने "आधे अधूरे" नाटक में अनुकरणात्मक क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने का प्रयास किया है । लक्ष्मी नारायण मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा, हरिकृष्णप्रेमी, मणिमधुकर, सुरेन्द्र वर्मा आदि नाटककारों ने अपेक्षाकृत इन क्रियाओं की अल्पता रखी है । सत्यव्रत सिन्हा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विपिन कुमार अग्रवाल तथा मुद्राराक्षस ने इन क्रियाओं से अपने नाटकों को अछूता तो नहीं रखा है, परन्तु इनका काफी कम प्रयोग किया है ।

नाटकों में प्राय: कर्ता स्वयं कार्य करता है, अत: सामान्य क्रियायें कर रहा हूँ, जा रहा हूँ आदि क्रियायें व्यवहृत हुई हैं । कई बार कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी अन्य से करवा रहा है, वहाँ क्रिया का रूप विशिष्ट रहा है । जैसे -

- महाराज प्रसेनजित से तुम्हारे अपराध को क्षमा करा दूँगी । (अजात० ११६)
- इनमें से किसी से भी क्षणभर में करा दूँगी ।(दुर्गा० ४३)

इनमें "करा दूँगी" से यह व्यक्त किया है कि पात्र ने किसी अन्य से कार्य कराया है ।

कई बार कार्य किसी दूसरे से कहलाकर कराया गया है, वहाँ धातु में "वा" लगाकर अभिव्यक्ति हुई है । जैसे -

- हाँ, मुन्नी और दूसरे नौकरों को भी बुलवा लूँ । (कैदी० ७६)
- तुम महारानी जी से कहकर एक अच्छी सी कटार उन्हें दिलवा दो ।
(दुर्गा० ४१)
- मैं अभी इन्हें देश-निर्वासन का दण्ड दिलवाऊँगी ।(रक्षा० २४)

बद्रीनाथ भट्ट, जयशंकर प्रसाद, जी०पी० श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क ,लक्ष्मी नारायण मिश्र, मणि मधुकर ने उपर्युक्त क्रिया रूप द्वारा भी अभिव्यक्ति की है ।

विभिन्न भाव, स्थिति के प्रकटीकरण में नाटककारों ने क्रिया के अलग-अलग रूप प्रयुक्त किये हैं ।

नाटककारों ने जहाँ कोई इच्छा प्रकट की है, वहाँ सार्थक क्रिया के साथ "चाहना" क्रिया की व्यवस्थिता किया है जैसे -

- एक तो वह अनवरत झूठा मुकदमा चलाना चाहता था । (उलट०८)
- परन्तु मैं केवल इतना जानना चाहता था ।(जानराढ़० ५३)
- लज्जा की बात ढाँपना चाहती हैं । (युगे० २५)
- मैं शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्ष्य पर पहुँचना चाहती हूँ । (अपरा० २१)
- मैं दौड़ना और बैठना चाहता हूँ । (कृत० ५९)

इसमें "चाहता", "चाहती" से इच्छा व्यक्त हुई है ।

आकस्मिक अभिव्यक्ति के लिए धातु रूप के बाद उठना, बैठना, पड़ना आदि क्रियाओं को रखा है । आकस्मिकता को व्यक्त करने में है, था, सहायक क्रियाओं को प्राय: नहीं रखा है, क्योंकि इस क्रिया-रूप से सहज अभिव्यक्ति हो रही है।उदाहरण -

- रघुवंशमणि मुस्करा उठे । (दश० ११४)
- मेरा दिल जल उठा । (भारत०प्र०७५)
- उसने भरी-भरी नज़र से पुतली को देखा और गुम-सुम हो बैठा ।
(रा० ३२)
- वह उस लड़की की सुन्दरता और सरलता पर अपने को खो बैठी ।
- मैं अचानक उसे मुस्कराकर सामने से आती देखकर (सिन्दूर० ७२)
से उछल पड़ा । (लहरों ३६)

संशय या संदेह के भाव को व्यक्त करने के लिए धातु रूप के साथ सकना व पाना क्रिया का व्यवहार किया है ।" सकना या पाना" क्रिया के अभाव में इस भाव की अभिव्यक्ति अस्पष्ट हो सकती है ।

- मैं सुखी हो सकूँगा । (वि०आ० ६२)
- इन्द्र का भी मन डाँवाडोल हो सकता है । (रस० ३२)
- वह शरीर और मन को एक पाँत में बिठला सकी । (मा०दी०६३)

कभी-कभी इस क्रिया रूप से संदेह की बजाय निश्चितता व्यक्त हुई है -

- मैं दस-पाँच दिन भी नहीं जी सकता । (सिन्दूर० ४७)
- आत्महत्या करके ही हम जीवन पा सकेंगे । (अपरा० ७६)
- + + बाहर भी नहीं हो पाता । (आत० ४२)
- मेरी बिना आज्ञा वह कुछ नहीं कर सकती ।(मुक्ति० ५१)

इनमें" नहीं" तथा करके ही शब्दों से क्रिया रूप ने प्रभावित होकर दृढ़ता की अभिव्यक्ति की है ।

नाटकों में कभी-कभी बात को सीधा नहीं कहना चाहता है तो बात की आवश्यकता या दबाव का रूप देकर व्यक्त किया है । जैसे" जाना है" न कहकर" जाना होगा" कहा है। या जाना चाहिए

- अब तुमको भी वहाँ जाना होगा । (मा०रा० भा०७६)
- उन्हें दण्ड मिलना चाहिए । (कुव०६२)
- मगधपति का स्वागत भी तो साधारण राज-सभा से नहीं होना चाहिए । (अम्बा० ८६)
- तुम्हें तो सेना में कैप्टन या छोटी मोटी लैफ्टिनेन्ट हो जाना चाहिए । (बंदी० ५४)
- + + + जो उठा लेना चाहिए था । (अमृत० ४७)

कार्य की समाप्ति की सूचना देने के लिए लेना, जाना, चुकना आदि से पूर्व धातु रूप व्यवहृत किया है, इनमें लेना, जाना, चुकना आदि का भूतकाल रूप प्रयुक्त हुआ है ।

- सारी रात उन्होंने घूम-घूमकर बिता दी । (कप० ६६)
- मुझे अपने घर की दुर्गन्धि झाड़-बुहारकर फेंक दिया । (केसूर० ४६)

- लोगों के दिल से हमदर्दी उठ गई । (उत्तर० ७६)
- हमारे नामी-नामी योद्धा भी स्वर्ग की राह ले चुके हैं । (दुर्गा० ११६)
- आप लोग तो अमावस्या के अंधेरे में पहले रास्ता नाप चुके हैं ।
(प०रा० २१)

कार्य के निरंतर होने का आभास नाटककारों ने सर्वत्र ऐसा ही किया है, जिसमें रहना, जाना क्रियाओं के पूर्व में वर्तमान कृदन्त रूप रहा है । उदाहरण -

- फंदा धीरे धीरे कसता जा रहा है । (अमृत० १७)
- मैं अपनी आत्मा बेचती रही हूं । (सिन्दूर० १११)
- दुबली होती जा रही हूं । (आषाढ़० ५३)
- जिसमें होकर बूंद-बूंद रिसता रहा है । (प०रा० ६२)
- जिसके पीछे बुढ़िया भटकाता फिरता है । (आधे० ७१)
- घर पर नरक बनता चला गया । (अंधो० ६०)

उपर्युक्त क्रिया रूप नाटकों में सर्वत्र व्यवहृत हुए हैं क्योंकि ये सामान्य क्रिया रूप हैं । नाटकों में क्रिया के रूप में कई कारणों से परिवर्तन भी आया है । क्रिया का लिंग नाटकों में संज्ञा के अनुसार परिवर्तित हुआ है । स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग संज्ञा के साथ पुल्लिंग क्रिया रूप व्यवहृत हुए हैं । लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तन सभी नाटकों में हुआ है, जो सामान्य परिवर्तन का आधार है । इसके अतिरिक्त भी कई आधारों पर क्रिया में परिवर्तन लाया गया है ।
नाटकों में जहां स्त्री-पुरुष दोनों के विषय में बात की गयी है, वहां क्रिया का पुल्लिंग रूप रहा है ।

- यह मेरी चंपा के फूल - जैसी बच्ची और (पुत्र को प्यार करती हुई) गुलाब के फूल जैसा बच्चा हीरों का -सा मैल भरे, तुम्हें खोजते फिरते हैं । (दुर्गा० ५८)
- प्रयत्न उन्होंने भी किया और मैंने भी लेकिन हम दोनों असफल रहे ।
(सिन्दूर० १५१)
- भई आप सब तो नहाकर बैठे हैं । (अंधो० ४६)
- हमलोग वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वतंत्र नहीं रह गये हैं । (कलात०३८)
- हम तुम-जैसी गली कोने-कोने पर्यटन करेंगे । (स्कंद० १३६)

क्रिया का यह रूप भी नाटकों में व्यवहृत हुआ है ।
कई नाटककारों ने शैली में विशिष्टता लाने के लिए क्रिया के वचन में परिवर्तन किया है । इनमें पात्र ने एक वचन के स्थान पर बहुवचन की क्रिया का प्रयोग किया है।

नाटककारों ने राजाओं की भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए बहुवचन क्रिया का व्यवहार कराया है । जैसे -

- हम रानी से कह देंगे । (नीर० १४)
- हम इसी शिला पर हैं । (स्कंद० ३०)

राजाओं की भाषा में एकवचन के स्थान पर बहुवचन क्रिया के प्रयोग की शैली भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जयशंकर प्रसाद के नाटकों में व्यवहृत हुई है ।
कई बार पात्रों की भाषा में बोलचाल की भाषा का उत्स लाने के लिए नाटककारों ने एकवचन की जगह पर बहुवचन क्रिया रूप को रखा है।

- हम तेरे बाप के नौकर हैं जो तेरी दरखास्त लें । (उलट० ४५)
- प्यारे हम दूसरे पक्षी नहीं हैं । (श्रीचन्द्रा० २४)
- हम जाकर आपके लिए कमरा खाली कराते हैं (कुरु० ६६)
- हम अपनी बकरी ले के रहेंगे । (बकरी० ५७)

इस प्रकार का क्रिया रूप वी०पी० श्रीवास्तव, गोविन्द वल्लभ पन्त तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटकों में हुआ । इन नाटककारों ने भाषा को व्यवहारिकता के करीब लाने के लिए भी ऐसा प्रयोग किया है ।

स्त्री लिंग व पुल्लिंग दोनों में आदरभाव की अभिव्यक्ति में क्रिया का बहुवचन रूप नाटककारों ने प्रयुक्त किया है । उदाहरण -

- आप बड़े लोग हैं (बकरी० २५)
- आप कुछ कह रहे थे (कुरु० ४१)
- ये आ रहे हैं शायद (आषे० ५४)
- आप किस तरह मुझे पक्की का पाठ बांधने को कहती हैं ? (स्वर्ण० ६०)
- क्या कहती हैं आप ? (मुर्गी० ७)
- वे क्या करेंगे ? (मुक्ति० ४७)

- मुझे तिल-तिल करके कटने को छोड़ गये । (रत्ना० १६)
- आप भी तो रुठी-रुठी सपना देखते रहते हैं । (सिन्दूर०७६)
- क्या सोच रहे होंगे राजा भोज ? (रस० २१)
- कौशल की महिषी बनी थीं । (अजात० ७३)
- तो आप भगवान को पराजित करना चाहती थीं । (स्कन्द० ४८)
- निपुणिके केश में दीपि करौंदा कैसी लगेगी ,देवि ? (उत्तरा०३२)
- सीता भी मीठा डालना भूल गईं । (स्वर्ण० ३६)

क्रोध तथा व्यंग्यात्मक प्रसंगों में, क्रोध में, अपमानित करने के लिए तथा व्यंग्य में तीक्ष्णता लाने के उद्देश्य से बहुवचन रूप, एकवचन के स्थान पर रखा है -

क्रोध में -

- क्यों जनाब आप किस तरह कहते हैं । (सि० ४२)
- और यह नाटक कंपनी तेरे बाप खोल गये हैं (बकरी०४६)
- इसीलिए उस पर वार आप बैठे हैं । (दुर्गा० २२)
- तुम कहाँ पढ़े थे ? (कुरु० ११)
- बड़े साहब यहाँ अपनी कारगुजारी कर गये हैं । (आषा० १४)

व्यंग्य में -

- आप हर एक प्रश्न का उत्तर क्यों देंगे , आप क्या कोई उपरकाण्ड हैं? (दुर्गा० ४५)
- आप तो बिना पिये ही बहक गये । (पुरु० १०)
- नवाब साहब भाग गये वरना उनको भी कुछ मजा चखाता ।(कर्बला०७६)
- आप कहाँ कहाँ तशरीफ लाये हैं ? (भारतभा०४१)
- आप पन्ना सेठ की नानी हैं (भारत०दु०७२)

नाटकों में आदर तथा क्रोध व्यंग्य में क्रिया का उपर्युक्त प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क हरि कृष्ण प्रेमी , मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में अधिक हुआ है । रामवृक्ष बेनीपुरी, उदयशंकर भट्ट, सत्यव्रत सिन्हा, सुरेन्द्र वर्मा व सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटकों में अपेक्षाकृत

ऐसा प्रयोग कम है । विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस ने भी ऐसे क्रिया प्रयोग को महत्व दिया है । मणि मधुकर ने तो क्रिया का यह रूप काफी कम अपनाया है ।

नाटककारों ने वाच्य के अनुरूप भी क्रिया में रूपान्तर किया है । सामान्यत: कर्तृवाच्य क्रिया रूप को सभी नाटककारों ने प्रधानता दी है । कर्तृवाच्य में कर्ता की प्रमुखता देते हुए, क्रिया को कर्ता के अनुरूप प्रस्तुत किया है । जैसे -

- कुमार कहीं जा रहा था । (स्कंद० १६)
- हवा अपनी मस्ती में झूमती है (विज्ञा० ५४)
- मैं तो जाता हूं (कबीर० १३)
- पुलिस हवालात से निकालकर उसको ले जा रही थी । (तिल० ३)
- मैं नाटक देखकर आ रहा हूं ? (सिन्दूर० ७८)

नाटकों में कई बार कर्म को ही उभारा गया है, वहां क्रिया ने कर्म का अनुगमन किया है । कर्म वाच्य को नाटककारों ने कई स्थितियों में प्रयुक्त किया है । कर्ता को जहां नहीं प्रकट किया है, या वह अज्ञात रहा गया है, वहां कर्मवाच्य रूप में क्रिया को परिवर्तित किया है ।

- सिर फिरों को ठिकाने लगा दिया गया (कारी० ४६)
- उनका स्वभाव टेढ़ा सुना गया है । (कार्ती० १४)
- जिसमें आपके अत्याचारों से तंग आकर मुक्ति प्रार्थना की गई है । (दुर्गा० ३६)
- उन्हें दबोचा जा रहा है । (प०रा० २८)
- किसी ने कहा है । (कौ० ७५)

आदेशों को कर्मवाच्य में व्यक्त किया है :

- वह तो राजा की आज्ञा से निर्वासित कर दिया गया है । (चन्द्र०७८)
- वह अंदर से व्यवस्था को तहस-नहस करने के लिए भेजा गया है । (ढोल० ४१)
- आपको गिरफ्तार किया जाता है । (ढोल०५६)

कर्मवाच्य रूप नाटकों में कम व्यवहृत हुआ है । इसको जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृंदावन लाल वर्मा तथा विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों में अधिक महत्व मिला है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा हरिकृष्ण प्रेमी के

नाटकों में भी इसके द्वारा अभिव्यक्ति हुई है, परन्तु ऐसे स्थल कम हैं ।

कई बार नाटकों में जहाँ भाव की प्रमुखता देनी हुई है, वहाँ क्रिया को कर्ता, कर्म की बजाय भाव के अनुरूप स्थानान्तरित किया है । जैसे -

- यह छाया मुझसे नहीं छोड़ी जाती । (लहरों० ७५)
- पलंग पर लेटा नहीं जाता (भारत०पृ०६६)
- कुछ समझ में नहीं आता (भारत० पृ०७८)
- मैं कुछ समझ नहीं पाती (अन्ध० ६५)
- मुझे कुछ भी नहीं सूझता । (सिन्दूर० १०५)

उपर्युक्त कथनों में नहीं छोड़ी जाती , लेटा नहीं जाता, समझ में नहीं आता, कुछ भी नहीं सूझता आदि क्रियाओं से अशक्तता के भाव व्यक्त हुए हैं ।
बद्रीनाथ भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, मोहन राकेश तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने नाटकों में क्रिया को भाव के अनुरूप यथास्थान परिवर्तित किया है । इन नाटककारों ने अधिकतर अशक्तता की अभिव्यक्ति के लिए क्रिया का यह रूप अपनाया है ।
नाटककारों ने धातु में प्रत्यय जोड़कर कृदन्त रूप द्वारा क्रिया में परिवर्तन लाकर अभिव्यक्ति की है ।
नाटककारों ने क्रिया को कई बार संज्ञा के अर्थ में व्यवहृत किया है, ऐसी स्थितियों में धातु में 'ना' जोड़कर रखा है । उदाहरण-

- स्वजोगों का चलना निश्चित है । (कुल० ३३)
- मैं तो जीना भी नहीं चाहता । (सिन्दूर० ७५)
- उसकी शौक ने अपनी जेल में रखकर भी खाना-पीना हराम कर रखा है। (नील० ८)
- तेरा मेरा जलना नहीं हुआ । (अँधेर० ३३)
- फाख्ताओं से यों बराबर अपने को बचाकर छिपना सिखाया गया है न । (अमृत० ८०)

कार्य वर्तमान समय में हो रहा है, नाटकों में उसकी अनुभूति सामान्यतः धातु में ता, ते, ती, तीं, प्रत्ययों को जोड़कर कराई है । उदाहरण -

कर्तृवाचक कृदन्त रूप द्वारा रूपान्तर की शैली को, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र , जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर तथा वृंदावन लाल वर्मा ने अधिक महत्व दिया है ।

नाटककारों ने सामान्य स्थितियों में बीत रहे समय की, बीते हुए समय की और आनेवाले समय की सूचना क्रमश: सामान्य वर्तमान, सामान्य भूत और सामान्य भविष्यत् क्रिया रूप द्वारा दी है ।
कईबार काल की बजाय अभिव्यक्ति को प्रमुखता देते हुए क्रिया रूप में परिवर्तन किया है । प्राय: नाटककारों ने भूतकालीन बात को वर्तमान का रूप देने के लिए भूतकालीन मुख्य क्रिया के साथ वर्तमान काल की सहायक को प्रयुक्त किया है ।

- केवल आपके सामने अपना दुखड़ा रोने आया हूँ । (दुर्गा० ५४)
- साहित्य का विभाग उन्हीं को सौंपा गया है । (स्वर्ण० ८६)
- मैं इतना बड़ा मुगालिबा परिन्दा फँसा के लाया हूँ ।(मादा०१०)
- बहुत दूर से चलकर आया है । (लौटन० २८)
- उन्होंने हमें उल्लू बनाया है । (करि० ३४)
- राजमहल की परतंत्रता से बाहर आयी हूँ । (स्वात० ७५)

इस प्रकार का क्रिया प्रयोग लगभग सभी नाटककारों ने किया है ।

भूतकाल की आदत व नियमितता के प्रकटीकरण में भी क्रिया के रूप में परिवर्तन लाया गया है । इसमें मुख्य वर्तमानकालीन क्रिया के साथ भूतकालीन क्रिया का व्यवहार हुआ है । जैसे -

- बीच-बीच में अपने कान से पीछे झुलाता था । (सिद्ध० ७)
- मैं सब छिपे-छिपे सुनती थी (श्रीचन्द्रा० ४६)
- मेरे पिता जी तुम तो मुझे बड़ा प्रेम करते थे । (भारत०३६)
- हमीं को सबक की मजाक उड़ाया करते थे । (सेवा० १०७)
- मैं अपने-आप-अपने में न देखकर तुम्हीं देखती थी । (आषाढ़० १०५)
- उसमें नवनीत की पुतली फाँककर देखती थी । (स्कंद० २०)
- यह संसार अपनी स्वाभाविक गति से, आनन्द से चला करता ।(स्कंद०६२)

संदिग्ध भूत -

- निकली है कोठी पशुओं के बीच गयी होगी । (लहरों० ८४)
- कुमार आप थक गये होंगे । (कथ० १७)
- कमर कमान की तरह टेढ़ी हो चुकी होगी (रस० ३७)
- अब तक तो वह मारा गया होगा । (सिन्दूर० २६)
- महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा (ध्रुव० १६)
- उस दुखिया को सोने के लिए चारपाई मिली होगी । (भारत०प्र०१६)

क्रिया के संदिग्ध क्रिया रूप द्वारा अभिव्यक्ति जयशंकर प्रसाद, प्रताप नारायण मिश्र, उपेन्द्र नाथ अश्क , लक्ष्मी नारायण मिश्र, मोहन राकेश (लहरों के राजहंस में) तथा मणि मधुकर ने अन्य नाटककारों की तुलना अधिक की है । तत्पश्चात सिन्हा, बद्रीनाथ भट्ट और हरिकृष्ण प्रेमी ने भी इस क्रिया रूप को कहीं-कहीं अपने नाटकों में रखा है।

क्रिया के द्वारा तो भावों की प्रायः अभिव्यक्ति नाटकों में हुई ही है, साथ ही क्रियाविहीन वाक्य भी कम अभिव्यक्ति नहीं कर रहे । भावाभिव्यक्ति की व्यंजना में क्रियाविहीन वाक्यों का काफी योगदान रहा है ।

क्रिया की अनुपस्थिति में क्रोध की अभिव्यक्ति व्यक्त हुई है -

- धिक्कार है तुम्हें । देश के साथ विश्वासघात । तुम ऐसा पाप ----- (रक्षा० ४०)
- छिः पापी तो तेरी --- । (वाणी० ४६)
- फिर भी मैं तेरा --- (स्कंद० ६८)

इसमें बिना क्रिया के ही क्रिया की अनुभूति हुई है ।
विस्मय के भाव में क्रिया के बिना अधिक सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

- (बैसाखी है) तो किस ने ---- (कथ० १५४)
- क्यों तुम्हें क्या --- (अंधे० ५८)
- ऐ बीबी जी ---, (रक्षा० ८२)

इन क्रियाविहीन वाक्यों से भी स्थिति को देखते हुए क्रिया का आशय प्रकट होने लगा है ।
दुःख तथा कष्ट में भी क्रिया के अभाव में भाव प्रकट हुआ है ।

नाटककारों के अतिरिक्त अन्य नाटककारों ने भी क्रियाविहीन वाक्यों द्वारा अभि-
व्यक्ति कराई है, परन्तु ऐसी अभिव्यक्ति शैली को अधिक नहीं अपनाया है । विपिन
कुमार अग्रवाल ने क्रियाविहीन वाक्यों द्वारा अभिव्यक्ति बहुत कम कराई है ।
नाटकों में क्रिया का अनुपयुक्त प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है । कहीं-कहीं लिंग के
अनुसार क्रिया का व्यवहार नहीं हुआ है । जैसे -

- मन भी एक चट्टान है जो अभी तक तो किनारे पड़ा था (पड़ी थी)
अब चकनाचूर होने के लिए धारा में झुक आया है । (आयी है)

(तुला० ४३)

- किसी का (की) मोटर रुका (रुकी) (भारतभ०२०५७)
- और नाक रगड़ना (रगड़नी) पड़ेगी । (कर्फ्यू० ५८)
- मेरी हड्डियों में धुन लगा है (लगी है) । (आठ० ५३)
- मेरी आँखों में कुछ नहीं झाँका जा सकता (झाँकी जा सकती)

(अनुत० ५८)

उपर्युक्त कथनों में स्त्रीलिंग क्रियाओं के स्थान पर पुल्लिंग क्रियाओं का त्रुटिपूर्ण
प्रयोग हुआ है ।
वचन के अनुरूप भी कहीं-कहीं क्रिया नहीं प्रयुक्त की गई है । उदाहरण -

- मैं तो यह समझे (समझता) था (सिन्दूर० ९८)
- दस वर्ष बीत गया (गये) (सिन्दूर० १३३)
- रमानाथ जी सब कपड़े अपने साथ ही पहनाया (पहनाये)(सिंदूर०९८)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक में त्रुटिपूर्ण प्रयोग अंग्रेज पात्र की विदेशी
प्रवृत्ति प्रदर्शित करने के उद्देश्य से किया है, ताकि स्वाभाविकता आ जाय ।

- ओ हुआ सो सरकार वाला हम एक बार ऐसा और करता ।

(भारत०भा०३८)

इसमें है, सरकारवाले, करो के स्थान पर उपर्युक्त क्रिया रूप प्रयुक्त किया है ।
छोटे पात्रों के प्रति आदरार्थ क्रिया प्रयुक्त करना भी अनुचित लगा है ।

- अब आप बड़े हो गये हैं । (आठ० ६०)

जाते होता " शब्द व्यर्थ में आया है ।

- मैं तो तुम्हारा साथ पकड़कर संसार में ऊपर पहुंचना चाहती हूं ।
(सिन्दूर०७७)

- एक युग पूरा हुआ चाहता है । (सिन्दूर० ८९)

ऊपर पहुंचना चाहती हूं के स्थान पर " उठना चाहती हूं " और " हुआ चाहता है " के स्थान पर होता है " क्रिया प्रयोग अधिक उपयुक्त लगता है ।

शैली सौन्दर्य तथा अभिव्यक्ति की व्यापकता को दृष्टि में रखकर जयशंकर प्रसाद हरिकृष्ण " प्रेमी ", उपेन्द्र नाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर और मोहन राकेश और लक्ष्मी नारायण मिश्र ने क्रिया की व्यवस्था अपने नाटकों में की है। इन नाटककारों ने शैली की विविधता को अपने नाटकों में अपनाया है । क्रिया संबंधी दोष इन नाटककारों में लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक " सिन्दूर की होली " में अधिक मिले है। उदयशंकर भट्ट व रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए क्रिया प्रयोग पर दृष्टि रखी है, परन्तु इनके नाटकों में क्रिया प्रयोग अपेक्षाकृत कम आकर्षक बन पड़ा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्ट और जी०पी०श्रीवास्तव के नाटकों में क्रिया के अस्पष्ट और अनुपयुक्त प्रयोग अन्य नाटककारों की तुलना में अधिक हुए हैं, क्योंकि इनके नाटक आरंभिक काल के हैं जिस समय भाषा में परिपक्वता नहीं आ पायी थी । इन नाटककारों ने मुहावरात्मक क्रिया प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति में अधिक रुचि ली है । वृन्दावन लाल वर्मा के नाटक में मुहावरात्मक तथा अत्युक्तिपूर्ण व क्रिया शैली द्वारा अभिव्यक्ति अधिकार कराती है ।

गोविन्द वल्लभ पन्त, मणि मधुकर और विष्णु प्रभाकर ने भावों की सरल अभिव्यक्ति तथा भाषा की व्यावहारिकता को दृष्टि में रखते हुए अधिकतर क्रिया का चयन किया है । सुरेन्द्र वर्मा ने " सेतुबन्ध " नाटक में भावों की प्रभावशाली व्यंजना के लिए क्रिया का अत्युक्तिपूर्ण तथा कहीं-कहीं मुहावरात्मक प्रयोग भी किया है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सत्यव्रत सिन्हा , लक्ष्मी नारायण लाल ने सामान्य क्रिया प्रयोग को अधिक महत्व दिया है । इन नाटककारों ने क्रिया का व्यंजक प्रयोग भी कई स्थलों पर किया है । विपिन कुमार अग्रवाल तथा मुद्राराक्षस की दृष्टि सामान्य तथा व्यावहारिक क्रिया रूप की ओर अधिक रही है ।

क्रियाविशेषण

क्रियाविशेषण क्रिया की विशेषता प्रकट करने के लिए नाटकों में व्यवहृत हुए हैं । सब प्रकार के क्रियाविशेषण, शैली की दृष्टि से उपयोगी नहीं हैं । कुछ क्रियाविशेषण जैसे पास, दूर, अब, यहाँ, वहाँ, थोड़ा बहुत आदि का व्याकरण की दृष्टि से तो महत्व है, परन्तु शैली की दृष्टि से इनके व्यवहार से अभिव्यक्ति में कोई विशिष्टता नहीं आयी है ।

नाटकों में कुछ क्रियाविशेषण जो कार्य व्यापार की विशिष्ट अभिव्यक्ति करते हैं, वे शैली की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हुए हैं । नाटककारों ने विभिन्न अभिप्रायों से क्रियाविशेषणों की द्विरुक्ति की गई है । यदि इन क्रियाविशेषणों की द्विरुक्ति न करके अकेला रखते, तो अभिव्यक्ति में कोई विशिष्टता न आ पाती । जैसे -

- देख थोड़ा-सा आहिस्ता चलो (तिल० ३१)
- + + आहिस्ता - आहिस्ता सरस्वती की लहर में उतर रहीगा । (प०रा० ६९)
- निवाड़ का दीपक अन्तिम बार बड़े जोर से चमककर बुझ जाना चाहता है । (रखा० ५८)
- कुत्ता उस काले आदमी को देखकर जोर-जोर से भौंकने लगा था । (तिल० २८)

इनमें क्रियाविशेषण के अकेले आने पर कार्य व्यापार की कोई विशिष्टता नहीं व्यक्त हुई है, परन्तु द्विरुक्ति से 'लगातार आहिस्ता तथा लगातार जोर से' अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है ।

नाटकों में कई बार क्रियाविशेषण की पुनरुक्ति, 'लगातार कार्य उसी प्रकार से हो रहा है' की अभिव्यक्ति के लिए हुई है। क्रियाविशेषण का ऐसा प्रयोग नाटककारों ने काफी किया है -

- धीरे-धीरे वह झुकती चली गयी । (रस० ३१)
- वह मेरे पीछे से धीरे-धीरे खिसका-सा आ रहा है । (दुर्गा० १२६)
- फंदा धीरे-धीरे कसता जा रहा है । (अमृत० १७)
- धीरे-धीरे सब लोग अंदर की ओर बढ़े । (मा०ल० पृ० २७)
- धीरे-धीरे मैं प्रसिद्ध हो जाऊँगी । (लौटन० ६२)
- आहिस्ता-आहिस्ता सरस्वती की नहर में असर होगा । (फ०रा०८९)
- + + दोस्तों के बीच दब्बू-सा बना हल्के-हल्के मुस्कराता है । (आपे० १०२)
- तुम्हारे पीछे-पीछे काफी दूर से आ रहा था ? (तिल० २८)
- + + यह धुरीहीन चक्र की तरह मेरे पीछे-पीछे चला आया है । (आषाढ़ ३१)
- इतनी जल्दी-जल्दी सब कुछ हो रहा है । (ना०अ०वि० ५०)
- आशा का नक्षत्र मानो एक ओर मंद-मंद मुस्करा रहा है ।(रत्ना०६३)
- धीरे-धीरे नाटक बढ़ता गया । (सिंदु० ११)

* "अनेक" अर्थ की अभिव्यक्ति भी द्विरुक्ति से हुई है । इनमें द्विरुक्ति के बिना शब्द का कोई अभिप्राय ही नहीं प्रकट हो सकता । - उदाहरण -

- जिस प्रकार कृपण अपनी सम्पत्ति को बार-बार मुड़कर देखता है । (रस० २२)
- तू जान-बूझकर बार-बार क्यों भूलती है ? (श्रीचन्द्रा० १३)
- मैंने तुम्हें बार-बार ठोकर, गाली और नष्ट होने से बचाया है । (अंकुर० ८०)
- वह भी लोहार की धौंकनी सी भारी छाती बार-बार उठती गिरती है । (रत्ना० १०२)
- मुझे बार-बार अनुभव होता है । (आपे० १००)
- मन को तरह-तरह से समझा लिया था । (सिंदु० ३५)

नाटकों में कुछ क्रियाविशेषण अकेले तथा द्विरुक्ति में आने पर अलग-अलग अर्थ देते हैं जैसे " जब, तब तथा फिर" क्रियाविशेषण अकेले आने पर केवल अपना अर्थ देते हैं, परन्तु उनकी द्विरुक्ति होने पर इनसे" अनेकबार" अ" की अभिव्यक्ति हुई है ।

- जब इन्हें होश आया तब भी तुम हमारे घर पर सवार थे । (कुमै०६-१०)
- जब-जब आफत आती है तब-तब लाज लगानी पड़ती है । (तौटन० ५६)
- जब-जब मैं तुम्हें छूता हूं । (कुमै० १६)
- हम तो फिर आयेंगे । (अंधी० ६६)
- अपने जीवन के इतिहास को फिर फिर दोहराया ।(आषाढ़० १०६)

" बिल्कुल" अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी क्रियाविशेषण का आवृत्ति मूलक प्रयोग उल्लेखनीय है जिससे हुआ है । एक क्रियाविशेषण से यह अर्थ नहीं व्यक्त हुआ है । उदाहरण -

- मैंने साफ बोल दिया (रात० ५६-५७)
- साफ-साफ बतलाओ कुवैन सिंह (बकरी १६)

इसमें" साफ - साफ" शब्द से" बिल्कुल साफ" अभिव्यक्ति होती है, वह " साफ" अकेले शब्द से नहीं ।

- अभी खाल खिंचवाकर निकाल दूंगा । (भारत०प्र० ६३)
- अभी-अभी चलो (मुफि० ३६)
- अभी-अभी इसने रामायन की चौपाई पढ़ी है (उलट० १४)
- वह अभी-अभी बाहर गई है । (लहरों ६०)
- इन सबूत ने अभी-अभी किया । (अनुत० ६)
- ठीक कहा । (चन्द्र० ५५)
- कारण ठीक-ठीक नहीं बता सकता (अंगूर० २६)
- अब ठीक-ठीक बताओ (तौटन० ४४)

कई बार नाटककारों ने बलपूर्वक अभिव्यक्ति के लिए भी क्रियाविशेषण की आवृत्ति की है, जो एक शब्द द्वारा नहीं संभव है । जैसे -

- जल्दी चलो । (मादा० ७)
- टाँके जल्दी-जल्दी लगाओ । (रत० ५०)
- जरा धीरे-धीरे बोलो । (कुमे० १४)

इनमें आवृत्ति से बल डाला गया है ।

निरर्थक शब्दों की आवृत्ति भी अनिवार्य है, विशिष्ट अर्थाभिव्यक्ति के लिए क्रियाविशेषण के रूप में व्यवहृत हुई है । जैसे -

- टुकुर टुकुर बैठ सुना करते है । (उलट० २१)
- आदमी, मवेशी पटापट मर रहे हैं (बकरी २८)
- फुदक फुदक चलो । (रत० ५९)
- इतनी देर से सपड़-सपड़ लादे चले जा रहे हो । (रत० ६१)
- नीचे यमुना कलकल कर रही । (अम्बा० ३८)

नाटककारों ने कई बार कार्य व्यापार की न्यूनता को भी क्रिया विशेषण के आवधिमूलक प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया है । इन शब्दों का जोड़े में तथा पुनरुक्ति से भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट हुआ है -

- + + संभवत: फिर भी कभी आ पहुँचे । (आषाढ़० ४६)
- मुझे याद नहीं कि कभी उसे सपने में भी देख पाऊँ (अम्बा० ४)
- कभी-कभी वे पास-पास हाथ लम्बे बालों में बढ़कर चला करते है । (लौटन० ४५)
- कभी-कभी सोचता हूँ (आषाढ़० ५३)
- + + बहुत नज़दीक रहनेवाले कभी-कभी एक दूसरे की असलियत को भूलने लगते हैं । (अमृत० ५३)

- इस पर कभी-कभी प्रेत की छाया आती है । (रस० २७)
- उन्हें भी कभी - कभी देखना ही पड़ता है । (वि०ज० २७)

अकेले "कभी" शब्द का व्यवहार नाटकों में बहुत कम हुआ है । प्रायः संज्ञा की द्विरुक्ति से क्रियाविशेषण बने हैं, इस प्रकार की द्विरुक्ति भिन्न अर्थ देने लगी है।

- तुम रात को बड़ी देर तक कचहरी करते हो । (उलट० ३६)
- मैं रातों रात (रातभर में) सतखंडा महल बनाता हूं । (रस० ३२)

इनमें रात तथा रातोंरात शब्द से अलग-अलग अर्थ प्रकट किये हैं -

- वह रातोंरात आ जायें । (कम्प० ८७)
- रातोंरात अंग्रेज़ प्रजावर्ग हिमालय में भिनर्स के कैम्प की ओर न जाने कहां गायब हो गये । (प०रा० १७)
- जिसमें होकर बूंद-बूंद (लगातार बूंदबूंद करके) जल रिसता रहा । (प०रा० ६२)
- तुम्हारी गुन जनम-जनम (प्रत्येक जन्म में) गाऊंगी ।(श्रीचन्द्रा० ५५)

नाटकों में विभिन्न संज्ञा शब्दों के जोड़े भी क्रियाविशेषण रूप में व्यवहृत हुए हैं एक विशिष्ट अभिव्यक्ति करते हैं । इन शब्दों को अलग-अलग रखने पर ये शब्द अपना अर्थ देते हैं तथा एक साथ आने पर एक भिन्न अर्थ ।

- तुम रात को न जाओ । (सिन्दूर० ६७)
- जिसके लिए दिन-रात (हर समय) लड़ना पड़े । (स्कंद० ५०)

इसमें "रात" से अर्थ केवल रात के समय से है परन्तु दिन-रात से अर्थ "हर समय" से हो गया है ।

- दिन-रात पीजिए । (अंजो० ११८)
- रात-दिन (सारा समय) रोते ही बीतते हैं । (श्रीचन्द्रा० ३७)

- इसी लिए महेन्द्र घर के अन्दर <u>रात-दिन</u> (हर समय) छटपटाता है ।
(आधे० १६)

- मनुष्य भी <u>रात-दिन</u> इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता ?
(श्रीचन्द्रा० ७)

क्रियाविशेषण के आवृत्तिमूलक प्रयोग को कुछ नाटककारों ने अधिक महत्त्व दिया है । जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, उपेन्द्र नाथ अश्क तथा मणि मधुकर के नाटकों में इसी कोटि के आवृत्तिमूलक क्रियाविशेषण को अधिक मात्रा में अपनाया गया है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ,प्रताप नारायण मिश्र, गोविन्द वल्लभ पन्त, उदय शंकर भट्ट, लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा वृंदावन लाल वर्मा के नाटकों में इस प्रकार के आवृत्तिवाले क्रियाविशेषण तो प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु इन क्रियाविशेषणों की अधिकता इन्होंने नहीं रखी है ।

कुछ नाटककारों की रुचि इन क्रियाविशेषणों के प्रयोग में काफी कम रही है, जैसे विपिन कुमार अग्रवाल , मुद्राराक्षस, विष्णु प्रभाकर, सत्यव्रत सिन्हा, सुरेन्द्र वर्मा तथा लक्ष्मी नारायण लाल आदि नाटककार हैं ।

क्रिया की विशेषता प्रकट करनेवाले बहु क्रियाविशेषणों का सभी नाटककारों ने मुख्य रूप से प्रयोग किया है ।

निषेध में अधिक दृढ़ता तथा निश्चितता को कभी नहीं, कदापि नहीं निषेधात्मक क्रियाविशेषण के द्वारा व्यक्त किया है । न, नाहीं, मत क्रियाविशेषण भी नाटकों में काफी आये हैं, परन्तु उनसे निषेध में दृढ़ता नहीं आयी है ।

- यह दुश्चक्र <u>कभी नहीं</u> टूटेगा । (मा०अ०वि० ६०)

- ऐसे उद्दण्ड को मैं <u>कभी नहीं</u> क्षमा करता (चन्द्र० ६०)

- मैंने तो <u>कभी नहीं</u> कहा (सिन्दूर० ६०)

- भाई से मैं रूठ गया था, परन्तु तुमसे <u>कदापि नहीं</u> (स्कंद० ८०)

- किन्तु प्रेममयी रमणी के हृदय से भयानक यह कदापि नहीं हो सकती ।
(अजात० ६७)

- हम उनसे नहीं डरते (सुगं० ३३)

- यह कष्ट न उठाएगी (भारत० प्र० ५६)

- बीच में टाँग मत अड़ा (रस० ३६)

निश्चयबोधक क्रियाविशेषण के द्वारा कार्य की निश्चितता की अभिव्यक्ति नाटकों में हुई है -

- अवश्य लौटकर आऊँगा । (दुर्गा० ३७)
- उसे बुरा अवश्य कहूँगा । (अंगूर० १८)
- तू मेरी और कंस की लुटिया जरूर डुबायेगा । (रसा० ३८)
- वह हमेशा सुबह समय से उठता है । (कैदी० ३५)
- लेकिन मैंने हमेशा पाया है (अमृत० १६)
- हाथ में हरदम डंडा हो । (रस० ३८)
- मैं भी अपनी सरकार की सेवा करने के लिए हमेशा तैयार हूँ ।
)फाँसी० २७)
- + + आँसू पोंछने के लिए सदैव हाथ में लिए रहता है । (स्कंद०६७)
- यही तो दरअसल मनी की बेवक्त मौत का कारण हुआ ।(कैदी० ६०)

नाटककारों ने आकस्मिकता का बोध कराने के लिए तथा क्रिया किस विधि से संपन्न हो रही है, इसकी अभिव्यक्ति प्रकारबोधक क्रिया विशेषण द्वारा की है ।
उदाहरण -

- उनके हर्ष और उल्लास में सहसा विघ्न पड़ जायेगा । (रस० २१)
- मैं तो अचानक ही आ निकला । (सुगं० ६)
- एकाएक ही रागिनी गा रही है (सिंधु० १७)
- वह बच्चों पर एकाएक टूट पड़ता है । (माधव० २६)

- अकस्मात् स्वप्न देखकर जग जानेवाले प्राणी की कुतूहल गाथा थी।
(स्कंद० ६०)
- विनीत भाव से प्रार्थना है। (दुर्गा० ५२)
- गुरु पीछे तब आनन्दपूर्वक रहने में लग जायेंगे (कबीर० ११)
- मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ। (वि०अ० १८)
- मैं सुखपूर्वक सती हूँगी (नील० ३२)
- फिर तो हाथ पैर अपने आप चलने लगते हैं। (अंगूर० ४२)
- भूमि के आकार को भलीभाँति देखा गया है। (कोणार्क ३५)
- अब ताले आप ही टूट चुके होते हैं। (प०रा० ६०)
- बल्कि इसने कुछ ऐसा वैसा किया है। (सुगी० २४)

"कार्य" कितने समय में तथा किस समय संपन्न होगा" इसको व्यक्त करने के लिए समयवाचक क्रियाविशेषण की योजना की है। -

- इन पापियों का शीघ्र निराकरण होना आवश्यक है। (दश० ३५)
- नाम बताओ अभी खाल खिंचवा के निकाल दूंगा। (भा०स०पृ०६३)
- उसका प्रायश्चित्त आज संपन्न हो। (रक्षा० ५२)
- कल देखूँगा। (अम्बा० ८३)
- तू सदा यही कहेगी (माधा० ५८)

कार्य के विषय में जहाँ कोई संदेह नहीं है, वहाँ नाटककारों ने निश्चयबोधक क्रियाविशेषण को नियुक्त किया है।

- मेरे दिल में तो सचमुच चोट उठने लगी है। (सुगी० २४)
- निःसंदेह सुखभोगिनी भूपालों की वैतन भोगी सेना शूरों की दुर्धर्ष बर्बरता की आँधी के सामने नहीं टिक सकेगी। (अम्बा०   )

- आप बेशक उपदेश कीजिए । (अपि० २३)
- बेशक आप ठीक कहते हैं । (उउट० १७)

नाटकों में क्रिया की अवधि निश्चित करने के लिए अवधिवाचक क्रियाविशेषण का व्यवहार हुआ है ।

- द्वार तुरंत खोल दिया जाये । (ना०स०वि० ७३)
- तनिक ठहरिए (प०रा०२७)
- दरवाजा फौरन खोल दिया जाय । (तिल० २५)
- झट बोलिए (मापा० ४)
- मैं अभी तक तो किनारे पड़ा था । (कुगां० ४३)
- जीवन भर नहीं रहेंगे । (बाणभट्ट० ३४)
- मैं जिन्दगी भर गाऊंगी (बन्ध० १२)
- रात भर [illegible] रहा । (कुगां० ५६)
- मैं दिन भर सड़क पर सड़कों में खेला करता हूं । (मुक्ति० ४०)
- उसके भीतर निरंतर काम करता है । (सिन्दूर० १०२)

स्थिति तथा दिशा का संकेत देने के लिए स्थिति तथा दिशाबोधक क्रियाविशेषण व्यवहृत हुए हैं । जैसे -

- जरा यहीं ठहरिए । (कुगां० ७)
- इतने में उन्हीं सामने आ गई (भारत० पृ०६६)
- राजमहल की परतंत्रता से बाहर आयी हूं (अजात० ७५)
- सर्द हवा अन्दर आ रही है । (तिल० १६)
- देश में किधर निकल जाऊं (रक्ष० ६५)
- फिर वहां चला जाऊंगा ।(मुक्ति० ५०)
- + + ब्राह्मण से इधर-उधर मारे फिरते हैं । (श्रीचन्द्रा० ३४)

विस्मयात्मक तथा प्रश्नात्मक अभिव्यक्ति के लिए नाटककारों ने प्रश्नवाचक क्रियाविशेषण को महत्व दिया है ।

- आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना । (अम्ब० ४२)
- मैं किसलिए पैदा हुई - और क्या हो गई ? (मुफि० ६५)
- तो मरने का मजा ही क्या आया ? (रुसा० ४१)
- इनसे क्या पूछते हो (रस० ३०)
- आमों और श्रीफल में और ही क्या रह जाए ? (शफा० ६७)
- अपनी इज्जत कहाँ-कहाँ बचाऊँ ? (उछट० १०)
- तू हमारे राज में घुस कैसे आया (काशी० ७५)
- मैं उनके सामने कैसे जाऊँ -- वे क्या कहेंगी ? (मुफि० ४७)

कुछ ऐसे क्रियाविशेषण नाटकों में व्यवहृत हुए हैं, जो वास्तव में विशेषण हैं, परन्तु क्रियाविशेषण की भाँति रखे गये हैं । परिमाणवाचक क्रियाविशेषण इसी कोटि के हैं । कुछ उदाहरण परिमाणवाचक के प्रस्तुत हैं ।

- बड़े राजकुमार से कुछ कह रहे हैं । (वत्स० १०७)
- बहुत मैं--मैं--मैं--मैं कर रहे थे । (माधा० २८)
- उन्मत्त सिंह तुमने बहुत अच्छा कहा (नील० २४)
- तनिक देख लो । (ना०अ०वि० ४५)
- जरा रस्सियाँ उठाओ । (रस० ५५)
- मैं पहले ही बहुत से ज्यादा खा चुका । (स्वर्ण० ४०)

कार्य के विषय में जहाँ अनिश्चितता है, वहाँ अनिश्चयवाचक क्रियाविशेषण को नाटककारों ने स्थान दिया है -

- शायद करवट लेते समय गिर गयी । (अंजो० ६०)
- शायद उसे ले जाने के लिए दूत आ गये हैं । (सिंदूर० १२७)

- शायद आप आवेश में आकर यह प्रतिज्ञा कर गए। (अंगूर० १०८)
- कदाचित् ईश्वर ने बचा दिया हो। (सिन्दूर० ३२)
- अचानक अतिथि संभवत: फिर भी कभी आ पहुँचे। (आषाढ़० ५६)

"शायद" क्रियाविशेषण का प्रयोग नाटककारों ने अधिक किया है, क्योंकि सामान्यत: बोलचाल में इसका व्यवहार अधिक किया जाता है।
कुछ ऐसे क्रियाविशेषण भी नाटकों में आये हैं, जो क्रिया की विशेषता न बताकर एक अन्य क्रिया का बोध कराते हैं। ये वास्तव में व्याकरणिक दृष्टि से कृदन्त हैं। लगभग सभी नाटककारों ने क्रियाविशेषण के इस रूप को काफी अपनाया है। उदाहरण प्रस्तुत है -

- तुम्हारी गउओं को मारकर खा जायेंगे। (कुणा० ६६)
- मुझे इस उदास और रूखी दुनिया में अकेला छोड़कर चली गयी ? (अंगूर० ५३)
- तुम मेरा हाथ झटककर चले गये। (जय० ८५)
- + + रथ पर आरूढ़ होकर पति का अनुगमन करूँगी। (सपना० ११)
- उसने नवनीत की पुतली झाँककर देखती थी। (स्कंद० २०)
- + + गाते हुए चली (रत्ना० १२४)
- तुमने मुस्कुराते हुए पूछा था (तिल० ७१)
- सूर्य अपना काम चलता-चलता हुआ करता है। (ज्योति० ११८)
- + + एक तारा थरथराता हुआ नीचे उतरा। (विज० ३०)

कई बार नाटकों में क्रियाविशेषण का अनावश्यक प्रयोग हुआ है, इनके वाक्य में आने पर, वाक्य के अभिप्राय पर कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उदाहरण -

- मैं इस पांडाल को अपने हाथ से बना दूँ। (नील० ३२)
- मैं स्वयं जाती हूँ। (विज० ७७)

इसमें शब्द है तथा स्वयं का यदि प्रयोग न होता तो भी अभिप्राय पूर्ण प्रकट होता, उसमें किसी प्रकार की अस्पष्टता न आती ।

कुछ अन्य उदाहरण -

- मैं स्वयं अपने हाथों उसका गला घोंट दूंगी । (जय० ११६)
- राजहंस स्वयं उड़कर चले गए । (लहरों ० ७७)
- मैं तो स्वयं चाहता हूँ । (प०ग्रा०१६)
- मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी । (ध्रुव० २८)

इनमें क्रियाविशेषण के न रहने पर भी वाक्य में किसी प्रकार कमी नहीं प्रकट होती है।

कहीं-कहीं क्रियाविशेषण का अनावश्यक प्रयोग भी हुआ है । जैसे—

- गाजीपुर गये और उधर वहाँ है (सिन्दूर० १३२)
- मालूम हो रहा है जैसे उधर चारों ओर घूम घूम रहे हैं । (सिंदूर०१२७)
- मेरा बोझा लगाकर बढ़ता चला जा रहा है । (मुक्ति० ४६)
- तुम किधर एकटक, निर्निमेष देख रही हो ।(जय० ४४)

कई बार नाटकों में दोषपूर्ण प्रयोग भी किये हैं । उदाहरण -

- अब साहब जब तैर भी जायेंगे कभी (तब) हम आँगे ।
  (नेतो० ६७)
- वही धूल जो रातो दिन (रात दिन) पैरों से रौंदी जाती है ।
  (उलट० ६१)
- हमलोगों को रक्षकी (रक्षक) अधर्म्म से भी बीतना कुछ दाल भात का गस्सा नहीं है । (नील० १०)
- इतना (इतनी) तेजी से मत दौड़ो (तिल० ४)
- बच्चा (बच्चा) फुसलाकर रोक रखूंगा । (कांसी० ७५)

रूढ़ क्रियाविशेषणों का व्यवहार सभी नाटककारों ने प्रधान रूप से किया है । इनके प्रयोग से नाटककारों की शैली की विशिष्टता कहीं प्रकट हो रही है । क्रियाविशेषण में कहीं-कहीं त्रुटियां तथा अनावश्यक प्रयोग भी मिलते हैं, जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लक्ष्मी नारायण मिश्र, जी०पी० श्रीवास्तव, वृंदावनलाल वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क , मुद्राराक्षस के नाटकों में अधिकतर आये हैं ।

सम्बन्धबोधक (परसर्ग)

नाटकों में सम्बन्ध बोधक या परसर्ग के द्वारा संज्ञा व सर्वनाम का वाक्य में आये अन्य शब्दों से संबंध प्रकट किया गया है। इन परसर्गों का वाक्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । इनके वाक्य में होने तथा न होने से बहुत अभिव्यक्ति में काफी अन्तर आया है । नाटकों में दो कोटि के संबंध बोधक अव्यय व्यवहृत हुए हैं (१) रूढ़ (२) यौगिक । रूढ़ अव्ययों में, ने, को, से, में,पर आदि परसर्गों का नाटकों में अधिक प्रयोग हुआ है ।

नाटककारों ने परसर्गों को विभिन्न स्थितियों में व्यवहृत किया है ।

' ने'

नाटककारों ने भूतकालीन तथा सकर्मक क्रिया में कर्ता के साथ ' ने ' परसर्ग का व्यवहार किया है ।

- इसी दुराचारी वेन ने उस समय सब के सामने अपने पिता अंग को अपमानित किया । (प०रा० १७)
- अब तक जहाँ - पनाह ने गीदड़ों को ही वश में किया है (दुर्गा० २२)
- इसने मनुष्य को निर्जीव कर दिया है (उषा०११)
- इस अनुपम दीपक ने मेरे भीतर और बाहर को उजाला कर दिया । ([illegible]० ३)
- चन्द्रगुप्त ने कभी- कभी कार्नेलिया को इस नीच फिलिप्स के हाथ अपमानित होने से बचाया है (चन्द्र० ६३)

- पेड़ पर से गिरा दी गयी (कन्हु० ८९)
- उसी कुर्सी पर से + + + (उ०ट० ९९)
- आकाशी पर से आतंक का मेघ टल गया । (आरा० १२८)

" पर से " परसर्गों का एक साथ प्रयोग हरिकृष्ण प्रेमी , जयशंकर प्रसाद, वी०पी० श्रीवास्तव ने अपने नाटकों में प्रायः किया है । कई बार नाटककारों ने अपूर्ण वाक्यों का अन्त परसर्ग से किया है । ऐसा प्रयोग नाटककारों ने कई उद्देश्यों से किया है । भावातिरेकता की व्यंजना हेतु नाटककारों ने अपूर्ण वाक्यों को महत्व दिया है । इन अपूर्ण वाक्यों का अंत कभी-कभी परसर्गों से भी हुआ है । इन परसर्गों का वाक्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । यदि इन वाक्यों से परसर्गों को हटा दिया जाय तो अभिप्राय में अंतर आ जायगा ।

विस्मय के भावित्व में अपूर्ण वाक्य में परसर्ग से वाक्य का अन्त किया है । यदि ये परसर्ग नहीं लगते तो अभिव्यक्ति में भिन्नता आ जाती । जैसे -

- राजा भर्तृहरि ने (शपा० ५३)
- लक्ष्मी ने (मा०हा० प्र० ५४)
- सेनापति का । (जय० ८७)
- प्रेमिका अनाथालय में ---- (नाया० ८)
- ड्रेसिंग टेबल पर --- (अंधो० ५६)

उपर्युक्त वाक्यों में से यदि परसर्ग हटा दिया जाय, तो विस्मय के विषय में अंतर आ जायगा ।

शोक की अतिशयता को भी अपूर्ण-वाक्यों द्वारा व्यक्त किया है उसमें भी परसर्ग को विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए रखा गया है ।

- किन्तु इस असह्य दुःख के पहाड़ को ---- (रक्षा० ६५)
- अब इस बुढ़ापे में - (छोटन० ६२)
- (टूटे हुए स्वर में) इस गोदी में सिर रखे हुए मरना कि -- स --- मी --- है --- मा --- म्यु----- में (का०वी० १०१)
- (फूटकर) अगर मुझे पहले से पता होता, तो मैं कभी किसी भी मूल्य पर ---- (हेतु ० ११)

तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने मुहावरात्मक प्रयोग कम किए हैं, जिसके कारण इन नाटकों में परसर्गों की अल्पता है । आधुनिक नाटकों की तुलना में आरंभिक नाटकों में परसर्गों का अंकित प्रयोग अधिक हुआ है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र तथा बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में अनुप्रयुक्त परसर्गों की संख्या अधिक है । लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में भी परसर्गों की आवृत्ति अन्य आधुनिक नाटककारों की तुलना में अधिक हुई है । सत्येन्द्र सिन्हा, विपिन कुमार अग्रवाल, मणि मधुकर के नाटकों में भी गिने-चुने स्थलों पर परसर्ग अंकित हुए हैं । परसर्गों का आवृत्तिमूलक प्रयोग की ओर जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर की रुचि अधिक रही है । उपेन्द्र नाथ अश्क, वृंदावन लाल वर्मा, मणि मधुकर ने भी आवृत्तिमूलक परसर्गों के प्रयोग में रुचि ली है परन्तु इन नाटकों में ऐसे प्रयोग बहुत कम रहे हैं । परसर्गों के अन्य प्रयोग लगभग सभी नाटककारों ने अपनाये हैं, जिनमें विशिष्टता नहीं मिलती है ।   सम्बन्ध बोधक के यौगिक रूप को भी नाटककारों ने काफी महत्व दिया है । इनमें के, से, की परसर्गों के बाद क्रिया विशेषण या अन्य शब्दों को लगाकर यौगिक रूप बनाये गये हैं ।

नाटकों में सम्बन्ध बोधक के अनेक रूप विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

नाटकों में स्थान के विषय में संकेत करते हुए स्थान वाचक सम्बन्ध बोधक रूप को अपनाया है । इन संबंधबोधक रूपों ने नाटकों में काफी महत्व लिया है । नाटकों में प्रयुक्त हुए सम्बन्धबोधक अव्यय उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं ।

- आप उल्लू के पास स्टूल पर बैठिए । (लौटन० ४३-४४)
- स्त्रियों के पास मुसाफिरोंवाली पोटली । (सिंह० ६)
- मुंशी इल्तफात हुसैन के पास यहाँ तमाम चिट्ठी रखी हैं । (उग्र० ३३)
- कमलाल के पास भी कोरा बोना है । (अशो० ३५)
- वह बदली भी कमरे के समीप पहाड़ी पर पड़ गयी है (कुरु० १६)
- नगर के बाहर चांडालों के उपयोग के लिए भी कूप है ।(उपा०५८)
- घर के अन्दर बैठकर मरने से बेहतर है । (कुमा० ३७)

" की तरफ " के स्थान पर " की ओर " भी प्रयुक्त किया जा सकता है। इनके परिवर्तन से अभिव्यक्ति में कोई अंतर नहीं आ सकता। नाटककारों ने दिशावाचक सम्बन्धबोधक में " की ओर " को अधिक महत्व दिया है। " के प्रति " को कम नाटकों में लाया गया है। " के प्रति " को नाटककारों ने प्राय: उन स्थलों पर प्रयुक्त किया है जहाँ भाषा में साहित्यिकता लाये हैं। ऐसा प्रयोग जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, उदय शंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, मणि मधुकर के नाटकों में अधिकतर हुआ है।

समानता प्रकट करते हुए या तुलना करते हुए, सादृश्यवाचक सम्बन्धबोधक अव्ययों द्वारा नाटककारों ने भाव व्यक्त किए हैं। नाटककारों ने " की तरह " अव्यय को सादृश्यता प्रकट करते हुए प्रधान रूप से अपनाया है, क्योंकि यह अव्यय रूप सामान्यत: बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होता है। सादृश्यवाचक सम्बन्धबोधक अव्ययों के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- स्त्री शव की तरह लेट जाना चाहती है। (माया० ५७)
- आदमियों से जानवरों की तरह भड़कने लगे ? (उकट० ३५)
- उन्हीं को राजाओं ने हूणों ने लुटेरे ने गुदड़ी के लालों की तरह लूट लिया। (स्कंद० १४)
- मैं छाया की तरह तुम्हारे साथ-साथ रहा हूँ (लहरों ८७)
- तुम ऐसे पागलों की तरह क्या देख रहे हो ? (कुँ०३५)
- इस्पात की तरह कठोर शरीर + + (वि०आ० १७)
- डाक गाड़ी की तरह छूट पड़ेगी (डीटन० ५८)
- यह दस्यु दल बरसाती बाढ़ के समान निकल जायगा। (चन्द्र०११२)
- दो बिजलियों के समान क्रीड़ा करते-करते हम तिरोहित हो जायें। (स्कंद १५६-५७)
- + + गरज-गरज कर डराते बादल के समान पानी बरसा रहे हैं। (भीष्म० ३३)
- नन्हें नन्हें दीपों की भाँति अँधेरे को दूर करने में सहायता कर रहे हैं। (कव० ७४)

- वह और उसका साथी तड़ित की भाँति आसमान से किसी कोने से उतरे ।(प०रा०२१)

- क्या आँधी की भाँति भारत के सौभाग्य श्री को लूटता हुआ बढ़ता ही जायगा ।(शपथ १०).

- जो दूध में पड़ी मक्खी की भाँति वहाँ से बाहर निकाल कर फेंक दिया गया है ।(दुर्गा०५५)

- तुम्ही ने उनींदी उषा के सदृश झाँका था ।(स्कंद १२४)

- क्या इसी कोशल में रामचन्द्र और दशरथ के सदृश पुत्र और पिता अपना उदाहरण नहीं छोड़ गए हैं।(अजात०४६)

- एक-एक शिल्पी पाँच-पाँच सैनिक के तुल्य था ।(कोणार्क०६१)

- ×× हमने अपने आपको सोलहों आने अँग्रेजों के अनुरूप बना लिया है ।
(अँगो० ३८)

- उसे वापस आने वाले प्राणी के योग्य बना रखा है ।(प०रा०१३)

नाटकों में कुछ ऐसे अव्यय प्रयुक्त हुए हैं जिनके स्थान पर दूसरे अव्यय भी रखे जा सकते हैं । जैसे'की तरह' के स्थान पर की भाँति, 'के समान' के स्थान पर'के सदृश' व्यवहृत हो सकते हैं।

'कीतरह' तथा 'के समान' अव्यय को सभी नाटककारों ने अपनाया है के सदृश को जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में अधिक महत्त्व दिया है।'की भाँति' अव्यय हरिकृष्ण प्रेमी तथा बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में अधिक आया है । के तुल्य, के योग्य'को उन्हीं नाटककारों ने अधिक अपनाया है जिनके नाटकों की भाषा में साहित्यिकता है । जयशंकरप्रसाद , हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचन्द्र माथुर के नाटकोंमें इन अव्ययों को अन्य नाटककारों की तुलना में अधिक महत्त्व मिला है ।

के लिए, के कारण, के मारे, के वास्ते, की वजह सम्बन्धबोधकों द्वारा किसी कारण की अभिव्यक्ति की गई है । 'के लिए' अव्यय की नाटकों में सर्वत्र अधिकता रही है । इस अव्यय के द्वारा नाटककारों ने भाषा में व्यावहारिकता लाने का प्रयास किया है । नाटकों में व्यवहृत कारणवाचक रूप प्रस्तुत है । -

- ** द्वार पर एक भिक्षा मूर्ति भिक्षा लेने के लिए खड़ी है।(लहरों०६२)
- एक नौकर अबा के लिए और रख दो । (स्वर्ग०२४)
- नहीं महाराज उन्हें हंस सरोवर ले गये हैं, नौका विहार के लिए ।

  (म०ख०वि०४६)
- सर्द झोंके ही रक्त में तेजी लाने के लिए काफी नहीं है। (प०रा०५८)
- चिड़ीमार की तरह मुवक्किलों को फंसाने के लिए धोखेबाजी का जाल फैलाकर बैठना पड़ता है । (अ०८०६)
- अंधो खुद अपनी मौत का कारण थी । (अंधो०६२)
- बड़े भाई के सम्मान के कारण मैं उन क्षणों के लिए विमूढ़ सा हो गया ।(लहरों०८६)
- एक तो दर्द के मारे नींद नहीं आती ।(अम्बा०११२)
- कसनी के मारे हड्डियाँ भुग हुई जा रही हैं ।(भाभी०६०)
- ले मैं तो मियाँ के वास्ते खाना बनाने जाती हूँ । (नीम०९३)
- ** किस जिन्दगी के वास्ते तकलीफ उठाना । (भारत० भा०३१)
- वह आप ही की वजह से मारा गया होगा । (सिन्दूर०३५)

के लिए, के कारण सम्बन्धबोधक अव्ययों को सभी नाटककारों ने महत्व दिया ह । 'के मारे' को वृंदावनलाल वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुर तथा सुरेन्द्र वर्मा ने, 'के वास्ते' को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा के बजह को लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों में अधिक स्थान दिया है ।

उद्देश्य को व्यक्त करने के लिए 'के हेतु' अव्यय का चुनाव किया है ।

- मेरे प्रचार के हेतु गौतमांश पद्म की सृष्टि हुई । (भारत०भा० ३३)

विरोधवाचक सम्बंध बोधक द्वारा नाटककारों ने विरोध प्रकट किया है ।

- एक बेचारी अबला के विरुद्ध जहाँपनाह को क्यों भड़काते हो । (दुर्गा० २२)
- लेकिन मुन्नियों के विरुद्ध कायरों के बीज बोने के लिए दासी को छोड़ गई है। (प० रा० ६२)
- कोलो एक धारा के विरुद्ध नौका खेने वाले मल्लाह को ..
  (कोणार्क २७)
- आज उनसे कहूं कि एक बड़ा जुलूस निकालिए - दस्युओं के खिलाफ ।
  (प० रा० ८६)
- .. अपने ही देशवालों के खिलाफ और मौज मिले उनको ।
  (झांसी० ५२)
- कानून आदमी के खिलाफ नहीं है । (लोटन० ३१)

'के विरुद्ध' अव्यय को नाटकों में अधिक महत्व मिला है । के खिलाफ को हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, जगदीश चन्द्रमाथुर, जी०पी०श्रीवास्तव, लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों मे अधिक स्थान मिला है ।

एक वस्तु को दूसरी वस्तु से पृथक करते हुए पार्थक्यवाचक सम्बन्धबोधक का व्यवहार हुआ है ।

- तुम्हें भारत की सीमा से दूर न जाना होगा। (चन्द्र०९९-८)

- इस हंसी हंसी में बुराइयों को इस देश से दूर भगायें। (उल्ट०५)

साधन के विषय में बताते हुए, साधनवाचक सम्बन्धबोधक को व्यवस्थित किया है जैसे -

- यदि मेरी बुद्धि और प्रयास के द्वारा बारह सौ व्यक्तियों॰॰ (कोणार्क०४४)

- वह पारस - जन के द्वारा सुरक्षित होगा । (स्कंद०१३२)

- मैं भी उस बारूद के सहारे सरकार की सेवा के लिए यात्रा करूंगा। (झांसी०१०५)

नाटकों में 'के द्वारा' अव्यय को अधिकतर अपनाया गया है। 'के सहारे' को जगदीश चन्द्र माथुर, वृन्दावन लाल वर्मा, बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में अन्य नाटकों की तुलना में अधिक स्थान मिला है।

कहीं-कहीं नाटककारों ने यौगिक और रूढ़ सम्बन्ध बोधक अव्ययों को एक साथ भी प्रयुक्त किया है । - जैसे

- उनकी ओर से आँख भी तो नहीं की जा सकती । (स्वर्ग०२६)

- तुम्हारे पति के कर्मों की ओर से । (दुर्गा०६४)

- महाराज की ओर से मुझे निमंत्रण मिला । (वि०व०२१)

- टाँग के नीचे से निकले । (रस०६६)

- कलिंग के ऊपर से बादल हट जायेंगे । (कोणार्क०६८)

- जिन्दगी के भीतर से पैदा होती है । (मादा०२६)

उपर्युक्त कोटि के सम्बन्धबोधक प्रयोग नाटकों में सर्वत्र हुए हैं।

कई बार अव्ययों का प्रयोग वाक्यों में अटपटा सा लग रहा है।–जैसे

- मेरा मन दक्षिण की ओर के लिए चलता है। (भांसी० ११८)

इसमें यदि 'की ओर' को हटा दिया जाय तो अधिक उपयुक्त लगे।

- इनके दिल के ऊपर है। (भारत० पृ० ८३)

नाटककारों ने अपूर्ण वाक्यों का अन्त कभी कभी यौगिक परसर्गों से किया है। अपूर्ण वाक्यों में इन परसर्गों का बड़ा महत्व पूर्ण स्थान है इनके वाक्य में न होने से अभिव्यक्ति में अन्तर आ जाता है।

- मामी के पास हुजूर। (मादा० ५४)
- आचार्य के पास। (कुल० ४६)
- सुनसान जंगल के बाहर। (मादा० ५२)
- वीरों की भांति। (दुर्गा० ६६)
- उन्हीं के कारण। (लहरों० ४६)

उपर्युक्त वाक्यों में यदि परसर्गों को न लगाया जाता तो वाक्य से किसी प्रकार की अभिव्यक्ति न हो पाती।

अपूर्ण वाक्यों के अन्त में यौगिक परसर्गों का व्यवहार जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, मुद्राराक्षस, मोहन राकेश के नाटकों में अधिक हुआ है। इनकी तुलना में उपेन्द्र नाथ अश्क, हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा तथा रामवृक्ष बेनी पुरी ने ऐसा प्रयोग कम किया है। अन्य नाटककारों ने भी परसर्गों के प्रयोग की यह शैली अपनायी है परन्तु कम।

नाटककारों ने कई बार वाक्य में लयात्मकता तथा अलंकारिकता के उद्देश्य से सम्बन्धबोधकों की, आवृत्ति की है ।

- फूल की तरह आयी हूं, परिमल की तरह चली जाऊंगी। (अजात०७५)
- और दूसरे मेरा जीवन पिता जी की चांदी की तरह, चांदनी की तरह, हंस की तरह श्वेत दाढ़ी और मूंछ की छाया में रंग और कलम के साथ बीता है । (सिन्दूर०८१)
- उसमें कर्तव्य है , पत्थर की तरह , चट्टानों की तरह दृढ़(जय०३४)
- शेरनी की तरह, आंधी की तरह । (लौटना०५८)
- ... मैंने उनकी बेरहमी के जाल में तड़पती मछलियों की भांति आश्रम वासियों को बचाया । हमलोग तड़ित की भांति उन काले बादलों को चीरकर टूट पड़े । (प०रा०५१)
- भैरव के श्रृंगीनाद के समान प्रबल हुंकार से शत्रु-हृदय कंपादो और बढ़ो गिरो तो मध्याह्न के सूर्य के समान । (स्कंद०४६)

कई बार बलपूर्वक अभिव्यक्ति के लिए संबंधबोधक अव्यय की आवृत्ति की गई है । - जैसे

- मैं लड़ूंगी अपनी प्रजा के लिए, उनकी कला और संस्कृति के लिए, उनके धर्म के लिए मरूंगी । (भांसी०६०)
- भारत प्रजा की रक्षा के लिए, शिशुओं को हंसाने के लिए, सतीत्व के सम्मान के लिए, देवता, ब्राह्मण और गौ की मर्यादा में विश्वास के लिए, आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिए । (स्कंद०५)

आवृत्ति मूलक प्रयोग की ओर जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण मिश्र की रुचि अधिक रही है । मणिमधुकर, उदयशंकर भट्ट तथा रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी आवृत्तिमूलक प्रयोग को महत्व दिया है , परन्तु इनके नाटकों मे अपेक्षाकृत ये शैली अल्प रूप में अपनायी गयी है ।

कई बार नाटककारों ने आवृत्ति से बचने के लिए भिन्न भिन्न सम्बन्ध बोधक अव्ययों का व्यवहार किया है । - जैसे

- राजमाता जवाहरबाई काल - भैरवी की भांति दोनो हाथों में तलवार लिए शत्रु सेना को खेत की तरह काट रही है। (रक्षा०६६)
- ** जो अशोक की पत्नी की तरह साड़ी पहन सके, श्रीमती राजेन्द्र की तरह डेढ दर्जन तरीकों से बाल बना सके और लेडी डाक्टर की भांति सफाई । (स्वर्ग०९६)
- मेघ संकुल आकाश की तरह जिसका भविष्य हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिए । (ध्रुव०९६)
- तुम्हारा दर्प चूर चूर कर दूंगी, किन्तु तुम चट्टान की भांति अटल खड़े हो और मेरा दर्प मिट्टी के खिलौने की तरह टूट चुका है । जय०

आवृत्ति से बचने के लिए जयशंकरप्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर ने कहीं-कहीं एक सी ही अभिव्यक्ति करने वाले सम्बन्धबोधक अव्ययों का प्रयोग किया है ।

आरंभिक नाटकों की तुलना मे आधुनिक नाटकों में सम्बन्धबोधक के प्रयोग की विविधता अधिक होती है । सभी नाटककारों ने सामान्यत: व्यवहार मे लाये जाने वाले सम्बन्धबोधकों को प्रधान रूप मे अपनाया है । कुछ नाटककारों ने जिसमे जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क(जय पराजय में), मोहन राकेश ने मुख्य रूप से ऐसे अव्ययों

का काफीप्रयोग किया है , जो बोलचाल की भाषा में कम व्यवहृत होते हैं । ऐसा प्रयोग नाटककारों ने साहित्यिक भाषा के कारण हुआ है ।

समुच्चयबोधक
==========

समुच्चयबोधक अव्यय द्वारा नाटककारों ने दो शब्दों, पदबन्धों या वाक्यों को जोड़ने का कार्य किया है । इन अव्ययों को नाटककारों ने विभिन्न अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है ।

संयोजक के रूप में नाटककारों ने 'और, तथा' अव्ययों को काफी प्रयुक्त किया है । इन अव्ययों का लगभग एक सा ही अर्थ है फिर भी इनमें भिन्नता है।

'और' अव्यय को किसी भी प्रकार के दो शब्दों, पदबंधों तथा वाक्यों को जोड़ने के लिए व्यवहृत किया है । – जैसे

- उनकी कला और संस्कृति के लिए, उनके धर्म के लिए मरेगी। (कोणा० ६०)
- धर्म और समाज के बारे मे तू ज्यादा जानता है, (युग० २८)
- अमृत और कुम्भ . . . . (प०रा० ५३)
- उत्सवों मे परिचारक और अश्वों मे ढाल से भी, अधिकार-लोलुप मनुष्य बचा अच्छे हैं (स्कंद० ३)
- वे जल मरे और मुझे तिल-तिल करके जलने को छोड गये । (रक्षा० ९६)
- माँ ने विश्राम कर लिया होगा और यहाँ आने वाली होगी। (केतु० २५)
- .. मैं उसे ही माँ कहूंगा और तुम्हे चिढाऊंगा । (मुक्ति० ५५)

जहाँ एक सी ही कोटि की वस्तुओं को एकत्र किया है, वहाँ 'तथा' समुच्चयबोधक अव्यय को प्रयुक्त किया है।– जैसे

- हिमालय से निकली हुई सप्तसिंधु तथा गंगा-जमुना की घाटियाँ। (स्कंद० १२५)

- प्रतिष्ठान और चरणाद्रि तथा गोपाद्रि के दुर्गपतियों को जो धन विद्रोह करने के लिए परिवद की आज्ञा से भेजा था, (स्कंद० २०४)
- उनकी तलवार को लोहा, यवन, जोगादुर्गाधिप, मेदों के सरदार तथा दूसरे मान चुके हैं, (जय० ३४)
- उस मदिरा में तथा अन्याय मणि-मदिराओं में डूबते उतराते रहेंगे। (लहरों० २८)

'और' अव्यय को सभी नाटककारों ने प्रधान रूप से अपनाया है क्योंकि, सामान्यतः व्यवहार में 'और' ही शब्द व्यवहृत होता है। 'तथा' को नाटकों में अन्य रूप में रक्खा गया है। नाटकों में जहाँ भाषा व्यावहारिक भाषा से दूर हो गई है अथवा साहित्यिक हो गई है, वहाँ 'तथा' का प्रयोग प्रायः हुआ है। इसको जयशंकर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) मोहन राकेश के नाटकों में अधिक महत्व मिला है।

विरोधात्मक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने के लिए नाटककारों ने परन्तु, पर, किन्तु, लेकिन समुच्चयबोधक को नाटकों में अधिकतर रखा है। परन्तु, लेकिन की तुलना में 'किंतु' से अधिक विरोधात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

- बहुत सोचता हूं, परंतु कुछ उपाय ही नहीं सूझता। (दुर्गा० ६२)
- विजयों की सीमा है, परन्तु अभिलाषाओं की नहीं। (चन्द्र० १६६)
- और नीच कृतघ्न कमला कलंकिनी हो सकती है, परंतु वह नीचता, कृतघ्नता उसके रक्त में नहीं। (स्कंद० ६६)
- कहीं तू भी तो उसकी तरह . . . . परन्तु नहीं (लहरों० ३६)

'पर' का प्रयोग विरोधात्मक अभिव्यक्ति के लिए 'परन्तु' की भांति नाटकों में हुआ है। नाटकों में सर्वत्र इसको महत्व मिला है।

- सभी शोभा है, पर धर्मपत्नी (मादा० ४)
- चमड़ी चली जाय पर दमड़ी न जाय (रक्षा० ६)
- वे बलवाय बन कर आये हों, वे भिखारी बन कर आये हों, पर अवसर मिलने पर वे काटेंगे, डंक मारने से बाज न आयेंगे। (जय० २१)

- उस पाप का भार मुझ पर, पुण्य उसका आप पर । (मुक्ति० ८२)
- मैं हूं ऊपर से बन्द किन्तु भीतर से चिर प्रज्ज्वलित ज्वालामुखी। (रक्षा० २५)
- हूं, मैंने तुम्हें फूल समझा था किन्तु फूल में शूल .... (शपथ० ६२)
- भेड़ों के सरदार तथा दूसरे मान चुके हैं, किन्तु ढंग से राघव को अधिक पसन्द करता हूं। (जय० ३४)
- इसमें सफलता नहीं मिली तो आत्महत्या कर लूंगी लेकिन इस दमघोटू वातावरण में फिर नहीं लौटूंगी। (युगे० ४९)
- .. एक दिन वह नायक के रूप में अवतरित होगा, लेकिन इस का तात्पर्य यह नहीं कि ..... (ना०ख०वि० ६३)
- जहांपनाह, समुद्र की थाह भले ही मिल जाय, लेकिन उस मुल्क की दौलत की थाह नहीं मिल सकती। (दुर्गा० २२)
- शत्रु से हाथ जोड़ा जा सकता है, लेकिन मित्र से नहीं। (मुक्ति० ६३)

परंतु, किन्तु अव्ययों को सभी नाटककारों ने विरोधवाचक अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है। 'लेकिन' अव्यय को भी सभी नाटककारों ने अपने नाटकों मे स्थान दिया है। परन्तु नाटककारों ने इसको अधिक महत्व नहीं दिया। जिसमें बद्रीनाथ भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, (इनके नाटक स्वर्ग की झलक में मुख्य रूप से) सुरेन्द्र वर्मा तथा विष्णु प्रभाकर आदि नाटक कार हैं।

जहां कोई बात निश्चित नहीं है, विकल्प बना हुआ है, वहां नाटककारों ने या, अथवा, नहीं तो, अन्यथा, चाहे, आदि समुच्चयबोधक द्वारा अभिव्यक्त की है।

- .. दादा या परदादा या एक और पीढ़ी ऊपर वाले काश्मीर से भागते वाले आप होंगे। (भारत० ५० ९३)

- शुभधारा ..... या .... या ...... कामिनी । (प०रा० 26)
- घुँघराले बालों को वह माथे पर झुका लेती थी या झुका छोड़ देती थी । (रस० ५६)
- आप लोग चलेंगे या पत्थर की तरह खड़े रहेंगे (करी० ५६)
- .. तुम्हें इसी दासी बाई के सामने झुकना पड़ेगा अथवा सब अधिकार त्याग कर चित्तौड़ को छोड़ देना होगा । (जय० ८५)
- महानाश। अथवा प्रलय । (जय० २४)
- साहब के लिए अथवा चन्द्रकला के लिए (सिन्दूर० ७६)

या, अथवा अव्ययों द्वारा नाटकों में एक सी ही अभिव्यक्ति हुई है । 'या' को नाटकों मे अधिक महत्व मिला है, क्योंकि यह व्यावहारिक भाषा में अधिक प्रयुक्त होता है । 'अथवा' को इसकी तुलना में कम स्थान मिला है । इसको अधिकतर उन्हीं नाटककारों ने अपनाया है, जिनका रुझान साहित्यिक भाषा की ओर रहा है। जयशंकर प्रसाद , हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क (जय पराजय में) और मोहन राकेश के नाटकों में अन्य नाटकों की तुलना मे इसकी अधिकता रही है ।

'नहीं तो' का भी प्रयोग विकल्पात्मक अभिव्यक्ति के लिए हुआ है । इसके प्रयोग में चेतावनी तथा कुछ निश्चयता सी व्यक्त हुई है, अत: 'या' के प्रयोग से इसमें थोड़ी भिन्नता है ।

- हाँ मुख्तियार देखो हमार बात खाली न जाये, नहीं तो यु हमार मोठ उखारे जान्यो । (उलट० ६१)
- आर्य उसके मुँह मे साधना की लगाम होनी चाहिए, नहीं तो न जाने वह किस अंधकूप में ले जाकर पटक देगी । (अम्बा० १११)
- माँ को अनुमान हो गया होगा कि वर्षा मे मैं तुम्हारे साथ थी, नहीं तो इस तरह भीग कर न आती । (आषाढ़० १६)

- अभी इस लज्जाजनक अपराध का प्रकट करना बाकी ही रहा – उलटा अभियोग प्रमाणित करना होगा फिलिप्स नहीं तो प्रजा इसका न्याय करेगा ।(चन्द्र०९३)

'अन्यथा' का प्रयोग 'नहीं तो' की भांति नाटकों में हुआ है ।

- गंधर्वराज का भाग्य ऐसा था , अन्यथा हम लोग तो ... कहते क्यों नहीं (वि०अ०४८)

- या तो अपने प्राण दें, अन्यथा मेरे संघ के नियमों को स्वीकार करें ।(ध्रुव ०३५)

- जब कि शास्त्रों के अनुसार उसमें यह विशेषता होनी ही चाहिए अन्यथा कोई पुण्य नहीं मिलता ।(मैत्र०५)

अन्यथा की तुलना में 'नहीं तो' का व्यवहार नाटकों में अधिक हुआ है । 'नहीं तो' को नाटकों में सर्वत्र अपनाया गया है । जयशंकरप्रसाद, डी०पी० श्रीवास्तव और रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में अन्य नाटकों की तुलना में इसकी अधिकता है । 'अन्यथा' के प्रयोग की ओर जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा की दृष्टि अन्यों की तुलना में अधिक है ।

'चाहे' द्वारा भी अनिश्चयता व्यक्त हुई है । – जैसे

- बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें कंटीली भाड़ी लगा दो चाहे फूलों के पौधे ।(अजात०२५)

'चाहे' को बहुत कम स्थान नाटकों में मिला है । जयशंकर प्रसाद, सुरेन्द्र वर्मा ने गिने-चुने स्थलों पर इसको रखा है ।

किसी शर्त को व्यक्त करते हुए या किसी बात का संकेत करते हुए कुछ विशिष्ट समुच्चयबोधक अव्यय नाटकों में व्यवहृत हुए हैं। - जैसे

- यदि ऐसा है तो तुमको अब विवाह कर डालना चाहिए। (भारत० पृ० २)
- यदि मैं चुम्बक हटा दूं तो यह विशाल मूर्ति धराशायी होगी। (कोणार्क० २६)
- यदि यह नहीं हुआ तो खेद नहीं, (बकरी ४५)
- यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। (ध्रुव० २६)
- यदि ऐसा न हो तो ज्ञान की वृद्धि असंभव हो जाय। (स्कंद० १३३)

अगर ... तो, अव्ययों को नाटककारों ने भाषा को, व्यावहारिक भाषा के निकट लाने के लिए प्रायः व्यवहृत किया है।

- अगर आगे तुमने एक शब्द भी कहा तो मैं बोबठा तोड़कर पांव में डाल दूंगा। (रस० १५)
- अगर ऐसा नहीं हुआ तो मुझे कोई पुण्य नहीं मिलेगा (सेतु० ११)
- अगर कुछ इनाम न दे सकिये तो कम से कम मुवक्किलों से तो दिलवा दिया कीजिये। (अष्ट० ११)
- ... अगर केवल ... केवल प्यार के सम्मोहन में खो जाऊं तो... तो तराजू के पलड़े चंचल हो जाते हैं (प०रा० ५६)
- अगर आप मुझे बहुत तंग करेंगे तो मैं कुंए में कूद कर प्राण दे दूंगी। (मुक्ति० ८२)

यदि तो, अगर... तो से नाटकों में एक से ही भाव प्रकट हो रहे हैं, इनको एक दूसरे के स्थान पर रक्खा जा सकता है। इनका व्यवहार सभी नाटककारों ने किया है।

- यद्यपि तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है, परंतु अवस्था बड़ी भयानक है। (चन्द्र० ७०)

- यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारत विजय को भेजे पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं।(भारत० भा०३६)

- चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय परन्तु आकल्पान्त लोह-लेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट यवनों के लक्ष्य पर लिखी रहेगी।(नील० २४-२५)

नाटकों में 'यद्यपि' के साथ 'तथापि' अव्यय न प्रयुक्त हो कर परन्तु तथा पर व्यवहृत हुआ है। इस समुच्चयबोधक के प्रयोग की ओर जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा में) हरिकृष्ण प्रेमी तथा मोहन राकेश की रुचि अधिक रही है।

चाहे, परन्तु अव्यय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (नील देवी में) जयशंकर प्रसाद के नाटकों में व्यवहृत हुआ है। अन्य नाटकों में इनकी अत्यल्पता है।

कथन की व्याख्या करते हुए, उसमें स्पष्टता लाने के लिए भी समुच्चयबोधक अव्ययों को नाटककारों ने महत्व दिया है। - जैसे

- यह बिल्कुल सच है - अर्थात् वेदांत।(दुर्गा०५८)

- इसलिए ऐसी भौगोलिक स्थिति के कारण वहाँ की वाकाटक सेना शकों के विरुद्ध आक्रमण में बहुत सहायक होगी, अर्थात् इस ब्याह से दोहरे उद्देश्य पूरे होंगे - (सेतु० ३२)
- जो पराक्रमी पुरुष सात समुन्दर पार से खाद्य सामाग्री अर्थात् गेहूं, चीन से च्यवनप्रास, पाकिस्तान से फूट के बीज ...(रस०३०)

'अर्थात्' समुच्चयबोधक को नाटककारों ने काफी कम प्रयुक्त किया है क्योंकि सामान्यतः बोलचाल की भाषा में इसको कम अपनाया गया है। जयशंकर प्रसाद , बद्रीनाथ भट्ट, सुरेन्द्र वर्मा, मणिमधुकर ने स्पष्टता लाने के लिए इसका चुनाव किया है।

'मानो' अव्यय को भी नाटककारों ने व्याख्यात्मक अभिव्यक्ति में स्थान दिया है।

- यह मधुर स्वर सुन राजभवन के अन्तःपुर में मानो सर्प को पेटिका में बंदी करने के लिए जादूगरनी महुअर बजा रही है ।(समय० ८५)

- लेकिन सब के सब मानो कौतुक निहार रहे हैं ।(कथा० १०८)

- तरंगे पवन के स्पर्श से उन्मादिनी सी होकर आर को उछल रही हैं, कहीं ऊंची और कहीं नीची, मानो आनन्द के उभार में सिरभिन्नता भलक पड़ती हो ।(वि०अ० २६)

- सखी देख बरसात भी अबकी किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है । (श्रीचन्द्रा० ४५)

- इनके सामने विनम्रता से ऐसे हंसो मानो आपकी बत्तीसी मोतियों की है ।(अंजो० ५०)

'मानो' अव्यय द्वारा अभिव्यक्ति में, उदयशंकर भट्ट की रुचि अधिकतर रही है इनके अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र प्रेमी तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में यथा स्थान इनको व्यवस्थित किया है ।

'जैसे' अव्यय का प्रयोग भी 'मानो' की भांति कथन के स्पष्टीकरण हेतु हुआ है ।

- ऐसे खुल गये, जैसे पकने पर पपीता खुल जाता है ।(रस० ७३)

- ऐसे लग रहा था जैसे हाथ लगाते ही वह आशंका से कांप जायगा ।(लहरों० ४२)

- लड़की ऐसी है जैसे साक्षात देवी का रूप ।(युग० २५)

- आशंकाओं की आंधियां चल रही हैं और इनमें हृदय ऐसे कांप रहा है जैसे दो शेरों में भयभीत मृग ।(जय० ३६)

'जैसे' को नाटकों में अन्य स्पष्टता लाने वाले अव्ययों की तुलना में अधिक महत्व मिला है । जिसका नाटकों में सर्वत्र प्रयोग है ।

'कि' अव्यय द्वारा कथन में स्पष्टता लाई गई है । इसको सभी नाटकों में अपनाया गया है । -

- वाह वाह यह तो वही हुआ कि पढ़े फारसी और बेचे तेल (जनट०८६)
- तब मेरे जी में आया था कि अपनी छड़ी से ताबड़तोड़ उनकी हड्डी पसली एक कर दूं ।(अमृत०४६)
- वह चाहती थी कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए ।(मीम०२८)
- हर्ष की बात है कि पीठ में घाव न खाकर तूने मेरे दूध की लाज रखली ।(दुर्गा०११६)

क्योंकि, इसलिए, इस, अतएव, सो समुच्चयबोधक द्वारा कारण की अभिव्यक्ति की गयी है ।

'क्योंकि' का प्रयोग नाटककारों ने काफी किया है । इसको प्रायः कारण को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया है ।

- मैं छाया की तरह तुम्हारे साथ साथ रहा हूं क्योंकि तथागत का यह आदेश था ।(लहरों०८७)
- गाओ, गाओ उल्लास का गीत क्योंकि पृथु राजा पृथ्वी और आकाश का बकव्यूह तोड़ रहा है ।(प०रा०८५)
- हम लोगों को किसी से भी ज्यादा बातचीत नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे रोब और अख्तियार में फर्क आता है ।(जनट०२८)
- पढ़ाई होने के बावजूद वह नहीं जा सकती क्योंकि उसके बगैर मैं नहीं रह सकता ।(अमृत०१०४)

'क्योंकि' को सभी नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों में महत्त्व दिया है ।

'इसलिए' अव्यय से भी कारण प्रकट किया गया है । -

- मैं भी थक जाता हूं इसलिए मैं भी सोचना चाहता हूं ।(अमृत०६७)
- द्रुतसमाधि अभिमुख होते हैं, इसलिए यह विवेचना सबतरह से ठीक है ।(वि०व०२६-३०)

- रणमल के आदमी मेरे पीछे छाया की तरह रहते थे इसीलिए मैं युवराज के जाने से पहले भाग आयी ।(जय०१०५)

- कुमार हो, इसीलिए दया आती है (स्कंद०१६)

कई बार कारण व्यक्त करते हुए 'इसलिए कि' अव्ययों से भी संयोजन किया है।

- वे लज्जित करते थे ... विशेष रूप से , इसलिए कि वे... वे उत्सव में... नहीं आ पायेंगे (लहरों०४८)
- शायद इसलिए कि चाँदनी बड़ी शीतल होती है भई ।(उम्म० ३४)

'इसलिए कि' द्वारा अभिव्यन्जना रामवृक्ष बेनीपुरी , मोहन राकेश, मणि मधुकर तथा लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में मुख्यत: होती है ।

कथन मे किसी उद्देश्य की अभिव्यक्ति करने के लिए 'ताकि' समुच्चयबोधक को चुना है।

- तुम्हें अपनी सीमाओं में रहना होगा और लोगों के सामने सदाचार का उदाहरण पेश करना होगा ताकि भले परिवारों की लड़कियां तुम्हारी कालोनी में मकान ले सकें ।(रस०४१)

- अपने प्रेम पाश मे तुम्हें बांध रही हूं ताकि कहीं भाग न जाओ ।(जय० १६२)

- ताकि यहां वर्षा में भीगता, भीगकर लिखता ।(आषाढ़०१११)

'ताकि' को सब नाटककारों ने नहीं प्रयुक्त किया , मोहन राकेश, उपेन्द्रनाथ अश्क, मणि मधुकर के नाटकों मे इसको अपनाया गया है ।

'कि' अव्यय से नाटककारों ने उद्देश्य की अभिव्यक्ति काफी की है। अभिव्यक्ति की यह शैली सभी नाटककारों द्वारा व्यवहृत की गई है।

- इन कम्बख्तों ने कसम खाली है कि जिन्दगी में एक बात भी सच न बोलेंगे ।(अष्ट०२६)
- प्रण किया था कि कुमार राघव की मृत्यु का बदला लूंगा ।(जय०१६४)

नाटककारों ने कहीं कहीं समुच्चयबोधकों की आवृत्ति से बचने के लिए इनका प्रयोग कम किया है। उदाहरण

- यह है मेराघर, मेरी पत्नी का कक्ष, और यह है मेरी पत्नी (लहरों० ८६)

- मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं (अन्धा० ८१)

- जो पराक्रमी पुरुष सात समुन्दर पार से खाद्य सामाग्री अर्थात् गेहूं, चीन से च्यवनप्राश, पाकिस्तान से फूट के बीज, तमिलनाडु से राष्ट्र भाषा की सामग्री, तेलांगना से तिलचट्टों का मरतबान और राजस्थान से मुख्य मंत्री की नींद चुरा ला सकेगा, मैं उसी का वरमाला पहनाऊँगी। (रस० ३०)

- चुम्बित गालों के गुलाब में कितनी गंध है, भवों की कमान में कितनी तीरंदाजी, अधरों के बिम्ब में कितना रस है, दाँतों के दाडिम में कितनी मिठास, नासिका के शुक में कितनी उड़ान है, आँखों के खंजन में कितनी परवाजी है, ललाट के चाँद में कितना अमृत है और लटों के साँप में कितना जहर है - सब देख चुकी, आजमा चुकी, जान चुकी। (अम्बा० १०५)

उपर्युक्त कथनों में नाटककारों ने व्याकरणिक नियमों को दृष्टि में रखते हुए अन्त में समुच्चयबोधक को रखा है। इस शैली को जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश, मणि मधुकर और उपेन्द्रनाथ अश्क ने प्राय: अपनाया है।

कई बार नाटककारों ने समुच्चयबोधक का आवृत्तिमूलक प्रयोग किया है, संभव है नाटककारों को इन अव्ययों के स्थान पर अन्य अव्यय उपयुक्त नहीं लगे हैं जिसके कारण इनकी आवृत्ति की है। - जैसे

- उन सबको जोड़कर माँ का जो चित्र बनता है, वह बहुत म्लान है, बहुत उदास ... जैसे घने अंधकार की पृष्ठभूमि में सहस्रों दीपमालाओं से आलोकित बिल्कुल निर्जन राजप्रासाद ... जैसे तपती दोपहर में किसी प्यासे चातक की कातर पुकार... जैसे दो निर्दोष आँखों की निरन्तर अश्रु वर्षा। (सेतु० १८)

- नीलकमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय।(आषाढ़0 ८)

- ×× मैं पूरे विश्वास के साथ आपसे कहती हूँ कि जिस दिन मेरे सुधारक पिता श्रीमान् प्यारे लाल ने भरे बाजार में मेरे गाल पर इसलिए थप्पड़ मारा कि मेरी साड़ी का पल्ला सिर से उतर गया था, तो मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं इन पुराने दकियानूसी रीति-रिवाजों को अब और नहीं मानूँगी।(युग0 ३६)

- यह रण कंकण जीवन और मृत्यु की मैत्री का प्रतीक है, उत्साह और दूरदर्शिता का समन्वय, शक्ति और सामंजस्य, त्याग और कौशल का रसायन, शौर्य और विवेक का वाहन, तपस्या और शील का पाणिग्रहण।(झाँसी ७८)

आवृत्तिमूलक प्रयोग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, वृन्दावन लाल वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, विष्णुप्रभाकर, मोहन राकेश तथा सुरेन्द्र वर्मा ने अधिक रुचि ली है।

कहीं-कहीं आवृत्ति से बचने के लिए पर्याय रूप व्यवहृत हुए हैं। ऐसा प्रयोग सत्यव्रत सिन्हा ने किया है। -

- देख मेरे डैडी का ट्रान्सफर बैंगलोर से हुआ है, बट हम लोग बैंगलोर के नहीं है। बिफोर दैट हम लोग कटक में थे, लेकिन हम कटक के भी नहीं हैं। यू अण्डरस्टैन्ड बिफोर दैट वी वेयर ऐट लुमडिंग बट हम लोग वहाँ के भी नहीं हैं।(अमृत0 ३५)

भावों की अतिशयता की व्यन्जना करते हुए नाटककारों ने समुच्चय बोधक को महत्त्व नहीं दिया है, क्योंकि इन अव्ययों से भाव के आवेग में थोड़ी रुकावट आती है।

- बहुत सुन्दर, बहुत नेक, बहुत अच्छी समझ कर एक तरकीब मिल गयी। (कर्त्तव्य0 २६)

- कहाँ है मेरा भाई, मेरे हृदय का बल, भुजाओं का पराक्रम, आँखों का तेज, वसुंधरा का श्रृंगार, वीरता का वरणीय बंधु।(स्कंद०१३६)
- मैंने अपने हृदय के टुकड़े को अपने हाथों मसल डाला, अपनी आँखों की ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले को स्वयं अंधकार मे परिणत कर दिया - आज मैं माँ होकर भी डायन हो गई ।(जय०११६)

- मन्दिर, वेद, शास्त्र, पुराण, गीता सब अमर हैं । इनको कोई नहीं मिटा सकेगा! कभी नहीं!! कभी!!! (झाँसी ०६०)

भावतिशायता की व्यन्जना के लिए ऐसे प्रयोग की ओर जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर, वृन्दावन लाल वर्मा और सुरेन्द्र वर्मा की अधिक रुचि रही है।

नाटकों में कई बार विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए अपूर्ण वाक्यों का अंत समुच्चयबोधक से किया है । इन अपूर्ण वाक्यों मे समुच्चयबोधक होने के कारण पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

- इसमें कितनी वेदना है, कितनी व्यथा है किन्तु... (जय०५३)

- दीवार का हमें इतना शौक नहीं, किन्तु ... (रक्षा०६३-६४)

- हूं, मैने तुम्हे फूल समझा था किन्तु फूल मे शूल ... (शमथ०७२)

- सामान नहीं, लेकिन ।(अंधो०४३) (९

- हम हृदय से प्रसन्न हैं ... पर ... (दास०३१)

- मैं शराब पीता हूँ, यह मेरा अपराध नहीं, मगर ...(अंगूर०१५)

किन्तु, लेकिन, परन्तु, मगर अव्ययों के आने से अपूर्ण वाक्य होने पर भी विरोधात्मक अभिव्यक्ति हुई है ।

- मैं निभाये जाती हूं क्योंकि ... ।(आधे०६२)

'क्योंकि' से कारण व्यक्त हो रहा है कि, कोई कारण है जिससे मैं निभाये जाती हूँ।

किसी बात का पूर्ण संकेत देने के लिए भी समुच्चयबोधक वाक्य का अन्त किया है। -

- और यदि निकल गया तो (बकरी०४९)
- इसी तरह बराबर आती रहे तो (अमृत०२५)
- वह रात भर कहाँ रह गई तो (युगे०४२)

'कारण' की अभिव्यक्ति भी अव्यय के प्रयोग से प्रकट हुई है।

- हाँ सोच रहा था कि ... (लहरों०७३)

अपूर्ण वाक्य के अन्त में समुच्चयबोधक रखकर भावाभिव्यक्ति की शैली जयशंकर प्रसाद, हरी कृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर व मोहन राकेश के नाटकों में अधिक अपनायी गई है। विष्णु प्रभाकर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सत्यव्रत सिन्हा तथा सुरेन्द्र वर्मा ने भी कहीं-कहीं ऐसी शैली को महत्व दिया है।

कहीं-कही नाटकों में अनावश्यक भी समुच्चयबोधक अव्यय व्यवस्थित हुए हैं,यदि उनको वाक्य से हटा दिया जाय तो अभिव्यक्ति भी अधिक स्पष्टता आ जायेगी

- या तो आप जानबूझकर अन्जान बन रहे हैं और या फिर नाट्यकला का आपका ज्ञान अधूरा है। (ना० क० वि०६७)

इसमें 'और' के हटने पर वाक्य अधिक ठीक प्रतीत हो रहा है।

- परन्तु यदि सब तुम्हारी तरह से विचार करने लगें तो यह लड़कियां क्या करेंगी। (भारत० पृ० ३-४)

'परन्तु' का 'यदि' के साथ प्रयोग अटपटा लगा है।

- मगर असल में मैं कहना चाहता था कि अब इसमें वह आनन्द ही नहीं मिलता ।(अंगूर ०१०६)

'मगर' के हटने पर वाक्य अधिक ठीक लगेगा ।

समुच्चयबोधक का अनावश्यक तथा अटपटा प्रयोग लक्ष्मीनारायण लाल, गोविन्दवल्लभ पन्त, प्रतापनारायण मिश्र, मुद्राराक्षस तथा सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में अधिकहुआ है ।

नाटकों में 'और' समुच्चयबोधक का प्रयोग विशेषण रूप में भी सर्वत्र हुआ है ।

- छाया लम्बी और लम्बी होती जा रही थी ।(लहरों०३५)
- और जवाब दिये जा चुके हैं (अन्धा०२८)
- मैं और स्त्री से प्रेम करता हूं (भारत० पृ०१०२)
- एक और मधुमय मादक गान (जय० १९)
- शिक्षित की समाज की हालत तो और भी बदतर हो रही है।(उलट०३)

नित्य व्यवहार में लाये जाने वाले समुच्चयबोधकों का प्रयोग सभी नाटककारों ने प्रधान रूप से अपने नाटकों में किया है । आरम्भिक नाटककारों की दृष्टि समुच्चयबोधक की ओर अधिक नहीं रही है अत: आरम्भिक नाटकों में इनको कुछ कम महत्त्व मिला है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र तथा बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में यह विशेषता मिलती है । जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्णप्रेमी, मोहनराकेश , जगदीश चन्द्र माथुर, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में समुच्चयबोधक का काफी सफल प्रयोग हुआ है। इन नाटककारों ने नाटक की भाषा को दृष्टि में रखते हुए नित्य प्रति व्यवहार में लाये जाने वाले अव्ययों से भिन्न अव्ययों को भी यथा स्थान प्रयुक्त किया है ।

विस्मयादिबोधक

भावों या मनोदशा की अभिव्यक्ति हेतु नाटककारों ने विस्मयादि बोधक शब्दों को नाटकों मे महत्त्व दिया है । इन विस्मयादि बोधक शब्दों मे भावों को प्रकट करने की काफी क्षमता है, एक ही विस्मयादि बोधक शब्द से मनोदशा प्रकट हो गयी है ।

- अरे (अम्ब०६२)
- अंय (मादा०१)
- शाबाश (कोणार्क०५६)
- हा (दुर्गा०५८)

उपर्युक्त एक शब्द से ही प्रकट हो रहा है कि पात्र किस मनोदशा में बोला है ।

नाटकों मे विस्मयादि बोधक शब्दों का प्रयोग विविधता लिए हुए है । इनमे विस्मयादिबोधक शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति, बोलने की रीति पर भी काफी निर्भर है । एक ही शब्द द्वारा कभी-कभी कई भाव व्यक्त हुए हैं, परन्तु उसमें अन्तर बोलने के ढंग से प्रकट हुआ है ।

नाटकों मे विस्मय के भाव की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों को आश्चर्य के साथ तेजी से तथा विस्मयादि बोधक शब्द की अंतिम ध्वनि को खींच कर बोला गया है जैसे -

- हैं (सिन्दूर०४६)
- हैं (झाँसी०७५)
- ओहो (चन्द्र०५८)
- अरे (ना०ध०वि०४८)
- हैं (भारत० पु०५५)

विस्मय को प्रकट करने के लिए 'अरे' शब्द को नाटकों में प्रधान रूप से सर्वत्र महत्त्व मिला है। अरे के अतिरिक्त भी विस्मयाबोधक शब्द नाटकों

व्यवहृत हुए हैं । ऐं शब्द को लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा ने, ओहो को जयशंकर प्रसाद तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र ने हैं को जी०पी० श्रीवास्तव ने अधिक अपनाया है ।

विस्मय की अतिशयता को व्यक्त करने के लिए विस्मयादि बोधक शब्दों का आवृत्तिमूलक प्रयोग नाटककारों ने किया है ।

- आंय आंय (उलट०१०)
- अरे अरे (दुर्गा०४६)
- हैं हैं (उलट०२२)

कहीं कहीं दो विस्मयादि बोधक शब्दों द्वारा भावातिशयता की व्यन्जना की गई है।

- अरे ... ओहो , (मादा०२५)

नाटककारों ने कई बार विस्मयादि बोधक शब्दों का प्रयोग न करके उसके स्थान पर अन्य शब्दों का विस्मयादि बोधक की भांति प्रयोग किया है। कई बार नाटकों में संज्ञा शब्द द्वारा विस्मय व्यक्त किया है ।

- सुभान अल्ला (उलट०२८)

प्राय: नाटकों में जिस वस्तु से विस्मय उत्पन्न हुआ है, उसको आश्चर्य के साथ उच्चरित किया है ।

- (आश्चर्य) भिक्षुणी (अम्ब०१११)
- कुमार! (लहरों०२६)
- (आश्चर्य से)मित्र (अमृत०११०)
- फांसी! (अंधेर०२०)
- कर्पूर! (अजात०५८)
- उर्वी और कवच! (प०रा०६६)

संज्ञा शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति की शैली नाटकों में सर्वत्र व्यवहृत हुई है ।

कई बार विस्मय में संज्ञा शब्दों का आवृत्तिमूलक प्रयोग किया गया है। विस्मय का भाव आवृत्ति से ही व्यक्त हो सका है यदि इसमें एक संज्ञा शब्द को रखा जाता तो भाव नहीं प्रकट हो सकता था।

- शिव! शिव! । (रक्षा० ८)
- शिव-शिव-शिव । (आठ० ५६)
- राम राम राम । (मादा० ८)
- हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! (उलट० १०६)

विस्मय की इस प्रकार की अभिव्यक्ति हरि कृष्ण प्रेमी, जी०पी० श्रीवास्तव, मोहन राकेश(आधे अधूरे में)तथा लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में हुई है।

कुछ संज्ञा शब्द भी नाटकों में विस्मय की अभिव्यक्ति में व्यवहृत हुए हैं जिनके साथ विस्मयादिबोधक शब्दों काप्रयोग अनिवार्यता होता है।

- हाय दैया ,(युग० १४)
- अरे बाबा ,(अंधेर० 20)
- अरे! दादा रे दादा! (उलट० ६०)
- अरे बाप रे! (अंगूर० २6)

भाव की इस प्रकार की वाचिक अभिव्यक्ति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (अंधेर नगरी में) जी० पी० श्रीवास्तव, गोविन्द वल्लभ पन्त, विष्णु प्रभाकर के नाटको में प्रायः हुई है।

विस्मय में कई संज्ञा के स्थान पर सर्वनाम को व्यवस्थित किया है।

- क्या ... ? ... ? (अंजो० ५५)
- कौन ? (स्कंद० १५२)
- आपने! (सिन्दूर० १६६)
- तुम! (स्कंद० १२४)

विस्मय का आधिक्य सर्वनाम की आवृत्ति से भी व्यक्त हुआ है ।

- हम! हम! हम कुन कियेन हैं (उत्त०१२१)
- आप ... आ ... आप ... ! (लहरों०८६)

विस्मय को व्यक्त करने के लिए विशेषण को कहीं कहीं महत्त्व दिया है । उसमें विस्मय का कारण विशेषण है ।

- सच ! (मादा०३२)
- खूब ! (दुर्गा०४४)

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण का विस्मयादि बोधक शब्दों की भांति प्रयोग लगभग सभी नाटकों में हुआ है, परन्तु जी० पी० श्रीवास्तव, जयशंकर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीशचन्द्र तथा मोहन राकेश ने ऐसे प्रयोग में अधिक रुचि ली है ।

शोकाभिव्यक्ति में आ, ओह, हाय, हा आदि विस्मयादिबोधक शब्द प्रयुक्त हुए हैं । इन शब्दों को कोमलता से बोला गया है । इनसे दारुणता व्यक्त हुई है । इनमें पहले शब्द के साथ आदी स्वर ध्वनि को खींचकर बोलने से शब्द में शिथिलता सी आगई है जो भाव को व्यक्त करने में सहायक हुई है ।

- ओह!(सिन्दूर०३१)
- आह!(अम्बा० १०१)
- हाय!(भारत भा०२३)
- हा! (दुर्गा०१२०)
- ओफ! (झांसी७०)

शोक की अधिकता को व्यक्त करने के लिए विस्मयादिबोधक शब्दों की आवृत्ति की गई है ।

- हाय, हाय! (अम्बा०१०२)
- हाय - हाय (ध्रुव०२५)
- हा! हाय! हाय! (श्रीचन्द्र०२६)

आवृत्तिमूलक प्रयोग को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने श्रीचन्द्रावली तथा रामवृक्ष बेनी पुरी के अम्बपाली नाटक में काफी महत्व मिला है ।

शोक का निवारण करने वाली वस्तुओं को, विस्मयादि बोधक शब्दों के साथ भी कहीं कहीं रक्खा है ।

- हा विधाता! (वि०अ० १८२)
- हे भगवान! (अंगूर० ९३)
- हाय भगवान! (दुर्गा० १२३)
- हाय राम! (सिन्दूर २८)
- हाय बाप रे! (उलट० २२)

शोक की अभिव्यन्जना की यह शैली बद्री नाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, उदयशंकर भट्ट, गोविन्दवल्लभ पन्त, लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दावनलाल वर्मा के नाटकों में प्रयुक्त हुई है ।

हर्ष को प्रकट करते हुए विस्मयादि बोधक शब्दों को उत्तेजित होकर बोला गया है ।

- अहा! (मादा० ३८)
- आहा, (ना०अ०बि० ५८)
- शाबाश, (कोणार्क० ५६)
- अहा (वि० अ० २०)
- वाह! (धु्व० ७)
- वल्लाह, (नील० ३०)

हर्ष के अन्य सभी सर्वत्र नाटकों में व्यवहृत हुए हैं परन्तु वल्लाह शब्द का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'नीलदेवी' नाटक में अधिक प्रयोग हुआ है ।

आवृत्तिमूलक प्रयोग द्वारा हर्षातिरेक की व्यन्जना की गई है ।

- वाह! वाह! (रापथ० ६६)
- वाह! वाह! (औहे० १२)
- वाह, वाह, वाह (दुर्गा० ८८)
- उर्र, उर्र, उर्र (बकरी० २९)
- वाह! वा! शाबाश! शाबाश (भारत०भा० २६)

कई प्रकार विस्मयादि बोधक शब्द भी हर्ष की अधिकता की अभिव्यन्जना में प्रयुक्त हुए हैं।

- आहाहा ... वाह बेटा, (मादा० ४४)

नाटकों में हा शब्द की आवृत्ति से ही हर्ष व्यक्त हुआ है, अकेले आने पर इसने शोक का भाव व्यक्त किया है।

- हा! हा! हा! (जय० ४६)
- हा! हा! हा! (रक्षा० ५)
- हा - हा - हा - हा (अन्धा० २१)
- हा... हा.... हा.... (मादा० ५३)

विस्मयादिबोधक शब्दों के साथ संज्ञा का प्रयोग कर नाटककारों ने भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट लाये हैं। - उदाहरण

- वाह भाई वाह (भारत० भा० ५)
- वाह साहब! (मुक्ति० ५६)
- वाह री किस्मत (जनट० २५)
- अहोभाग्य (बाप० ३८)

कई बार विशेषण को भी विस्मयादि बोधक शब्दों की भांति व्यवहृत किया है।

- धन्य हो (रक्षा० ६४)
- धन्य है, धन्य है (दुर्गा० १२०)

- बहुत अच्छा!!! (नील० २४)

उपर्युक्त कोटि की भाव प्रदर्शन शैली को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी ने महत्व दिया है ।

तिरस्कार की मनोदशा को प्रकट करने के लिए तिरस्कारसूचक शब्दों को नाटककारों ने चुना है । इसमें शब्दों को कठोरता तथा तेजी के साथ बोला गया है ।

- छि: (सिन्दूर० ४०)
- छि: (प०रा० ६८)
- चल (अंजो० १२२)
- चुप! (अजात० १३५)
- जा, (अंगूर ०४६)

बलपूर्वक अभिव्यक्ति हेतु तिरस्कार सूचक शब्दों की आवृत्ति को महत्व दिया है । जैसे

- छि: छि: (भारत० भा० २४)
- छि: छि: (माद० ८)
- चल-चल (अंजो० ५६)
- जाओ, जाओ (प०रा० ५२)
- छोड़ो-छोड़ो (ध्रुव० ३२)
- बस - बस (चन्द्र० ६६)
- बस-बस (श्रीचन्द्र० ५५)
- धिक्कार है, धिक्कार है! (दुर्गा० १२५)

तिरस्कार की व्यन्जना मे प्राय: वाक्य भी प्रयुक्त हुए हैं ।

- हटजा (स्कंद० १५८)
- हट जाओ ... हट जाओ (मुक्ति० १४४)
- दूर ही रह, (अंगूर० ४६)
- चुप रहो (ध्रुव० ५६)

- कम हट दूर हो (दुर्गा० १२६)
- धिक्कार है तुम्हे! (रक्षा० ७०)

तिरस्कार सूचक शब्दों को कुछ नाटककारों ने अधिक अपनाया है जिसमें बद्रीनाथ भट्ट, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी मुख्य हैं। इनकी तुलना में उपेन्द्रनाथ अश्क अंजो दीदी,(जय पराजय में)भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगदीश चन्द्र माथुर , गोविन्दवल्लभ पन्त , लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, मणि मधुकर के नाटकों में काफी कम ये शब्द व्यवहृत हुए हैं।

स्वीकारात्मक शब्दों द्वारा स्वीकृत करने की स्थिति प्रकट हुई है।

- हाँ (लहरों० ७३)
- हाँ (अजात० १०२)
- हाँ (प०रा० ६६)
- हाँ (शमथ २०)
- बहुत अच्छा (अंजो० ५६)

अनुमोदन करते हुए प्राय: बलपूर्वक अभिव्यक्ति के लिए शब्दों की आवृत्ति की है। अनुमोदन में ऐसा प्रयोग नाटकों में अधिक हुआ है।

- हाँ - हाँ, (आषाढ़० ७०)
- हाँ, हाँ, (कोणार्क० ८१)
- अच्छा - अच्छा (अम्बा० ६२)
- अच्छा, अच्छा (अष्ट० ९८)

'हाँ' शब्द द्वारा स्वीकारात्मक तथा अनुमोदन सूचक अभिव्यक्ति सभी नाटककारों ने की है।

मंगल कामना को आशीर्वाद सूचक शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। इसमें प्राय: अभिव्यक्ति वाक्य में हुई है।-जैसे

- कल्याण हो! (अजात० २६)
- जीती रहो (पुण्य० ५०)
- सुखी रहो!! (सेतु० २६)

- जय हो (अजात० १३१)
- यशस्वी हो (रक्षा०३६)

आशीर्वाद सूचक शब्दों को जयशंकरप्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में काफी अपनाया गया है । इनके अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, गोविन्दवल्लभ पन्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीशचन्द्र माथुर, वृन्दावन लाल वर्मा तथा सुरेन्द्र वर्मा के 'सेतुबन्ध' में इनको स्थान मिला है, परन्तु इन नाटककारों ने अपेक्षाकृत कम महत्व दिया है।

कुछ ऐसे नाटकों में विस्मयादि बोधक शब्द व्यवहृत हुए हैं, जिनसे कोई भाव नहीं प्रकट हुए हैं । उनसे सम्बोधित किया गया है ।

- अरी (प०रा०१३)
- नाथ ! (अंजो०२१)
- जा रे (भैमी ४०)
- अरे बच्चा (अंधेर०२२)
- अजी (उमट० २६)
- अरी (दश० ८५)

उपर्युक्त कोटि के सम्बोधन शब्द भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जी०पी० श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा जगदीश माथुर के (दशरथ नन्दन में) नाटकों में अधिकांशतः आये हैं ।

नाटकों में कई बार ऐसा प्रयोग हुआ है कि नाटककार कोई भाव प्रकट करना चाह रहा है परन्तु विस्मयादि बोधक शब्द के अनुपयुक्त प्रयोग से कुछ अन्य अभिव्यक्ति हुई है।

विस्मय की अभिव्यक्ति ओहो से अधिक होती है, परन्तु उसके स्थान पर शोककी अभिव्यक्ति करने वाला ओह शब्द प्रायः नाटकों में प्रयोग हुआ है ।

- ओह , आप! (माद०३८)
- ओह ! स्त्रियाँ तोप चला रही हैं (झाँसी०८१)

- ओह! मै तो लोबन को देखो ही समझ लिया (लौटन० ३५)

लोक में कभी कभी हर्ष प्रकट करने वाला शब्द व्यवहृत हुआ है ।

- अहा! ऐसा सुन्दर, ऐसा मनुष्योचित मन कौड़ी के मोल बेंच दिया । (स्कंद० ५६)

नाटकों मे विस्मयादि बोधक शब्दों के द्वारा स्वभाव अभिव्यक्ति के पक्ष में कुछ नाटककार अधिक रहे है, जिनमे बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, रामवृक्ष बेनीपुरी, वृन्दावनलाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा मुद्राराक्षस है । इन नाटककारों ने भावस्फटीकरण में इन अव्ययों की सहायता अन्य नाटककारों की तुलना मे अधिक ली है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद , प्रतापनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, गोविन्दवल्लभ पन्त, लक्ष्मीनारायण मिश्र, मणिमधुकर तथा सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों मे अभिव्यक्ति मे विस्मयादिबोधक अव्यय को अपेक्षाकृत कुछ कम महत्व मिला है । मोहन राकेश , सत्यव्रत सिन्हा का रुझान इन अव्ययों की ओर कम रहा है । विपिनकुमार अग्रवाल ने तो सबसे अल्प संख्या में विस्मयादिबोधक शब्दों को अपने नाटक में व्यवस्थित किया है ।

चौथा अध्याय

वाक्यगत शैली

- महाराज के समक्ष देना + ही + होगा । (अजात० ११०)

- मुझे अब टलना + ही + चाहिए । (अनुत० १८)

मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया वाले क्रिया वाक्यांश साधारण रूपों में नाटकों में प्रायः आये हैं ।

मुख्य क्रिया + सहायक क्रिया = क्रिया वाक्यांश

- मैं ही अकेला क्या कर + सकता हूँ ? (वि०अ० ६१)

- + + + कुन्तलों को झनझनाकर धूमिल अंधकार में खो+ जाती है । (चन्द्र० १३१)

- इस कलंक को धो+ डालो (कुणा० ११६)

- परमात्मा इस अखिल ब्रह्माण्ड को चला+ रहा है । (कुणा० २७)

- + + + युग-युग की प्यास बुझा + सकी थे । (समय ४२)

- परन्तु अब तो धीरे-धीरे मैं यहाँ की अभ्यस्त हो + रही हूँ ।(जय०७०)

- हाय परमेश्वर तू कहाँ सो + रहा है । (मीरा० २२)

- + + + मैं आपको क्या दे + सकती हूँ । (मा०ल० पृ० ३६)

विशेषण वाक्यांशों की संख्या कम है, क्योंकि प्रायः विशेषण संज्ञा वाक्यांशों में ही आ गये हैं । विशेषण वाक्यांशों में कई विशेषण एक साथ आये हैं । इनमें कहीं-कहीं परसर्ग तथा संयोजक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं -

- पर उतना साफ सुथरा होना चाहिए । (कौ० १०६)

- बड़े शहर के सभी पढ़े लिखे समझदार लोग हैं । (नकरी०१०)

- यहाँ इन ऊँची ऊँची दीवारें बनाकर छोड़ दी है ।(मीरा० १२)

कहीं पदबंध एक साथ भी व्यवहृत हुए हैं । इन नाटककारों की तुलना में लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा मोहन राकेश ने अपनी कृतियों में पदबंधों को कुछ कम महत्व दिया है । मोहन राकेश के " आधे अधूरे " में क्रिया पदबंध अधिक हैं । विस्मयादिबोधक पदबंधों की अत्यल्पता है । कुछ नाटकों में बहुत कम पदबंधों को महत्व मिला है जिनमें सत्यव्रत सिन्हा का " अमृतपुत्र " सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का " बकरी " विपिन कुमार अग्रवाल का " लोटन " व मुद्राराक्षस का " तिलचट्टा " नाटक है । इन नाटकों में जो पदबंध आये हैं, वे आकार में छोटे हैं तथा पदबंधों का गुंफ कहीं उलझा नहीं होने पाया है । संज्ञा व क्रिया पदबंधों की प्रधानता है । विस्मयादिबोधक पदबंध अत्यल्प है ।

इन नाटकों की तुलना में मणिमधुकर के " रसगंधर्व " में पदबंधों की कुछ अधिकता है । पदबंध अधिकांशतः छोटे हैं कहीं-कहीं कई पदबंध एक साथ भी आ गये हैं, परन्तु उनसे भाषा की व्यावहारिकता कम नहीं हो रही है । विस्मयादिबोधक पदबंध भी प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु संख्या में अल्प है । सर्वनाम पदबंध गिने चुने हैं ।" बुली बुलीशान्ति " में रसगंधर्व की तुलना में पदबंध काफी कम हैं, जो पदबंध आये हैं उनमें संज्ञा तथा क्रियापदबंध मुख्य हैं ।" बुलीबुली शान्ति " की तुलना में गोविन्द वल्लभ पन्त की " अंगूर की बेटी " में कुछ पदबंधों की अधिकता है । इसमें क्रिया तथा संज्ञा पदबंध अधिक हैं । पदबंध अधिकतर छोटे ही हैं । विस्मयादि-बोधक व सर्वनाम पदबंध गिने चुने हैं । पदबंधों से कहीं भी भाषा में बोझ नहीं आने पाया है ।

मुहावरा प्रयोग

मुहावरे वाक्य की इकाई होते हैं । ये लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ अभिव्यक्ति करते हैं । कथन की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति में मुहावरों का बड़ा योगदान है। मुहावरे व्याकरणिक नियमों से हटकर निर्मित होते हैं । इनसे भाषा में आकर्षण

जा जाता है । नाटकों में मुहावरों के प्रयोग की कई शैलियां मिलती हैं ।

भावों की सफल अभिव्यक्ति मुहावरों की सहायता से हुई है, यदि मुहावरे के स्थान पर अभिधा शैली में कथन होता, तो कथन अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाता । जैसे किसी को परेशान करने के लिए मैं तुम्हें परेशान कर दूंगा . वाक्य इतना प्रभाव नहीं डालेगा, जितना कि " मैं तुम्हें नाकों चने चबवा दूंगा, मुहावरा युक्त वाक्य ।

मुहावरे भावों की अभिव्यक्ति में सरलता के साथ-साथ तीक्ष्णता भी लाते हैं । नाटकों में कुछ भावों में मुहावरे अधिकांशत: प्रयुक्त हुए हैं । भावों के अनुरूप भी मुहावरों का प्रयोग नाटकों में हुआ है ।

क्रोध की अभिव्यंजना में मुहावरे कुछ भिन्न कोटि के, तीक्ष्ण आघात करनेवाले व भर्त्सना युक्त प्रयुक्त हुए हैं । जैसे -

- अपने ही दल के महत्त्वाकांक्षी लोगों की गर्दन पर छैनी चलाते थे । (रक्त० ४३)
- कहीं घाव पर नमक छिड़कती है । (स्कंद० ६८)
- जले पर नमक न छिड़कों माँ । (ध्रुव० ११८)
- मेरे मुंह पर कालिख पोत दी । (कुमु० २६)
- इसने अपनी प्रजा का नाक में दम करके अपने खजाने को अमीर-नादिरी बना रखा है । (दुर्गा० ३४)
- यह कौन कम्बख्त आकर कबाब में कांटा हुआ । (उट०७६)
- मैं कहता हूँ आप सज्जन पापड़ बेलते रहे । (नूत० ५५)
- किसी के मरे हुए बाप-दादों की पगड़ी उछालना, राम, राम । (सम्प० ६६)

- अब कभी, मगध में मुँह न दिखाना । (चन्द्र० ६७)

- पहली तारीख को पन्द्रह रुपये के लिए सिर पर चढ़ बैठेगी ।
(मुक्ति० ५७)

- आग में घी डालना अच्छा नहीं होता ।(बा०रा०पृ०७४)

-

क्रोध के भाव में नाटकों में सब से अधिक मुहावरों का व्यवहार हुआ है ।

उत्साह के भाव में वीरता प्रकट करनेवाले मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं, इन मुहावरों से कभी-कभी चेतावनी भी व्यक्त हो रही है । ऐतिहासिक नाटकों में इनका व्यवहार अधिक हुआ है।

- अब आगे बनराज रोकें, समर में उसके पुरखे न दिख पड़े तो मूँछ मुड़ा दूँगा ।
(कर्णा० ११३)

- जिन लोगों ने आज बहादुर और बड़े बड़े किलों के दाँत खट्टे कर दिए, उनसे लोहा बजाना चूहों और मुर्गियों से लड़ना नहीं ।(दुर्गा०२०)

- मेवाड़ की विजयों से शत्रुओं के दाँत खट्टे हो गये । (कप० ३८)

- युधिष्ठिर, समर से मुख मोड़ना सिंह शावक नहीं जानते ।(म०८८)

- यदि युद्ध में किसी ने भारत पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया भी तो मुँह की खानी पड़ी । (जय०४१)

- बादशाह को लात मारकर मैंने कुल का आज सच्चे दिल से स्वागत किया है । (मुक्ति० ७१)

- प्रजा अब ब्राह्मणों की मुट्ठी में होगी । (प०रा०७९)

- ब्राह्मणों को भी रक्त की नदी बहानी पड़ेगी । (कुव० ३८)

- दिल पर पत्थर रखकर जीना हर क्षत्राणी का नित्य कर्म होता है ।
(रक्षा० ६५)

क्रोध तथा उत्साह की तुलना में अन्य भावों में मुहावरों की संख्या कुछ अल्प है ।

- तब हमारा - तुम्हारा प्यारा हिमालय भी —— हिमगिरि भी —— मटियामेट हो जायेगा । (पत्ता०४६)

- कारागार की किसी अंधेरी कोठरी में एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरे ? (विद्रु० ३४)

- तुम्हारी आँखें भर आई हैं (अंगूर० ६३)

प्रेम व श्रृंगार के प्रसंगों में प्रशंसात्मक मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं जैसे -

- सिर पर आभूषण तो तुम्हारे रूप को चार चाँद लगा देते हैं । (छाया ३८)

- वैशाली की कीर्ति अम्बा की कीर्ति को चार चाँद लगा देगी । (अम्बा० ५६)

हास्य व्यंग्य के प्रसंगों में व्यंग्यपूर्ण मुहावरों को व्यवस्थित किया है । जैसे -

- आप तो बाजे की पोंछ बेफिकर रहिए । (स्वर्ण०२३)

- पानी की ऐसी सूझी कि दिमाग आसमान को जा पहुँचा (उलट०७)

- आप पन्ना सेठ की नानी हैं । (भारत०भ्र०७२)

- मोटा भाई बना-बना कर मूँड लिया । (भारतभ्रा०२८)

- यह हवा में बातें करता है । (रस० ३८)

- जी, कान भी काटता है । (मादा० ३४)

- तू तो बड़ा होकर टैगोर के कान काटेगा । (अंधी० १२०)

- उन्होंने काफी नाम-काम बना रखा है । (अनुत० १८)

- अपनी शासन की सफलता के ढोल पीटते हैं ।(भा०व०पि०८०)

प्रसन्नता के आविर्भाव को भी मुहावरों की सहायता से प्रकट किया है ।

- वह तो फूली नहीं समा रही थी । (अम्बा० ५६)

- तुम खुशी से फूली न समाओगी । (ओ० १११)
- जिनकी मुस्कराहट पर दुनिया फूली नहीं समाती । (उल्ट०७४)

नाटककारों ने मुहावरों के शब्द क्रम को तोड़कर उनके बीच अन्य शब्द रखकर भी प्रयोग किया है, इस प्रकार के मुहावरा प्रयोग से मुहावरों का प्रभाव घट रहा है ।

- उनकी तलवार का लोहा, यवन, गोगादुर्गाधिपति, मेदों के सरदार तथा दूसरे मान चुके हैं । (कथ० ३४)
- अबे प्यार न करें तो मुट्ठी कैसे गर्म हो ? (उल्ट० २७)
- महारानी की बात तो पत्थर की लकीर ही है ।(दुर्गा०७४)
- उस घर का चिराग अब बुझ रहा है —— (सिन्दूर० ७८)
- हम उसका बाल भी बाँका भी बाँका नहीं होने देंगे । (दुर्गा०२३)
- अभी कान भी काटता है । (माया०३४)
- आज चित्तौड़ को मैं धूल में भले ही मिला डालूँ पर मेवाड़ का सर ऊँचा ही रहेगा । (रक्षा०५४)
- चुप । तुमने मेरी आँखें फिर खोल दी (वि०७०४)
- मुझे काँटों में मत घसीटिए । (सम्ब० ६)
- किसी प्रकार से पिंड भी छूटे । (कबाल० १००)
- पहेलियाँ मत बुझाओ । (सेतु० ६)
- किसी का मुँह न देख । (कारी २५)
- उसकी ज़बान किस तरह रुक गयी है —— (आषे० ७१)

कहीं-कहीं वाक्य को प्रश्नात्मक बनाने के लिए भी मुहावरों के क्रम को तोड़ा गया है जैसे -

कहीं-कहीं पर मुहावरे को तोड़कर नया रूप दिया है जैसे -

- फिर कमजोरों के सिर और पीठ पर तो हाथ की है ।

(कर्फ्यू०१६८)

नाटककारों ने अपनी सुविधानुसार नए मुहावरों को भी गढ़ा है जैसे -

- कहाँ पाँव पड़ने लगा है तू कि ? (आखे० ६४)

- सारे प्रभु मिला सारे पण्डा पर के गड्ड हो गए । (भारत०)

- इस कहानी के साथ कैद हो गए ।(नारद०)

- जो प्रेम कान्फ्रेंस में धूल उड़ाते । (राम० ३८)

- उसे एक ही झिटके में पुड़िया फूंकने के लिए विवश कर सकती हूँ ।

(स्वर्ग० ११५)

- तब भी दांत पर दांत रखे, (स्वर्ग० ५०)

- हाय ! सब की आँखों में हलकी हो गयी । (चीनचन्द्रा०७८)

नाटकों में मुहावरों के प्रयोग में भी विभिन्नता मिलती है । कुछ नाटककारों ने तो अपने नाटकों में मुहावरों की भरमार की है, जिनमें बद्रीनाथ भट्ट, बी०पी०श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, मणि मधुकर तथा रामकुमार भैरोपुरी मुख्य हैं । इन नाटककारों ने मुहावरों को संक्षिप्त करके उनको नकारात्मक, प्रश्नात्मक बनाकर सभी रूपों में रखा है । इन नाटककारों ने परंपरागत मुहावरों का ही अधिक प्रयोग किया है । कई नाटककारों ने भाषा को अलंकृत व चुटीली बनाने के लिए मुहावरों को महत्त्व तो दिया है परन्तु उनकी अधिकता नहीं की है । इस प्रकार का प्रयोग उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर की कृतियों में हुआ है । भारतेन्दु जी ने तो कुछ नए मुहावरे भी जो उनके स्वयं निर्मित हैं, उनका व्यवहार किया है ।

जयशंकर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर व सुरेन्द्र वर्मा भी अधिक मुहावरे प्रयोग के पक्ष में नहीं हैं । जयशंकर प्रसाद ने भी कुछ अपने स्वयं के बनाये हुए

मुहावरों को स्थान दिया है । मोहन राकेश ने भी अपने दो नाटकों" लहरों के राजहंस" तथा" आषाढ़ का एक दिन" में मुहावरों बहुत ही कम मुहावरे रखे हैं । इनके बाद अधूरे" नाटक में कुछ अधिक मुहावरे हैं, क्योंकि नाटककार ने इसकी भाषा में व्यंग्य तथा चुटीलापन अधिक लाना चाहा है ।

विपिन कुमार अग्रवाल , लक्ष्मी नारायण लाल, मुद्राराक्षस की कृतियों में मुहावरों की अल्पता है जो मुहावरे व्यवहृत हुए हैं, उनमें कोई नवीनता नहीं है घिसे-पिटे हैं ।

इस प्रकार नाटककारों ने अपनी शैली के अनुरूप मुहावरों को ढालकर प्रदर्शित किया है ।

एक, दो, तीन शब्द वाले वाक्य

नाटकों में जहां लम्बे वाक्यों का महत्व है, वहां छोटे वाक्य का भी कम महत्व नहीं है । कुछ ऐसी स्थितियां होती हैं, जिनमें छोटे वाक्यों द्वारा ही अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है । नाटकों में विभिन्न भावों तथा स्थितियों के प्रकटीकरण में छोटे वाक्यों का ही चयन किया है, जिसमें अधिकतर एक, दो, तीन शब्द वाले वाक्यों को महत्व दिया है ।

भाव की आवेशात्मकता में मुख्यतः अभिव्यक्ति की दो दशाएं होती हैं, पात्र या तो लगातार बोलता जाता है, या एक दो शब्द कहकर शांत हो जाता है, नाटकों में भावाधिक्य की दशा को एक,दो ,तीन शब्द वाले वाक्य द्वारा प्रकट किया है । विभिन्न भावों के आधिक्य में प्रयुक्त वाक्यों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :

<u>(क) क्रोध में</u>

- कुमार - चुप रहो । (स्कंद० १५)

(छ) वात्सल्य में

- कुमार - माँ ।
  रानी - बेटा ! (स्कन्द० ५४)
- कुणाल - बेटा, करुण बेटा ! (स्कन्द० १०९)
- चाणक्य - सुखी रहो । (चन्द्र० १८२)

भावातिरेक में व्यक्ति कभी-कभी कुछ शब्द कहकर रुक जाता है, उसके आगे के शब्दों को दूसरा व्यक्ति पूरा कर देता है । इस प्रकार एक ही वाक्य को खंडित करके उसको छोटा रूप देकर दो पात्रों द्वारा कुतूहलजनक स्थिति को प्रकट किया है ।

- गुलाम गौस , कुतुबउल्ला - वाह !!!
  मोतीचन्द - हे भगवान !!!!
  मौलाबाई, बुढ़ी - अजीबी !!!!! (कर्तार०४४)

- अरविंद : ऐसा तुम्हें ------ ।
  सुधीर : शोभा नहीं देता । (माया० ४३)

- पहला बुढ़िया : यह तेजस्वी आनन ।
  दूसरा : यह गौर शरीर ---
  तीसरा : ये बलिष्ठ भुजाएँ (पन्ना०४३)

- अ : हाथ में क्या है -
  ब : मिट्टी का घड़ा ।
  अ : राजा की कहानी -
  ब : देश के महलों ।
  अ : सुहानी बुरें-बुरें - (राज० २४)

विस्मय के भावों की अभिव्यक्ति में सब से अधिक ये वाक्य आये हैं, उसके बाद क्रोध, शोक व भय में प्रयुक्त हुए हैं । उत्साह, प्रेम के भावों में इनकी अल्पता है। घृणा के भाव ऐसे वाक्यों से व्यक्त हुए हैं। निर्वेद के भाव

में तो इनको स्थान नहीं मिला है, क्योंकि निर्वेद में व्यक्ति शान्त मनःस्थिति में हो जाता है, उसमें आवेग की स्थिति नहीं रहती ।

(२) संकोच की स्थिति में व्यक्ति अधिक बोल नहीं पाता है, बस कुछ शब्द कहकर रुक जाता है । संकोच की वास्तविक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए नाटकों में स्वाभाविकता लाने के लिए एक, दो, तीन शब्द वाले वाक्यों द्वारा अभिव्यक्ति कराई है ।

- नन्द : परन्तु -----। (उत्तरा०७३)
- मैत्री : (हकलाकर) देव - (तिल० ७६)
- रसिया - बाबू जी । (स्वर्ण० ५५)
- मल्लिका : परन्तु माँ ---- । (आषाढ़० ८२)
- आदमी : लेकिन मैं कैसे ---- (लौटन २४)
- तुलसी - माँ, छोटी माँ ----- (कथा० ७४)
- गंगाराम : साहब गुंगे तो ---- (मादा० ३६)
- अंजली : क्यों इन्हें क्या ---- (अंधी० ५८)
- दासी : देर लगेगी ! आप --- (प०रा०१४)
- मातृगुप्त - देवी ! तुम देवी --- (स्कंद० १३६)

(३) गम्भीर स्थलों या बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए मुख्यतः लम्बे प्रश्नात्मक वाक्य आये हैं, अन्यथा प्रश्नात्मक वाक्यों का आकार छोटा ही रहा है । प्रश्नात्मक वाक्यों में एक शब्द वाले वाक्यों को सभी नाटकों में स्थान मिला है जैसे -

- अनुस्वार : क्यों ? (आषाढ़० ६८)
- बहादुर - क्यों ? (रत्ना० २६)
- मैत्री - क्यों ? (तिल० ६)
- मिथिलेश - तब ? (अमय० ११४)

(६) कुछ नाटकों में साधारण स्थितियों या जहाँ विषय छोटा व सामान्य है, वार्तालाप को छोटे वाक्यों में ही रखा है । इनमें क्रम से एक, दो, तीन शब्द वाले वाक्यों को भी व्यवस्थित किया है । जैसे -

- भटार्क : कौन ?
  शर्वनाग : नायक शर्वनाग ।
  भटार्क : कितने सैनिक हैं ?
  शर्वनाग : पूरा एक गुल्म । (स्कन्द० २८)

- दूसरा : हाँ ।
  पहला : और तेरी ?
  दूसरा : हाँ और तेरी ? (कुणा० ८५)

- विजय : माँ ।
  श्यामा : क्या बेटा ।
  विजय : मैं रोटी बेचूँगा । (रक्षा० ५०)

- अनुस्वार : तो ?
  अनुनासिक : हटा दो ।
  अनुस्वार : तुम हटा दो । (आषाढ़० ६८)

- श्यामा : शैलेन्द्र
  शैलेन्द्र : क्यों प्रिये ।
  श्यामा : प्यास लगी है । (आषाढ़० ७३)

- गोपाल : देखा
  सुराना : (करुण स्वर में) क्या देखा ?
  गोपाल : जो आपने देखा । (अमृत० ३६)

जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश, सत्यव्रत सिंहा ने उपर्युक्त वाक्यशैली को चुना है।

(७) कहीं-कहीं एक ही कोटि के वाक्यों द्वारा विषय को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । छोटे वाक्य द्वारा ही स्पष्टता आ रही है, अतः बड़े वाक्यों को नहीं प्रयुक्त किया है ।

- राज्य - किसकी ।

राधिका - तुम्हारी । (भारत० पृ०४३)

- सुमति - कहाँ ?

सुमेर० - आगरे ।

सुमति - (अचरज से) आगरे ?

सुमेर - हाँ,

सुमति - क्यों ? (सुगं० ६१)

- खवासर - विक्रम

विक्रम - माँ (रता०१०)

- वकटम्बू - क्या समझा ?

गिरराज - हाँ हुजूर । (उलट० ४७)

- गी० दा० - क्यों भाई बनिये, आटा कितने सेर ?

बनिया - टके सेर ।

गी० दा० - औ चावल ?

बनियाँ - टके सेर ।

गी० दा० - औ चीनी ?

बनिया - टके सेर । (अंधेर० १०)

= सुधीर : शिकार हाथ था

अरविंद : वह चिड़िया थी (माया० १८)

- राम्रा : हाँ हाँ, कहो ।

सर्वनाश : तुमको रानी बनाऊँगा । (स्कंद०६३)

- अम्बिका - तू कैसी है ?

अम्बालिका - कैसी तू है

अम्बिका - मैं कैसी हूँ ?

अम्बालिका - कैसी मैं हूँ । (चित्र० ३७)

- रुक्मीबाई - अब कहाँ जाओगे ?

माधवसिंह - सीधा कमांडो सरकार । का०सी०७२)

(८) कहीं-कहीं लगातार इन वाक्यों के प्रयोग से एकरूपता भी आ गयी है जैसे -

- अनुस्वार : मैं उससे सहमत हूँ।

अनुनासिक : तो ?

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : तो उसे हटा देना चाहिए।

अनुस्वार : हाँ, अवश्य हटा देना चाहिए।

अनुनासिक : तो ?

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : हटा दो।

अनुस्वार : मैं ?

अनुनासिक : हाँ

अनुस्वार : तुम नहीं ?

अनुनासिक : नहीं।

अनुस्वार : क्यों ?

अनुनासिक : क्यों का कोई उत्तर नहीं।

अनुस्वार : फिर भी।

अनुनासिक : पहले मैंने तुमसे कहा है।

अनुस्वार : परन्तु सोची पहले तुमने है।

अनुनासिक : तो ?

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : हटा दो।

अनुस्वार : तुम हटा दो।

अनुनासिक : तो रहने दो।

अनुस्वार : रहने दो।

अनुनासिक : अब ?

अनुस्वार : हाँ, अब ? (आषाढ़ ९८)

इसी प्रकार 'रस गंधर्व' में भी उद्गार वाक्यों के प्रयोग से एकरूपता ही आ गयी है। नाटकों में एक, दो, तीन शब्द वाले वाक्यों का प्रयोग लगभग हर एक नाटक में हुआ है परन्तु उनके प्रयोग की शैली में भिन्नता है तथा उनका प्रयोग कम व अधिक भी हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में एक शब्द वाले वाक्य की अपेक्षा दो-तीन शब्द वाले वाक्य अधिक बोले गये हैं। प्रताप नारायण मिश्र की रचना में तीनों प्रकार के वाक्य समान रूप से आये हैं, परन्तु इनका प्रयोग नाटक में कम है, अधिकतर लम्बे वाक्य नाटककार ने चुने हैं। इन दोनों नाटककारों की अपेक्षा जयशंकर प्रसाद के नाटकों में तीनों प्रकार के वाक्यों की भरमार है उनके नाटकों में लगभग हर पृष्ठ पर इस प्रकार के वाक्य लगाये गये हैं। बद्रीनाथ भट्ट की रचना दुर्गावती में भी तीनों प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनके नाटक में प्रत्येक कोटि के एक, दो, तीन शब्दवाले वाक्य रखे गये हैं। वी०पी०श्रीवास्तव ने दो-तीन शब्दवाले वाक्यों को पात्रों से अधिक बुलवाया है। एक शब्द वाले वाक्य अधिकतर प्रश्नात्मक हैं। इसी प्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी की कृति 'अम्बपाली' में दो-तीन शब्दवाले वाक्यों की तुलना में एक शब्द वाले वाक्य कुछ कम हैं। एक शब्द वाले वाक्य विस्मयात्मक तथा प्रश्नात्मक हैं। उदयशंकर भट्ट ने तीनों प्रकार वाक्यों को समान स्थान दिया है। 'अंगूर की बेटी' में गोविन्द वल्लभ छोटे-छोटे वाक्यों का तो चयन किया है परन्तु एक,दो,तीन शब्द वाले वाक्य कम आये हैं, उनमें भी तीन शब्द वाले वाक्य अन्य वाक्यों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रयुक्त हुए हैं। पन्त जी की भाँति हरिकृष्ण प्रेमी ने भी छोटे वाक्यों को तो अधिक रखा है परन्तु एक,दो,तीन शब्दवाले वाक्यों का प्रयोग मध्यम रूप में किया है। एक शब्द वाले वाक्य इनके नाटकों में भी प्रश्नात्मक तथा विस्मयात्मक हैं। प्रेमी जी की तुलना में अश्क के नाटकों में ये वाक्य अधिक आये हैं अधिकतर वाक्य छोटे-छोटे पात्र कह जाता है। वैसे इनके नाटकों में तीन शब्द वाले वाक्यों की अधिकता है। भाषिक संरचना की दृष्टि से जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में छोटे वाक्यों की प्रधानता है। 'पहला राजा' में ये वाक्य अन्य दो नाटकों 'कोणार्क', 'दशरथनन्दन' की तुलना में अधिक आये हैं।

"पहला राजा" की भाँति ही वृंदावनलाल वर्मा ने "झाँसी की रानी" में इन वाक्यों का अधिक प्रयोग किया है । मोहन राकेश ने भी छोटे वाक्यों को प्रधानता दी है । उनके नाटकों में लगातार एक प्रकार के वाक्यों का भी प्रयोग सभी नाटकों में हुआ है । "लहरों के राजहंस" में "आधे अधूरे" तथा "आषाढ़ का एक दिन" की तुलना में इन वाक्यों की संख्या कुछ अल्प है । सत्यव्रत सिन्हा तथा लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में लगभग समान रूप से ये वाक्य प्रयुक्त हुए हैं । इस ढंग वाले वाक्य दोनों में ही अधिकतर प्रश्नात्मक तथा विस्मयबोधक हैं । सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में भी इस कोटि के वाक्य बोले गये हैं परन्तु सत्यव्रत सिन्हा तथा लक्ष्मी नारायण लाल की रचनाओं की तुलना में कुछ कम है । "रसगंधर्व" में मणिमधुकर ने इस प्रकार के वाक्यों की भरमार की है । इनकी तुलना में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस ने इन वाक्यों का काफी कम प्रयोग किया है । सभी नाटकों में इन वाक्यों की स्थिति भिन्नता लिये हुए है ।

पूर्ण वाक्य

नाटकों में अपूर्ण वाक्यों की भाँति पूर्ण वाक्यों को विशेष स्थलों पर रखा गया है । कथन को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए मुख्यतः पूर्ण वाक्य व्यवहृत हुए हैं । ये पूर्ण वाक्य भी दो कोटि के हैं, प्रथम वे जो अभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्ण हैं तथा दूसरे वे जो व्याकरणिक नियमानुसार पूर्ण वाक्य हैं । अभिव्यक्ति की दृष्टि से व्यवहृत पूर्ण वाक्य अधिकतर लम्बे हैं तथा रचना की दृष्टि से पूर्ण वाक्य अधिकतर छोटे हैं ।

गहन तथा गम्भीर विषयों पर चर्चा करते हुए पूर्ण वाक्यों को महत्व दिया है । इन विषयों को पूर्णतः स्पष्ट किया गया है, जिसके कारण

नदी हो या नद में परिणत हो, अपनी गति से आप ही लुप्त, अपनी उठाई हुई लहरों से आप ही भिड़ जाकर हाहाकार, आलोड़न कर उठता है और भाँति-भाँति करता किसी सागर में अपने को खो देता है। (सम्प० १०७)

कौमी एकता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए वाक्य लम्बा व पूर्ण बोला गया है -

- अच्छे महाराणा, आपको बाकायदा मेवाड़ के तख्त पर बैठाकर अपने सर से राखी का कर्ज उतार दूँ। पूरा कर्ज तो उसी रोज उतरेगा जब सारी मुसलिम कौम की बहनें हिन्दू भाइयों के हाथों में बेझिझक राखी बाँधने की हिम्मत करेंगी और सारी हिन्दू बहनें मुसलमान भाइयों के हाथों में दिली मुहब्बत के साथ अपनी पाक राखी बाँधने की मेहरबानी करेंगी, जब हमारी आँखों से पापों का मैल धुल जाएगा। आखिर महाराणा आपको सिंहासन पर बैठा देने के बाद देर सां से अपनी किस्मत का फैसला करेगा।

(रक्षा० १११)

वस्तु वर्णन, घटना वर्णन आदि में पूर्ण विवरण देने की चेष्टा की गई है, जिसमें पूर्ण वाक्य आकार में दीर्घ हो गया है। यहाँ ऋतु के वर्णन में लम्बा वाक्य व्यवहृत हुआ है -

- सखी, देख बरसात भी अब की किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निबल जानकर इनको जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धुर से चारों ओर घुम-घुमकर बादल घेरे के घेरे बनाए धौंसे-धौंस का निशान उड़ाए लहलहाती ऐसी तलवार सी बिजली चमकाते गरज-गरज कर डराते बाण के समान पानी बरसा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को करखा-सा कुछ वचन पुकार-पुकार गा रहे हैं। (दीपचन्द्रा० ३३)

स्वप्न लोक के वर्णन को एक ही वाक्य में समेट कर प्रस्तुत किया है -

- ज्योंही आँख लगी कि मैं पहुँच गई उस सुनहली घाटी में जहाँ इन्द्र धनुष का मेला लगा रहता है, जहाँ जवानी तितलियों के रूप में उड़ती रहती है, या उस देवलोक में जहाँ सुनहले पंखवाले देव कुमार गीतम्न के पंखोंवाली अप्सराओं के संग-संग मंडराते फिरते हैं या कम से कम उस रूप देश की राजधानी में जहाँ कलंगीवाले राजकुमारों की भरमार है - जहाँ नृत्य है, संगीत है ---

(अम्बा० ५)

घटना वर्णन में भी स्वाभाविकता लाने के लिए उसको पूर्ण रूप से व्यक्त किया गया है, जो लम्बे तथा पूर्ण वाक्य द्वारा हुआ है ।

- हाँ देवि, रावण के युद्ध में गुप्त सम्राट की सेना पराजित हो गई तब विजयोन्माद में प्रमत्त पूर्ण युवराज मिहिरकुल ने हाथी पर स्वर्ण की अंबारी पर आसीन होकर नगरी में प्रवेश किया किन्तु उसने आश्चर्य और क्षोभ से देखा कि एक भी नागरिक ने उसका स्वागत नहीं किया, प्रत्येक भवन का द्वार बन्द था और सब ओर श्मशान का सन्नाटा था ।

(सपथ २०)

मैं पूरे विश्वास के साथ आपसे कहती हूँ कि जिस दिन मेरे ससुराल पिता श्री मान प्यारे लाल जी ने भरे बाजार में मेरे गाल पर इसलिए थप्पड़ मारा था कि मेरी साड़ी का पल्ला सिर पर से उतर गया था, तो मैंने उसी दिन निश्चय कर लिया था कि मैं इन पुराने दकियानूसी रीति-रिवाजों को अब और नहीं सहूँगी । (कुहो० ३४)

तर्क-वितर्क वाले स्थलों पर विषय की पुष्टि का हर संभव प्रयास किया गया है, जिसमें विषय को पूर्णरूप से स्पष्ट करने में वाक्य लम्बा भी हो गया है ।
आत्मा के विषय में तर्क वितर्क करते हुए वाक्य में दीर्घता आ गयी है -

- तो मैं शत्रुओं से कह दूँ कि तुम लोग बाधा न दो, और यवनों से भी कह दिया जाय कि वास्तव में यह स्कंधावार प्राच्य देश के सम्राट का नहीं है, जिससे भयभीत होकर तुम विपाशा पार नहीं होना चाहते, यह तो शत्रुओं की क्षुद्र सेना है जो तुम्हारे लिए मगध तक पहुँचने का सरल पथ छोड़ देने को प्रस्तुत है -

(चन्द्र० १२०)

रचना की दृष्टि से पूर्ण वाक्य अधिकतर छोटे हैं। ऐसे वाक्यों में वाक्य के पूर्ण होने की ओर नाटककारों की दृष्टि रही है, अभिव्यक्ति या विषय विस्तार की ओर नहीं रही है। उदाहरण -

- जी, आप आज्ञा दे दीजिए। (अंगो० ६७)
- मिथिला के राजा जनक धनुष यज्ञ कर रहे हैं। (दश०५५)
- किन्तु मेरे हृदय में इस समय कविता -देवी बाहर निकलने के लिए अकुला रही है। (दुर्गा० ६८)
- मैं काठ की संदूकची बना रहा हूँ। (रस० ५१)
- मेवाड़ का भाग्य संशय के गर्त में जा पड़ा है। (जय० ६४)
- मैं बकरीवाद पर भाषण देने दिल्ली जाता हूँ। (बकरी०४०)
- महाराज की कृपा-अपेक्षा मुझे निमुक्त किये दे रही है।

(कोणार्क ५१)

- मैं भगवान को अपने घर भोजन करने को आमंत्रित करने आई हूँ।

(अम्ब० ४२)

- उस बालक ने मटुकी का कुम्भ तोड़ दिया। (ना०ब०वि०५७)
- रात-भर नववधू चन्द्रिका के चरणों की गति से इस कक्ष की छाया काँपती रहेगी। (लहरों०२८)
- गणतंत्रों में तब प्रजा वन्यवीरुध के समान स्वच्छन्द फल-फूल रही है। (चन्द्र० ६२)
- मैं तो तुम्हारा हाथ पकड़कर संसार में उतर पड़ना चाहती हूँ।

(सिन्दूर० ७७)

उपर्युक्त कोटि के पूर्ण वाक्य साधारण स्थितियों में प्रयुक्त हुए हैं ।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्ण तथा लम्बे वाक्यों को आरंभिक नाटककारों ने अधिकतर अपनाया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र तथा रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में तो काफी लम्बे- लम्बे वाक्य प्रयुक्त हुए हैं । कई बार तो पूरा कथन ही एक वाक्य में समेटकर रख दिया है । ये लम्बे वाक्य अभिनय की दृष्टि से असंगत हैं ।

जयशंकर प्रसाद ने भी भावानुभूति के भावुक क्षणों ,दार्शनिक प्रसंगों तथा वर्णनात्मक स्थलों पर लम्बे पूर्ण वाक्यों का चयन किया है । छोटे पूर्ण वाक्य भी प्रयुक्त हुए हैं, अधिकांशतः साधारण स्थितियों में प्रयुक्त हुए हैं ।

वी० पी० श्रीवास्तव का नाटक 'उलट फेर' भी पूर्ण लम्बे वाक्य से प्रभावित हुआ है , परन्तु अधिक लम्बे वाक्यों को उन्होंने महत्व नहीं दिया है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में पूर्ण वाक्यों में जहाँ संक्षिप्त वाक्यों को स्थान मिला है, वहाँ नाटक लम्बे वाक्यों से भी अछूते नहीं रहे हैं । उन्होंने गंभीर विषय पर चिन्तन करते हुए तथा किसी वस्तु वर्णन में लम्बे वाक्यों को अपनाया है । कुछ गिने-चुने स्थलों पर वाक्य काफी लम्बे हो गये हैं, वाक्यों को कई वाक्यों में भी विभाजित किया जा सकता है ।

उदयशंकर भट्ट ने भी पूर्ण वाक्यों को स्थल-स्थल पर रखा है । लम्बे पूर्ण वाक्य अधिक भावुक स्थितियों में आये हैं । उनके लम्बे वाक्य नाटक में खटकते नहीं हैं । लक्ष्मी नारायण मिश्र ने इन वाक्यों में ३-४ पंक्तिवाले वाक्यों को अपनाया है । जहाँ पात्र अपने आशय को अधिक स्पष्ट करना चाहते हैं, वहाँ वाक्य कुछ अधिक लम्बे हो गये हैं । गिने चुने स्थलों पर पूरे कथन को एक वाक्य में भी रखा गया है, उसको कई वाक्यों में खंडित करके भी रखा जा सकता था । उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी कृतियों में, पूर्ण वाक्यों में, लम्बे वाक्यों को कम महत्व दिया है । विषय विस्तार के लिए जहाँ कुछ वाक्य लम्बे हो भी गये हैं, तो वे स्वाभाविकता से दूर नहीं हुए हैं ।

जगदीश चन्द्र माथुर तथा वृन्दावन लाल वर्मा पूर्ण वाक्यों में संक्षिप्त वाक्यों के पक्ष में रहे हैं। जगदीश की रचनाओं के अतिरिक्त पात्र अधिकतर पूर्ण वाक्य बोलते हैं।

आधुनिक नाटककारों में मोहन राकेश संक्षिप्त वाक्यों द्वारा अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता के दर्शन करते हैं, अतः उन्होंने लम्बे वाक्यों को कम स्थान दिया है। उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' की तुलना में 'आधे अधूरे' में पूर्ण वाक्य कुछ कम प्रयुक्त हुए हैं, जो नाटक की कथावस्तु के कारण हुआ है। गोविन्द वल्लभ पन्त भी पूर्ण वाक्यों को अधिक लम्बा करना उचित नहीं समझते। उन्होंने भावों के स्पष्टीकरण में २-३ पंक्ति वाले वाक्यों को रखा है।

अधिकांशतः आधुनिक नाटककारों ने पूर्ण वाक्यों में लम्बे वाक्यों को अपनी रचनाओं में कम स्थान दिया है, क्योंकि लम्बे वाक्य नाट्य सिद्धान्तों व अभिनय की दृष्टि से दोषपूर्ण सिद्ध हुए हैं। सत्यव्रत सिन्हा, विपिन कुमार अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विष्णु प्रभाकर ने पूर्ण वाक्यों में दीर्घता नहीं आने दी है। कई बार वाक्य कुछ लम्बे हो भी गये हैं परन्तु वे स्वाभाविकता व अभिनय में बाधा नहीं डालते।

सुरेन्द्र वर्मा और लक्ष्मी नारायण लाल ने कुछ स्थलों पर अभिव्यक्ति में पूर्णता लाने के लिए लम्बे वाक्यों को स्थान दिया है परन्तु उनकी संख्या अल्प है। इनके नाटकों में प्रयुक्त लम्बे वाक्य वर्णनात्मक स्थलों पर अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

मणिमधुकर तथा मुद्राराक्षस की रचनाओं में भावावेश की स्थितियाँ अधिक होने के कारण अपूर्ण वाक्यों की तुलना में पूर्ण वाक्य कम हैं। पूर्ण वाक्य अधिकतर आकार में छोटे हैं।

अपूर्ण वाक्य

नाटकों में अधिकांशतः बहुत छोटे वाक्य अपूर्ण हैं। लेकिन ये

अपूर्ण वाक्य भी नाटक में वैसे ही कार्य कर रहे हैं जैसे पूर्ण वाक्य करता है। नाटककारों ने विभिन्न प्रयोजनों से इनका चयन किया है। ये अपूर्ण वाक्य, रचना की दृष्टि से तो अपूर्ण हैं, परन्तु अभिव्यक्ति की दृष्टि से सशक्त एवं पूर्ण हैं।

नाटकों में भावाभिव्यक्ति की स्थितियों में स्वाभाविकता लाने हेतु अपूर्ण वाक्यों को व्यवस्थित किया है। सामान्यतः इन स्थितियों में व्यक्ति इतने आवेश में रहता है कि वह पूर्ण वाक्य नहीं बोल पाता।

भावाभिव्यक्ति की स्थितियों में प्रयुक्त अपूर्ण वाक्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं।

- श्यामा : (जागकर) - शैलेन्द्र। विश्वास! ऐसी नहीं
  भीषण भयानक --- (आँख बंदकर लेती है)
  (अधात० ६४)
- विजया - घोर अपमान, तो बस, अब नहीं (स्कंद०१५८)
- स्पष्ट बोलो। (सेतु० ६)
- धन्य विष्णु - (क्रोध से उत्तेजित होकर) नीच, नराधम ------
  (दुष्य ६६)
- (घबराकर) कब, कब ? (वि०अ० १६)
- नहीं ---- नहीं ---- कोई दूसरा नहीं --- मैंने कभी ---
  (सिन्दूर० १३३)
- बापासिंह - किन्तु इस अबोध पुत्र के पहाड़ को -----
  (रक्षा० ६५)
- हरिसिंह - (सिसकता हुआ) हमारे अच्छे --- हमारे
  प्रतापी -- हमारे वीर महाराणा ---- (कथ० १०५)
- अम्बिका : भावना। -- बोध। (आषाढ़० ३६)
- सत्यवती : हाँ, तब कुछ स्मरण --- (चेतनहीन होकर
  पुत्र के ऊपर गिर पड़ती है।) (वि०अ० ८५)
- स्त्री की हत्या! नहीं कभी नहीं (अंगूर० ८६)

- मीनाक्षी : ओह, चमत्कार । रिचर्ड ब्यूटीफुल । (माया०२५)
- चन्द्र विष्णु - (दीर्घ निश्वास सहित) हुं, मैं तुम्हें कुछ समझता था किन्तु कुछ में कुछ ---- (शपथ ७)

संकोच, गोपनीयता व आत्मविश्वास के कारण भी पात्र कुछ शब्द कहकर शान्त हो गया है । इस प्रकार वाक्य अपूर्ण रह गया है जैसे -

संकोच में

- अम्बिका : (अंगुली की ओर देखकर झिझकती हुए) मैं ---- ऐ ---- ---ऐ ----- (अंगी० ५६)
- मातुल : परंतु आपके लिए आसन ---- ? (आषाढ़ ६९)
- भीमदेव - तो आप राजकुमारी सुहासिनी --(शपथ०६२)
- अम्बालिका - तुम्हारा भी तो ---- (वि०अ० ५३)
- तुमको तो ----- (कोणार्क ३३)
- (कुछ संकोच के साथ) मैं कहना चाहता था देवि, कि यदि आज की रात ---- । (लहरों ०५६)
- मेरा मन ---- (सुमि० ८२)

निम्न वर्ग के पात्रों के तो स्वभाव में ही संकोच आ जाता है, वे उच्च वर्ग के प्रायः खुलकर नहीं बोलते जिसके कारण वाक्य अपूर्ण रह जाये हैं । नाटकों में भी इस निम्न वर्ग की प्रवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए, उनसे अपूर्ण वाक्यों का व्यवहार कराया है । उदाहरण -

- धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ देवि । परन्तु ----- । (लहरों०३३)
- जी महाराज ----- (बप० २६)
- सिपाही - जी आया । (दुर्गा० १०६)
- मुन्नी - जी मैं ---- (अंगी० ६८)
- दासी - बहुत अच्छा । (नमस्कार करके जाती है)(अजात०५५)

- आशीर्वाद - सरकार की कृपा से ---- (फाँसी २४)

जहाँ कथन को रहस्यमय बनाना हुआ है वहाँ भी अपूर्ण वाक्यों को महत्व दिया गया है। इससे उत्सुकता उत्पन्न की है।

- लगान और बाकी वसूली से मेरा और बिरादरी में ------
(सिन्दूर० ९३)
- नगर में गूंज रहा है - (रक्त० २६)
- उन्हें डर था कि कहीं ------ (मा०स०वि० ४३)

असमंजस्य की स्थिति में भी पात्र मानसिक आंदोलन के कारण समझ नहीं पाता कि आगे क्या बोले, अतः वह बोलते-बोलते चुप हो गया, और वाक्य अपूर्ण रह गया है। जैसे -

- सेठी : उनकी उम्र मुश्किल से - (सि०० ३)
- (पृष्ठ में देखता हुआ) हाँ तो ---- नहीं ? (मा०स०वि०५९)
- अच्छा साहब ------ । (मादा० ७)

भावात्मक अथवा आदेशात्मक वाक्य भी अधिकतर संक्षिप्त हैं, क्योंकि ये दोनों कोटि के वाक्य प्रायः छोटे के प्रति बोले गये हैं, बड़े पात्र छोटे पात्रों से सीमित शब्दों में बोलते हैं अतः वाक्य में अपूर्णता आ गई है।

- पंडु - बुला लाओ । (कम० १२६)
- रानी - (चोबदार से) भेज दो । (कुणा० ३८)

कुछ नाटकों में आशीर्वादात्मक तथा आगमन में बोले वाक्य भी अपूर्ण हैं, परन्तु इन अपूर्ण वाक्यों से पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है। यदि इन वाक्यों को पूर्ण करके बोला जाय तो वाक्य व्यावहारिकता से दूर हो जायेंगे। अतः स्वाभाविकता लाने के लिए ऐसा प्रयोग किया है।

आशीर्वाद में बोले वाक्य

- गौतम : कल्याण हो । शान्ति मिले ।। (अजात० २६)
- प्रख्यात : कल्याण हो । - (जाता है) (स्कंद० १३८)

आगमन के अवसर प्रयुक्त वाक्य

- फ० - दोहाई है महाराज दोहाई है । (कीर्०२५)
- नीरु - मामा जी नमस्ते । (कैदी० ५२)
- प्रदीप - नमस्कार पिता जी । (सुबो० ५७)
- बाबू : (नगर प्रमुख से) आइये, बैठिये । (लौटन० ४७)

पूर्व कथन से संबंधित वाक्य भी प्राय: अपूर्ण हैं, ये वाक्य पूर्व कथन के साथ आने पर तो पूर्ण अर्थ व्यक्त कर रहे हैं, परन्तु अकेले आने पर अस्पष्टता उत्पन्न कर रहे हैं । इन वाक्यों को नाटककारों ने व्यावहारिकता की दृष्टि में रखते हुए प्रयुक्त किया है । इस कोटि के उदाहरण प्रस्तुत है -

- अम्बा : भला अम्बिका, तू कैसा पति चाहती है ?
  अम्बिका : (हंसकर) अम्बिका जैसा ।
  अम्बा : और अम्बालिका तू ?
  अम्बालिका : मेरे जैसा । (वि०अ०५३)

उपर्युक्त कथन में पूर्व वाक्य से, अन्त के तीनों वाक्य संबंधित हैं । पूर्व वाक्य के साथ आने पर ये तीनों वाक्य पूर्णाभिव्यक्ति कर रहे हैं, वरना अस्पष्टता ला रहे हैं । कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं :

- मुरारीलाल : मनोज ? तुम कहाँ ? परीक्षा नहीं दी ?
  मनोजशंकर : जी नहीं ---
  मुरारीलाल : क्यों ?
  मनोजशंकर : कोई लाभ नहीं । (सिंदूर० ६१)

- ल० ।- कहाँ तुम्हारो देश है ?
  बी० । - प्रेम नगर पिय गांव ।
  ल० । - कहा गुरु कहि बोलिए ?
  बी० ।- प्रेमी मेरो नांव ।
  ल० ।- कौन लिपी कैसि जानते ?

- पहला : रामकथा के प्रसिद्ध ---
  दूसरा : और प्रचलित पात्र होकर भी ---
  तीसरा : प्रयत्न के पात्र ---
  चौथा : उनके मौलिक पात्र हैं । (सेतु० ३८)
- एक गंवार - नामवरी के साथ
  दूसरा - तरंग में आना
  तीसरा - वीरों की भांति - (सुर्गा० ६६)

कई बार पूर्व वाक्य के किन्हीं शब्दों पर बल देने के लिए, समर्थन के लिए, पूर्व वाक्य के शब्दों को दोहराया गया है, ये दोहराये गये शब्द अपूर्ण वाक्य रूप में प्रयुक्त हुए हैं । दोहराये गये वाक्य अकेले तो अपूर्ण हैं परन्तु पूर्ववाले वाक्य के साथ आने पर स्पष्ट तथा पूर्ण हो रहे हैं ।

बल देनेवाले वाक्य

- नाग्य : (चौंककर) क्या कहा ? और ?
  मोहनदास : हाँ, हाँ ,और । (अंगूर० ८१)
- हरिसिंह : बन्द करो यह बदतमीजी ।
  सुधीर : बन्द करो । (मादा० ३६)
- दूसरा नागरिक - हमें अपनी कला -समीक्षा पर नाज़ है,
  युवक । सचमुच तुम अपूर्व बनाते हो !
  करुणाध्यक्ष - अपूर्व ।
  दूसरा नागरिक - हाँ, हाँ, अपूर्व !! (बन्द० ५२)
- छल्लू - (हाथ पर लिफाफा तौलकर) यही कोई साठ पैसे का ।
  किशोर - (लिफाफा लेकर खिड़की पर जाकर) साठ पैसे का ।
  (लौटन २३)
- अम्बिका : ना बहन, रूठो मत । हम-तुम दोनों एक हैं ।
  अम्बालिका : एक । (पि०अ० ३८)

- मिस महरुन्ना - सेंककर रही हूँ । (अनुत० ६२)
- सूत्रधार : (पारिपार्श्विक से) प्रारम्भ करो । (ना०त०वि०४४)
- सम्भारी : भाड़ में जाओ । (रा० ५२)
- पढ़ा के आया हूँ , हुजूर । (माद० ६)
- दोनों : जानती है । (पि०भ० ५३)

कर्महीन वाक्य में पूर्व वाक्य द्वारा पूर्णता की पूर्ति है, अन्यथा अपूर्ण तथा अस्पष्ट है ।

कर्महीन वाक्य

- नगर में घूम रहा है - (रा० २६)
- अग्निमित्र आज लौट आया । (आषाढ़ १२)
- अग्निदेव को अर्पित कर दी । (अपरा० ११८)

इन वाक्यों में कर्म नहीं है, इनसे पूर्व के वाक्यों से कर्म की सूचना मिल रही है। पूर्व वाक्यों के बिना कर्ता कर्महीन वाक्य अपूर्ण है । कर्म की सूचना पूर्व वाक्यों से मिलने पर, कर्महीन वाक्य भी अपूर्ण नहीं लगते । कर्ता की बजाय कर्म के लिए पूर्व वाक्य का साथ में आना अधिक आवश्यक है ।

कर्ता व कर्महीन वाक्य

- बेटी : + + तुमने दरवाजा ठीक से बन्द कर दिया था ?
  वैद्य : बंद कर दिया था । (तिल० १०)
- आबिद : + + + वो और सुना मियाँ कलकटन्सु बनाकर के इम्तिहान की तैयारी कर रहे हैं ।
  सजाद ० - करते होंगे । (उल्ट० ६६)
- क : उसने माया को बस में किया ।
  ख, ग, घ : किया । (रा० ३४)

कर्ता तथा कर्महीन वाक्य अकेले आने पर अपूर्ण है, परन्तु पूर्व के वाक्यों के साथ पूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं ।

कई बार क्रियाहीन अपूर्ण वाक्य, पूर्व वाक्य के साथ आने पर पूर्ण अभिप्राय प्रकट कर रहे हैं। जैसे -

- बेटी : तुमने गोलियां -
  पैग : हां। सब! (निधि० ६८)

इनमें तार्थ क्रिया के न होने पर भी यह प्रकट हो रहा है कि क्या क्रिया है।

- वृद्धमा : (भीष्म को देखकर) क्या आप स्वयंवर में जा रहे हैं?
  भीष्म : जा तो रहा हूं।
  वृद्धमा : कन्या-वरण के लिए? (भि०० ५६)

- लक्ष्मीबाई - अब कहां जाओगे?
  सागरसिंह - सीता फारसी सरकार। (फांसी ० ७२)

इनमें भी पूर्व वाक्यों से क्रिया का आभास हो रहा है।
कई बार कर्ता, कर्म तथा क्रिया तीनों का प्रयोग नहीं हुआ, यों अकेले देखने पर तो ऐसे वाक्य अपूर्ण हैं, परन्तु पूर्व के वाक्यों के साथ आने पर अपूर्ण वाक्य पूर्ण अर्थ प्रकटकर रहे हैं जैसे -

कर्ता, कर्म तथा क्रिया हीन वाक्य

- शर्मा - + + + मास्टर साहब आए?
  मनोहर - हां आए हैं।
  शर्मा जी - कब आए?
  मनोहर - देर हुई
  शर्मा जी - तुम्हें पढ़ा चुके?
  मनोहर - हां। (मुक्ति० ४६)

पूर्व वाक्यों के साथ आने से अकेले "हां" शब्द से पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है।

- मनोरमा - राजनीति का काम करना है क्या ?
  मनोकिशोर - नहीं ---- (सिन्दूर० ६०)

" नहीं " वाक्य भी पूर्व वाक्य के साथ आने पर स्पष्ट हो रहा है, अन्यथा अपूर्ण है। कहीं-कहीं लगातार अपूर्ण वाक्यों के आने से एकरसता सी आ गयी है -

- अनुस्वार : मैं इससे सहमत हूँ
  अनुनासिक : तो ?
  अनुस्वार : तो ?
  अनुनासिक : तो इसे हटा देना चाहिए।
  अनुस्वार : हाँ, अवश्य हटा देना चाहिए।
  अनुनासिक : तो ?
  अनुस्वार : तो ?
  अनुनासिक : हटा दो।
  अनुस्वार : मैं
  अनुनासिक : हाँ
  अनुस्वार : तुम नहीं
  अनुनासिक : नहीं
  अनुस्वार : क्यों
  अनुनासिक : क्यों का कोई उत्तर नहीं।
  अनुस्वार : फिर भी । (आषाढ़० ६८)

- ऊ० ।- कहाँ तुम्हारो देस है ?
  गो० । - ब्रज नगर पिय गाँव।
  ऊ० ।- कहा गुरु कहि बोलही ?
  गो० । - ब्रीति मेरी नाँव ।।
  ऊ० ।- कौन छिनों केहि कारने ?
  गो० ।- अपने प्रिय के काज।
  ऊ० ।- पति कौन ?
  गो० ।- पियनाम हम, (श्रीचन्द्रा० ४८)

अपूर्ण वाक्यों का व्यवहार सभी नाटककारों ने किया है, उनके प्रयोग के अनुपात में अवश्य भिन्नता मिलती है । कुछ नाटककारों ने अपूर्ण वाक्यों को अधिक महत्त्व दिया है, जिनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, वृंदावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण मिश्र, उपेन्द्र नाथ, रामवृक्ष बेनीपुरी, सुरेन्द्र वर्मा, मणिमधुकर, मोहन राकेश तथा मुद्राराक्षस की रचनाएँ हैं । इन नाटककारों की तुलना में विष्णु प्रभाकर, प्रतापनारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गोविन्द वल्लभ पन्त तथा सत्यव्रत सिन्हा के नाटकों में ये वाक्य कुछ कम हैं । विपिन कुमार अग्रवाल के नाटक में अपूर्ण वाक्यों की संख्या अपेक्षाकृत अत्यल्प है ।

नकारात्मक वाक्य

नाटकों में साधारणतः नकारात्मक वाक्य न, नहीं, मत नकारात्मक शब्दों से बने हैं । इन नकारात्मक शब्दों का भी भिन्न भिन्न प्रभाव वाक्यों पर पड़ता है । न शब्द के प्रयोग से वाक्य में उतना बल नहीं आता है जितना कि नहीं शब्द के प्रयोग से आया है । यह उदाहरण द्वारा स्पष्ट है

- बीड़ी भी न पूंगा । (अंगूर० ८३)
- मैं तुमसे साथ नहीं छोड़ूंगा । (मुक्ति० ५५)

नकारात्मकता में " न " की तुलना में " नहीं " से अधिक दृढ़ता व्यक्त हो रही है । " न " शब्द से बने नकारात्मक वाक्य अधिकांशतः आदरार्थ व्यवहृत हुए हैं ।

- मिहरबानी करके बहुत ऊँचे न उड़िए (अनुत० ४१)
- कपाट न तोड़िये । (कोणार्क पृ० ७४)
- तो क्या न करूँ । (सिन्दूर० ५५)
- उसे अस्वीकार न करना चाहिए (ध्रुव० १६)
- मुँह न मूँदिये । (दशा० १८)

कहीं-कहीं "मत" का दोषपूर्ण व्यवहार भी हुआ है । आदरार्थ शब्दों के साथ इसका प्रयोग अनुचित लग रहा है । जैसे -

- यहाँ से खिसक मत जाइयेगा । (तिल० ७)
- आपको क्या है आप मत पड़िए बीच में ।(आ०१४)
- गाड़ी मत दीजियेगा । (मादा० ४३)
- ऊपर मत जाइये (छोटन० ४४-४५)
- मुझे काटों में मत घसीटिए । (सम्ब० ६)
- आप अपनी आदतों में दूसरों को मत देखिए । (कैदी० ६६)

दीजियेगा, जाइये, घसीटिए, देखिए शब्द आदर में प्रयुक्त हुए हैं जिनके साथ "मत" का प्रयोग खटकता है । जिन स्थलों पर नाटककारों ने सीधा निषेध नहीं कहलवाना चाहा है या निषेध पर कम बल देना चाहा है ऐसी स्थितियों में नकारात्मक शब्दों के स्थान पर विलोम शब्दों को महत्व दिया है । इन विलोम शब्दों से नकारात्मक अभिव्यक्ति हो रही है ।

- यह असंभव है । (दुर्गा० ६१)

"असंभव" विलोम शब्द से "यह संभव नहीं है" अभिप्राय प्रकट किया है ।
इस कोटि के कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं :

- शराबी पति के साथ जिन्दगी के बाकी दिन गुजारना मेरे लिए असंभव है । (कैदी० १९८)
- परन्तु मैंने अस्वीकार कर दिया । (चन्द्र० १०६)
- वह दुःख असहनीय होता जाता है । (मा०कु०प्र०६४)
- वे असाधारण हैं । (आम्रपा० ५५)
- ... काल के विस्तार में निमेष और उन्मेष दोनों अस्थायी हैं । (छाया०६२)

- कब इतना ही विश्वास था तो घर में बैठो । (वि०उ०४५)
- सब विफल हुआ । (स्कंद० ८७)
- तब तो इसका बचना गैरमुमकिन है (उ०ट० १०४)
- यहाँ तो नामुमकिन है (रक्षा० ७४)
- मैंवाद इससे बेजान है । (रस० ४६)

संदिग्धावस्था में कुछ नाटकों में नकारात्मक वाक्यों द्वारा प्रश्नात्मक अभिव्यक्ति की गयी है । जैसे -

- ब्याह के बाद माँ उज्जयिनी नहीं गयी ? (सिंधु० ६६)
- कहीं---कहीं उर्वी दस्यु कन्या तो नहीं है ? (प०रा० ५०)
- तुम्हारे साथ के आदमी भी सकुशल लौट आए न ? (दुर्गा०७८)
- नीरज ही हो न तुम ? (अ० ५२)
- तो पूछकर दीजिए न ? (मृत० ४१)
- मुझे भी एक पार्ट दोगे न ? (तैमूर० २८)
- उसका विवाह हो चुका है न ? (सिन्दूर० ४१)

कई बार नकारात्मक वाक्य सकारात्मक अभिप्राय प्रकट कर रहा है । वाक्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इस शैली का चयन किया है

- महाराज ! उसकी किसको याद नहीं है । (अजात० २८)

उसको सब को याद है भाव को अधिक प्रभावक बनाने में नकारात्मक वाक्य सहायक हुआ है ।

- नहीं आचार्य । कोई दुविधा नहीं । (प०रा० ७०)
- परन्तु न बताना भी तो अहितकर हो सकता है । (उर्वा०८५)
- मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा कहीं पराजय नहीं है । (मी०उ० २७)

व्यंग्य,क्रोध तथा आवेशात्मक स्थितियों में कथन को तीक्ष्ण बनाने हेतु प्रश्नात्मक वाक्यों द्वारा नकारात्मक अभिव्यक्ति कराई है । ये वाक्य रचना की दृष्टि से प्रश्नात्मक है,परन्तु नकारात्मकता का बोध करा रहे हैं । जैसे -

व्यंग्यात्मक स्थलों पर

- आप जैसे पुरुष कहाँ मिलते हैं ? (मादा० ४८)

इसका अर्थ आप जैसे पुरुष नहीं मिलते हैं से लिया गया है ।

- तुमने उज्जयिनी में क्या तीर मारा ? (शप० ५२)
- ऐसा प्रतापी नरेश भला अब कहाँ मिलेगा ? (रा० ४६)
- उनकी आयु अब विवाह करने की है ? (क्य० ४१)
- भला यह कोई बुद्धिमानी के काम है ? (युगे० ४२)

क्रोध में

- कहाँ जाने में कुछ जवाब क्या ? (जैत्र० २३)
- वह किसकी हिम्मत कि मेरे अनुचरों का बाल भी बांका करे ? (प०रा०६१)
- तो बताब मुझ पर आपने कौन सा एहसान किया ? (उत्त०७७)
- आखिर पर पुरुष आया ही क्यों ? (सेतु० २६)
- अब तुमसे मेरा क्या नाता ? (मुक्ति० ६६)
- तुम धीरे-धीरे क्यों बोले ? (मायाव ३६)
- दो व्यक्तियों के आने-न-आने से अन्तर भी क्या पड़ता है ? (उत्त० ५८)

अन्य भावों की आवेशात्मक स्थिति में भी इस कोटि के वाक्य प्रयुक्त हुए हैं -

- मुझे क्या लेना-देना इन सब से ? (अमृत० ५६)
- अब तुमसे मेरा क्या नाता ? (मुक्ति० ६६)
- मैं क्या कोई कोठेवाली हूँ ? (युगे० १३)
- क्यों महाराज इसमें क्या बुराई है । (भारत०३७)
- अरी क्या यह जाने का समय है ? (फांसी १२६)
- हमारे पास लूटने को क्या धरा है ? (बकरी ५४)
- मगर इससे फ़ायदा क्या है बेटी ? (तिल० ११)

व्यंग्य में तीक्ष्णता लाने के लिए प्रश्नात्मक वाक्य द्वारा भी नकारात्मक अभिव्यक्ति कराई है ।

- तब तो हो चुके नाटक । (ना०सं०चि०६६)
- पर यह आधुनिक युग की शिक्षित लड़कियाँ तुम्हारी हर उचित-अनुचित बात मानने से रहीं । (स्वर्ग० ६६)
- कल्पना के आकाश में कंचन-धन के दर्शन के अतिरिक्त कुछ और भी कार्य है अम्बर को । (अषा० १)
- भला मैं कौन होती हूं जो बीच में दाल-भात में मूसलचन्द बन बैठी । (लम्बा०८)
- क्यों राजकुमारी, इसे मालूम भी है मूर्ख क्या समझेगी । (कय० ४५)
- मुझे क्या पता तुम सब जानों और वो । (मादा० ५)

नकारात्मक वाक्यों को सभी नाटककारों ने अपनी रचनाओं में रखा है, परन्तु उनके प्रयोग के अनुपात तथा शैली में प्राय: भिन्नता है । साधारण नकारात्मक वाक्यों की प्रधानता लगभग हर नाटककार ने दी है तथा उसमें प्रयुक्त होनेवाले नकारात्मक शब्दों न, नहीं का अधिक व्यवहार किया है । कुछ नाटककारों ने 'मत' शब्दों को भी न, नहीं के समान प्रयुक्त किया है जिसमें वृंदावन लाल वर्मा, मणिमधुकर, विष्णु प्रभाकर ,है ।

विशेष शब्दों द्वारा निषेधात्मक अभिव्यक्ति भी कुछ नाटककारों ने की है जो उपेन्द्र नाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, प्रताप नारायण मिश्र, वी०पी०श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश तथा मणिमधुकर की कृतियों में आये हैं जिनमें प्रसाद के नाटकों में इसका आधिक्य है ।

प्रश्नात्मक वाक्यों से नकारात्मक अभिव्यक्ति करनेवाले वाक्यों को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, वी०पी० श्रीवास्तव, लक्ष्मी नारायण लाल , मुद्राराक्षस, वृंदावनलाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, सुरेन्द्र वर्मा तथा विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में इसको स्थान मिला है। वि.रूप मुद्राराक्षस , वृंदावन लाल वर्मा तथा उपेन्द्र नाथ अश्क की रचनाओं की

उपर्युक्त कोटि के प्रश्नात्मक वाक्य लगभग सभी नाटकों में व्यवहृत हुए हैं ।

संदेहास्पद स्थिति को कहीं-कहीं प्रश्नात्मक वाक्यों द्वारा प्रकट किया है ।

- .... क्या माँ का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था ? (केतु० १८)
- क्या आप मेरे मुखौटे की तारीफ कर रहे हैं ? (प०रा०७६)
- क्या कभी ऐसा होगा ? (सुवर्ण ६३)
- कहीं भाँग तो नहीं खा गये हो ? (रक्षा० ३६)
- इस तप्त हृदय को फिर शान्ति मिलेगी ? (जय० ३३)
- यह तू कहता है ? (माधा० ६०)
- मुझे अच्छी तरह जानती हो ? (अमृत० १५)
- तुम्हें क्या अवसाद नहीं लगता ? (छोटन० ४०)
- (हर्षपूर्वक) तो तुमने नाटक नहीं किया ? (रक्त० २२)

कुछ ऐसे प्रश्नात्मक वाक्य भी व्यवहृत हुए हैं, जो रचना की दृष्टि से तो प्रश्नात्मक हैं, परन्तु उनका अभिप्राय नकारात्मक है । नाटककार जब सीधा निषेध नहीं करवाना चाह रहे हैं, तब प्रश्नात्मक वाक्य के माध्यम से निषेध करवा रहे हैं । इनसे कभी-कभी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति भी की गई है । उदाहरण -

- मैंने कब रोका ? (क्रांति०६१)
- अब तुमसे मेरा क्या नाता ? (मुक्ति० ६९)
- हाँ महाराज क्या झूठ बोलूँगा ? (अंधेर०)
- दो व्यक्तियों के जाने न जाने से अंतर भी क्या पड़ता है । (उखड़ी ४८)
- चुनाव में कैसे खड़ी हो सकती हूँ ? (त्रिज० १३)
- ओ ---- बोलो यह नाटक कैसे है ? (माधा० ५)
- मुर्दों की भाँति जीना कौन पसन्द कर सकता है ? (रक्षा०६६)
- तो अनाथ युवक पर कौन-सा उपकार किया ? (उखड़० ७)
- ऐसा प्रतापी नरेश भला अब कहाँ मिलेगा ? (रा० ४६)
- सूचना देता तो तुम लोगों का भंडाफोड़ कैसे होता ? (कोणार्क ३०)

- विशु : + + + नहीं प्रभु नहीं । मुझे प्रायश्चित करना होगा ।
  सौम्य : प्रायश्चित ? (कोणार्क ३६)

उपर्युक्त कोटि के वाक्यों को नाटकों में कम स्थान मिला है । नाटकों में ऐसे प्रश्नात्मक वाक्य भी भी अपनाया गया है जो बिना प्रश्नात्मक शब्द के हैं तथा शब्दों पर बलाघात करके उनको प्रश्नात्मक बनाया है । जैसे -

- वर्षा, तुमने समझाया नहीं ? (प०रा०८६)
- आप कुछ देर भी होगा देखोगी ? (चन्द्र० १०५)
- तुमने मेरी पुस्तक देखी ? (स्वर्ण० ३३)
- दोगी, मुझको यह भीख ? (कार्ति०३३)
- तुमने उसे अपनी आँखों से देखा है ? (रा० १७)
- मेरी विचार मुझी पर लागू करेगा ? (रजा० ३६)
- मास्टर साहब आये थे ? (मुक्ति० ५६)
- काम इस तरह होता है, श्यामांग ? (लहरों०३०)
- तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा से बहुत दुःख हुआ ? (वय०६५)
- बहू आज भी अब तक नहीं सोई ? (अम्बा० १०४)
- जिस नाटक में काम करती थी, उसे पढ़ती भी थी ? (ना०स०वि०५१)
- मीरा ही थी न तुम ? (मीरां० ५२)

कुछ नाटककारों ने नकारात्मक 'न' शब्द से वाक्य को प्रश्नात्मक बनाया है । ये नकारात्मक शब्द वाक्य के अन्त तथा मध्य में प्रयुक्त किया है ।

- नाट्याचार्य, सारा काम ठीक चल रहा है न ? (ना०स०वि०६२)
- दादा झूठा समझते हैं न ? (उ०ट० १२६)
- घर खाली हो गया न ? (कुह० २१)
- तो पूछकर देखिए न ? (नूत० ४१)
- मुझे भी एक पार्ट होगे न ? (अंगूर २८)
- वचन मुझे दिया था न ? (लहरों ६०)

- यह सारा धन तो परोपकार के लिए जमा किया है न ?
(रत्ना० ३६)

- तो जाऊँ न ? (मुक्ति० ६६)

- यही तुम्हारे मन का अरमान है न ? (चन्द्र० ५१)

- अच्छा आप तो आयेंगे न मि० गु० ? (स्वर्ण० ६०)

- लेकिन मैं तो नौकर हूँ न ? (अंगूर० ६४)

- मैं दीवान और सरदारों को न बुला लाऊँ ? (कार्ति० ७६)

- यही न कहना चाहती थी ? (सम्भ० ७)

- फिर कब आवोगे न जल्दी । (मातृ०प्र०६७)

- क्यों न हम लौट चलें ? (प०रा०२६)

कई बार नाटकों में ऐसे प्रश्नात्मक वाक्य लगातार प्रयुक्त हुए हैं जो वास्तव में प्रश्नात्मक नहीं लग रहे हैं तथा उनके लगातार आने के कारण कथन की शैली में नीरसता सी आ गई है ।

- चन्द्रा० - (घबड़ाकर) संध्यावली आई ? क्या कुछ संदेसा लाई ? कहो, कहो प्राणप्यारे ने क्या कहा ? यहीं कहीं देर लगाई ? (कुछ ठहरकर) संध्या हुई ? संध्या हुई ? तो वह जान ही जाते होंगे ! सखियों, चलो फुलवारी में बैठें, यहाँ क्यों बैठी है ?(श्रीचन्द्रा०२५-२६)

लगातार प्रश्नात्मक वाक्यों से भावात्मकता तथा एकरसता भी आ गयी है ।

- ललिता - कहाँ तुम्हारो देस है ?
जोगिन - प्रेम नगर पिय गाँव ।
ललिता - कहा गुरु कहि बोलही ?
जोगिन - प्रेमी मेरो नाँव ।।
ललिता - जोग लियो केहि कारनै ?
जोगिन - अपने पिय के काज ।
ललिता - मंत्र कौन ?
जोगिन - पियनाम इक ।
ललिता - कहा तज्यौ ?
जोगिन - जग लाज ।। (श्रीचन्द्रा० ५८)

साधारण प्रश्नात्मक वाक्य भी प्रश्नात्मक शब्दों से बने हैं लगभग सभी नाटककारों द्वारा प्रधान रूप से अपनाये गये हैं । अन्य कोटि के प्रश्नात्मक वाक्यों में भी साधारण वाक्यों में शब्दों पर बलाघात करके बनाये गये वाक्यों की भी नाटकों में अधिकता है । कुछ नाटककारों ने इसका व्यवहार अधिक किया है, जिनमें जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीश चन्द्र माथुर, वृन्दावनलाल वर्मा, सुरेन्द्र वर्मा मुख्य हैं । अन्य नाटककारों ने भी इस प्रकार का प्रयोग किया है, परन्तु कम है ।

वाक्य के अन्त या मध्य में 'न' शब्द लगाकर प्रश्नात्मक वाक्य काफी नाटककारों ने बनाये हैं, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है। ऐसे वाक्य जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, सी०पी०श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, मोहन राकेश, लक्ष्मी नारायण मिश्र, जगदीश चन्द्र माथुर, गोविन्दवल्लभ पंत, सुरेन्द्र वर्मा, मणि मधुकर व सत्यव्रत सिन्हा के नाटकों में अधिकतर प्रयुक्त हुए हैं ।

प्रश्नात्मक वाक्य से विस्मयात्मक अभिव्यक्ति करने की शैली जगदीश चन्द्र माथुर, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मी नारायण लाल, जयशंकर प्रसाद, सुरेन्द्र वर्मा, विष्णु प्रभाकर, मणिमधुकर, गोविन्द वल्लभ पन्त, नाटककारों ने मुख्यतः अपनायी है । अन्य नाटककारों ने ऐसे वाक्यों को कम अपनाया है ।

प्रश्नात्मक वाक्यों से निषेधात्मक अभिप्राय व्यक्त करनेवाले वाक्य अधिकांशतः नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं । मोहन राकेश, वृन्दावन लाल वर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, उपेन्द्र नाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, सी०पी०श्रीवास्तव, हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में अन्य नाटकों की तुलना में अधिक संख्या में है ।

संशयात्मक स्थितियों या विस्मय की स्थितियों को व्यक्त करनेवाले प्रश्नात्मक वाक्य कुछ कम नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं, क्योंकि ऐसी स्थितियाँ भी अधिक नहीं आ पाई हैं । विपिन कुमार अग्रवाल, उपेन्द्र नाथ अश्क, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश, रामवृक्ष बेनीपुरी, मुद्राराक्षस, सत्यव्रत सिन्हा, सुरेन्द्र वर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, मणिमधुकर ने इन वाक्यों को अधिक अपनाया है, अन्य नाटकों में इनकी अल्पता है ।

औपचारिक वाक्य

नाटककारों ने तरह-तरह की वाक्य शैली को नाटकों में महत्व दिया है । कोई नाटककार किसी बात को साधारण ढंग से कहता है, तो कोई प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए औपचारिक वाक्यों को अपनाता है । इस प्रकार वाक्य का अभिप्राय एक होने पर भी नाटककारों की व्यक्तिगत शैली के कारण उनमें भिन्नता प्रकट होती है । नाटकों में औपचारिक वाक्य का कुछ विशिष्ट स्थलों पर व्यवहार हुआ है । पूज्य तथा माननीय पात्रों के आगमन पर नाटककारों ने अपनी विशिष्ट शैली में औपचारिक वाक्यों द्वारा हृदयोद्गारों को प्रकट किया है । ये औपचारिक वाक्य कभी-कभी अत्युक्तिपूर्ण भी हैं । उदाहरण -

- आर्य चाणक्य, मैं आपका अभिनन्दन करता हूं (चन्द्र०२०३)
- हे रघुनायक, हे पुरुषसिंह, हे लोकनायक राघव हम आपका अभिनन्दन करते हैं । (प०रा० ४५)
- देव मातृगुप्त के अनुचरों का अभिवादन स्वीकार कीजिए । (आम्भाहु० ६३)
- अभिवादन स्वीकार करें, महोदय (ना०अ०वि० ४२)
- कोणार्क के इस कोने में कलिंग नरेश का स्वागत है ।(कोणार्क ४०)
- आर्य पीताम्बर । स्वागत है स्वागत । हम बहुत आभारी हैं आपके जो इस शुभ घड़ी में आप यहां पधारे । (हिमु० ८)
- आइए, आइए । आपने बड़ी कृपा की, जो इतनी तकलीफें उठाकर यहां पधारे । (दुर्गा० ५०)
- राजकुमार मधुबंधु चार पांच राजकुमारों के साथ पधारे हैं ।(कल्प०३६)
- सरकार, श्रीमन्त सरकार पधारना चाहते हैं । (कौसी०३४)
- आइए पधारिए महाराज । (कुरु० २२)
- आइए, पधारिए । इस स्थान को अपने चरण कमलों से पवित्र कीजिए । (बस० ९७)
- महामुनि अयोध्या नगरी में पधार रहे हैं मैं अपने भाग्य पर आह्लादित हो गया, महाराज । --- आइये, मेरे तुच्छ महल में प्रवेश करके उसे पवित्र कीजिए । (दश० ३९)

उपर्युक्त कोटि के औपचारिक वाक्य अधिकांशतः ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं जो कि राज दरबारों की शान शैली को उभार रहे हैं ।

सामान्य वर्ग के पात्रों या किसी अतिथि के आगमन पर अन्य प्रकार की औपचारिक वाक्य शैली व्यवहृत हुई है , जिसमें निवेदन का उतना आधिक्य नहीं जितना पूर्व कथनों में है । इस प्रकार के कथन प्रस्तुत हैं -

- बड़े मियाँ खातिर जमा रखिए । (उ०ट० ११)
- आप आज रात के नौ बजे मेरे होटल में तशरीफ लाइए ।(अंगूर०२५)
- आप तशरीफ रखिए । (अनुत० ३८)
- जनाब अब तशरीफ लाए हैं । (दुगे० ६)
- आप क्यों यहाँ तशरीफ लाए हैं ? (भारत०प्र० ४१)

उपर्युक्त कोटि के औपचारिक वाक्य समस्यामूलक तथा सामाजिक नाटक में व्यवहृत हुए हैं जो आधुनिक व्यावहारिक शैली से प्रभावित हैं । ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा पौराणिक नाटकों में "प्रणाम" के लिए बोले गये वाक्य भी अन्य आधुनिक नाटकों से भिन्न प्रकार के हैं । इन वाक्यों में भिन्नता अधिक नहीं है । उदाहरण -

- दंडवत् करता हूँ महाराज । (अंगूर० ११८)
- धर्मपूज्य । मैं वन्दना करता हूँ (बुद्ध० ४३)
- नरसिंह देव इस महाशक्ति के आगे नतमस्तक हैं (कोणार्क ५७)
- आइए प्रभो । जीवन के निकम्मे अंग के समान यह भीष्म आपको प्रणाम करता है । (वि०श० ४३)
- प्रणाम स्वीकार करें माँ । (सेतु० २६)
- मैं पक्षीश्वर प्रणाम करता हूँ । (चन्द्र० १३०)
- कंचनी प्रणाम करती है । (तपन० २६)

ये औपचारिक वाक्य संस्कृत की शैली पर आधारित हैं । आधुनिक, तथा सामाजिक व समस्यामूलक नाटकों में ये शैली गिने चुने नाटकों में है, वह भी पूज्य पात्रों के प्रति प्रयुक्त हुई है

- दंडवत करता हूँ महाराज । (अंगूर० ११८)

- दोहाई है, महाराज दोहाई है । (अंगिर० १५)
- दुहाई है, महाराज ! (सेतु० ६)
- दोहाई पलेश्वर की (अंगिर० २०)
- महाराज की जय हो । (ज्वाल० ३५)

कृतज्ञता या अनुग्रह प्रकट करते हुए पात्र अत्यधिक विनम्रता से बोलता है, इस विनम्रता की अभिव्यक्ति साधारण वाक्यों की अपेक्षा औपचारिक से अधिक सुलभित हो सकती है, अतः नाटकों में प्रभावशाली व्यंजना हेतु इन वाक्यों को महत्व मिला है ।

पुराने तथा आधुनिक नाटकों में औपचारिक वाक्य शैली में भिन्नता है पुराने-नाटकों में मिलती-जुलती शैली मिलती है उसकी तुलना में आधुनिक नाटकों में इन वाक्यों में विभिन्नता के दर्शन होते हैं । उदाहरण -

- महाराज आपकी मैं बड़ी कृतज्ञ हूं । आपने जो अमूल्य वचनों की उसके बदले में आपको क्या दे सकती हूं (भारत०प्र० ३६)
- इस प्रथम संभाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज (ध्रुव० २५)
- इस सम्मान के लिए मैं कृतज्ञ हूं । (कथा० ६६)
- भगवान, मैं कृतार्थ हो गई । (अम्बा० ५२)
- आपके दर्शनलाभ से मैं कृतकृत्य हूं, मुनि श्रेष्ठ । (यज्ञ० ३०)
- अनुगृहीत हूं मुनिवर । (प०रा० ५८)
- राजकुमारी मैं अनुगृहीत हूं (स्कंद० ८६)
- यह मेरा सौभाग्य हो कि मुझे आप लोगों के आतिथ्य करने का सुअवसर मिले । (अम्बा० ५३)
- मैं धन्य हुआ । (वि०अ० ६८)
- हम बहुत आभारी हैं आपके, जो इस दुःख घड़ी में आप यहां पधारे ।
  (सेतु० ६)

उपर्युक्त वाक्यों की परंपरा ही पुराने तथा ऐतिहासिक, पौराणिक व सांस्कृतिक नाटकों में बन गई है अतः अधिक भिन्नता नहीं है ।

आधुनिक नाटकों में प्रयुक्त हुए औपचारिक वाक्यों में एकरूपता कम है तथा पुरानी शैली से हटकर प्रयोग किया है ।

- मैं आप लोगों का अत्यन्त आभारी हूँ (स्वर्ग० ८३)
- मैं आपके यहाँ सम्मान के साथ रही, इसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ । (सिन्दूर० ५६)
- ऐसी सब कृपा है आपकी (लौटन० ४७)
- सब आपकी कृपा है । (मुक्ति० ८७)
- यू आर ग्रेट । आपने हमें उबार लिया । (अमृत० ६०)
- आपकी कृपा है (अंधे० १०४)
- मैं आपकी बुद्धि का कायल हूँ । रात० ४३)

याचना में व्यक्ति नम्रता से बोलता है ताकि उसका प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर गहरा पड़े, जिसके लिए साधारण वाक्य की तुलना में औपचारिक वाक्य अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं, नाटककारों ने क्षमा याचना करते हुए इनको रखा है ।

- देवि । प्रथम का अपराध क्षमा करो । (अजात० ११६)
- क्षमा करना, पूज्य सम्राट । बिना आज्ञा पाये ही तुम्हारे राज्य में प्रवेश करने का दुस्साहस मैंने किया है । (जनम० ३४)
- धृष्टता के लिए क्षमा चाहते हुए, निवेदन यह है (अम्बा० ६६)
- धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ देवि ! (उर्वी० ३३)
- अच्छा तो मुझे क्षमा करें ------ (सिन्दूर० ६०)
- गुरुदेव, अपराध क्षमा हो । (विक्रम० ८७)
- मैं अपनी भूलों के लिए तुमसे क्षमा चाहता हूँ । (अंगूर० ११५)
- आर्य, यह त्रुटि बार-बार न होगी । (चन्द्र० १७६)
- माफ करना मैं पहचान नहीं पाया । (अंधे० १०५)
- कुछ नहीं । मुझे माफ कीजिएगा, मैं बीच में बोल रही हूँ । (युगे० ७५)
- अब आपसे माफी चाहूँगा । (माधा० २३)
- मुझे माफ कर दो (किल० ७५)

- मेरी अर्द्धांगिनी क्या मुझे इस उदास और फीकी दुनिया में अकेली छोड़कर चली गई ? (अंगुर० ५३)

पत्नी के लिए आदर भाव में कुछ अन्य शब्द भी प्रयुक्त किए हैं -

- मेरी सहधर्मिणी । (स्वर्ग० ७४)

- कामिनी मेरी फिर भी उठी हुई सती । (अंगुर० ८५)

साधारणतः पत्नी" के लिए" पत्नी" ही प्रयुक्त हुआ है -

- पत्नी क्यों अपने अस्तित्व को अपने पति में लीन कर दे ?
(स्वर्ग० ३५)

- मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी महेन्द्र भी एक आदमी है ।
(आषे० १०९)

- पति अपनी पत्नी के पास भी नहीं बैठ सकता । (सुधी० २०)

मुसलमानी शैली के प्रयोग में पत्नी को" बीबी" बुलवाया है -

- बीबी, तुम तो कुछ समझती ही नहीं (उलट० ३०)

कई बार" स्त्री" शब्द का प्रयोग स्त्री जाति के लिए न करके" पत्नी" अर्थ के लिए किया है

- मुझे तुम्हारी स्त्री होने का बड़ा अभिमान है ।(पारस०७०५५)

सामान्यतः" स्त्री" शब्द को" स्त्रीवर्ग" के लिए प्रयुक्त किया है । जैसे -

- रानी, तुम भी स्त्री हो । (ध्रुव० ५५)

" स्त्री वर्ग" के लिए औरत ,नारी शब्द भी रखे हैं, ये शब्द सामान्यतः नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं ।

- तुम्हारे समान वीर नारी का सम्मान संसार को करना पड़ेगा ।
(अंगुर० ८८)

- रमणी ! शीघ्र बता - (अजात० ८९)

- मायामयी , तुम्हारे कौन से शब्द परिहास है और कौन से उपहास इसका अनुमान करना भी कठिन है । (कुणा० ७९)

- मायाविनी, तूने सपनों के जाल में मेरे प्रतिशोध की रेखा को रोकना चाहा । (प०रा० ७८)

स्त्रियों के लिए देवी, भद्रे शब्द प्रयोग संस्कृत शैली में हुआ है । ऐसे शब्दों का प्रयोग ऐतिहासिक , सांस्कृतिक व पौराणिक नाटकों में अधिकतर हुआ है ।

"माता" के लिए भी नाटककारों ने कई पर्याय रख रखे हैं । "माँ" शब्द को अधिक ममता प्रकट करने के लिए व्यवहृत किया है ।

- धन्य थी माँ मैंने कौन सा पुण्य किया था । (रजा० १०७)

- काश, तू माँ का दिल जान पाती । (कन्या० १३)

- माँ को घुला-घुलाकर मार डालनेवाले हत्यारे । (अमृत० ६९)

- माँ ने उत्साह और आमोद में पहुँचने की बात नहीं सोची —(सिंदू० १९)

- मैं तुम्हारी माँ हूँ या नहीं ? (मुक्ति० ३६)

- माँ को नुकसान ही क्या होगा । (आषाढ़० १७)

- मैं माँ की ज्वालामुखी सी प्रज्वलित आँखों की तपन लेकर चलता हूँ ।
(उपमा०१०)

- तुम बाबी माँ । (चि०अ० ६४)

" मैया " शब्द से भी ममता प्रदर्शित हो रही है ।

- मेरी मैया तू कहाँ है (भार०त० पृ० ३६)

" माता" शब्द से माँ शब्द की तुलना में कम ममता झलकती है ।

- माता की आँखों में आँसुओं की लकीरें लटकती देखकर + + + +
(चि०अ०२९)

- <u>माता</u> जी और पिताजी के वीरगति पाने का समाचार पहुँचा देना ।
(शपथ ७)
- <u>माता</u> । जो आज्ञा हो । (नीउ० २७)

"ममी" व "ममा" शब्द को आधुनिकता को प्रकट करने के लिए "माँ" के पर्याय रूप में रखा है । "ममा" शब्द में भी "माँ" की अपेक्षा कम ममत्व है ।

- बस हो गया तैयार <u>ममी</u> । (अंगो० ३१)
- <u>ममा</u> तुमने इस लड़की की जबान बहुत खोल दी है ।
(नागो० ३६-३७)

"माँ" शब्द को अधिकांशतः नाटककारों ने प्रयुक्त किया है ।

(ख) स्त्रियों द्वारा "पति" के लिए भी तरह-तरह के पर्याय रूप बुलवाये गये हैं । "नाथ" शब्द को प्रभु व स्वामी" के अभिप्राय से पर्याय रूप में प्रयुक्त किया है । कहीं-कहीं पति को "स्वामी" ,प्रभु" प्राणनाथ, हृदयाराध्य शब्द द्वारा भी सम्बोधित कराया गया है । इन शब्दों को स्त्रियों ने अपने को हीन प्रदर्शित करते हुए या पूर्णतः पति पर आश्रित अभिप्राय लेते हुए बोला है ।

- <u>नाथ</u> । तब क्या मुझे स्कंदगुप्त का अभिनय करना होगा ।
(स्कंद० ४४)
- कहो <u>नाथ</u> । कहो , (कप० ५५)
- <u>नाथ</u> । मैं समझती हूँ (ज्वाला० ३४)
- प्रियतम सन्ध्या का प्रणाम करो, <u>नाथ</u> । (वि०श० ७५)
- धन्य हो <u>स्वामी</u> । (रक्षा० ४२)
- इनके लिए अपने <u>स्वामी</u> को छोड़ देती है (माता० पृ० ७६)
- उस <u>स्वामी</u> की दुर्गति है । (अंगू० १०)

- प्रभु ! स्वामी ! क्षमा ! यह मूर्ति मेरी वासना का चिन्ह नहीं !
(ध्रुव० ५९)

- मैं प्राणनाथ को अपने कर्तव्य से च्युत नहीं करा सकती ! (ध्रुव० ७२)

- युवराज शान्त, युवराज्ञी ! (चि०उ० २८)

उपर्युक्त पर्याय रूपों को अधिकांशत: ऐतिहासिक, पौराणिक व सांस्कृतिक नाटकों में रखा है ।

कुछ अन्य शब्द भी 'पति' के पर्याय रूप में व्यवहृत हुए हैं जैसे -

- पतिदेव ! आपकी दासी क्षमा मांगती है । (स्कंद० ७५)

- प्यारे ! मुझको आखिर किसके भरोसे छोड़ जाते हो ? (उ०ट० ८०)

कुछ स्थलों पर पुरुषवर्ग के पर्याय रूप में 'आदमी, मनुष्य, इन्सान' शब्दों का चयन किया है । यथा -

- मगर देख, यह आदमी - (सि०उ० २२)

- तुम इतने किसी आदमी को हो ! (आषे० २१)

- यह आदमी बदमाश है । (अनुत० १०५)

- एक गोरे रंग का विकट आदमी मेरी कन्याओं को जबरदस्ती उठाये लिये जा रहा है ।

- यह आदमी ऊपर से भोलेपन के साथ बातें करता है (दुर्गा० ५३)

- मैं मनुष्य का उपहास, धर्म की तुच्छता + + (चि०उ०९६)

- कमजोर दिल का इन्सान (अनुत० ८६)

कई बार मानव जाति के लिए आदमी, मनुष्य व इन्सान पर्याय रूप में प्रयुक्त किए हैं ।

- आदमी मक्खी फटाफट मर रहे हैं । (बकरी २८)

- आदमी क्यों विराग होता है । (सम्पा० १०६)

- अभागा मनुष्य संतुष्ट है । (स्कंद० २२)

- मनुष्य का कैसा अधःपतन है । (रक्षा० १६)

- प्रेम भी मनुष्य को कैसा अन्धा कर देता है । (श्रीचन्द्रा० ४०)

- मनुष्य को किसी तरह भी संतोष नहीं – (स्वर्ग० ४७)

- सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं । (ध्रुव०७८)

- सभ्यता और संस्कृति के अभाव में मनुष्य एक क्षण भी सुख से विश्राम नहीं पा सकता । (अम्बा० १२५)

माँ की भाँति " पिता " के पर्याय शब्द नाटकों में विशेष अभिप्राय से रखे गये हैं । " पिता " शब्द को आदरभाव में रखा गया है तथा " बाप " शब्द को अपमानित करते हुए या व्यंग्य में कहा गया है ।

- -------- आचार्य मेरे पिता । (कोणार्क ६५)

- पिताजी मरण शय्या पर पड़े हैं । (जय० ६५)

- पिताजी आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ । (अंगूर० ११२)

- पिताजी मैं नमस्कार करती हूँ । (ध्रु० ५०)

- नहीं पिताजी, आपके राज्य में एक भयानक षड्यंत्र चल रहा है (चन्द्र०७६)

- उसका बाप तो साफ इनकार कर देगा । (स्वर्ग० ६)

- मैं रानी साब की फौज में भर्ती होकर निकाल दूंगी कसूर अंग्रेजों का और मेरे बाप दादों का । (झाँसी० ७५)

- इस से बाप गरीब हो जाते हैं (होटल० २८)

- मेरे बाप ने एक बार सोचा (सिंह० ४३)

- जिन्दगी में तुम्हें भी कुछ करना धरना है या बाप ही की तरह ---?
(आधे० ५८)

पिता के लिए "बाबू जी" शब्द का प्रयोग अधिक अपनत्व नहीं व्यक्त करता है ।

- बाबू जी से पूछ लूं नहीं तो मारेंगे । (मुक्ति० ३६)

आधुनिक हास्यमूलक नाटकों में पिता के लिए डैडी तथा पापा शब्दों को बुलवाया है क्योंकि इन नाटकों की कथावस्तु आधुनिक शिक्षित वर्ग की है ।

- डैडी का चीखते हुए + + + (आधे० ६३)
- हैलो नाउ माई डैडी इज ए०जी० फियर (अनुत० ३५)
- जब पापा वापस आये तो मही में चुप है । (अंजो० ६१)

नाटकों में मुख्यत: "पिता" शब्द को व्यवहार में लाया गया है। स्त्रियों की भाँति पुरुषों को भी गुणों के आधार पर विशिष्ट पर्याय शब्दों से सम्बोधित किया है । सत्प्रवृत्तियों वाले पुरुषों को देव, धर्मपुत्र, भगवन आदि शब्दों से सम्बोधित करवाया है ।

- देव मातृगुप्त की कुमारी का अभिवादन स्वीकार कीजिए । (आम्रपा०४३)

- देव !, यह सिंहासन आपका है (स्कंद० ८०)

- धर्मपुत्र ! मैं वन्दना करता हूं (युद्ध० ४३)

- भगवन् ! हमलोगों के लिए तो एक छोटा-सा उपवन पर्याप्त है ।
(अजात० ३९)

(घ) "राजा" के भी विभिन्न पर्याय नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं । अधिकांशत: राजन्, महाराज , सम्राट शब्द पर्याय रूप में आये हैं । जैसे -

- क्षमा कीजिए राजन् । (चन्द्र० १३)

- महाराज का प्रिय घोड़ा ---- (हिं० ६)

- \+ + हमारे <u>महाराज</u> का बेटा बकरी के गले में थन की तरह पछताने लगा । (वि०अ० ५७)

- मेवाड़ के भावी <u>सम्राट</u> का जन्म हुआ है । (जय० ६२)

" सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी" अभिप्राय को लेते हुए पृथ्वीनाथ, भूपति, अधिपति पर्याय आये हैं ।" बादशाह" को स्वामी अर्थ में लिया है ।

- कलिंग हमारा है और उसके <u>अधिपति</u> हैं हमारे प्रजा-वत्सल नरेश श्री नरसिंह देव । (कोणार्क ५२)
- मेवाड़ जैसे राज्य के <u>अधिपति हैं</u> । (जय० २८)

- नया शासक । नया <u>भूपति</u> ! (प०रा०२२)

- आप <u>पृथ्वीनाथ</u> हैं (अजात० ४६)

- \+ + दिल्ली के <u>बादशाह</u> के विरुद्ध + + + (रक्षा० २३)

" मानव जाति के स्वामी" अर्थ लेते हुए नरेश, नरेश्वर शब्दों का चयन किया है ।

- हमारे प्रजा-वत्सल <u>नरेश</u> श्री नरसिंह देव । (कोणार्क ५२)

- श्री <u>नरेश्वर</u>, हे सुविज्ञ, हे परमप्रतापी अंशुमान देव । (प०रा०२३)

कहीं-कहीं राजा को ईश्वर व संसार का रक्षक मानते हुए" जहाँपनाह" शब्द से पुकारा है ।

- \+ + + एक बेचारी अबला के विरुद्ध <u>जहाँपनाह</u> को क्यों भड़काते हो ? (कुणा० २२)

राजाओं का राजा या चक्रवर्ती राजा" कहने के लिए शहंशाह, महाराजाधिराज" शब्द का चुनाव किया है ।

- पृथ्वीराज को <u>शहंशाह</u>" और <u>महाराजाधिराज</u> कह कहकर तुम ढोल पटे पर नाच क्यों सिखाती हो ? (कुणा० १८)

(घ) " ईश्वर " के पर्याय भी नाटककारों ने विभिन्न अभिव्यक्तियों के लिए अलग-अलग रखे हैं। प्रभु भगवान तथा ईश्वर शब्द पूज्य तथा आदरणीय शक्ति अर्थ में अधिकतर नाटककारों ने रखा है -

- जी अपनी रोशनी का उजाला दो प्रभु। (तिल० २१)
- हा भगवान, क्या अब भी कह गयी। (कोहू० ४६)
- आओ हम लोग भगवान से विनती करें। ([illegible]० ३८)
- यह है भगवान का नाम, (माधव० १४)
- मेरे ईश्वर क्या मेरे भाग्य उदय हुए (भारत०प्र०६७)
- हे ईश्वर मेरे अपराधों को क्षमा कर मुझको दुख सहने की शक्ति दे। (भारत० प्र० ३३)

परम ब्रह्म, सारी सृष्टि का संचालक और रचयिता अर्थ की अभिव्यक्ति परब्रह्म, परमात्मा व परमेश्वर शब्दों से की है।

- मेरी आवश्यकताएँ परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है।) चन्द्र० ८५)
- परमात्मा जिसकी सत्ती अब मशीन की चीज भी नहीं रह गई है? (प०रा०१०)
- राजा परमेश्वर का रूप है (कुणा० ६७)

भगवान के गुणों के आधार पर भी पर्याय रूप प्रयुक्त हुए हैं जैसे -

- हे कृपानिधान (रक्षा० ४७)
- हे सर्वशक्तिमान (रक्षा० ४७)
- हे करुणासागर भगवान इधर भी दृष्टि कर (भारत०भा०४६)
- हा विधाता। (विक्र० १६)

" कृष्ण " के लिए कुछ विशेष पर्याय प्रयुक्त हुए हैं जैसे -

- हे श्यामसुन्दर। तुम्हीं अवलम्ब हो। (श्रीचन्द्रा० २४)

कहीं-कहीं कृष्ण भी कहा गया है -

- कृष्ण ने बंसी की तान में आह्वान गान बजाया । (अपरा० ३५)

राम के लिए भी उनके गुणों को ईश्वर के पर्याय में रखा है ।

- चरणों में सद्गति देनेवाले दीनदयालु (वल० ४५)

(ङ) सूर्य तथा चन्द्र के सामान्य प्रचलित पर्याय अधिकतर व्यवहृत हुए हैं ऐसा प्रयोग नाटक में शब्दों की दुरूहता न आने देने की दृष्टि से किया है ।

सूर्य के पर्याय

- सूर्य को किसी ने कभी पात करते नहीं देखा । (अपरा० १०)

- सबेरे सूर्य की किरणें उसे छूने को लौटती थीं । (स्कन्द० १६)

- सूर्य का प्रताप फैल गया । वल० ६२)

- वहाँ मानो सूरज की अन्तिम किरणें पड़ रही हैं । (कोणार्क ३६)

- बालारुण अपनी स्वर्णरश्मि से इस विश्व + + + (ध्रुव० ५६)

चन्द्रमा के पर्याय

- कहीं भी चन्द्रमा का कलंक है + + (रक्षा० १५)

- चन्द्र का आह्लाद और सूरज की तेजी ---- (वि० १०२०)

- मैं चाँद की ओर देख रहा था (सुकि० ५३)

- इस समय प्रभात का फीका चाँद भी मुझे कुछ पीला सा लगा ।
(कर्ती ४८)

- आकाश में जब शीतल-शुभ्र -धवल शशि का विकास हो ।
(स्कन्द० ५०)

(च) आकाश, बादल तथा पृथ्वी के भी अधिकांशतः सामान्य प्रचलित पर्याय व्यवहृत हुए हैं जो भाषा की व्यवहारिकता को बनाये रखते हैं ।

आकाश के पर्याय

- आकाश का उत्कृष्ट पर्यटक । (ध्रुव० ४६)
- आकाश की तरह निर्लिप्त + + + (वि०ज० ३६)
- जहाँ न तो आसमान था ।(अमृत० ४५-४६)
- आसमान से टपकीं सेना । (रक्षा० ३०)
- कहूँ ज़मीन पर और बात करूँ आसमान की ? (उलट० ६)
- व्योम विहारी पक्षियों का झुंड + + + + (ध्रुव० १६)

बादल के पर्याय

- बादलों की दुनिया में तिलस्मिन नाच देखूँ । (वि०ज०६२)
- जिनके जीवन पर काले बादलों की छाया की तरह महामारी का भय फैला हुआ है । (कोणार्क ४४-४५)
- ऊपर प्रलय के बादल हैं । (वि०ज० ६१)

पृथ्वी के पर्याय

- भूमा का सुख और उसकी महत्ता का किसको आभास-मात्र हो जाता है । (चन्द्र० ८५)
- वसुन्धरा का शृंगार + + + (स्कंद० १३७)
- जहाँ न तो आसमान था और न धरती । (अमृत० ४५-४६)
- हाय, रे पृथ्वी (दुर्गा० ६१)
- जिसकी मेवाड़ की चप्पा-चप्पा भूमि तुम्हारे पुरखाओं के खून से सिंची हुई है । (रक्षा० ३०)
- ज़मीन की दरार भरती है (अम्बा० ८१)

व्योम, भूमा, वसुन्धरा पर्यायों को नाटककार ने साहित्यिकता लाने की दृष्टि से प्रयुक्त किया है ।

नदी तथा गंगा के पर्याय बहुत कम आये हैं -

(ख) नदी के पर्याय

- अति गम्भीर नदी के तट पर दीपवटी में दिए फिरती थी । (वि० १०२८)

- चुपचाप बहनेवाली सरिताओं का स्त्रोत + + (स्कंद० ५०)

गंगा के पर्याय

- यहीं पुलकित पवन गंगा की तरंगों का आलिंगन करती कैसी झूम रही है । (वि०आ० २७)
- मेरी कुमकुम सौन्दर्य की सुरसरि के तट पर ही लहरें गिन रही हैं । (उपमा० ५५)

शब्दों के पर्याय रूपों की अधिकता कुछ नाटकों में मुख्यत: मिलती है, जिसमें जगदीश चन्द्र माथुर, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट, गोविन्द वल्लभ पंत, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण लाल, सत्यव्रत सिन्हा, मणिमधुकर तथा वृंदावन लाल वर्मा के नाटक हैं । अन्य नाटकों में अपेक्षाकृत अल्पता है।

(२) (क) नाटकों में कुछ ऐसे पर्याय प्रयुक्त हुए हैं जिनमें शब्दों का पर्याय रूप नहीं मिलता है, बल्कि उसके अर्थ या अभिप्राय का पर्याय मिलता है । इस प्रकार का प्रयोग नाटककारों ने भावाबोध की अभिव्यक्ति अर्थ के स्पष्टीकरण तथा सरलता लाने के लिए किया है । इस कोटि के पर्याय कुछ ही नाटकों में मिलते हैं । उदाहरण प्रस्तुत है-

- नीच भयावनी धूम्रज्वाला धूमकेतु ! आकाश का उच्छृंखल पर्यटक ! नक्षत्र लोक का अभिशाप ! (कुव० ५६)

उपर्युक्त कथन में धूमकेतु के पर्याय प्रस्तुत किये हैं -

- वो उस प्राण का घातक है उस अमृत का शोषक है, उस मर्यादा का भंजक है । (प०रा० २७)

सरल, मिश्र व संयुक्त वाक्य

जिस वाक्य में एक ही विधेय हो उसे सरल वाक्य, जिसमें एक प्रधान वाक्य और उसके आश्रित एक या अनेक आश्रित उपवाक्य हों वे मिश्र तथा जिस वाक्य में एक से अधिक प्रधान वाक्य हों, संयुक्त वाक्य कहलाते हैं। अभिव्यक्ति में भी इन तीनों वाक्यों को प्रधानतः अपनाया जाता है। इन तीनों वाक्यों का अपना अपना महत्व है। सब प्रकार के विचार किसी एक वाक्य से नहीं व्यक्त किये जा सकते अतः अवसरानुकूल उनको रखा जाता है। कहीं-कहीं सरल, मिश्र व संयुक्त वाक्य ऐसे प्रयुक्त होते हैं कि उनके स्थान में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। जैसे -

- मैं रोटी बेलूँगा। (रत्ना० ५०) (सरल वाक्य)
- हम रानी से कह देंगे कि मंत्री फेर फेर तुमको घास खुजाने चाहता है। (कीर्ति० १४) (मिश्र वाक्य)
- नदी पंथों का चिह्न बतलाया और समझदारों को रास्ता बताया। (उत्त० ५) (संयुक्त वाक्य)

इन तीनों प्रकार के वाक्यों को किसी दूसरे वाक्य में परिवर्तित नहीं किया जा सकता, यदि इनमें परिवर्तन लाया जायेगा तो उनकी अभिव्यक्ति अधूरी रह जायेगी या वाक्य में असंतुलन आ जायेगा।
सरल, मिश्र व संयुक्त वाक्यों को अलग-अलग स्थितियों में प्रयुक्त किया है। सरल वाक्य, मिश्र तथा संयुक्त वाक्यों की तुलना में अधिक प्रभावक होते हैं।

नाटकों में सरल वाक्यों को कुछ विशेष स्थलों पर प्रयुक्त किया है। आज्ञा, आदेश प्रायः सरल वाक्यों में है क्योंकि वे अधिकतर संक्षिप्त हैं। प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए भी इन्हें सरल वाक्यों में रखा है। जैसे -

- मंत्री इसको सौ कोड़े लगें। (कीर्ति० १४)
- बंदियों को ले जाओ। (स्कंद० ८८)

- नगर के द्वार खोल दो । (ध्रुव० १३८)
- तुम अपना कर्तव्य करो । (अकरी० ३०)
- ढोलक उधर देखो । (ढोटन० ३०)
- उस अभिनेत्री को यहाँ बुलाओ । (चन्द्र० ५५)

अनुनय-विनय कृतज्ञता व प्रार्थना की अभिव्यक्ति सरल वाक्यों में हुई है, प्राय: इस प्रकार की अभिव्यक्ति छोटे या हीन व्यक्ति द्वारा की गयी है, जो हीनता के कारण अपने से बड़े के सम्मुख थोड़े ही शब्द बोल पाते हैं । कभी-कभी बड़ों के द्वारा भी कृतज्ञता व्यक्त की गई है, वह भी सरल वाक्य में है क्योंकि अन्य प्रकार के वाक्यों से बात का प्रभाव कम हो जायेगा । उदाहरण -

- इस समय आप क्षमा करें । (तुकि०१२७)
- जहाँपनाह, अब कुछ मैं भी अर्ज किया चाहता हूँ । (दुर्गा० २५)
- गरीब पर निगाह रहे हुजूर । हुजूर मुख्तार हैं ।(उदय० १०८)
- जी सरकार तो सरकार के चरणों की चाकरी पाऊँगा ।(कर्बला०७७२)
- भगवान, मैं कृतार्थ हो गई । (अम्बा० ४२)
- क्षमा आपकी अत्यन्त कृपा होगी । (स्कन्द० ५४)
- महाराज आपकी मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ । (भारत०प्र०७३६)
- इस सम्मान के लिए मैं कृतज्ञ हूँ । (ध्रुव० ६६)
- हे भूपति हम आपकी स्तुति करते हैं । (चन्द्रा० ४५)
- मुझको खिदमत में ले लिया जावे । (कर्बला०७७०)

आगमन व स्वागत के समय बोले गये वाक्य अधिकांशत: सरल वाक्यों में है क्योंकि सर्वप्रथम ऐसे स्थलों पर मात्र स्वागत वाले वाक्य ही बोलना है न कि लम्बी बात शुरू कर देना । अत: ऐसे स्थलों पर सरल वाक्य ही उपयुक्त है मिश्र व संयुक्त वाक्य नहीं ।

- आइए पधारिए, महाराज । (अंगूर० २२)
- आइए, देवकुल जी पधारिए । (विक्रम०७०)
- आप शीघ्र विराजिए । (दुर्गा० ५४)

- कोणार्क के इस कोने में कलिंग नरेश का स्वागत है । (कोणार्क ४०)
- अभिवादन स्वीकार करें, महोदय (मा०स०वि०४२)
- देव मातृगुप्त के अनुचरों का अभिवादन स्वीकार कीजिए ।(आषाढ़०६३)

सूक्तियाँ तथा वाणियाँ अधिकांशत: सरल वाक्यों में प्रयुक्त हुई हैं, क्योंकि अन्य वाक्यों में उनको व्यक्त करने में सूक्ति कथन रूप में है ऐसी है साथ ही उनका प्रभाव घट जाता है ।

- समय पड़ने पर ही शत्रु और मित्र की परख होती है । (दुर्गा० ३३)
- आत्म सम्मान के लिए मर-मिटना ही दिव्य जीवन है ।(चन्द्र० ५०)
- महान ही महान की महत्ता समझता है (सम्ब० ४६)
- साहित्य और कला ही अमृत फल है । (उपल० ४३)
- आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते । (रस०७०)
- महान आत्माएँ अच्छे कामों का भेद आप नहीं किया करतीं ।(कथं०२५)
- मानव जीवन तो क्षणभंगुर है । (सिद्ध० ३२)

प्रभाव की दृष्टि से प्रशंसा को भी सरल वाक्यों में व्यक्त किया है । कहीं सरल वाक्य कुछ लम्बे हो गये हैं क्योंकि ऐसे स्थलों पर भाव प्रकट करने का पूर्ण प्रयत्न है जिसमें शब्दों की अधिकता हो गयी है । जैसे -

- महाराज, छोटी-मोटी दुश्मनों से युद्ध करने की इच्छा करना वीरों की शोभा नहीं देता । (दुर्गा० १६)
- कुंवर वशिष्ट, बहुत समय बाद आपके दर्शन का यह अवसर मेरे लिए सुखदायी है ।(पत्र० ३०)
- तुम जैसी नर्तकी को पाकर कोई भी राजसभा धन्य हो सकती है ।
(सम्ब० ६०)
- इस भूमण्डल में कोई भी शक्ति मुझे अपने अटल प्रण से नहीं हटा सकती।
(वि०आ०४१)

नाटकों में साधारण बात को सरल वाक्यों द्वारा व्यक्त किया है । विषय के महत्त्वपूर्ण न होने के कारण उस पर लम्बा व्याख्यान नहीं किया जा सकता । अत:

सरल वाक्य की ही रचना उचित समझा गया है । नाटकों में साधारण बात को व्यक्त करनेवाले सरल वाक्यों के उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

- यह हवा में बातें करता है । (रा० ३६)
- दीपक ऊपर रख दो । (प०रा०१३)
- मुझे सोमवार का दिन बड़ा खराब लगता है ।
- आप विश्राम कर लें । (लहरों०८१)
- अरे ताना तो खाते जाओ । (स्वर्ग० १७)
- शिवराम भगत वाले मकान में कीर्तन करने गया है । (अमृत०१२०)

भावाभिव्यक्ति में भी सरल वाक्यों द्वारा अभिव्यंजना हुई है । ऐसी स्थिति में नाटककार बहुत लम्बे वाक्यों को नहीं खींचता रहा क्योंकि लम्बे वाक्यों द्वारा भाव की तीव्रता कम होने की संभावना है । उदाहरण -

- गुल कटा दो ।(आषाढ़ ६८)
- लो चाय साहब । (मील० ३१)
- बेचारा बड़ा गरीब लगता है । (छोटम० २७)
- सारे भूत-प्रेत भागे । (रा० २८)

कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ सरल वाक्य द्वारा सफल अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, वहाँ मिश्र व संयुक्त वाक्यों का चयन किया गया है, जैसे किसी वस्तु वर्णन या घटना वर्णन में, सरल वाक्यों में वर्णन किया जाय तो शब्दों की आवृत्ति होगी जो भाषा सौन्दर्य की पुष्टि में बाधक होगी । अतः वर्णनात्मक स्थलों पर मिश्र तथा संयुक्त वाक्यों की प्रधानता दी है । यथा -

- उस जंगल में जहाँ बेकल बबूल-कैक्टस-बेरी और कँटीले झुरमुटों झाड़-झंखाड़ों से पूरा आसमान भरा हो, जहाँ सब कुछ, बाड़ों, क्यारियों, खेतों, घरों, अंधकारों में बाँट और बाँध दिया हो, जहाँ कीड़े, साँप, बिच्छू, दीमक, कनखजूरे से सब अंध सुरंगें खाली न हों, जहाँ की [illegible] हवा में अनाघ्रात्य के गंध, भूत प्रेतों की छाँह हो, वहाँ के आसमान में चमगादड़ नहीं तो क्या हंस उड़ेंगे ? (माया०४७) (मिश्र वाक्य)

वर्णनात्मक स्थलों पर प्रायः विशेषण उपवाक्यों को निक्षिप्त किया है ।

- तुम उस अभागिनी के साथ व्यंग्य कर रही हो -
  जिसका संसार आज सूना हो गया होगा ? (सिंदूर० ४६)
- एकलौग उस अत्याचारी राजा को कर न देने की अधर्म के बल से पिता के जीते ही सिंहासन छीनकर बैठ गया है ।
  (अजात० ५६)
- सलाम हुजूर को । हम तो वह है जो बड़ों बड़ों की इज्जत बिगाड़ देते हैं । (उल्ट० २६)
- वह कटोरी थी जिसमें मैंने पानी भरकर रखा था । (लहरों ७६)
- मनुष्य उस उमड़े हुए मेघ के समान है, जिसमें पानी और आग दोनों का वास है । (विक्रम० ३८)
- जिसकी आत्मा कमजोर हो, जिसे लालच, स्वार्थ ने घेर रखा है वह इस नगरी से क्या पायेगा ? (नगरी २३)
- जिसे तुम खाना कहते हो, वह सड़ी हुई चपातियाँ और दाल में तैरती हुई मक्खियों का भोज है जो हमारी नाकों में घुस गया है ।
  (रस० ५२-५३)
- तुम्हारी सिखाई जिसकी बुद्धि छीन ली गई, जो तुम्हारा सरकारी मानकर निर्वासित कर दिया गया है, मैं उसी ब्राह्मण का पुत्र चाणक्य हूँ जिसकी शिखा पकड़कर राजसभा में खींची गयी, जो बंदीगृह में मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था । (चन्द्र० १४४)

कार्य व्यापार के वर्णन में क्रियाविशेषण उपवाक्य प्रायः व्यवहृत हुए हैं। यथा-

- जब तक मैं पहुँचूँ पहुँचूँ तब तक लोग आग चिता करके वापस आ गये थे । (अमृत० ७८)
- राष्ट्रसंघ में जब तक फैसला होगा, तब तक यह रूप-रेखा धुंधला चुकी होगी । (रस० ३७)

- देवी कुछ मालायें पहिनती है और अपने प्रकट हाथ में तलवार भी लिये रहती है । (कात्ति० ३३)
- क्या देवी-देवताओं के चरित्र दिखायेंगे और देवलोक की सैर करायेंगे ? (उलट० १)
- किन्तु यह तुम्हारी विनम्रता है या हर्ष के अतिरेक से तुम विदिशाभ्रान्त हो गये हो ? (कोणार्क० ५२)
- आप लोग कठी या पत्थर की तरह खड़े रहेंगे ? (ककरी ५७)

संयुक्त वाक्यों में उपवाक्य प्रायः सन्तुलित व एक आकार के हैं । कहीं-कहीं वर्णनात्मक स्थलों इनमें असंतुलन है जिसमें आरंभ या अन्त में कई मिश्र वाक्य एक साथ आये हैं और अंत या प्रारंभ में सरल वाक्य आये हैं ।

मिश्र तथा संयुक्त वाक्यों में संयोजक शब्दों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । इनके प्रयोग पर वाक्य का अभिप्राय काफी निर्भर रहता है । इनके उचित प्रयोग न होने पर वाक्य में अटपटापन आ जाता है तथा कभी-कभी अस्पष्टता आ जाती है । नाटकों में कहीं-कहीं ऐसा प्रयोग मिलता है । यथा -

- तुम्हारी आँखों से आँसू गिर रहे हैं परन्तु जबान कुछ बोलने को तैयार है, आँसू पोंछो । (पा०स०पृ०८७)
- जो कुछ लोभ होता तो मैं तुमको कहती न । (शीचन्द्रा० १०)

परन्तु के स्थान पर 'पर' अधिक ठीक लग रहा है ।

- उन्हें लिए जाती थी कि ठोकर खा कर गिर पड़ी । (कब० १२६)

यहाँ 'कि' के स्थान पर 'तभी' अधिक संगत है ।

- कभी तो मैंने कहा कि मुझे उन दिनों की याद आ गयी जब मैं तुमसे भी छोटी यहाँ आयी थी । (कंका० ८७)
- जो कुछ लोभ होता तो मैं तुमको कहती न । (शीचन्द्रा० १०)

उपर्युक्त वाक्यों में 'तभी' व 'यदि' शब्द ठीक रहेंगे ।

कई बार संयोजक शब्दों को व्यर्थ में प्रयुक्त किया है, जिससे वाक्य का प्रभाव कम हो गया है -

- ज्योंहि वहीं उसी दिन मैं पहुंच गयी उस सुनहली घाटी में जहाँ इन्द्रधनुष का मेला लगा रहता है, जहाँ जवानी तितलियों के रूप में उड़ती रहती है ; या उस देवलोक में जहाँ सुनहले पंखवाले देवकुमार मीठा के पंखोंवाली अप्सराओं के अगल-बगल, आगे-पीछे मंडराते फिरते हैं, या कम से कम उस स्वदेश की राजसभा में, जहाँ सलोनी बांके राजकुमारों की भरमार है - (अम्ब० ५)

वाक्यों में कहीं-कहीं संयोजक शब्द न होने के कारण अस्पष्टता भी आ गयी है, यदि उनमें संयोजक शब्द लग जाय तो अभिप्राय स्पष्ट हो जाय ।

- अब अम्बपाली को विश्वास है (कि) वह उन वस्तों को खोज सकेगी, जिनसे वह भगवान बुद्ध को पराजित कर दे । (अम्ब०५०)
- मैं जानता हूँ (कि) मेरा अपराध है । (वि०रा० ६७)
- मौसी सुना (कि) तुम फिर वैशाली गई थी । (अम्ब० २८)
- मैंने भी उनसे कहा (कि) पिताजी कितने बड़े सुधारक हैं ।(कुणे०५८)
- मैंने तो भई उनसे साफ-साफ कह दिया (कि) मेरी आँखों में कुछ नहीं झाँका जा सकता । (अनुत० ५८)
- मैं महसूस करती हूँ (कि) मेरी स्वतंत्रता छीन ली जायगी ।
  (कमा० १०३)
- मैं नहीं चाहता (कि) मेरी बहन एक बुड्ढे के गले मढ़ दी जाय ।
  (वर्ष० ५६)
- हाँ हाँ । तुम भाग्यवान हो, (इसलिए) किसी रमणी के सामने यह बात न कह देना, नहीं तो तुम्हें अविवाहित रहना पड़ेगा ।
  (कोणार्क २७)
- जब कोई दवा की भीख मांगता है (तो) हम उसकी ओर देखकर मुंह बनाते हैं । (मुक्ति० ६५)

कई स्थल पर मिश्र वाक्य प्रयुक्त हुए हैं उनको यदि सरल वाक्यों में परिवर्तित किया जाय तो अभिव्यक्ति अधिक सशक्त हो जाय। जैसे -

- तुम अच्छी तरह जानती हो कि मेरी भविष्य की आशा क्या है ? (सिं०५५)
- तुमने पाणि-ग्रहण किया और मेरी वरमाला पहनाई।(सम्प०३२)
- इसका मतलब कि तुम से और कुछ कहना व्यर्थ है। (मुक्ति० ६१)
- मुझे लगता है मेरा पेट खराब है। (सिंदू० ९२)
- लेकिन मैं फिर आपसे कहता हूँ कि आप चली जायें। (कुली०३६)

नाटकों में कहीं-कहीं बहुत लम्बे मिश्र व संयुक्त वाक्य आये हैं जो नाटकीय दृष्टि से उचित नहीं लगते। यदि उनको कई वाक्यों में रख दिया जाय तो अभिनय की दृष्टि से ठीक होगा। कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- मैं चाहती हूँ ठण्डे दिमाग से अपने सर्वस्व को कण-कण करके पीड़ितों की सेवा में दान करना, मैं चाहती हूँ अपनी आंखों अपने प्राणप्रिय पति और पुत्र को मरण की ज्वाला में भस्म कर जीवित रहना और उनके वियोग से एक-एक क्षण की दारुण व्यथा को आजीवन सहना, हँसते-हँसते सहना, खेलना और काम करना, छाती पर पत्थर रखकर दुखियों की सेवा करना, अपनी छाती को ऐसा बनाना कि वह पत्थर के नीचे दबा रहने से भी जीवित न सिसके बल्कि उसे उठाकर दुनियां की उलझनें सुलझाता हुआ जीवन के कंटक मय पथ पर हँसता-खेलता उछलता कूदता चले। (रक्षा० ६०)

- प्यारे! चाहे मरतो चाहे डरतो इन बालकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनेगा कि बालक ने दूसरा वह भी लिया, प्यारे तुम तो ऐसी करुणा के सागर हो कि केवल हमारे एक बालक के मांगने पर सभी कुछ भर देते हो।

जिसकी तथा जब तब क्योंकि, इसलिए, लेकिन, संयोजकों की अधिकता है ।
संयुक्त वाक्य में परन्तु ,नहीं तो या और परन्तु, किंतु प्रयुक्त हुए हैं ।

पी०पी० श्रीवास्तव के नाटक 'उलट फेर' में लम्बे साधारण वाक्य अधिक है । मिश्र तथा संयुक्त वाक्य भी प्रयुक्त हुए । मिश्र वाक्यों में विशेषण तथा क्रियाविशेषण उपवाक्य अधिक है । दो-तीन उपवाक्य संयुक्त वाक्य अधिकतर दो साधारण वाक्यों से बने हैं । कुछ गिने-चुने स्थलों पर वाक्य दीर्घ हो गये हैं जो नाटकीय दृष्टि से असंगत है । संयोजक शब्दों में जो, जहाँ जिस, जब, तब, जब तक, तब तक, जितना, उतना, क्योंकि और नहीं तो या अधिकतर आये हैं ।

उदयशंकर भट्ट ने सरल वाक्यों लम्बे वाक्यों को अधिक अपनाया है । मिश्र वाक्यों में विशेषण उपवाक्य अधिक आये हैं । संयुक्त वाक्यों मे चार साधारण वाक्य तक के वाक्य आये हैं । मिश्र वाक्य में जो, जिसके, जिसमें, जहाँ , क्योंकि, यदि, तो, संयुक्त वाक्य में परन्तु, किन्तु और नहीं तो प्रायः आये हैं । रामवृक्ष बेनीपुरी ने अवसरानुकूल छोटे तथा बड़े सरल वाक्यों को चुना है । मिश्र वाक्यों में विशेषण तथा क्रियाविशेषण उपवाक्य अधिक हैं । संयुक्त वाक्यों में सरल वाक्यों से बने संयुक्त वाक्य अधिक है । संयोजक शब्दों के प्रयोग में कहीं-कहीं एकरूपता आ गयी है, संयोजक शब्दों को बहुत से स्थलों पर नहीं भी प्रयुक्त किया है । जो, जिनको, जिसमें, जिसने , क्योंकि इसलिए, जहाँ, वहाँ, अगर, तो, और, लेकिन, या संयोजक शब्द अधिकतर आये हैं । वाक्य कहीं-कहीं काफी लम्बे भी हो गये हैं जो नाटकीय दृष्टि से अनुपयुक्त है ।

कुछ नाटककारों ने सरल वाक्यों को प्रधानता दी है जिसमें जगदीश चन्द्र माथुर, गोविन्द वल्लभ पन्त तथा मोहन राकेश, सत्यव्रत सिन्हा, विपिन कुमार अग्रवाल, लक्ष्मी नारायण लाल, मणि मधुकर, मुद्राराक्षस सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा विष्णु प्रभाकर हैं ।

मिश्र वाक्यों में भी ये नाटककार ने लम्बे वाक्यों के पक्ष में नहीं हैं। प्राय: एक दो उपवाक्य वाले मिश्र वाक्य इनमें आये हैं संज्ञा तथा विशेषण उपवाक्य अधिक है। संयुक्त वाक्यों में भी दो तीन उपवाक्य वाले वाक्य है। लक्ष्मी नारायण लाल तथा सत्यव्रत सिन्हा के नाटकों में कुछ स्थलों वाक्य में दीर्घता आ गयी है। लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक में तो संयोजक शब्दों की स्वल्पता भी आ गयी है जो कुछ उचित नहीं लगती। इन नाटकों में संयोजक शब्द सामान्य बोलचाल वाले कि जो, जिस, जिन्हें, जब, तब, जहाँ, तहाँ, किन्तु, परन्तु, लेकिन ,नहीं तो और आदि आये हैं।

इन नाटककारों की तुलना में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में लम्बे तथा मिश्र वाक्यों की अधिकता है। कहीं-कहीं मिश्र व संयुक्त वाक्य काफी लम्बे हो गये हैं उनको संक्षिप्त करके कई वाक्यों में भी रखा जा सकता है। सरल वाक्य अधिकतर लम्बे हैं। कहीं-कहीं स्वल्पता से बचने के लिए संयोजक शब्दों को महत्व नहीं भी दिया है। संयोजक शब्दों में साधारण शब्दों का प्रयोग किया है।

इनकी तुलना में वत्स जी व वृंदावन लाल तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र ने सरल वाक्यों को अधिक महत्व दिया है। इन नाटककारों ने छोटे व बड़े दोनों प्रकार के वाक्यों को महत्व दिया है। इन नाटककारों ने लम्बे मिश्र वाक्यों को कम रखा है, परन्तु लम्बे वाक्यों से छोटे वाक्य बहुत भी नहीं हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक में वत्स तथा वर्मा जी के नाटकों की तुलना में कुछ अधिक लम्बे वाक्य आये हैं। मिश्र जी ने संयोजक शब्दों को कहीं-कहीं महत्व नहीं दिया है। संयुक्त वाक्यों में दो तीन वाक्यवाले संयुक्त वाक्य अधिकतर आये हैं। संयुक्त वाक्यों में भी कहीं-कहीं संयोजक शब्द नहीं प्रयुक्त किए हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में कुछ स्थलों पर संयोजक शब्द के न होने से अस्पष्टता भी आ गयी है। संयोजक शब्दों में जिससे, जिसकी , जो, जिनको, जिसकी, जब, तब, क्योंकि, यदि, तो, जब तक, तब तक, और नहीं तो ,परन्तु, किन्तु, शब्द आये हैं।

अन्य आधुनिक नाटककारों की तुलना में सुरेन्द्र वर्मा ने सरल वाक्यों को कुछ कम अपनाया है। इनके नाटकों में मिश्र तथा संयुक्त वाक्य अधिक हैं।

कहीं-कहीं मिश्र वाक्य दीर्घ भी हो गये हैं । मिश्र वाक्य स्वतंत्र रूप में तथा संयुक्त वाक्यों दोनों के साथ आये हैं । विशेषण तथा क्रियाविशेषण वाक्यों की अधिकता है । संयुक्त की दीर्घता भी कहीं-कहीं अधिक हो रही है । संयोजक शब्दों में कि जो, जितना, जहाँ, वहाँ, जब, तब, इसलिए, और या, अन्यथा, लेकिन शब्द प्रायः आये हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

कथन शैली

कई बार ऐसी कहावतें प्रयुक्त हुई हैं, जिनका सम्बन्ध किसी कथा साहित्य या प्रसंग से है ।

- जिस आदमी ने " चमड़ी चली जाय, पर दमड़ी न जाय" वाली कहावत बनाई, वह कंजूस था । (रंगा० ६)
- कुत्ते की दुम सौ बरस नली में रखी जाने पर भी टेढ़ी की टेढ़ी बनी रहती है । (रंगा० ८५)
- अंधेर नगरी चौपट राजा, टके से भाजी टके सेर खाजा । (अंधेर० १२)
- गरज पड़ने पर गदहे को भी बाप कहना पड़ता है । (उखड़े०१२)
- पानी में रहकर मगर से बैर कब तक ? (दुर्गा० १७-१८)
- अपना मन चंगा, कठौती में गंगा । (कली १६)
- जिस डाल पर बैठे हो, उसी को काटना । (दुर्गा० ६४)
- बकरा जान से गया खानेवाले को स्वाद न मिला ।(शीचन्द्रा०३७)

कुछ ऐसी कहावतों को भी महत्व दिया है, जो वास्तव में सत्य उक्तियाँ हैं, परन्तु उनका प्रयोग कहावतों की भाँति होता है ।

- हारिये न हिम्मत बिसारिए न राम नाम (कलंकी०६८)
- मसल मशहूर है, जवानी चार घड़ी की (रस० ३७)
- हाथी के दांत दिखाने के और, और खाने के और होते हैं । (विष० ६७)
- मगर कसम कुरान की । सीधी उंगली घी नहीं निकलता ।(उखड़े०२७)
- एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती (दुर्गा० १३२)
- एक हाथ से ताली नहीं बजती (दुर्गा० ३१)
- टाट का पैबंद टाट ही में लगता है ।(माला० प्र०१५)
- लाठी मारबे तो पानी पीरो हूँ जुदा होयगो (शीचन्द्रा०३६-३७)
- एक ही खेत में न सब धान एक-सा होत है, न एक बाड़ी में सब दाना एक सा । (कली ३६)
- एक जिन्दगी हज़ार कयामत (मा०ला०ना०२४)

के 'राजयोग' तथा 'आधे अधूरे' और मुद्राराक्षस के 'तिलचट्टा' नाटक में इनको स्थान नहीं मिला है।

इस प्रकार कहावतों के प्रयोग में भी नाटककारों की अलग-अलग दृष्टियाँ मिलती हैं जो कि उनकी शैलीगत भिन्नता को स्पष्ट करती है।

सूक्तियाँ

सूक्तियाँ भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। नाटकों में नाटककारों ने जीवन के शाश्वत सत्यों तथा अपने जीवनानुभवों को सूक्ति रूप में प्रकट किया है। सूक्तियों के प्रयोग में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं, क्योंकि प्रत्येक नाटककार के अपने अलग अनुभव तथा विचार हैं।

नाटकों में सूक्तियों का प्रयोग विभिन्न स्थितियों में हुआ है, कई बार बात का समाहार करने के लिए कभी शुरू में और कभी अन्त में सूक्ति प्रयोग किया है। ये सूक्तियाँ अधिकांशतः सात्त्विक पात्रों द्वारा कहलवायी गई हैं।

- राजन्, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक्संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। (अजात० ३०)

- आर्य! संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लिए मर-मिटना ही दिव्य जीवन है। सिंहरण मेरा आत्मीय है मित्र है, उसका मान मेरा ही मान है। (चन्द्र० ५०)

- वत्स! कर्तव्य का पालन करते जाओ, कल्याण होगा। कर्तव्य और आनन्द का सम्बन्ध होना ही ब्रह्म को पाना है। (विशा० ४३)

- हर दिव्य वस्तु क्षणिक होती है, राजकुमारी । फूलों की मुस्कान, चपला की चमक, इन्द्रधनुष की रंगीनियाँ और ओस की चमचमाहट सब क्षणिक हैं । (अम्बा० ८८)

- + + साधना का नाम ही जीवन है । साधना ही अमृत है । पुण्यों को पराजित कर पाप योद्धा मग्न है आकार का घर है । (जनमे०१३६)

- उत्तरीय - + + कुछ फटी अंगरखी, ये फटी-सड़ी धोती और ठेठ हाथ की पगड़ी पहनते हैं । यह सारा धन जो परोपकार के लिए जमा किया है न ? जब आप स्वर्ग के स्वर्ण भवन में जाएँगे, तब इस धन का उपयोग तो मैं ही करूँगा न । " परोपकाराय सतां विभूतयः । " (एक०७३)

- + + + यह जो कुछ तुम्हें दिखाई दे रहा है, सब शृंगार और पुनर्निर्माण - इन पर अत्याचार तो मैंने किए हैं, पर इन्हें छिपाने वाला शृंगार का हाथ तुम्हारा ही तो है ।

  रानी - महान आत्माएँ अच्छे कामों का श्रेय आप नहीं लिया करतीं । (अजा० २५)

- जिस वृत्ति का निरोध योग है और वही आनन्द है । जो चाहते हो वह न पाओ --- आनन्द तुम्हारा है और तुम ही आनन्द हो । (सिन्दूर० ७५)

विषयानुसार सरल व क्लिष्ट सूक्तियों का व्यवहार हुआ है । गहन तथा गंभीर विषयों पर चर्चा करते हुए तथा महान उच्च वर्ग के व्यक्तियों द्वारा बोली गई सूक्तियों में क्लिष्टता है व सामान्य विषय पर बोली गई या सामान्य पात्र द्वारा व्यवहार में लाई गई सूक्तियों में प्रायः सरलता है । जैसे -

क्लिष्ट सूक्तियाँ

- शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है । (अजात० ३०)
- जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है । (अजात० ३६)
- महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है । (चन्द्र०१६१)

- मित्र की सहायता करना मित्र का धर्म है । (दुर्गा० ९२)
- फूल में कांटा, वैसे ही सुख के साथ दुख लगा हुआ है । (दुर्गा०२७)
- हिंसा मानवीय कर्तव्य नहीं है वह राक्षसी वृत्ति है ।(अम्ब०७५)
- मनुष्य का कर्तव्य काम करना है, उसके फल की इच्छा करना नहीं । (कमल० १४७)
- सत्य तीक्ष्ण होता ही है । (सिन्दूर०७९)
- आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते । (रा०७७०)
- झूठ बोलने से झूठ सहने वाला ज्यादा पापी होता है ।(कबरी०२४)
- शरण में आये हुए का पालन करना हमारा धर्म है । झाँसी०९)

कहीं-कहीं सूक्तियों का आकार बड़ा हो गया है, तो वे उपदेश या भाषण का रूप ले रही हैं जिससे उनका प्रभाव कम होने के साथ-साथ सौन्दर्य भी कम हो रहा है ।

- जो दूसरों के लिए गड्ढे खोदता है उसके लिए कुंआ पहिले ही से तैयार रहता है । (उलट० ५६)
- जिन्दगी की सार्थकता मनमाना जीना या लम्बी आयु पाना नहीं है । जिन्दगी की सार्थकता है, किसी बड़े काम के लिए उत्सर्ग कर दिया जाना । (अम्ब० २६)
- ज्ञान और विवेक के प्रकाश में भोगा हुआ भोग तप है, मुक्ति की प्रथम सीढ़ी है, केवल काया को शुद्ध करने के लिए अग्नि प्रवेश है । (सम्य ३)
- दोस्ती सुख के दिनों में गले में हाथ डालकर घूमने के लिए ही नहीं है, विपत्ति के समय एक दूसरे के दुःख को अपना समझने के लिए भी है । (रक्षा० २१)
- मनुष्य मनुष्य है । धर्म मत और जाति बदल जाते हैं वह नहीं बदल जाता। कुल, जाति और समाज के भय से बुद्धि का ढोंग करना मनुष्य और मनुष्यता का घोरतम अपमान है । (कुरो० ६३)

- जीवन -काल में भिन्न भिन्न मार्गों की परीक्षा करते हुए भी ठहरता हुआ चलता है वह दूसरों को लाभ भी पहुँचाता है । यह कष्टदायक तो है, परन्तु निष्फल नहीं । (चन्द्र० ५२)

" इस संदर्भ में सूक्तियाँ किसी उत्कृष्ट या महान व्यक्ति से न कहलाकर ऐसे व्यक्तियों से कहलवायी हैं जिनके लिए ये उपयुक्त नहीं हैं ।

सूक्तियों के प्रयोग में भी नाटककारों के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं । कुछ नाटककारों ने सूक्तियों को काफी महत्व दिया जिनमें जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा हरिकृष्ण प्रेमी हैं । इन नाटककारों में जयशंकर प्रसाद की सूक्तियाँ अपना अलग महत्व रखती हैं, उनकी सूक्तियाँ स्वानुभव के आधार पर रची हुई तथा गंभीर हैं । अधिकांशतः सूक्तियाँ छोटी हैं तथा कथा से लिए हुए हैं । बद्रीनाथ भट्ट ने भी सूक्तियों को महत्व दिया है, परन्तु उनकी सूक्तियाँ अधिकतर परंपरागत तथा घिसी पिटी हैं । उनकी सूक्तियाँ प्रायः छोटे आकार की हैं । रामवृक्ष बेनीपुरी ने स्वरचित तथा परंपरागत दोनों प्रकार की सूक्तियों अपने नाटक में स्थान दिया है । उनकी सूक्तियों की भाषा तो सरल है, परन्तु अर्थ गम्भीर है । सूक्तियों के प्रयोग में प्रेमी जी की रुचि कम नहीं रही है । उन्होंने सरल व जटिल दोनों प्रकार की सूक्तियों को प्रयोग देते हुए व्यवस्थित किया है । परन्तु कहीं-कहीं उनकी सूक्तियाँ लम्बी होने के कारण उपदेश का रूप भी ले लेती हैं । स्वनिर्मित तथा परंपरागत दोनों कोटि की सूक्तियों को नाटक में रखा है । कुछ नाटककारों ने सूक्तियों की भरमार नहीं की है, तो उनसे नाटक को अछूता भी नहीं रखा है । इन नाटककारों में जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क, लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा मणि मधुकर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, वृन्दावन लाल वर्मा हैं । जगदीश चन्द्र माथुर ने स्वरचित-सूक्तियों को मुख्यतः रखा है । उनकी सूक्तियाँ बौद्धिकतापूर्ण हैं । उनके 'पहला राजा' नाटक की तुलना में दशरथ नन्दन तथा कोणार्क में इनकी अल्पता है । उनकी सूक्तियाँ कहीं-कहीं लम्बी भी हो गयी हैं, जो सूक्ति प्रभाव को कम कर रही हैं ।

अश्क जी की कृति 'जय पराजय' में उनके अन्य नाटकों की

तुलना में कुछ अधिक सूक्तियाँ हैं। ये सरल सूक्तियों के व्यवहार के पक्ष में हैं। परंपरागत सूक्तियाँ भी इनके नाटकों में व्यवहृत हुई हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र की सूक्तियों में भी कोई नवीनता नहीं है। मणि मधुकर ने भी सरल व परंपरागत सूक्तियों को महत्व दिया है। भारतेन्दु जी ने भी सूक्तियों को कम महत्व दिया है उनकी सूक्तियाँ कहीं-कहीं दोहा रूप में भी प्रयुक्त हुई है जो सूक्ति न लगकर उपदेश लग रही है।

- लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
  लोभ कभी नहीं कीजिए, यामें नरक निदान ।।(अंधेर० ६)

वृंदावन लाल वर्मा ने कुछ स्थलों पर सूक्तियों का प्रयोग किया है ये सूक्तियाँ सरल व परंपरागत हैं। एक-दो सूक्तियाँ उनकी अपनी रचना हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, गोविन्द वल्लभ पंत, सत्यव्रत सिन्हा तथा मोहन राकेश ने गिनी चुनी सूक्तियाँ प्रयुक्त की हैं।

मुद्राराक्षस तथा विपिन कुमार अग्रवाल ने सूक्तियों की आवश्यकता ही नहीं समझी है।

नाटकीय स्थिति के कथन

नाटकों में कुछ ऐसे कथन प्रयुक्त हुए हैं जो साधारण कथनों से बिल्कुल भिन्न हैं। ये कथन आकस्मिक हैं तथा नाटकीय प्रभाव के लिए इनमें आकस्मिकता को निहित किया है परन्तु इनसे आकस्मिकता नहीं झलकती। ये कथन प्रायः ऐसी स्थिति में आये हैं जैसे दो पात्र बैठे आपस में वार्तालाप कर रहे हैं सहसा कोई तीसरा पात्र प्रवेश करता है। वह उन दोनों पात्रों के कथन का छोर पकड़ लेता है और उसका कुछ भी अभिप्राय लगाकर बोलने लगता है। जैसे -

- वत्स - आप पहुंचा है निकट के वन से पुण्य सिंह सिप्रा का
  जल पीने आये हैं।

जैमनी - और सिर्फ गाया ही तो ?

वत्स - नहीं, श्रृगाल ही लगता है ।

(सहसा धन्य विष्णु का प्रवेश)

धन्यविष्णु - कौन है मुझे श्रृगाल कहनेवाला ?

(ग्रपय० ६७)

इस कथन में पात्रों के कथन से एक शब्द श्रृगाल को पकड़कर प्रवेश करनेवाला पात्र दूसरा अभिप्राय लगा रहा है । इसी प्रवेश करनेवाले पात्र के मन का रहस्य भी खुल रहा है ।

कई बार नाटकों में ऐसा हुआ है, दो पात्र जिस विषय पर बात कर रहे हैं, तीसरा प्रवेश करनेवाला पात्र भी उस विषय पर बातें बोलता है, मानो वह पहले से उन पात्रों की बातचीत में सम्मिलित रहा हो । यथा

- १ सिपाही । - भाई ! यह क्या मामला है, कुछ समझ नहीं पड़ता ।

२ सिपाही । - हम भी नहीं समझ सके कि यह कैसा झगड़ा है ।

(राजा, मंत्री, कोतवाल आते हैं)

राजा । - यह क्या गोलमाल है ? (अंधेर० २४)

- स्कंद - (बंधु वर्मा से) - मित्र मालवेश । बढ़ो सिंहासन पर बैठो ।

हमलोग तुम्हारा अभिनन्दन करें ।

(जयमाला और देवसेना का प्रवेश)

जयमाला - देव ! यह सिंहासन आपका है, मालवेश का इस पर कोई अधिकार नहीं । सम्राट आर्यावर्त के सम्राट के अतिरिक्त दूसरा मालव के सिंहासन पर नहीं बैठ सकता ।

(स्कंद० ८०)

- सिंहरण : + + + + उत्तरापथ के खण्ड राज-द्वेष से जर्जर है । शीघ्र भयानक विस्फोट होगा ।

(सहसा आम्भीक और अलका का प्रवेश)

आम्भीक : कैसा विस्फोट ? (चन्द्र० ४०)

कुछ नाटकों में वार्तालाप करते हुए पात्रों की समस्या का समाधान या प्रश्न का उत्तर मानो प्रवेश करनेवाला पात्र दे रहा हो, ऐसे भी कथन प्रयुक्त हुए हैं। ये कथन कथानक से संबंधित हो गये हैं परन्तु नाटक में ऐसे लगता है, मानो प्रवेश करनेवाला पात्र उन पात्रों के वार्तालाप को सुनकर ही बोल रहा हो। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- बहादुर - + + + + बाह, ये आज मेरे मुकाबिले में मैदान में खड़े होते।

(शाहबेज़ औलिया का प्रवेश)

शाह - तो तुम घोंसले में घुस गये होते। (रक्षा० ५४)

- शालादेवी : कह दो तबियत अच्छी नहीं है। खड़े क्या हो ?

(नर्स जाना चाहता है। डाक्टर त्रिभुवन नाथ प्रवेश करते हैं, सामने के दरवाजे से)

डाक्टर : तबियत अच्छी नहीं है ---- तभी तो डाक्टर की जरूरत है। (मुक्ति० ५९)

- प्र० मंत्री - युवराज ने कहा ------

(युवराज चंड का प्रवेश)

चंड - जो मैंने कल कहा था, वह आज भी कहता हूँ पिताजी। हम राजपूत हैं, राजपूतों में श्रेष्ठ हैं, मेवाड़ जैसे राज्य के अधिपति हैं, यदि हम बालकों को आश्रय न देंगे तो कौन देगा ? (त्याग० २८)

- शचि : पर जिसे पैन ने पहले अपनाकर बाद में दूध की मक्खी की तरह फेंक दिया और आत्महत्या करने पर मजबूर किया !

(कृपाचार्य का प्रवेश)

कृपाचार्य : लेकिन उसने आत्महत्या की नहीं, शचि।

(प०रा० १८)

- मन्द : जानती हो ऐसा कहती ?

(बायीं ओर के द्वार से शशांक आता है । उन्हें देखकर पल भर के लिए द्वार के पास ठिठकता है ।

शशांक : देवी का आदेश था कि मैं ------ । (जहरी० ४३)

- शाल्व : + + + + कहूँगा, इसी क्षण में हृदय की गति का अन्त होगा ।

(अम्बा का प्रवेश)

अम्बा : प्रतीक्षा के फड़फड़ाते हुए पंखों से उड़नेवाले प्रियतम अम्बा का प्रणाम स्वीकार करो, नाथ । (चि०अ० ७५)

इस कथन में ऐसी प्रतीत हो रहा है मानो शाल्व की पूर्व स्थिति को देखकर अम्बा बोली हैं।

कहीं ऐसे नाटकीय स्थिति के कथनों को प्रवेश करनेवाले पात्र से जुड़वाया है जो ऐसे लगते हैं जैसे पूर्व कथन के खण्ड हैं । यथा -

- सिपाही : हम कुछ नहीं जानते ।

एक ओर से युवक का और दूसरी ओर से कर्मवीर का प्रवेश, कमरी के पन का झंडा लिये । सिपाही तभी हवाई फायर करता है । ग्रामीण सकपका जाते हैं ।

कर्मवीर : भाइयों, हमें आपकी कृपा चाहिए । यदि आपकी मर्जी न हो तो हम चुनाव में न खड़े हों । आप लोग बैठिए, बैठिए । (कमरी० ४५-४६)

इसमें सिपाही और कर्मवीर के कथन एक ही वाक्य के दो खण्ड लगते हैं ।

- कर्मवीर : शाबाश ! बोलो ---

अचानक नट का प्रवेश, गाता है ।

नट : लोकतंत्र जिंदाबाद जिंदाबाद (कमरी ४६)

कर्मवीर तथा नट के वाक्य एक ही कथन के दो खण्ड प्रतीत हो रहे हैं ।

- सूत्रधार : जी हाँ । मैं आपको उसी युग में ले चलता हूँ । अभी मंच पर उसी युग का दृश्य दिखाया जायेगा । आइए हमलोग चलके दीर्घा में बैठें ।

(दोनों बाहर चले जाते हैं । प्रकाश यहाँ से हटकर पृष्ठ भाग में चला जाता है । तभी बड़े द्वार से होकर एक युवक और एक युवती प्रवेश करते हैं ------ आवाज़ सुनाई पड़ती है ।)

रामकली : इधर से आओ, इधर से, देखो गिर न जाना ।
(युगे० १२)

इसमें भी रामकली का कथन, सूत्रधार के कथन का अंश लग रहा है ।

इन नाटकीय स्थिति के कथनों की ओर सब नाटककारों की दृष्टि नहीं रही है । कुछ नाटककारों ने इन कथनों को अधिक महत्व दिया है जिनमें जयशंकर प्रसाद के नाटक मुख्य हैं । इनके नाटकों में प्रवेश करनेवाला पात्र ऐसे कथन को बोलता है जो लगता है कि पूर्व वार्तालाप को सुनकर बोल रहा हो । हरिकृष्ण प्रेमी ने भी नाटकीय कथनों को अपनाया है । उनके नाटकों में कुछ भिन्न प्रकार के कथन हैं । प्रवेश करनेवाला पात्र पूर्व कथन का कुछ न कुछ अभिप्राय लगा रहा है । पूर्व कथन से संबंधित तथा पूर्व कथन के उत्तर रूप में नाटकीय कथन प्रयुक्त हुए हैं ।

कई नाटककारों ने अपने नाटकों में २,३ स्थल पर ही ऐसे कथनों को रखा है, जिनमें उदयशंकर भट्ट, बद्रीनाथ भट्ट, मोहन राकेश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हैं । इन नाटककारों ने ऐसे कथनों को आयुक्त किया है, जिनमें प्रवेश करनेवाले पात्र का कथन ऐसा लगता है मानो पूर्वकथन को सुनकर बोला गया हो ।

कुछ नाटककारों ने नाटकीय कथनों को १-२ स्थल पर व्यवस्थित किया है । इन नाटककारों में वृंदावन लाल वर्मा, सुरेन्द्र वर्मा (सेतुबंध में) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (अंधेर नगरी में) लक्ष्मी नारायण मिश्र (मुक्ति का रहस्य),

जगदीश चन्द्र माथुर (पहला राजा) , विष्णु प्रभाकर, बी० पी० श्रीवास्तव, विपिन कुमार अग्रवाल तथा उपेन्द्र नाथ के नाटक हैं ।

गोविन्द वल्लभ पंत, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रताप नारायण मिश्र, मणि मधुकर , मुद्राराक्षस , लक्ष्मी नारायण लाल आदि नाटककार नाटकीय संवादों के पक्ष में नहीं रहे हैं ।

स्वगत कथन

स्वगत कथन भी संवाद की एक शैली है, जिसमें एक पात्र अपने अन्तर्मन की बातों को व्यक्त कर रहा है, परन्तु रंगमंच पर खड़ा दूसरा पात्र उसको नहीं सुन सकता, जबकि दूर बैठे दर्शक सुन रहे हैं । इस प्रकार से स्वगत कथन, कथन की अत्यन्त अस्वाभाविक शैली है ।

नाटकों के प्रारंभिक युग में स्वगत कथन को काफी महत्व मिला, परन्तु धीरे-धीरे नाटकीय दृष्टि से अनुपयुक्त समझते हुए इसको कम महत्व मिलने लगा । आधुनिक नाटकों में स्वगत कथनों का प्राय: लोप मिलता है ।

नाटकों में स्वगत-कथनों को नाटककारों ने भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से रखा है । कई बार कुछ मर्मव्यथा या अन्तर्मन की बात को पात्र, अन्य पात्रों के सम्मुख नहीं प्रकट करना चाह रहा है, परन्तु दर्शकों के सम्मुख उसको व्यक्त करना चाहता है, ऐसे स्थलों पर स्वगत कथन द्वारा ही अभिव्यक्ति कराई है । इस कोटि के स्वगत नाटकों में काफी व्यवहृत हुए हैं । उदाहरण प्रस्तुत है

- चन्द्रा० - (आप ही आप) हाय । प्यारे हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते । प्यारे, फिर यह शरीर कहाँ और हम तुम कहाँ ? प्यारे, यह संयोग हमको तो अब की ही बना है, फिर यह बातें कुछ भी

जायेंगी । हाय नाथ । मैं अभी इन मनोरथों को किससे सुनाऊं और अभी उन्हें कैसे निकालूं । प्यारे, रात छोटी है और स्वांग बहुत है । जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा + + +

(श्रीचन्द्रा० ३७)

उपर्युक्त स्वगत कथन की स्थिति अत्यन्त अस्वाभाविक है कई पात्रों से बात करते हुए बीच में स्वगत कथन बोला गया है । कुछ मनोव्यथा को प्रकट करनेवाले स्वगत कथन एकान्त में बोले गये हैं जैसे -

- राधिका - परम पिता परमात्मा मैंने उस जन्म में कौन पाप किये थे कि जिसका फल मुझे भोगना पड़ रहा है । मैं तो बहुत प्रसन्न थी कि मुझे ईश्वर ने + + + +

(भा०ख०प्र० ३२-३३)

- अम्बा : (बीच -बीच में उसासें लेकर) उफ़ बेचैनी सुलग रहे फूटी पड़ती है । पहले आकाश की सखी बन गई है । वहीं तो मानो आकाश + + + + (भि०ख० ४६)

- मदन - (आप ही आप) बहुत सोचता हूँ, परन्तु कुछ उपाय नहीं सूझता । इन दोनों चिट्ठियों ने मुझे डांवाडोल कर दिया + + + +

(दुर्गा०२-७३-७४)

- रनबीर - हाय । राम । कहूं के नाही भयल । नौकी के कुकुर अस न घर के भयल न घाट के भयल । जनमते भर जाइल + + +

(उठट० १३१-१३२)

किसी पूर्व घटित घटना को बताने में तथा भविष्य में होनेवाली घटनाओं की सूचना भी स्वगतों द्वारा दी गई है । भविष्य में घटनेवाली घटनाएं प्रायः गुप्त या रहस्यपूर्ण है जिनको सब पात्रों के सम्मुख नहीं प्रकट कर सकते अतः उनको स्वगत कथन में रखा है । कहीं-कहीं अतीत की घटना को स्मरण करते हुए भविष्य में घटित होनेवाली घटना को भी स्वगत कथन द्वारा व्यापार किया है । ये स्वगत पात्र प्रायः एकान्त में ही बोलता है ।

- कर्मवती – (आकाश की ओर देखकर हाथ जोड़कर) प्रियतम !
तुम मेरी प्रतीक्षा कर रहे हो । जिस मेवाड़ के लिए तुमने अपने
अपने शरीर पर कितने घाव झेले थे + + + +
(रक्षा० ६३)

भविष्य की घटनाओं की सूचना में इस स्वगत कथन शैली को अधिकतर अपनाया है, पात्र के मन में उठनेवाली आशंका को भी स्वगत द्वारा प्रकट किया है । यथा –

- सूर्य०-(सिर उठाकर) यह कौन था ? इस मरते हुए शरीर
पर उसने अमृत और विष दोनों एक साथ + + + +
(मी०ठ० १७-१८)

- कल्याणी : मगध के राज मंदिर उसी तरह खड़े हैं, गंगा शोण
से उसी स्नेह से मिल रही है, नगर का कोलाहल पूर्ववत है । परन्तु
न रहेगा एक नन्दवंश । फिर क्या करूँ ? आत्म हत्या करूँ ?
नहीं जीवन + + + +
(चन्द्र० १५८-१५९)

- रामगुप्त – चिंता से उंगली चिढ़ाते हुए मैं अभी आपकी बातें कर
रहा था ।) पृथ्वी को ऊपर साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ेगा ।
+ + + + (ध्रुव०)

- (अपने आप) बाजी उन गयी है छोटी माँ । देखूँ, तुम्हारी
जीत होती है या मेरी । जीत गया तो अपने अपमान का बदला
ब्याज सहित चुका दूँगा और जिसकी + + + +
(बन्ध० ५९)

स्वगत कथनों को कहीं-कहीं नाटककारों ने पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए प्रयुक्त किया है । जैसे –

स्वगत को पात्र के दृढ़प्रतिज्ञ चरित्र को उजागर करने के लिए रखा है ।

- कदापि नहीं । कभी नहीं । मैं लड़ूँगी । उन गरीबों के गीतों की
रक्षा के लिए । उन पुस्तकों के लिए + + + +
(काशी० १०६)

पात्रों के सहनशील व मर्यादाशील स्वभाव को भी स्वगत कथन द्वारा उभारा है ।

- रानी - (अपने आप) क्या कहा नाथ, मुझे दुख नहीं होता
तो निष्ठुर हूँ । हाय नाथ ! कहीं तुम इस हृदय में
बैठ पाते --------- (क्य० ५३)

पात्र का कुटिल स्वभाव भी स्वगत द्वारा प्रकट किया है -

- नन्द : आज मन को एक साथ ही सूली पर चढ़ा दूँगा । नहीं
- (पैर पटककर) दासियों के पैरों तले कुचलवाऊँगा । यह क्या
समाप्या होनी चाहिए । नन्द भीख अन्धा है न ! -----(चन्द्र०४८)

कई नाटककारों ने स्वगतों द्वारा पात्रों तथा अन्य बहुत परिस्थितियों का परिचय कराया है ।" अंगूर की बेटी" में नाटक के प्रारंभ में ही पात्रों का परिचय स्वगत द्वारा दिया है ।

- कामिनी - (गीत गाकर) संसार का अभागा पिता वह है, जो
अपनी संतान को बुरी संगति से नहीं बचाता + + + +
(अंगूर० १०)

" आधे अधूरे" में भी नाटक के प्रारंभ में [illegible] स्वगत द्वारा पात्रों का तथा उनकी प्रवृत्तियों से अवगत कराया है ।

- स्त्री : (सामान निकालने के स्वर में) ओह, ओह, ओह, ओह, ओह,
(कुछ हताश भाव से) फिर घर में कोई नहीं । (अंदर के दरवाजे की
तरफ देखकर) किन्नी । ---- होगी ही नहीं --- (आधे० १२)

" अजात शत्रु " में स्वगत कथन को, पात्र के नाम, पद, प्रवृत्तियों आदि का परिचय देने के उद्देश्य से रखा है -

- बंधुल ! (स्वगत) - इस अभिमानिनी राजकुमार से तो मिलने की
इच्छा भी नहीं थी, किन्तु क्या करूँ, उसे अस्वीकार भी नहीं कर
सका । कोशल नरेश ने ही मुझे + + + + (अजात० ४५)

कहीं-कहीं पात्र किसी गम्भीर विषय पर एकान्त में चिन्तन कर रहा है, उसको भी नाटककारों ने स्वगत कथन में रखा है । इन कथनों को अन्य पात्रों से छुपाने के लिए स्वगत में नहीं रखा है, बल्कि पात्र के एकान्त में हो जाने के कारण इनको स्वगत कथन में प्रयुक्त किया है । इस कोटि के स्वगतों के उदाहरण प्रस्तुत है ।

- बिम्बसार : आह जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है । आकाश के नीले पत्र + + + +
(अजात० २०)

- सत्यवती : मुनिवर पराशर के वरदान से तो मृत्यु अच्छी थी । अनन्त यौवन की अपेक्षा बुढ़ापा अच्छा था । उसमें अभिलाषा के स्थान पर होती है + + + + (वि०शा० ६०)

नाटकों में आकार के आधार पर भी स्वगत कथनों में भिन्नता आ गयी है । किसी नाटककार ने बहुत छोटे स्वगतों का प्रयोग किया है तथा किसी ने दीर्घ स्वगतों को महत्व दिया है । जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "श्रीचन्द्रावली नाटिका" तथा "भारत दुर्दशा " में काफी लम्बे स्वगतों को रखा है । बहुत लम्बे कथनों में "भारत दुर्दशा" में "हा" भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है ?[1] तथा चन्द्रावली में (आप ही आप) हाय ! प्यारे, हमारी यह दशा होती है -------[2] दोनों कथन 3-4 पृष्ठ के हैं जो कि नाटक में बाधक प्रतीत होते हैं । श्रीचन्द्रावली का यह स्वगत कथन अस्वाभाविक भी लगता है क्योंकि अन्य सखियों के साथ वार्तालाप करते हुए ये कथन बोला गया है ।

भारतेन्दु की भाँति प्रताप नारायण मिश्र की रचना "भारत दुर्दशा" में लम्बे स्वगतों का प्रयोग हुआ है ।

प्रसाद के नाटकों में छोटे-बड़े दोनों प्रकार के स्वगत आये हैं । "अजातशत्रु" में स्वगत कथनों का आकार अधिकतर लम्बा ही है । जैसे -

---

१- भारत दुर्दशा, पृ०४८

२- श्रीचन्द्रावली, पृ०३६

- विराज : (आप ही आप) और अपमान । अनादर की पराकाष्ठा और तिरस्कार का नैराश्य !! यह असहनीय है ---------- (अजात० ५२)

उपर्युक्त कथन काफी लम्बा है ।

चन्द्रगुप्त में दीर्घ स्वगत भाषणों में - प्रथम अंक में चन्द्रगुप्त का स्वगत कथन तथा तृतीय अंक के दूसरे दृश्य में पर्वतेश्वर का स्वगत है । ये दीर्घ स्वगत अस्वाभाविक नहीं हो पाये हैं ।

" दुर्गावती " तथा " उत्सर्ग " नाटकों में भी लम्बे स्वगत कथन काफी प्रयुक्त हुए हैं । कभी कभी ये लम्बे स्वगत अधिक उबाते हैं, कि पात्र अपने आप में काफी देर बड़बड़ा रहा है । उदाहरण -

- बदन - (आप ही आप) बहुत सोचता हूँ, परन्तु कुछ उपाय नहीं सूझता । इन दोनों चिट्ठियों ने मुझे डाँवाडोल -------
(दुर्गा० ७२,७३-७४)

\+ + + +

रणवीर - हाय ! राम ! कहीं के नहीं रहे । धोबी के कुत्ते अब न घर के रहन न घाट के रहन । कमली मर जायगी ------
(उत्स० १३१,१३२)

मोहन राकेश के नाटकों " आषाढ़ का एक दिन " तथा " आधे अधूरे " में लम्बे कथन प्रयुक्त हुए हैं ।" आषाढ़ का एक दिन " में तो एक काफी लम्बा स्वगत कथन आया है जो पूरे नाटक के ब्यौरे के रूप में रखा गया है ।

- मल्लिका : नहीं तुम कहीं नहीं गये । तुमने प्रयास नहीं किया । मैंने इसलिए तुम्हें यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था । ------ मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम + + +
(आषाढ़० ९९-१०१)

विद्रोहिणी अम्बा " में भी अधिकतर स्वगत लम्बे हैं । स्वगत कथन के बीच में गीत का भी प्रयोग किया गया है । लम्बे कथन में अधिकतर मनोव्यथा को प्रकट किया गया है । कथन देखिए -

- अम्बा - यह संसार सांप के समान है और मैं उसकी छोड़ी हुई केंचुल हूँ। निःशक्त, निःसहाय अबला। पुरुष की घृणा + + +

(वि०अ० ७६)

" अंगूर की बेटी" के प्रारंभ में लम्बा स्वगत कथन आया है। यह लम्बा कथन इस कारण भी हो गया है क्योंकि प्रारंभ में ही घर की परिस्थितियों का ब्यौरा दिया गया है। इसी प्रकार " [illegible]" नाटक में नाटक के प्रारंभ में ही घर के सदस्यों का परिचय तथा उनकी प्रवृत्तियों से परिचय कराया गया है जिसके कारण भी कथन लम्बा हो गया है।

" जय पराजय" नाटक के स्वगत कथन न तो बहुत लम्बे हैं और न बहुत छोटे।

छोटे स्वगत कथन भी नाटकों में प्रयुक्त हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में बड़े स्वगतों के साथ छोटे स्वगत कथन भी प्रयुक्त हुए हैं। जहाँ पर पात्र अपनी बात का या कथा का संकेत भर करते हैं वहाँ छोटे स्वगत आये हैं।। यथा -

- चन्द्रा० - (आप ही आप) न जाने क्यों इस जोगिन की ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है।

(श्रीचन्द्रा०   )

अंधेर नगरी में तो छोटे ही स्वगत का प्रयोग हुआ है।

- मंत्री। - (आप ही आप) यह तो बड़ा जुल्म हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे।

(अंधेर नगरी पृ० १७)

प्रसाद ने जहाँ अजातशत्रु" में बड़े स्वगतों का प्रयोग किया है वहाँ छोटे से छोटे स्वगत भी आये हैं -

- दीपक : (स्वगत) - यह विदूषक इस समय कहाँ से आ गया! भगवान किसी तरह टले।

(अजात० ५७)

" अंगूर की बेटी" में भी काफी छोटा स्वगत कथन प्रयुक्त हुआ है।

- हरे बाप रे! यहाँ तो महाभारत होने लगा।

(अंगूर की बेटी, पृ० २७)

छोटे आकार के भी स्वगत कुछ नाटकों में आये हैं । देखिए -

- चंद्र - (अपने आप) कर्तव्य ! तेरा पथ कितना कठिन है ।
(अग्र० ६५)

* * * *

- दीपक - (अपने आप हँसता है) इस घर के लोग भी पूरे हैं,
भगवान कसम, मशीन के पुर्जे । (अंधो० ६७)

जी०पी० श्रीवास्तव के "उलट फेर" में छोटे कथन एक-दो पंक्तियों के हैं ।
"बकरी" नाटक में एक स्थान पर स्वगत कथन आया है वह काफी छोटा है तथा बहुत महत्वपूर्ण नहीं है ।

- युवक - (स्वगत) अब यही कमी है ।

"उजड़ों के राजपथ" में तो अधिकतर लघु ही स्वगत आये हैं ।

- सुन्दरी : (अन्तर्मुख भाव से) आखिर पर ? ----- आर्य मैत्रेय
के साथ ? (उजड़ों के राजपथ, पृ० ८१)

"अम्बपाली" में तो स्वगत कथन के रूप में केवल एक स्थल पर ये शब्द बोले गये हैं -

- सुनना - भोली बच्ची ! (अम्ब० १६)

"झाँसी की रानी" में भी स्वगत अधिकतर संक्षिप्त ही आये हैं ।
"शपथ" में भी हरिकृष्ण प्रेमी ने कहीं कहीं छोटे स्वगत को अपनाया है ।

- विष्णुवर्धन - अस्तगत सूर्य की रश्मियों ने मेघ की टुकड़ी को
रक्तिम रंग से रंग दिया है - मानो आते-जाते भविष्य की सूचना
कर रहा हो । अभी धरती और आकाश की रक्षा की ओर भी
ध्यान है । (शपथ पृ० १२६)

संवादों में स्वगत का प्रयोग एक और विशिष्ट ढंग से भी हुआ है । पात्र कथन को आरंभ में कभी स्वगत शैली कह रहे हैं, उसी कथन में प्रकट होकर भी बोलने लगते हैं । कभी आरंभ में प्रकट होकर बोल रहे हैं अन्त में स्वगत का प्रयोग करते हैं । इन कथनों का प्रयोग कुछ ही नाटकों में हुआ है । इस प्रकार के कथन एक प्रकार से पात्रों के

ए मैं हाय बावली हूँ मुझे न सताओ (आप बावली है)।
(श्रीचन्द्रा० ५१)

कई बार स्वगतों का प्रयोग व्यर्थ में हुआ है । इन कथनों को प्रकट होकर बोलना अधिक उचित होगा । जैसे -

- रघु - (अपने आप) ओह ! पानी खत्म हो गई ।
(स्वर्ग० ३२)

- सुमना - मोटी बन्दरी । (अन्धा० १६)

स्वगत कथनों का प्रयोग भारतेन्दु युग तथा प्रसाद युग के नाटकों में काफी हुआ है धीरे-धीरे स्वगतों का नाटकों से बहिष्कार होता जा रहा है ।

भारतेन्दु जी के नाटकों में स्वगत कथनों का प्रयोग अबाध गति से हुआ है । श्रीचन्द्रावली तथा "भारत दुर्दशा" आदि कृतियों में स्वगत कथन भरे पड़े हैं । ये स्वगत कथन किसी न किसी उद्देश्य से प्रयुक्त हुए हैं । अधिकतर ये कथन पात्रों की व्यथा को बताते हैं । इन दोनों नाटकों में काफी लम्बे तथा छोटे स्वगत दोनों प्रयुक्त हुए हैं । नीलदेवी तथा अंधेर नगरी" में स्वगत कम आये हैं । लम्बे स्वगत कथन भाषण से प्रतीत होते हैं तथा नाटक की गति में बाधक बनने लगते हैं । कहीं-कहीं लगातार स्वगत कथन भी नाटककार ने रखे हैं जैसे पृ० ८० पर जोगिन, चन्द्रावली और जोगिन का कथन इस प्रकार तीन स्वगत कथन एक साथ आये हैं । स्वगत संवादों के बीच में पात्र कहीं-कहीं प्रकट होकर भी बोलने लगता है । कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह का इस विषय में कथन है

- अवश्य उनके नाटकों में लम्बे-लम्बे भाषण एवं स्वगत कथन भी मिलते हैं । परन्तु उनमें औचित्य का निर्वाह आश्चर्यजनक रीति से किया गया है । भावाभिव्यंजकता तथा आंगिक अभिनय सापेक्षता इन लम्बे भाषणों का ऐसा गुण है जो उनको कहीं भी नीरस नहीं होने देता । मेरा तो विचार है कि भारतेन्दु के लम्बे स्वगत भाषणों में अपेक्षाकृत अधिक सुरुचता और रस वैचित्र्य का समावेश है ।[1]

१- मध्यकालीन हिन्दी नाट्य परंपरा और भारतेन्दु - कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह, पृ० ११० सं० १९५८ ।

भारतेन्दु कालीन नाटककारों ने संवादों को नाटक के प्राण रूप में स्वीकार किया है । उन्होंने संवाद की प्रायः सभी शैलियों की सहायता ली है । भारतेन्दु की स्वगत कथन की परंपरा को उन्होंने बनाये रखा है । इस युग के नाटककार प्रताप नारायण मिश्र की रचना "भारत दुर्दशा" में स्वगतों की भरमार है । ये स्वगत कथन अधिकतर दीर्घ है । इन कथनों का मुख्य उद्देश्य पात्रों की जीवन घटनाओं तथा मनोव्यथाओं को व्यक्त करना है । इन संवादों की दीर्घता नाटक की गति में बाधक भी हुई है ।

प्रसाद के नाटकों में भी स्वगतों की भरमार है । इन स्वगतोक्तियों के द्वारा पात्रों के अन्तर्मन में उठनेवाले भावों को प्रकट करने का सफल प्रयास किया है । उन्होंने छोटे और बड़े दोनों प्रकार के स्वगत कथन नाटकों में रखे हैं । कथन की सजीवता तथा आवेग की ओर नाटककार की दृष्टि रही है । मुख्यतः स्वगत कथन घटनाओं, पात्रों की दशाओं गम्भीर विषयों पर तथा चरित्र विकास के लिए कहलवाये गये हैं ।

दीर्घ स्वगत प्रायः या तो अंक के आरंभ में अथवा किसी सम्बद्ध दृश्य के आदि तथा अन्त में रखे गये हैं । १-२ पंक्तिवाले स्वगत तो बीच-बीच में भी आये हैं ।

प्रसाद के नाटकों में दो प्रकार के स्वगत प्रयुक्त हुए हैं एक तो इस प्रकार के हैं जिनमें पात्र अकेला ही मंच पर है और अपने भाव व्यक्त कर रहा है । दूसरे प्रकार के स्वगत वे हैं जिनमें अन्य पात्र भी मंच पर है तब पात्र स्वगत कथन बोल रहा है । अजातशत्रु में सब से अधिक तथा दीर्घ स्वगत प्रयुक्त हुए हैं उसकी अपेक्षा ध्रुवस्वामिनी में बहुत कम स्वगत आये हैं । क्योंकि प्रसाद ने स्वगतों को उत्तरोत्तर कम कर दिया था ।

प्रसाद के नाटक में भी कहीं-कहीं लगातार स्वगत कथन आये हैं । "स्कन्दगुप्त" में कमला की कुटी में स्कन्दगुप्त स्वगत कथन में अपनी दुर्दशा पर विचार करता हुआ ईश्वर का स्मरण कर रहा है उसी समय अनिवार्य आ जाता है तब भी स्वगत में बोलता है और स्कन्दगुप्त आर्य साम्राज्य के पतन के कारणों पर विचार करता हुआ फिर स्वगत कथन कहता है । इस प्रकार तीन-तीन स्वगत

कारण एक ही स्थल पर उपस्थित हुए हैं जिनका उद्देश्य केवल आर्य साम्राज्य की दुर्दशा का प्रदर्शन कराना है ।

परमेश्वरी लाल गुप्त का प्रसाद के स्वगतों के बारे में कथन है -

- इनमें कोई भी ऐसा स्वगत नहीं है जो मानसिक संघर्ष को व्यक्त करता है और जिसकी अनुपस्थिति रहने पर कथावस्तु के विकास में बाधा पड़ती हो ।[1]

- ये स्वगत कथन कहीं-कहीं काफी लम्बे और भाषण के समान हैं ।[2]

प्रसाद के समकालिक नाटककारों ने भी स्वगतों को उसी प्रकार अपनाया है जैसा कि उनसे पूर्व के नाटककारों ने किया है । बद्रीनाथ भट्ट ने दुर्गावती में तथा जी०पी० श्रीवास्तव ने उलट फेर में छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के स्वगतों का काफी प्रयोग किया है । ये स्वगत पात्र की कथा, घटना, किसी स्थान के वर्णन में अधिकतर आये हैं । 'दुर्गावती' में तो स्वगत भाषणों में ही पात्र कविताएं बोलने लगते हैं । 'उलट फेर' में छोटे स्वगत अधिकतर एक दो पंक्तियों के हैं । इन नाटकों में भी पात्र दो स्थितियों में स्वगत बोलता है । एक अकेले रंगमंच पर जब होता है तथा दूसरे जब अन्य पात्रों के साथ रहते हुए बोलता है ।
'विद्रोहिणी अम्बा' में भी स्वगतोक्तियों की भरमार है । इनमें कभी स्वगत कथन लम्बे हैं तथा दृश्य के प्रारंभ में तथा अन्त में आये हैं । अधिकतर स्वगत घटनाओं की सूचना तथा पात्रों की मनो व्यथाओं को व्यक्त करते हैं । कुछ स्थलों पर ये कथन चरित्र विकास में भी सहायक हुए हैं ।

प्रसाद युग के बाद से स्वगतों का प्रयोग कम होता चला गया है । हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक 'रक्षाबंधन' तथा 'शपथ' में स्वगतों को बहुत कम अपनाया है। रक्षा बंधन में केवल चार स्वगत कथन हैं श्यामा का एक, कर्मवती के दो तथा विक्रमादित्य का एक । सभी कथन लम्बे हैं । परन्तु उनका प्रदर्शन भद्दा नहीं हुआ है ।

१- प्रसाद के नाटक, पृ० १७६ ।

२- प्रसाद के नाटक, पृ० १७६ ।

ये स्वगत कथन पात्र के हृदय की घुमड़ती व्यथा तथा उनके गुणों का उद्घाटन करनेवाले हैं ।

'अंगूर की बेटी' में भी गोविन्द वल्लभ पन्त ने ४-५ स्थलों पर स्वगतों का प्रयोग किया है । लम्बे स्वगत नाटक में खटकने लगते हैं ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में तो स्वगतों का प्रयोग लगभग नहीं हुआ , कहीं हुआ भी है तो बहुत कम और अत्यंत संक्षिप्त । 'मुक्ति का रहस्य' में 'उमाशंकर (मनोहर को गोद में उठाकर उसका मुंह चूमते हुए कहता है) मेरे बच्चे ------ (उसे छाती से लगाकर) आह ! तो यह मेरी मुक्ति है ।'[1] यह स्वगत रूप में कथन आया है ।

'जय पराजय' अश्क जी का पहला नाटक है अतः उसमें अन्य नाटकों की अपेक्षा कुछ अधिक स्वगत कथन हैं । परन्तु जो स्वगत आये हैं वे संक्षिप्त तथा स्वाभाविक हैं । व अधिकतर स्वगत दृश्य के अन्त में है जब कोई पात्र अकेला रह जाता है और अत्यन्त आवेश में होता है तभी स्वगत कथन बोलता है । अधिकतर ये कथन पात्रों की मनोव्यथाओं तथा घटनाओं को प्रकट करते हैं ।

'स्वर्ग की झलक' तथा 'अंजोदीदी' में अश्क जी ने स्वगतों की संख्या बहुत कम कर दी है । गिने-चुने स्वगत आये हैं और एक-दो पंक्ति के हैं । अश्क जी ने अपने नाटकों से इसकी परंपरा को हटाया है जिसके कारण इन दो नाटकों में स्वगत कम आये हैं ।

जगदीश चन्द्र माथुर ने भी अपने नाटकों 'पहला राजा' तथा 'कोणार्क' में स्वगत कथन को बिल्कुल महत्व नहीं दिया परन्तु [illegible] में एक दो स्थल पर स्वगत कथन प्रयुक्त हुए हैं, ये स्वगत लघु ही हैं ।

आधुनिक नाटककारों में मोहन राकेश ने स्वगत की परंपरा को फिर से अपनाया है । उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा आधे अधूरे तीनों में ही स्वगत कथन आये हैं । 'लहरों के राजहंस' में स्वगत आकार में इतने दीर्घ नहीं है जितने कि 'आषाढ़ का एक दिन' तथा

१- मुक्ति का रहस्य,पृ०

आधे अधूरे में है । आषाढ़ का एक दिन में २-३ पृष्ठ का भी स्वगत है । अधिकतर स्वगत पात्रों की मनो व्यापारों को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं । स्वगतों का प्रयोग राकेश जी ने सुन्दर ढंग से किया है परन्तु उनके स्वगत कथन नाटकीय दृष्टि से खटकते हैं ।

वृंदावन लाल वर्मा की 'मूर्ति' 'झांसी की रानी' विष्णु प्रभाकर की 'रचना' 'युगे युगे क्रान्ति' तथा लक्ष्मी नारायण लाल के 'मादा कैक्टस' में भी स्वगत कथन आये हैं । मादा कैक्टस में आरंभ में एक आत्म प्रलाप है । इसके अतिरिक्त स्वगत बहुत कम तथा आकार में भी लघु है जो कि नाटक में खटकते नहीं है । आधुनिक नाटक 'बकरी' में तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने पूरे नाटक में एक पंक्ति का स्वगत कहलाया है ।

आधुनिक नाटकों में स्वगत की परंपरा को बहुत कम अपनाया गया है । अधिकतर नाटककारों ने अस्वाभाविक कहकर इसका बहिष्कार कर दिया है । कुछ नाटकों में इसका बिल्कुल प्रयोग नहीं हुआ जैसे [illegible] सुरेन्द्र वर्मा के नाटक नायक खलनायक विदूषक तथा सेतुबंध, सत्यव्रत सिन्हा का अमृतपुत्र, मणिमधुकर का रसगंधर्व तथा मुद्राराक्षस का तिलचट्टा और विपिन कुमार अग्रवाल का लोटन है ।

स्वगतों के बहिष्कार का विचार प्रसाद युग से ही आरम्भ हो गया था । परन्तु स्वगतों का प्रयोग पूर्णतः बन्द नहीं हो पाया है । आधुनिक युग के नाटकों में यह अवश्य हो गया है कि इनका आकार लघु हो गया है तथा प्रयोग कम हो गया है । वैसे कुछ नाटककारों ने इनका पूर्णतया त्याग भी किया है ।

कथोपकथन

नाटकों में कथोपकथन का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । कथोपकथन के द्वारा कथा , गति तथा विकास को प्राप्त होकर नाटक को अन्त तक पहुँचाती

है । नाटक की सफलता असफलता भी कथोपकथन से प्रभावित होती है । कथोपकथन की शैली उनका छोटा बड़ा होना , उनकी संगति, असंगति मुख्यतः विषय पर निर्भर करती है ।

कथोपकथन का छोटा तथा बड़ा होना भी विषय या स्थिति पर निर्भर है । कुछ ऐसे स्थल हैं जिनमें छोटे कथन ही प्रभावक तथा सफल प्रतीत हुये हैं उनके स्थान पर लम्बे कथन होते तो वे उचित नहीं होते । जैसे -

- गो० दा० ।- क्यों भाई बनिये, आटा कितने सेर ?
बनियां । - टके सेर ।
गो० दा० ।- औ चावल ?
बनियां ।- टके सेर ।
गो० दा० । - औ चीनी ?
बनियां ।- टके सेर ।
गो० दा० ।- औ घी ?
बनियां ।- टके सेर । (अंधे० १०)

उपर्युक्त उदाहरण में कथन तथा उपकथन में संक्षिप्त से छोटे प्रश्न का छोटे उत्तर द्वारा स्पष्टीकरण बोलचाल की भाषा के निकट ला रहा है । व्यावहारिकता की दृष्टि से भी छोटे कथोपकथनों का चयन हुआ है ।-

- बड़ी लड़की : सुषमा का क्या हाल है ?
पुरुष चार : ठीक ठाक है अपने घर में ।
बड़ी लड़की : कोई बच्चा-अच्चा ?
पुरुष चार : अभी नहीं । (आधे० ६०)

- श्यामा : शैलेन्द्र ---
शैलेन्द्र : क्यों प्रिये ।
श्यामा : प्यास लगी है ।
शैलेन्द्र : क्या पियोगी ?
श्यामा : जल । (अजात० ६३)

सुमति - (व्यग्र से) जागरे ?

सुमेर - हाँ

सुमति - क्यों ? (सुमा० ६१)

- अर्ज - तुमको रानी बनाऊँगा ।

रामा - (चौंककर) - क्या ?

अर्ज - तुम्हें सोने से लाद दूँगा ।

रामा - किस तरह ? (स्वप्न० ६३)

भावेश की स्थिति को भी स्वाभाविक बनाने में छोटे कथोपकथन अधिक सहायक हुए हैं । ये छोटे कथन अधिक प्रभावक सिद्ध हुए हैं ।

- रघु - (सीढ़ी में बैठकर टार्च को ठीक करता हुआ) पर मैं
  स्ट्रीमिन या परफ्यून नहीं जानता ।

  भाई साहब - उचित है ।

  रघु - (उपेक्षा से) शुक्रिया । (स्वर्ग० १६)

यहाँ छोटे कथन गहरा प्रभाव डाल रहे हैं । यदि इन कथनों की दीर्घता में परिवर्तित कर दिया जाय तो कथन का प्रभाव नष्ट हो जायेगा ।

- कैकेयी : क्यों , देव, तुमने गोलियाँ नहीं खायीं -

  देव : सब गोलियाँ ।

  कैकेयी : कब की सब गलत है, देव ।

  देव : खायी हैं मैंने । खायी है ।

  कैकेयी : नहीं , देव ।

  देव : मैंने खायी हैं ।

  कैकेयी : (कष्ट से चीखकर) नहीं ।- (विश० ७६)

छोटे कथोपकथन कभी-कभी अपूर्ण भी हैं, परन्तु वे भाव तथा स्थिति की दृष्टि से संगत प्रतीत होते हैं यदि वे कथन पूर्ण तथा लम्बे हो जायें तो भाव के प्रकटीकरण में स्वाभाविकता का लोप हो जाय । जैसे -

- पृथुला - ठहरो

कान्त - चुप रहो । (स्कन्द० १७४)

\+ \+ \+

- महे० - किन्तु इस निमंत्रण को महाराज ने गुप्त रखने की आज्ञा ?

न० - कौतुक ।

महे० - नहीं देव ।

न० - तब ?

महे० - (रहस्यपूर्ण मुद्रा और गहरा स्वर) चालुक्य ।

न० - (चौंककर) नरेन्द्र ।   (कोणार्क ५०)

छोटे तथा बड़े पात्रों, स्वामी तथा सेवक पात्रों के कथोपकथन अतिसंक्षिप्त हैं क्योंकि इनके वार्तालाप सीमित शब्दों में हुए हैं -

- प्रति० - आज्ञा देव ।

न० - बाहर जाकर देखो । वे लोग जाते दीखते हैं या नहीं ।

प्रति० - जो आज्ञा ।   (कोणार्क० ५६)

\+ \+ \+

- अमीर ।- चला जाओ । कहो साथ मिलाकर जल्द हाजिर हो ।

नौकर ।- जो इरशाद (जाता है)   (मीठ० २८-२९)

\+ \+ \+

- प्रभु - तुम्हारा नाम देवसेना है ?

देवसेना - (आश्चर्य से) - हाँ भगवन् ।   (स्कन्द० ६६)

\+ \+ \+

- संगिनी - मयूर के साथ कुसुम लिए देना ।

मालती - अच्छा दीदी । (प्रणय० ४०)

\+ \+ \+

- राघव - हरि सिंह ।

हरिसिंह - हाँ महाराज ।

राघव - [illegible] बहुत दूर गया ?

हरिसिंह - बहुत दूर महाराज ।   (भग्न० ८६)

छोटे पात्रों द्वारा बोले उपकथन कथन से अधिक औचित्य है -

- श्वेतांग : (अभिवादन) देवि ।

  सुन्दरी : सुविधियों की व्यवस्था हो गई ?

  श्वेतांग : हाँ देवि ।

  सुन्दरी : तोरणों पर मुद्राएँ अंकित की जा चुकी ?

  श्वेतांग : हाँ देवि । (लहरों ३७)

यदि उपर्युक्त कथनों के उपकथनों में लघुता न होती तो आदर या सम्मान न प्रकट होकर कथन में अस्वाभाविकता आ जाती ।

छोटे कथोपकथन कथानक को विकसित करने में अधिक सहायक हुए हैं -

- नन्द : तुम कौन हो ?

  मालविका : मैं एक स्त्री हूँ, महाराज ।

  नन्द : पर तुम यहाँ किसके पास आयी हो ?

  मालविका : मैं- मैं, मुझे किसी ने सिन्धु तट से भेजा है । मैं पथ में बीमार हो गयी थी, विलम्ब हुआ ।

  नन्द : कैसा विलम्ब ?

  मालविका : इस पत्र को सुवासिनी नाम की स्त्री के पास पहुँचाने में ।

  नन्द : तो किसने तुमको भेजा है ?

  मालविका : मैं नाम तो नहीं जानती । (चन्द्र० १४७)

छोटे कथोपकथन में पुनरुक्ति: नहीं है जिसके कारण एक प्रश्न के बाद दूसरा प्रश्न किया गया है । इस प्रकार छोटे कथोपकथन में क्षिप्रता के कारण कथानक को गति मिली रही है । यदि इन छोटे कथोपकथन के स्थान पर 'तुम कौन हो' का उत्तर एक लम्बे उपकथन में विस्तार से दिया जाता तो कथानक की गति कुछ रुक जाती । कथानक में विकास के साथ-साथ शैली सौन्दर्य की दृष्टि से भी छोटे कथोपकथनों का कम महत्त्व नहीं है । कथन को छोटा करके तथा संक्षिप्त करके प्रस्तुत करने में जो सौन्दर्य है, वह लम्बे कथन द्वारा आनन्द न आ पाता । जैसे -

प्राय: नारे लगाते हुए, कथोपकथनों में एक लयात्मकता सृष्ट होती है, इनको छोटे कथोपकथनों द्वारा ही स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है उसका निर्वाह भी नाटककार ने किया है ।

- : (हाथ उठाकर) हिप हिप हुर्रे ।
- : हमको दो ।
- : तानाशाही -
- : नहीं चलेगी, नहीं चलेगी !
- : इन्कलाब !
- : जिन्दाबाद । (ड्रीटम 40)

छोटे कथोपकथनों में कहीं-कहीं एकरूपता आ गयी है जो शैली सौन्दर्य की दृष्टि से अनुचित है ।

- अनुस्वार : मैं उससे सहमत हूँ ।
  अनुनासिक : तो ?
  अनुस्वार : तो ?
  अनुनासिक : तो इसे हटा देना चाहिए ।
  अनुस्वार : हाँ, अवश्य हटा देना चाहिए ।
  अनुनासिक : तो
  अनुनासिक : हटा दो ।
  अनुस्वार : मैं ?
  अनुनासिक : हाँ ।
  अनुस्वार : तुम नहीं ?
  अनुनासिक : नहीं ।
  अनुस्वार : क्यों ?
  अनुनासिक : क्यों का कोई उत्तर नहीं ।
  अनुस्वार : फिर भी ।
  अनुनासिक : पहले मैंने तुमसे कहा है ।

- सभ्यता और संस्कृति के अभाव में मनुष्य एक क्षण भी युद्ध से विश्राम नहीं पा सकता । प्रत्येक क्षण उसे मनुष्य के रक्त पिपासु ढोंगों तथा मन्त्रों का प्रयोग करना पड़ेगा । यह व्यक्ति से व्यक्ति का युद्ध होगा - किन्तु वह प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक व्यक्ति का युद्ध होगा - किंतु वह प्रत्येक + + +
(सभ्य १२५)

- वशिष्ठ : (दशरथ को समझाते हुए) राजन पिता के मोह को अधिकार समझिए अवश्य नहीं । आप क्षत्रिय हैं और आपका कर्तव्य है कि मुनियों के आश्रमों + + +
(दश० ३७)

नाटकों में भाषण देते हुए कथन अधिकतर लम्बे हो गये हैं, क्योंकि पात्रने अपने वक्तव्य को भाँति-भाँति से स्पष्ट किया है जिसके कारण कथन में दीर्घता आना स्वाभाविक हो गया है ।

- कर्मवीर : आप सब आए यह हमारे लिए खुशी की बात है । यह धरती एक चरागाह है जिसकी घास जितना ही रौंदो उतना ही पनपती है । हमें यकीन है कि हम आप सब मिलकर इस खुशहाली को खत्म नहीं होने देंगे । अपने- अपने चौपाये खुले छोड़ दीजिए । चरे, मस्त रहे । फिक्र की कोई बात नहीं ———
(धरती ४१)

- शारदा : प्यारी बहनों, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुना रही थी । मैं पूरे विश्वास के साथ कहती हूँ कि जिस दिन मेरे गुस्ताख पिता श्रीमान प्यारे लाल जी ने भरे बाजार में मेरे गाल पर जबरदस्त थप्पड़ मारा था कि मेरी साड़ी का पल्ला सिर से उतर गया था, तो मैंने उसी दिन निश्चय कर लिया था कि मैं इन पुराने दकियानूसी रीति-रिवाजों को अब और नहीं मानूँगी । ऐसा होना कभी किसी युग में फिर उठना अच्छी बात, ऐसा होना कभी नारी का घर की चार दिवारी में बन्द रहना अच्छा, लेकिन आज इन बातों की कोई जरूरत नहीं है ———
(मुरी० ३६)

भाषणों को यदि छोटे कथनों में रखा जाय तो वे भाषण न लगकर साधारण कथन प्रतीत हों । वैसे भी भाषण शब्द के प्रति ऐसी धारणा बन गयी है जो कथन लम्बा हो जाता है उसको भाषण का उपमा दी जाती है । कई बार व्यक्ति लम्बा कथन बोलने लगता है तो उसको कहा जाता है कि भाषण दे रहे हैं । इस दृष्टि से नाटकों में भाषणों को दीर्घ कथनों में रखा गया है ।

तर्कों की दृष्टि में लम्बे कथन अधिक सहायक हुए हैं । तर्क में व्यक्ति आवेश में रहता है और वह अपनी तर्क को तरह तरह से सिद्ध करना चाहता, जिसके कारण भी कथन में दीर्घता आ गयी है । तर्क-वितर्क में स्पष्टीकरण छोटे कथन द्वारा संभव नहीं है अतः नाटककार ने लम्बे कथन को चुना है ।

- भीमसेन - वे गंदे काम करते हैं, परन्तु, इसलिए शिष्ट समाज में उन्हें स्थान कैसे दिया जा सकता है ?

- शिष्ट समाज ! जो धर्म में उदार और धन आ जाने पर अपने ही समाज के अंगों के स्वाभाविक रक्त संचार को बांधकर उन्हें सुखा डालते हैं, विकास और उन्नति के सारे मार्ग रोककर उन्हें गंदे कार्य करने और गंदे बने रहने को बाध्य करते हैं, वो समाज के शरीर में स्वयं कोढ़ के कीटाणु + + +

(उत्थान० ५६)

- माई साहब - शिक्षा को मैं इतना बुरा नहीं समझता, तुमने पर मैं इतना पढ़ा है मैंने तुम्हें नहीं रोका पर आजकल की इन अधिक पढ़ी लिखी लड़कियों से डर लगता है ।

- भाभी - और मैं कहती हूँ कम पढ़ी लड़कियों से डरना चाहिए जो लड़की अधिक पढ़ जाती है, जीवन की वास्तविकता उसके सामने खुल जाती है । वह जीवन को और भी गहरी नज़र से देखना सीख जाती है । मानुष संसार का उसे अधिक पता हो जाता है, समय आने पर वह जीवन के युद्ध में पति पर बोझ न बनकर उसके साथ सब विपत्तियों से जूझ सकती है + + +

(स्वर्ग० ६६)

उपर्युक्त कथनों में क्रोध के कारण को आवेश में विस्तारपूर्वक कहा है । कष्ट की विस्फोटात्मक स्थिति की भी अभिव्यंजना इन्हीं कथनों द्वारा हुई है ।

- रमदेई - हाय ! राम ! कहूँ के नाहीं भएन । धोबी के कुकुर अस न घर के भएन न घाट के बनसी महराजन तौ कहि के हम लोगे बाप के मुर्दा मा लपटी लगावत ? हाय ------

(उग्र० १३१-१३२)

कष्ट या वेदना में अत्यधिक भावुक स्थिति में भी कथन लम्बा हो गया है ।

- हा ! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं । सच है, जो जान बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज घर घर में टुकड़ा उधार मँगवाता है । कल जो हाथी पर सवार फिरते थे + + +

(भारतजना ७५८)

- प्रभावती : (पाण्डुलिपि चौकी पर रख देती है । सँभलने का यत्न करती है ।) तुम नहीं जानती कि तुम मेरे जीवन का कितना निराधिक मोह रही हो । ------ जब तुम्हारा जन्म होने को था + + +

(वैदु० ३७)

कहीं-कहीं इन्हीं कथन शैली की दृष्टि से अशोभन प्रतीत होते हैं जैसे श्रीचन्द्रावली में कथन इतने लम्बे-लम्बे हैं जिनमें एक ही भी भाव तथा उनमें निहित भावों में एकरूपता है नीरसता भी आ गई है ।

- हाय ! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते । प्यारे, फिर यह शरीर कहाँ और हम तुम कहाँ ? प्यारे, यह संजोग हमको तो अब भी हो सकता है, फिर यह बातें दुर्लभ हो जायँगी । हाय नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किसको सुनाऊँ और अपनी उमंगें कैसे निकालूँ । प्यारे, रात छोटी है और स्वांग बहुत है + + +

(श्रीचन्द्रा० ३७)

कथोपकथन में भी नाटककारों की शैली में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। आरंभिक नाटक कथोपकथन की दृष्टि से अधिक सफल नहीं बन पड़े जितने कि आधुनिक नाटक।

आरंभिक नाटकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में कथन सरल तथा सुबोध कथन प्रयुक्त हुए हैं। इन्होंने छोटे तथा लम्बे दोनों कोटि के कथनों को महत्व दिया है। छोटे कथोपकथन तो व्यावहारिक दृष्टि से उचित लगते हैं परन्तु लम्बे कथन भी भावपूर्ण स्थिति तथा वर्णनात्मक व्यंग्यात्मक स्थलों पर प्राय: प्रयुक्त हुए हैं दीर्घता के कारण नाटकीय दृष्टि से अनुपयुक्त लगते हैं। ये अतिदीर्घ कथन 'भारत दुर्दशा' नीलदेवी तथा श्रीचन्द्रावली में प्रयुक्त हुए हैं।

प्रताप नारायण मिश्र के नाटक में कथोपकथन नाटकीय दृष्टि से प्रयुक्त हुए नहीं प्रतीत होते। इनके नाटक में कथोपकथन की दीर्घता से नाटक उपन्यास सा प्रतीत हो रहा है। छोटे कथन भी इनके नाटक में प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु उनकी अल्पता है। दीर्घ कथन कुछ स्थलों जैसे वर्णनात्मक या भावात्मक पर तो उचित लगते हैं, परन्तु अधिकांश स्थलों पर अनाटकीय है। नाटक का प्रारंभिक काल होने के कारण इनके कथोपकथन में परिपक्वता नहीं आने पाई है।

बद्रीनाथ भट्ट के नाटक 'दुर्गावती' में कथोपकथन सरल, व्यावहारिक तथा गतिशील बन पड़े हैं, परन्तु फिर भी इन्हें कथनों की दृष्टि से सामान्य कहा जायगा, क्योंकि नाटकीयता के सब गुण इनमें भी नहीं आ पाये हैं। स्वगत कथनों की अधिकता तथा कहीं-कहीं कथनों की दीर्घता व कथनों के बीच में शंकाएं आदि बातें नाटक की नाटकीयता को कम कर रही हैं। भट्ट जी के नाटक पर पारसी रंगमंच का प्रभाव दिखता है। बद्रीनाथ भट्ट के नाटक की तुलना में जी०पी०श्रीवास्तव के उलट फेर' में कथोपकथन स्वाभाविकता लिए हुए हैं। इस नाटक में हास्य की दृष्टि एक मुख्य उद्देश्य रहा है, जिसमें लम्बे कथन अनुचित नहीं लगे हैं। छोटे कथोपकथनों को भी अवसरानुकूल रखा है।

प्रसाद के नाटकों में जहाँ छोटे- छोटे व्यावहारिक कथोपकथन

मिलते हैं, वहां लम्बे-लम्बे कथोपकथन भी कम नहीं है । गंभीर तथा विचार्य भावपूर्ण स्थितियों में प्रायः लम्बे कथनों का रहता है । लम्बे कथनों के आधिक्य से स्वाभाविकता घटती है । नाटकों में कई स्थल ऐसे हैं, जिनमें कथन के खण्ड-खण्ड करके रखने से यह कथन दीर्घता का दोष समाप्त किया जा सकता है । कभी-कभी कथन में अनावश्यक विस्तार भी खटकता है जैसे अजातशत्रु" में तीसरे अंक के दूसरे दृश्य में वाजिरा का कथन अनावश्यक विस्तार को प्राप्त हुआ है । इसके विपरीत इनके नाटकों में आये छोटे कथोपकथन सुन्दर, सुबोध तथा मर्मस्पर्शी है । कथोपकथन के उपयुक्तता की दृष्टि से इनका ध्रुवस्वामिनी नाटक सर्वश्रेष्ठ है, फिर चन्द्रगुप्त ,स्कंदगुप्त तथा अजातशत्रु है।

प्रसाद के नाटकों की तुलना में हरिकृष्ण प्रेमी के कथोपकथन काफी स्वाभाविक तथा नाटकीय दृष्टि से उचित लगते हैं । इनके नाटकों में सरल, संक्षिप्त गतिशील तथा प्रभावक कथनों को भी महत्व मिला है । प्रेमी जी के कथोपकथनों के बारे में डा० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है :" श्री हरिकृष्ण प्रेमी" के कथोपकथन " प्रसाद" जी के कथोपकथनों से अधिक नाटकोपयुक्त हैं । उनमें प्रसंगानुसार बातचीत का चलता स्वाभाविक ढंग भी है और सर्वसुलभ ग्राह्य पद्धति पर भाषा का अपेक्षित अनूठापन भी ।"[1]

इनके नाटकों में विषय की दृष्टि में रखते हुए लम्बे तथा छोटे कथनों को महत्व मिला है । परन्तु कहीं-कहीं कथनों की दीर्घता इनके नाटकों में भी खटकती है । लम्बे कथन भाषण से भी लग रहे हैं । प्रेमी जी के संवादों के विषय में डा० [illegible] का कहना है

- इनमें कहीं-कहीं विस्तार एवं पुनरुक्ति के दोष खटकने लगते हैं । ऐसे दोष प्रायः इनके नाटकों में विशेष रूप से उन स्थलों पर देखे जा सकते हैं, जहां कोई महात्मा चरित्र किसी मुख्यपात्र को उच्चादर्शों का उपदेश देता है । इन उपदेश प्रधान संवादों में रसहीनता का दोष आ जाना स्वाभाविक है । ऐसे संवादों में कहीं-कहीं तो ऐसा आभास होता है कि मानो कोई नेता राजनीतिक मंच से उपदेश झाड़ रहा हो ।[2]

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल" हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ० ५०६-८० ।
२- हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - पृ० २७४।

नाटक में लम्बे कथनों की तुलना में संक्षिप्त कथन, नाटकीय दृष्टि से अधिक उपयुक्त माने जाते हैं । लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में संक्षिप्त कथनों का आधिक्य है । उनके कथन संक्षिप्त के साथ साथ सरल, स्वाभाविक भी है । कहीं-कहीं अपूर्ण कथनों से भी भावाभिव्यंजना की गई है । मिश्र जी के नाटक भी लम्बे कथनों से अछूते नहीं रहे हैं । उनके नाटकों में कई स्थलों पर कथन आवश्यकता से अधिक लम्बे दिखाई देते हैं । 'मुक्ति का रहस्य' में उमाशंकर के कथन कभी कभी दीर्घता के कारण खटकते हैं । लम्बे कथन कई बार स्वाभाविकता को खोने तथा कथा प्रवाह में बाधक भी लगते हैं । इन दोषों के बावजूद भी कथोपकथन प्रभावक है ।

'विद्रोहिणी अम्बा' में उदयशंकर भट्ट ने भी व्यावहारिकता तथा परिस्थिति को देखते हुए कथोपकथनों का चयन किया है । छोटे तथा लम्बे दोनों कोटि के कथनों को उन्होंने अपनाया है । लम्बे कथनों को गंभीर विषयों पर चर्चा करते हुए मानसिक द्वन्द्व के चित्रण में मुख्यतः रखा है । उनके अधिकांश कथनों में संगीत है । कथोपकथन स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण है, पर कई स्थलों पर लम्बे कथन नाटक की गतिशीलता में बाधक हुए हैं । उनके कथन में गद्य के बीच में पद्य का भी प्रयोग मिलता जो कथन को दीर्घ बना देता है ।

अश्क के नाटकों में कथनों को यथार्थ की दृष्टि से रखा गया है । छोटे तथा लम्बे कथन विषय को देखते हुए रखे गये हैं । पात्रों की मनःस्थिति के प्रकटीकरण एवं चित्रों तथा हास्य-व्यंग्य के फव्वारों को लम्बे कथनों में रखा है । सामान्य बातचीत को छोटे कथनों में प्रयुक्त किया है । संवाद संबंधी सीमाओं पर विचार करते हुए अश्क जी कहते हैं 'ये लम्बे लम्बे वाक्य अथवा भावुकता भरे संवाद जो आकाशवाणी के श्रोताओं को बांधे रख सकते हैं, मंच के दर्शकों को ऊबा देते हैं । मंच का दर्शक अपने सामने चौंकाने वाले संवादों में तेजी, चुटीलापन और यथार्थ भ्रम चाहता है और यही मुख्य वजह है रेडियो के लिए लिखा रूपक और नाटक मंच पर असफल हो जाता है ।'[1]

वृन्दावन लाल वर्मा के कथोपकथन नाटकीय दृष्टि से अधिक सफल हैं । उन्होंने व्यावहारिकता को अधिक ध्यान में रखा है । छोटे तथा लम्बे दोनों

१- नए रंग एकांकी - भूमिका, पृ० १४-१५ सन् १९५८ - उदय नारायण तिवारी ।

कोटि के कथोपकथनों को इनके नाटक में महत्व मिला है । इनके नाटक के कथन इतने लम्बे नहीं है कि वे नाटक की गति में अवरोधक हों ।

रामवृक्ष बेनीपुरी की " अम्बपाली " कृति में भी कई बार कथनों की दीर्घता नाटक में बाधक होती है । नाटक में पात्र भावुकता वश वर्णनात्मक स्थलों पर तथा दार्शनिक विषयों पर चर्चा करते हुए प्राय: लम्बे कथनों को कहते हैं । कहीं लम्बे आदर्शवादी कथन भाषण का रूप ले लेते हैं । छोटे कथोपकथनों को व्यावहारिकता लाने के लिए प्रयुक्त किया है । गोविन्द वल्लभ पन्त के " अंगूर की बेटी " नाटक में कथोपकथन सरल ,स्वाभाविक तथा गतिशील है । इनके नाटक में छोटे कथनों का आधिक्य है । कुछ बड़े कथन भी आये हैं परन्तु वे नाटकीयता में बाधक नहीं बने हैं ।

जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में " कोणार्क " नाटक कथोपकथन की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट है । इनके अन्य नाटकों " पहला राजा तथा दशरथ नन्दन " में भी कथोपकथन की उचित दृष्टि रही है । कथनों में संक्षिप्तता, स्वाभाविकता की ओर इनकी दृष्टि रही है । कथन पूर्ण, अपूर्ण , लम्बे तथा छोटे विमर्श तथा स्थिति को देखते हुए अधिकतर रखे गये हैं । परन्तु कहीं-कहीं कथन की दीर्घता खटकती है ।" दशरथ नन्दन " में गद्य के मध्य में पद्य का प्रयोग करके भी कथन बढ़ाये गये हैं ऐसे कथन प्राय: दीर्घता को प्राप्त हुए हैं । ये कथन यदि गद्य में ही रखे जाते तो अधिक उचित लगते ।

मोहन राकेश की कृतियों में दो कोटि के कथन प्रयुक्त हुए हैं एक अति लघु दूसरे लम्बे कथन । अधिकांशत: छोटे कथनों द्वारा अभिव्यक्ति की गई है । भावों की आवेगात्मकता में कथन लम्बे हो गये हैं । इनके नाटकों में एक विशेषता मिलती है कि नाटकों के अन्त में एक दो तीन पृष्ठ का कथन है जिसमें पूरे नाटक की सभी घटनाओं का ब्यौरा दिया है जो कि ऐसा लगता है कि नाटक के अन्त में भाषण दिया जा रहा हो । वैसे मोहन राकेश के कथोपकथन नाटकीय दृष्टि से काफी उपयुक्त है ।

लक्ष्मी नारायण लाल के " मादा कैक्टस " में प्रारंभ के लम्बे कथन

को छोड़कर अन्य पूरे नाटक के कथनों में संगीत गत्यात्मकता तथा स्वाभाविकता है । छोटे तथा बड़े दोनों कथोपकथनों को नाटक में महत्व मिला है । छोटे कथनों की अधिकता है, लम्बे कथन प्रायः वर्णनात्मक स्थलों पर आये हैं ।

सत्यव्रत सिन्हा तथा विष्णु प्रभाकर के नाटकों 'अमृतपुत्र' तथा 'युगे युगे क्रान्ति' में लम्बे कथनों का काफी प्रयोग मिलता है । तर्क-वितर्क, समस्याओं के समाधान में कथन दो दो, तीन तीन पृष्ठ के भी हो गये हैं जैसे अमृतपुत्र में पृष्ठ ७३-७५ तक, युगेयुगे क्रान्ति में पृष्ठ ३६-३८ तक । लम्बे कथन दीर्घता के कारण बोझिल भी हो गये हैं । कई बार लम्बे कथन अनावश्यक हो गये हैं । कुछ ऐसे लम्बे कथन हैं जिनमें न्यूनता लाई जा सकती है । 'अमृतपुत्र' में एब्सर्ड नाटक के प्रभाव के कारण नाटकों की लघु कथनों की परंपरा को तोड़ा गया है । इन नाटकों में लघु कथन दीर्घ की तुलना में कम है ।

इन नाटककारों की तुलना में सुरेन्द्र वर्मा ने संवादों में नाटकीयता को दृष्टि में रखा है । पात्र जहाँ अत्यधिक भावुक हो गये हैं या किसी घटना का वर्णन कर रहे हैं वहीं कथन लम्बे हुए हैं । छोटे कथोपकथनों को भी कम महत्व नहीं दिया है ।

आधुनिक नाटकों में लौटन, सिंह पट्टा तथा कारी में कथनों को अधिकतर संक्षिप्त रखा है तथा कथनों में स्वाभाविकता लाने की कोशिश की है । लम्बे कथनों को जहाँ रखा है वे उचित लग रहे हैं तथा नाटक की गति में बाधक नहीं हुए हैं ।

रस गंधर्व नाटक पर एब्सर्ड नाटकों का प्रभाव है, जिसमें कथोपकथन का नाटकीय परंपरा से हटकर भी प्रयोग हुआ है । कहीं-कहीं वाक्यों में एकरसता तथा कथन में अनावश्यक दीर्घता भी मिलती है । इसके साथ-साथ व्यावहारिक कथोपकथन की शैली को भी इन्होंने अपनाया है जो कि नाटकीय दृष्टि से उपयुक्त है । इनके नाटकों में छोटे-बड़े दोनों कोटि के कथोपकथनों को स्थान मिला है जिसमें छोटे कथनों की अधिकता है ।

गीत और पद्य

नाटकों में गीतों की परंपरा बहुत पुरानी है । नाटकों का आरंभ नांदी पाठ, प्रार्थना या वंदना से प्रचलित रहा है । भरत तथा उनके परवर्ती नाटककारों ने गीतों को नाटक का आवश्यक अंग माना है । इसके द्वारा नाटक में सरसता आ जाती है ऐसा भी मानते हैं ।

हिन्दी नाटकों में गीतों का प्रयोग भारतेन्दु युग में काफी था क्योंकि वह नाटक का आरंभ काल था तथा संस्कृत नाटकों का उस पर प्रभाव भी था । जैसे जैसे नाटकों को यथार्थता के निकट लाया जा रहा है, गीतों का अभाव होता जा रहा है । नाटकों में जहाँ जीवन में गीतों के प्रयोग स्थल को देखते हुए उनको व्यवस्थित किया है । वहाँ स्वाभाविकता है । नाटकों में गीतों के प्रयोग में भी विविधता मिलती है ।

नाटककारों ने गीतों को भी अभिव्यक्ति की शैली मानकर प्रयुक्त किया है । पात्रों के मनोभावों व मुग्धानुरागों को गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया है । 'विद्रोहिणी अम्बा' में शाल्व का गीत 'विश्व के प्याले में जीवन का जीवन छुपा नहीं है ।'[1] उसके उद्गारों को प्रकट कर रहा है । 'पगला राजा' में मीरा का आत्मगान 'मीठा मिलन'[2] तथा 'साँझ की घाटी और ये चमकती कटोरियाँ'[3] ने उसी की सुखसेज की आकांक्षा को प्रकट किया है । 'कमल' नाटक में कौमुदी का गीत 'इस नदी के दो किनारे' भावुकतापूर्ण गीत है, जो कि वसन्त तथा कौमुदी के मनोभावों तथा संबंधों की अभिव्यक्ति करता है । इस प्रकार से ये प्रणय गीत हैं । 'अमावस्या' में विरहव्याकुल कामना में गीत द्वारा अपनी प्रणय वेदना को मुखरित करती है । 'विद्रोहिणी अम्बा' में शाल्व द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर जीवन से व्याकुल होकर 'रैन में छिपी कली को छेड़कर' गीत द्वारा दुःखावेग को प्रकट

१- विद्रोहिणी अम्बा, पृ० ५८ ।

२- पगला राजा , पृ० ८२ ।

३- वही, पृ० ३६ ।

किया है। परन्तु यह गीत असंगत प्रतीत होता है, क्योंकि जब पात्र परेशान व चिन्तित होता है, उस समय उसको गाना कहां सूझता है। "जय पराजय" में भारमली का गीत "सावन के पर्वों पर आयो" उसकी भावनाओं को व्यक्त कर रहा है। ये गीत स्वाभाविक लगता है क्योंकि भारमली राज गायिका है और वह राज्य के उच्च अधिकारियों के कहने पर उनके मनोरंजन के लिए स्थल स्थल पर गीत गाती है, इन गीतों में वह अपनी व्यथा को भी प्रकट करती है। "श्रीचन्द्रावली" में अधिकांशतः प्रेम व्यथा को व्यक्त करनेवाले गीत हैं। "नीलदेवी" में "एकान्त गीत" तबी सोचि जाके ऊपर नाथ" नीलदेवी की हृदय वेदना को व्यक्त करने के लिए रखा है। परन्तु नीलदेवी रोते हुए इस गीत को गाती है, जो उचित नहीं लगता क्योंकि वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता कि व्यक्ति रोते हुए गाये।

राष्ट्र प्रेम को प्रकट करने के लिए राष्ट्रीय गीतों को चुना है ये गीत मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं। इन गीतों में ओज गुण की प्रधानता के साथ ही उद्बोधन है। "रक्षाबंधन" में "जय जय जय मेवाड़ महान" देशगान है। ये देशगान [illegible] है। "जय पराजय" में भी "तेरे ही कारण भूपाल" गीत देश की प्रशंसा में गाया गया है। प्रसाद ने भी अपने नाटकों में राष्ट्रीय गीतों को स्थान दिया है। इनकी कृति "स्कन्दगुप्त" में मातृगुप्त द्वारा गाये गीत में भारत महिमा वर्णित है। "अरुण यह मधुमय देश हमारा" गीत देश प्रेम की भावना को प्रकट करने के लिए रखा है। "दुर्गावती" में देशभक्ति को राष्ट्रीय गीतों द्वारा व्यक्त किया है।

कुछ गीत नाटकों में भारतीय संस्कृति एवं प्रकृति की व्याख्या में गाये गये हैं। प्रसाद के नाटक "अजातशत्रु" में इस प्रकार के गीत "गोधूलि" के राग पटल में स्नेहांचल फहराती है।[1] चला है मन्थर गति में पवन रसीला-नन्दन कानन का[2] है। "चन्द्रगुप्त" का "हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती" प्रयाण गीत (Marching Songs) का उत्कृष्ट नमूना है। "रक्षा बन्धन" में "प्रेम पर्व का पहुँचा आज"[3] गीत भारतीय संस्कृति के ऊपर प्रकाश डाल रहा है। इस गीत के

१- अजातशत्रु, पृ० २६।
२- वही, पृ० ७६।
३- रक्षा बन्धन, पृ०

द्वारा भारतीय उत्सव रक्षा बन्धन के महत्व को प्रकट किया गया है।" यद्यपि मरण को वरण करती रही[1], भी संस्कृति पर प्रकाश डाल रहा है इसके द्वारा राजपूतों की संस्कृति में जौहर प्रथा" को उजागर किया गया है।" झाँसी की रानी" में प्रकृति का वर्णन गीत द्वारा किया है।

श्री चन्द्रावली" में भारतेन्दु जी ने पद्यात्मक भाषा में लम्बा यमुना का वर्णन किया है। यह पद्यात्मक खण्ड काफी लम्बा हो गया है। इसके द्वारा नाटककार का देश प्रेम झलक रहा है।

कुछ नाटककारों ने प्रार्थना गीतों का भी चयन किया है इस प्रकार के गीत भी अधिकतर ऐतिहासिक नाटकों में मुख्यतः आये हैं। इन गीतों द्वारा पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला है कि पात्र ईश्वर भक्त हैं। इन्द्र पराजय में नाटक के आरंभ में विजय की तैयारी करते हुए ईश्वर की स्तुति की गई है तथा नाटक के अन्त में विजय प्राप्त हो जाने पर ईश्वर की प्रार्थना की जा रही है जो कि उपयुक्त स्थल पर गाये जाने के कारण उचित लगती है। इसी प्रकार" दुर्गावती" में नाटक के अन्त में रानी की आत्माओं के द्वारा प्रार्थना गीत" रहे देवी मार्ग-संधान[2] गवाया है जो कि स्थिति के अनुकूल प्रयुक्त होने के कारण उचित प्रतीत होता है। " उलट फेर" में भी नाटक के प्रारंभ में ही प्रार्थना गीत गाया गया है जो कि उचित लग रहा है। गोविन्द वल्लभपन्त की रचना" अंगूर की बेटी" में आधुनिक समाज का चित्रण है फिर भी नाटक का आरंभ मंगलाचरण से हुआ है। कामिनी नाम की स्त्री पात्र संध्या को घर में प्रकाश करते हुए गीत गा रही है यह मंगलाचरण है" श्याम वरण कमल चरण शरण हूँ तुम्हारी"[3] ।" झाँसी की रानी" में एक स्थल पर भक्तिपरक गीत आया है जो कि पूजा के समय अनूप गान के रूप में गाया गया है।" पहला राजा" में जगदीश चन्द्र माथुर ने वन्दना के रूप में श्लोकों को गवाया है तथा दशरथ नन्दन में" जय जय गिरिराज किशोरी" मिलता के मन्दिर में स्तुति गीत में गाया है। गीत परिस्थिति अनुकूल प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार "मामा मैक्टस" में अनाथालय के बच्चे प्रार्थना गीत गाते हैं जो कि स्थिति के अनुकूल प्रयुक्त हुआ है।

१- रक्षा बन्धन, पृ० (२) दुर्गावती, पृ० १३६।
३- अंगूर की बेटी, पृ० १०।

नाटक में प्रारम्भ में झूले का गीत भी उचित लगता है, जो समूह में सब स्त्री पात्र झूला झूलती हुए गाती है । इसी प्रकार प्रताप नारायण मिश्र की रचना 'भारत दुर्दशा' में कुछ गीत परिस्थितिनुकूल आये हैं जैसे 'जुगवा पिअरवा कौन देस भागा'[1] तथा 'हम का छोड़ाये फरिया चली बिदिया'[2] ये दोनों गीत एक पात्री दूसरी पात्री से ये गीत गाने का अनुरोध करती है और अनुरोध पर वह गीत गाती है । इस प्रकार अनुरोध करने पर गाने के कारण ये गीत उस स्थल पर उचित लगते ही हैं, अन्यथा उस स्थल पर गीतों का आगमन अनुचित प्रतीत होता ।' दुर्गावती' कृति में नर्तकियां गीत गाती हुई राजसभा में नृत्य कर रही हैं[3] तथा नायक कलाकार तानसेन दरबार साथ में गीत गाकर सब का मनोरंजन कर रहा है[4] इन दोनों स्थलों पर गीत आने उचित ही हैं ।' झाँसी की रानी' में नृत्य गीत तथा स्तुति गीत भी उचित ही हैं । एक स्थल पर एक पुत्र वाला अपने पुत्र को गीत गाकर खेला रहा है वह गीत इस प्रकार है

मेरा पूत बड़ो कोई खावे
तो वह स्वस्थ तुरन्त हो जावे[5]

यह गीत नाटक में अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है । इसी प्रकार के बाजार के दृश्य में नवीनता लाने के लिए व्यापारियों के गीतों की योजना भारतेन्दु जी ने की है जो कि बड़ी स्वाभाविक बन पड़ी है । 'अंगूर की बेटी' में एक स्थल पर रंगमंच की प्रस्तुति के लिए नृत्य गीत का अभ्यास कराया जा रहा है अतः यहाँ गीत की अवतारणा उचित लगी है ।' स्कंदगुप्त' में देवसेना युद्ध क्षेत्र में मनोरंजन के लिए गीत गा रही है ।[6] 'अजात शत्रु' में भी श्यामा एक दृश्य में शैलेन्द्र का

१- भारत दुर्दशा, पृ० ८६ ।
२- वही, पृ० ८८ ।
३- दुर्गावती, पृ० ४६ ।
४- वही, पृ० ८८ ।
५- झाँसी की रानी, पृ० ७४ ।
६- स्कंदगुप्त, पृ० ५४ ।

की अनुभूति करानेवाले तथा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालनेवाले हैं । प्रसाद के नाटकों में परिस्थिति के अनुरूप उनकी रचना हुई है - श्रृंगारिक , दार्शनिक, भक्तिपरक, राष्ट्रीय एवं प्रकृति सौन्दर्यमूलक आदि सभी प्रकार के गीत हैं । स्त्रियों में गाये गये गीतों की प्रधानता है । स्त्री पात्रों ने विशेषकर लम्बे-लम्बे गीतों को गाया है जैसे स्कन्दगुप्त की देवसेना तथा अजातशत्रु की मागन्धी दोनों ने बात-बात बार लम्बे-लम्बे गीत गाये हैं जो कि अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देते हैं। प्रसाद के नाटकों में स्त्री पात्रों ने सब से अधिक गीत गाये हैं । नेपथ्य गीतों को भी नाटकों में स्थान मिला है, इनके गीतों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है । गीतों के द्वारा पात्रों के व्यक्तित्व को मुखर किया गया है । ये गीत पात्र तथा परिस्थिति के अनुकूल ही लिखे गये हैं । प्रसाद के नाटकों में गीतों का आकार दीर्घ हो गया है जैसे अजातशत्रु में श्यामा द्वारा गाये हुए गीत, स्कन्दगुप्त में पाँचवें अंक के पाँचवें दृश्य का समवेत गान जो कि बहुत लम्बा होने के कारण बोझपूर्ण लगता है । नेपथ्य में गाये जानेवाले गीत भी लम्बे हैं । प्रसाद के नाटकों में गीतों के साथ-साथ पद्यात्मक उक्तियों द्वारा भी अभिव्यक्ति हुई है । कई बार पद प्रयोग सूक्ति रूप में हुआ है । ये प्रभाव पारसी तथा संस्कृत का है ।

उदयशंकर भट्ट की रचना " विद्रोहिणी अम्बा" में भी गीतों का सफल समावेश हुआ है । उनकी गीत काव्यात्मकता को नहीं त्याग पाये हैं । गीतों में नाटकीय उपयुक्तता सफलता से अंकित हुई है । इनके गीत पात्रों के चरित्र, प्रसंग, वातावरण तथा पात्रों की मनोदशाओं से पूर्णतः संबंधित है । भट्ट जी के पात्रों की भावनाएं गीतों के माध्यम से मुखरित हुई हैं जैसे तीसरे अंक के दूसरे दृश्य का गीत

" किसने कली को तोड़कर "[१]

एक दृश्य में स्वयंवर मंडप में वरमाला" के समय गीत गाया गया है जो कि बहुत स्वाभाविक लगता है । काव्यात्मक कथन भी प्रयुक्त हुए हैं । गीत बहुत लम्बे नहीं हैं । गीत सरलता लिए हुए तथा प्रभावमय हैं । हर स्थल पर गीत योजना उचित नहीं लगती है ।

१- विद्रोहिणी अम्बा, पृ० ८० ।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमी जी ने रंगमंच को दृष्टि में रखते हुए गीत-योजना को स्वीकार किया है किन्तु उनकी धारणा है कि गीत प्रसंग से असम्बद्ध नहीं होने चाहिए । प्रत्येक नाटक में दो-एक-संगीत- प्रिय पात्रों का आगमन भी वे अनुचित नहीं मानते । उनके शब्दों में" यह ठीक है कि नाटक का प्रत्येक पात्र गायक नहीं हो सकता, न प्रत्येक स्थान गीतों के लिए उपयुक्त होता है । फिर भी नाटक में दो एक पात्र ऐसे रहे जा सकते हैं जिनका गाना कहानी की स्वाभाविकता को नष्ट न करता हो । गीत कथानक के अनुकूल हो और वो रस वातावरण , जो प्रभाव लेखक उत्पन्न करना चाहता है । उसको गहरा करनेवाला हो ।"[1] उनका कथन है कि मैंने गीत इसलिए रखे कि नाटक देखने वालों की यही मांग थी । यह मैंने अवश्य किया कि गीत कथा के अंग बनकर आए हैं । एक भेंट वार्ता में उन्होंने कहा है कि " मैं यह मानता हूँ कि दो-एक नाटकों में गीतों की संख्या बहुत हो गई है जिस में अपनी भूल कह सकता हूँ । * * * * अब नाटकों का रूप बदलता जा रहा है । दर्शकों की रुचि बदल रही है । इन सब बातों को देखते हुए अब नाटकों में गीतों की भरमार उचित नहीं जान पड़ती और बाद के मेरे नाटकों में गीतों की संख्या बहुत कम हो गई है ।[2]

गोविन्द वल्लभ पन्त की रचना" अंगूर की बेटी" आधुनिक समाज का चित्र होने पर भी मंगलाचरण युक्त है । नाटक का प्रारंभ प्राचीन नाटकों की भांति मंगलाचरण से प्रारंभ हुआ है । १-२ स्थलों पर गीत दोषपूर्ण स्थिति में आये हैं । वैसे प्रसंग के आधार में गीत की योजना की गई है । गीत अधिकतर छोटे ही आये हैं ।

" अम्बपाली" नाटिका में रामवृक्ष बेनीपुरी ने ६ स्थलों पर गीतों को रखा है । नाटक का प्रारंभ तथा अन्त गीत से ही हुआ है । परिस्थिति-नुकूल गीतों की योजना की गई है । प्रारंभ में पूजा गीत को रखा है तथा अंत में शान्त भाव में वेदपूर्ण गीत रखा है । इसके अतिरिक्त नृत्यगीत ,राष्ट्रगीत तथा

१- विषपान, कुमार, पृ० ६३।

२- विश्व ज्योति, फरवरी, सन् १९५८, पृ० २६ ।

भावुक स्थिति में गीत आया है । सभी गीत स्वाभाविकता लिए हुए हैं । लम्बे व छोटे दोनों कोटि के गीतों को स्थान मिला है । नाटक के अन्त में जो गीत रखा गया है वह लम्बा गीत है परन्तु यह गीत नाटक में खटकता नहीं है ।

अश्क के नाटकों में भी गीत योजना की गई है उनकी कृति 'जय पराजय' का आरंभ व अन्त स्तुतिगीत से हुआ है जो स्वाभाविक प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त पात्र के भावों की अभिव्यक्ति के लिए भी गीत रखे गये हैं । जय पराजय में नेपथ्य गीत के द्वारा राणा लक्ष सिंह की वीरता, वैभव, गौरव का वर्णन कराया है । समूह गीत भी आये हैं । छोटे गीतों को महत्व दिया गया है । 'स्वर्ग की झलक' में तो पूरा गीत कहीं नहीं रखा है केवल एक-दो पंक्तियाँ ही रखी गई है, परन्तु नाटक के स्थल को देखते हुये ये गीत बड़े स्वाभाविक प्रतीत होते हैं ।' अंजो दीदी' में तो भावानुकूल गीतों की बजाय शेर व गजलों को रखा गया है । पात्र नीलाभ स्वभाव का तथा आधुनिक है जो गीतों की अपेक्षा शेर-शायरी का इच्छुक है । एक स्थल पर कविता भी रखी गई है जो कि एक बाल पात्र द्वारा गवाई गई है । ये पद योजना नाटक में स्फूर्ति पैदा करती चलती है । इनके सभी नाटकों में लघु गीत योजना है । अश्क जी का इस संबंध में कहना है' अच्छा नाटक नाच गाने के बलपर नहीं, अपने कथानक, उसके अन्तर्भूत द्वन्द्व, चुस्त चुटीले संवाद और अभिनेताओं के सुन्दर अभिनय के बल पर चलना चाहिए ।[1]

' झाँसी की रानी' में वृंदावन लाल वर्मा ने गीतों को अधिक महत्व दिया है नृत्य गीत, समूह गीत, भक्ति गीत आये हैं इसके अतिरिक्त भावानुकूल व्यावसायिकों के गीत में चूनवाले का गीत उसी की भावना के अनुरूप रखा है जो भावानुकूल गीत होने के कारण काफी रोचक बन है । गीतों का आकार कहीं भी लम्बा नहीं हुआ है और न ही उनकी अधिकता खटकती है ।

जगदीश चन्द्र माथुर विरचित कोणार्क' में नाटक के प्रारंभ तथा अन्त में नेपथ्य गीतों को स्थान मिला है ।' पहला राजा' में गीतों में लोक

१- हिंद - उठता की ओर है , पृ० ५ ।

शैली पर छाप है । गीतों के माध्यम से पात्रों के लोकजीवन की मर्मध्वनि उभारने का प्रयत्न किया है । प्रभूत गीत, वन्दना में श्लोक गाये गये हैं । गीतों का सफल प्रयोग हुआ है । " दशरथ नन्दन" में तो दोहा, चौपाई तथा गीतों की भरमार है क्योंकि कथावस्तु रामायण पर आधारित है अतः रामायण के दोहा, चौपाई पूरे नाटक में गाये गये हैं । कथा को देखते हुए ये पद्यात्मक संवाद अनुचित नहीं लगते ।

प्रसाद युग के बाद गीतों का प्रयोग नाटकों में धीरे-धीरे कम होता गया है । लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में गीतों का अभाव है । उनके नाटक " मुक्ति का रहस्य" में गीतों का बिल्कुल प्रयोग नहीं हुआ है" सिन्दूर की होली" में चन्द्रकला केवल एक पंक्ति गुनगुनाती है । जो कि स्वाभाविक लगता है। गीतों के विषय में लक्ष्मी नारायण मिश्र जी के विचार जो कि उन्होंने" मुक्ति का रहस्य" नाटक के प्रारंभ में" मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ" भूमिका में दिये हैं ।" मेरी राय में नाटक में गीत रखना कोई बहुत जरूरी नहीं है कभी-कभी तो गीत कल्पनाओं के प्रवाह में बाधक हो उठते हैं ।"

" नाटकों में गीत का पक्षपाती मैं वहीं तक हूँ - जहां तक उसे जीवन में देख पाता हूँ । जिस किसी पात्र का स्वाभाविक झुकाव मैं संगीत की ओर देखूंगा ,उसके द्वारा दो चार गीत गवा देना मैं ठीक समझूंगा ।"[2]

मोहन राकेश के नाटकों में भी गीतों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है ।" आषाढ़ का एक दिन" नाटक में एक स्थल पर कुछ पंक्तियाँ संस्कृत की गुनगुनाई गई है[3] जो कि बड़ी उचित स्थल पर प्रयुक्त हुई है " लहरों के राजहंस" में भी गीतों को स्थान नहीं मिला है एक स्थल पर" बुद्धं शरणं गच्छामि" पंक्तियां ही गायी गई हैं । आधे अधूरे में तो नाटककार ने इस ओर दृष्टि ही नहीं डाली है ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कृति" बकरी" में एक दृश्य में बकरी की स्तुति की आरती है इसके अतिरिक्त गीत, वन्दना, दोहा, चौबोला गाये गये हैं।

१-२ मुक्ति का रहस्य - मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ (भूमिका) पृ० २४-२५ ।

३- आषाढ़ का एक दिन, पृ० ८ ।

सभी गीत नाटक में हास्यपूर्ण एवं मनोरंजक बनाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।" माया कैक्टस" में तीन स्थलों पर गीत गाये गये हैं जिसमें अपूर्ण गीत भी है । एक दृश्य में नेपथ्य से अनागतम्य के बच्चे गीत गाते हैं दूसरा गीत पात्र के चंचल स्वभाव की अभिव्यक्ति के लिए रखा गया है । पात्र आधुनिकता से प्रभावित तथा शिक्षित है इसलिए एक स्थल पर अंग्रेजी धुन पर आधारित गीत की योजना भी की गई है । अशिक्षित पात्र द्वारा लोकगीत गवाया है जो संगत लगता है ।

आधुनिक नाटककारों में मणिमधुकर ने " रसगंधर्व" गीतों को काफी महत्व दिया है परन्तु इनके सभी गीत" अव्यवस्थित और तुकबंदी है हास्य की दृष्टि के लिए गीतों की योजना की गई है । छोटे-बड़े दोनों प्रकार के ही गीत आये हैं । समूह गान अधिकतर है नाटक समाप्ति में स्तुतिगीत गाया गया है ।

आधुनिक नाटकों में गीतों की योजना बहुत कम मिलती है । कुछ नाटककार ऐसे भी हैं जिन्होंने गीतों की ओर दृष्टि ही नहीं डाली है । सत्यव्रत सिन्हा के " अमृतपुत्र" में सुरेन्द्र वर्मा के तीनों नाटकों" नायक खलनायक विदूषक " सेतुबंध" तथा" विपिन कुमार अग्रवाल" की कृति लोटन मुद्राराक्षस के तिलचट्टा नाटक में गीत बिल्कुल नहीं प्रयुक्त हुए हैं । विष्णु प्रभाकर विरचित" युगे युगे क्रान्ति" में विवाह के दृश्य में कुछ मंत्रों को गाकर पाठ किया गया है परन्तु गीत नहीं आये हैं ।

इस प्रकार नाटकों की गीत परंपरा में परिवर्तन होता जा रहा है । पूर्व युगों की तुलना में इस युग के नाटकों में गीतों की संख्या बहुत अल्प है और गीतों की कोटियां भी भिन्न हैं । गीतों की कथाबद्धता देखते हुए नाटककार प्रयुक्त कर रहे हैं । आधुनिक नाटकों में गीतों की अपेक्षा वाद्यों का प्रयोग अधिक होने लगा है ।

७८वाँ अध्याय

भाषा-भेद

पात्रानुसार भाषा

किसी भी नाटककार को यदि अपने पात्र को सजीव और वास्तविक बनाना है, तो उसे अपने पात्रों की भाषा पर पूरा ध्यान देना होगा। भाषा सम्बन्धी जो विविधता हमें समाज में मिलती है, उसी विविधता की स्थापना उसे नाटक में करनी चाहिए। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि वर्ग अथवा व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके संस्कारों के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया जाय। उच्च वर्ग का व्यक्ति जिस भाषा का प्रयोग करता है, निम्न वर्ग का व्यक्ति उससे भिन्न भाषा का प्रयोग करता है। राजा की भाषा और होती है, तो नौकर भी भाषा और। व्यक्ति और वर्ग की भाषा में ही नहीं स्त्री-पुरुष की भाषा में भी अन्तर होता है। कम पढ़े लिखे और अनपढ़ आदमी की अथवा शिष्ट और अशिष्ट अथवा एक शहरी और देहाती व्यक्ति की पहचान उसकी भाषा से करते हैं। भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे लोगों की भाषा में भी अंतर होता है। हिन्दू मुसलमान और ईसाई की भाषा में संस्कारगत अंतर होना स्वाभाविक है। इन सब दृष्टियों को ध्यान में रखकर नाटककार को प्रत्येक पात्र से भाषा बुलवानी पड़ती है ताकि नाटक में वास्तविकता आ जाये।

देखना यह है कि, हिन्दी नाटककारों ने इन बातों का कहाँ तक निर्वाह किया है अथवा पात्रों की भाषा को कहाँ तक स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया है। पात्रों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है अथवा नहीं, इसका निरूपण निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया है।

(१) लिंग के अनुसार भाषा

(क) स्त्री पात्रों की भाषा

(ख) पुरुष पात्रों की भाषा

(ग) बच्चों की भाषा

(२) उच्च तथा निम्न वर्ग की भाषा

(३) शिक्षित तथा अशिक्षित पात्रों की भाषा

(४) जाति तथा धार्मिक संस्कारों से प्रभावित पात्रों की भाषा

(५) व्यवसाय के अनुसार पात्रों की भाषा

प्रत्येक वर्ग की भाषा में शब्दों के प्रयोग भाषा की लय, भावों की अभिव्यक्ति का ढंग भिन्नता लिए हुए है।

(१) लिंग के अनुसार भाषा का प्रयोग

(क) स्त्री पात्रों की भाषा :

स्त्री-पुरुष की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है, फिर भी अन्तर आ ही गया है।

स्त्री पात्रों की भाषा में कोमल भाव अधिक है । नारियों की अनुभूति अधिक तीव्र है, अतः वे भावों को जितनी गहराई से अनुभव करती हैं, उतनी ही गहराई से व्यक्त भी करती हैं । उनकी अभिव्यक्ति में भावुकता एवं मृदुलता की प्रधानता है । स्त्रियों की इस प्रकार की भाषा के उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

- प्रभुवर, मेरे भाग्य की कड़ियाँ टूटी हुई हैं । मेरी आत्मा का हाहाकार सुना है। मेरे दुःखों की घटा में बिजली नहीं है । जाओ, प्रभु जाओ । मैं प्रलय की अग्नि में अपने को जलाऊँगी और जब तक भीष्म से उसका बदला न लूँगी, जलती ही रहूँगी । (विशा० ८८)

- जाओ मेरी आँखों के तारे । मेरे हृदय के प्रकाश । मैंने पाप किया था, मेवाड़ के राजकुमार को क्षणभर के लिए रण में जाने से रोका था, उसका प्रायश्चित आज सम्पन्न हो । नाथ हे हृदय । तू क्यों टुकड़े - टुकड़े होता है ? तू रोता भी है, हँसता भी है । (रणा० ५२)

- मैं तो पहले ही से उनको जानती हूँ, जो अपनी बीरु को डाँट-डाँट के ला गया वह दूसरे की क्या करेगा बिचारी माताएँ पर पड़ी थी यह उनको डाँटता ही जाता था । इस ही दुख में बिचारी चार दिन भी न निकाल सकी । (भारतप्र० २१)

- सुवासिनी - अकस्मात जीवन कानन में एक राका-रजनी की छाया में छिपकर मधुर वसन्त घुस आता है । शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं । सौन्दर्य का कोकिल 'कौन ?' कहकर सब को रोकने-टोकने लगता है । पुकारने लगता है । राजकुमारी ! फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू भरी स्मृतियाँ मकरन्द सी उसमें छिपी रहती हैं । (चन्द्र० १८८)

तद्भव, देशज तथा गंवारू शब्दों का प्रयोग भी स्त्रियों की भाषा में पुरुषों की तुलना में अधिक है ।

- तू नहीं जानती रेखा, मेरे हृदय में कौन-सी ज्वाला धधक रही है, कौन सी कामना उठ रही है ।

(क्या० ३३)

- नई, बहुत नई, गुदगुदाना वहाँ तक जहाँ तक रुलाई न आवे । (कुछ सोचकर) हाँ ! भगवान किसी को किसी की कनौड़ी न करे । देखो मुझको कैसी बातें सहनी पड़ती है । आप ही नहीं भी आता, उलटा आप ही रुचता है, पर क्या करूँ, अब तो फँस गई ।"

(श्रीचन्द्रा० २८)

- अम्बपाली - (यवनिका से) हाँ, हाँ, आज शरद पूनो है रे । मैं यह भी भूली जा रही थी । आज ही तो कृष्ण ने लीला रचाई थी न ? बीच में कृष्ण, चारों ओर गोपियाँ । नीचे यमुना कलकल कर रही, ऊपर चाँद हँस रहा । आज अम्बपाली भी रास रचायेगी, इस पूनो के चाँद के नीचे रस की यमुना बहायेगी ।

(अम्ब० ३८)

- अम्बालिका : यह तो बड़ी बुरी खबर है । अब वह कहाँ जायेगी ? हाय, आग के सिर पर रहनेवाले धुएं की तरह उनका जीवन चिन्ता, बेचैनी और विषाद का घर बन गया है । शाल्व, दुष्ट शाल्व ने उन्हें कहीं का न रखा ।

(पि० क० ८२)

- हिन्दुओं के जितने राज अब तक नष्ट हुए हैं, सब घर ही की फूट के कारण, और अंत में उन घर के भेदियों को भी कुछ सुख नहीं मिला । परन्तु क्या किया जाय, मनुष्य अपनी दुष्ट प्रकृति से लाचार है ।

(दुर्गा० १०१-१०२)

स्त्रियों का कार्यक्षेत्र सीमित होने के कारण उनकी भाषा में सीमित शब्दों का प्रयोग मिलता है । स्त्रियों की भाषा में पुरुषों की तुलना में कहावतों तथा मुहावरों का भी अधिक व्यवहार हुआ है । ये कहावत तथा मुहावरे कथन की प्रभावशाली व्यंजना के लिए करती है ।

- अंबली : + + + + + तुम चाहती हो, मेरा बेटा भी तुम्हारी तरह आवारा हो जाय (फुफकारती हुई) न काम के न काज के, अढ़ाई सेर अनाज के ।

(अंजो पृ० ५६)

- हाय । राम ! कहूं के नाही भाखन । धोबी के कुकुर अस न घर के भइन न घाट के भइन । अबमती मर जाइत तो कहि के हम अपने बाप के मुहाँ माँ लपरी लगाइत ?

(उलट पृ० १३१)

- जाके पांव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई ।

(श्रीचन्द्रा०)

- हाय दैया, कैसी बातें करती हो । जरा धीरे-धीरे बोलो । दीवारों के भी कान होते हैं ।

(युगे पृ० १४)

- मालती : + + + + विधाता ने तुम्हें गढ़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी है - तिस पर आभूषण तो तुम्हारे रूप को चार चाँद लगा देते हैं ।

(रूपम पृ० ३८)

- यह रामलाल का ताना-बाना क्यों बुन रही हैं ? (नायि०१०४)
- बहुओं के हाथ से अपने लोगों का अपमान न सह सकने के कारण जी भर भर आता है । (फांसी०६१)
- रानी ! तुम उसे क्यों नहीं लिखती । एक बार लिख दो, बस सिर से बड़ पीड़ा जायेगा । (कथा० १२०)

स्त्रियों की एक और प्रवृत्ति होती है कि वे विस्मयादिबोधक शब्दों का अधिक प्रयोग करती हैं, चाहे वे सुखावस्था में हों अथवा दुखावस्था में । ये शब्द उनकी भावुक प्रवृत्ति के कारण आ ही गये हैं जबकि पुरुष भावावेश में भी इन शब्दों का कम प्रयोग करते हैं । उदाहरणार्थ -

- उई, उई, उई । अरे पिट गई, पिट गई । हुजूर, ई बकरी हमार है । इहाँ कौन बाँध लाया ?
  (बकरी, पृ० ३१)
- हाय ! हाय ! देखो तो इस बच्चे को कितना मारा है ।
  (उ०ट० ७५)
- अरे रे छोड़ो न माई । - देखो तुम्हारे नाखून चुभ रहे हैं - उफ़ - उफ छोटी, क्या कर रही हो ?
  (तिल० १३)
- हाय दैया, कैसी बातें करते हो । (सुबे० १४)
- हाय री मेरी किस्मत ! (अमृत० ६८)
- ओह, लगता है मेरा सिर फट जायगा । (माया० ५१)
- भावना ! ------- ओह ! (आषाढ़० ३६)
- पीर भयो ! हा ! हाय ! हाय ! या गली में या दुष्ट सूरज की तपन कैसे सही जायगी । अरे पीर भयो, हाय पीर भयो । बस रात रैन ही बीत गई ! हाय फेर वही घर के व्यौहार करेंगे, फेर वही नहानो, वही खानो, वेई बातें हाय ! (श्रीचन्द्रा० २६)
- पद्मावती : अहा ! देव पण्डित करुणानिधान आ रहे हैं, दर्शन तो करूँ ।
  (ज्वाला० ५६)

स्त्रियाँ प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए आलंकारिक भाषा का प्रयोग करती हैं । उनकी कोमल तथा भावुक प्रवृत्ति के कारण भी ये आलंकारिकता आ गयी है ।

- आओ मेरी आँखों के तारे । मेरे हृदय के प्रकाश । मैंने पाप किया था, मेवाड़ के राजकुमार को क्षण भर के लिए रण में जाने से रोका था, उसका प्रायश्चित्त आज संपन्न हो । माँ के हृदय ! तू क्यों टुकड़े-टुकड़े होता है ? तू रोता भी है, हँसता भी है ।

(रक्षा० ५२)

- तुम्हारे उपकार सिर पर हैं । तुमने मेरे मरु-स्थल में फिर हरियाली सींच दी ।

(अंगूर० १०५)

- यह मेरी बेटी है फूल-जैसी बच्ची और (पुत्र को प्यार करती हुई) गुलाब के फूल जैसा बच्चा, हीरों का-सा मोल धरे, तुम्हें सौंपते फिरते हैं ।

(दुर्गा० ५८)

- सन्ध्या : ये छोकरियाँ कितनी प्रसन्न हैं । सौन्दर्य के आँगन में कली की तरह ये भोली, नीरस पवन के प्रकम्पन से अपरिचित । संसार हँसता है, पर उनकी हँसी में, मुस्कराहट में, विलास में सपनापन है, आत्मा की उज्ज्वल चमक है । एक मैं हूँ जो सूर्य की किरणों से अग्नि बनी हुई आतिशी शीशे की तरह जल रही हूँ । मेरी स्वच्छता मेरी जलन का कारण है । अशान्ति की आग में, बेचैनी के उबलते-जल-कुण्ड में मछली की तरह तड़प रही हूँ । मनुष्य उस उमड़े हुए मेघ के समान है, जिसमें पानी और आग दोनों का वास है ।

(वि०ब० ३१)

- ये बर्बर विदेशी हूण, यह निर्दय दैत्य-दल, क्या आँधी की भाँति भारत के सौभाग्य-श्री को लूटता हुआ बढ़ता ही जाएगा ।

(अभय १०)

- और दूसरे मेरा जीवन पिता जी की चाँदी की तरह, चाँदनी की तरह, शंख की तरह श्वेत दाढ़ी और मूँछ की छाया में रंग और कलम के साथ बीता है ।

(सिन्दूर० ८१)

स्त्रियाँ अपनी बात को स्पष्ट करने का हर संभव प्रयास करती हैं । वे बात को तरह-तरह से समझाती हैं अत: छोटी सी बात को समझाने के लिए लम्बा कथन बोलती हैं । उनकी भाषा में छोटे वाक्यों की प्रधानता है । भावावेश में कभी-कभी वाक्य लम्बे हो जाते हैं तो उन्हें खण्डित करके बोलतीं हैं ।

- अम्बिका : मेरे हृदय में गुदगुदी उठ रही है । ऐसा लगता है इन फूलों की सुगंधि से, मदमाते पवन से लिपटकर आकाश में उड़ जाऊँ और टिमटिमाते तारों का मुँह चूम लूँ, चन्द्रमा की छाती से चिपका लूँ ।

  (वि०अ० ५२)

- रामकली : + + + + मेरे बच्चे तू समझता क्यों नहीं । तुझे अपने खानदान की बात सोचनी चाहिए । धर्म की बात सोचनी चाहिए । जो बात हमारे पुरखे कह गए हैं, वह गलत कैसे हो सकती है । शास्त्र में कोई गलत कैसे लिख सकता है । (पति से) जी, तुम ही अच्छी तरह समझाओ । गुरुजी के पास भेजो । मारो मत । देखो क्या बुरा हाल कर दिया बेचारे का । तुम भी जब खून सवार होता है तो बस...

  (कुशी० २८)

- चारों ओर धुँआरे मेघ घिर आये थे । मैं जानती थी वर्षा होगी । फिर भी मैं घाटी की पगडंडी पर नीचे-नीचे उतरती गई । एक बार मेरा दुकूल भी हवा ने उड़ा दिया । फिर बूँदें पड़ने लगीं ।

  (आषाढ़ ६)

- मैं पूछती हूँ क्यों नहीं है यह मुसाफिर खाना ? डाक्टर मुसाफिर खाना है, पूरा शहर मुसाफिर खाना है, पूरा देश मुसाफिर खाना है । मैं तो कहती हूँ पूरी पृथ्वी मुसाफिर खाना है ।

  (लौटन० ३२)

पुरुषों की भाषा की तुलना में उनकी भाषा में ध्वन्यात्मकता भी अधिक होती है, कहीं-कहीं ध्वन्यात्मकता की अधिकता के कारण काव्यात्मकता सी आ जाती है। जैसे -

- फुदकती हैं, हंसती हैं, हंसाती हैं, मांगती हैं, भिगाती हैं, गाती हैं, गवाती हैं और मठी ठगती हैं, ठगाती हैं।

(श्रीचन्द्रा० ३५)

- घूमूंगी और घुमाऊंगी, रोऊंगी और रुलाऊंगी। फूल की तरह आयी हूं, परिमल की तरह चली जाऊंगी।

(अजात० ७५)

- नहीं, नहीं क्यों चल के बैठेंगे, तू दुखी है न, मेरी बच्ची है न, बड़ी अच्छी है न ?

(ध्रुव० ७४)

- आपन बीत तो देखी-देखी बदरियाँ हैं छैंटी और बिजली के बेहली मेघ देते ?

(करी० ३३)

स्त्रियों की भाषा की उपर्युक्त सामान्य विशेषताएँ लगभग सभी नाटकों में मिलती हैं, परन्तु इस प्रकार की स्त्री भाषा का सफल प्रयोग" उलट फेर" अम्बपाली" की चन्द्रावली ," करी " तथा 'विद्रोहिणी अम्बा' और शुभे शुभे क्रान्ति व झांसी की रानी में हुआ है। इन नाटकों की स्त्री भाषा लगभग एक-सी है। प्रसाद के नाटकों की स्त्री पात्र की भाषा कुछ और लिए हुए हैं, वे अन्य नाटकों की स्त्री पात्रों की अपेक्षा विस्मयबोधक शब्दों तथा लोकोक्ति व मुहावरों का भी कम प्रयोग करती हैं तथा शब्दों के प्रयोग में भी तत्सम शब्दों को अधिक महत्व देती हैं। ये स्त्रियाँ सामान्य स्त्रियों की भाषा से इस प्रकार कुछ भिन्न भाषा का प्रयोग करती हैं क्योंकि नाटककार का दृष्टिकोण भाषा को परिनिष्ठित बनाने का है। मोहन राकेश के दो नाटकों" आषाढ़ का एक दिन " तथा " लहरों के राजहंस " की स्त्री-पात्रों की भाषा लगभग प्रसाद के नाटकों की स्त्री भाषा से मिलती जुलती है।" आधे अधूरे " की भाषा आधुनिक शिक्षित स्त्री पात्रों की भाषा है।

कुछ नाटकों में शिक्षित वर्ग की तथा उच्च वर्ग की स्त्री पात्र है, उनकी भाषा साधारण स्त्रियों की भाषा से कुछ भिन्नता लिए हुए है, परन्तु उपर्युक्त स्त्रियों की भाषा की भी विशेषता उनमें भी मिलती है भिन्नता उनमें वातावरण , शिक्षित संस्कारों के कारण होता है । उनका वर्णन शिक्षित तथा उच्च वर्ग की भाषा में किया जायेगा ।

<u>पुरुषों की भाषा :</u>

स्त्रियों की भाँति पुरुषों की भाषा की अपनी अलग विशेषता है । नाटकों में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका व्यवहार पुरुष ही करते हैं जैसे -

- <u>अबे</u> चुप रह (नेपर० २३)
- <u>अबे</u> गंगाराम के बच्चे । (मादा० ६)
- तुम कौन हो <u>म्यां</u> । (अबी० ११६)
- इस <u>कमबख्त</u> ने भी अभी किया । (अमृत० ६)
- नमस्कार <u>जनाब</u> (तिल० ३६)
- अजी <u>जनाब</u> । (उलट० १३)
- <u>अच्छा जनाब</u>, सारी प्रजा अंग्रेजी हुकूमत चाहती है । (झांसी० २७)
- <u>ऐ राम जी</u> की ------ (मादा० ४)

पुरुषों का कार्यक्षेत्र विस्तृत होने के कारण उनकी भाषा में भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों का व्यवहार मिलता है । जबकि स्त्रियों का शब्द कोश सीमित है । पुरुषों की भाषा में शब्दों का चयन प्रस्तुत है ।

- दीवान जी मैं तो दीवानगी का चटखारा मिलता है वही मुझे अच्छा लगता है । तुम्हारी दीवानगी की बानगी हम पहले ही देख चुके थे । हम उसी के मुरीद हैं । तो दीवान जी, मिजाज कहाँ रहती है । मसाला घर कुमाना अभी अपनी पसंद का इस्तेमाल करना है । (बकरी०५१)

पुरुषों की भाषा में गंभीरता एवं सघनता अधिक है, वे शब्दों का प्रयोग उनके अर्थ को ध्यान में रखकर ही अधिकतर करते हैं। उदाहरण -

- स्वच्छ हृदय भीरु कायरों की-सी वंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त रोटियों के लालच या घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।
  (चन्द्र० ६५)

- उद्दाम और उच्छृंखल प्रेम की आग जो एक दिन मेरा परित्राण बन गयी थी, उसी परित्राण का वियोग मेरी कला का उद्गम हुआ। (कोणार्क २३)

- दाण्ड्यायन : (सिकन्दर) - भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीड़ा-कन्दुक नहीं बन सकता।
  (चन्द्र० ८४)

- विष्णुवर्धन - किन्तु सुहासिनी, विश्व-नियंता की सृष्टि में कुछ भी आकस्मिक नहीं है। अभिशाप और वरदान के बीच मानव स्वयं अपने हाथ से बोता है। भारत की प्रकृति से जो वरदान प्राप्त हुए हैं वे हमारे पूर्वजों के पुरुषार्थ की उपज हैं, और जो अभिशाप प्राप्त हैं वे भी हमारी त्रुटियों के परिणाम हैं। (उत्स० ४६)

पुरुषों की भाषा में विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग स्त्रियों की तुलना में कम है। भाषा में कठोरता एवं रूक्षता अधिक व आलंकारिकता की अल्पता है।

- बहुत अच्छा !!! उन्मत्त सिंह तुमने बहुत अच्छा कहा। इन दुष्ट चांडाल यवनों के रुधिर से जब तक अपनी पिपासा

- माँ, मेरी माँ। मेरी आई। (वह उसकी बाहों से लिपट जाता है)

(फां० ०१०६)

विस्मयबोधक शब्दों तथा मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग बहुत ही कम है। क्योंकि ये बौद्धिक दृष्टि से उतने परिपक्व नहीं हैं कि वे इनके प्रयोग को समझ सकें या कर सकें।

- वह भी है उसकी। ---- कभी मेरी बर्थ डे प्रेजेंट की गुड़िया ले जाता है उसे, कभी मेरा प्राइज़ का फाउण्टेन पेन। मैं अगर ममा से कह देती हूँ तो अकेले में मेरा गला दबाने लगता है।

(आधे० ७१)

- नीरज : मैं सोया था पर नींद नहीं आयी। मामा जी, आप बुरा मत मानिये कहिए मुझे क्रिकेट खेलने की आज्ञा दे दें।

(मेरी ०५०७१)

- मोहन - माँ, मैं जाऊँगा, मामा जी के पास जाऊँगा।

(कथा० १२५)

बच्चों की भाषा मुख्यत: अभिधा शैली में है। यह अभिव्यक्ति की सरल शैली है। सामान्य जीवन में भी बच्चे इस शैली को अपनाते हैं। अभिधा में भी शब्दों का सरल रूप मिलता है, क्योंकि उनका बौद्धिक स्तर इतना ऊँचा नहीं होता कि वे अन्य शैली में बातकर सकें।

नाटककार कहीं-कहीं बच्चों की भाषा तुतलाना भूल भी गया है। जैसे" आधे-अधूरे " में बच्चा तुतलाकर बोलता है, परन्तु कई जगह पर नाटककार उससे बिलकुल ठीक भाषा बुलवा रहा है।

- छोटी लड़की : नहीं जाऊँगी। (बस्ता उठाकर बाहर को चलती)अन्दर जाओ, तो डांट सीधे हैं। बाहर जाओ, तो किटपिट-किटपिट-किटपिट और जाने को बोलता- जब ऊपर जाकर उनको समझाने जाते हैं।

(आधे०७४)

बच्चों की भाषा चाहे लड़का हो या लड़की लगभग एक-सी है । किशोरावस्था में उसमें अन्तर आ गया है ।

उच्च वर्ग की भाषा : उच्च वर्ग की भाषा निम्न वर्ग की भाषा से काफी भिन्न है । इनमें पात्र अपने पद तथा वर्ग को ध्यान में रखकर बोलता है । उच्च वर्ग के पात्रों की भाषा में अहं भाव की प्रधानता है, चाहे वे स्त्री पात्र हैं अथवा पुरुष पात्र । उच्च वर्ग की भाषा में औपचारिक शब्दों का भी अधिक प्रयोग हुआ है तथा तत्सम शब्दों की प्रधानता है ।

- दुर्गावती - (देखती हुई) समझ गई । (वीर नारायण की पीठ देखती हुई) प्यारे पुत्र (स्नेह से आंसू पोंछती हुई) लाज में मग्न हुई, जो मैंने तुम्हें इस दशा में देखा । शर्म की बात है कि पीठ में घाव न खाकर तूने मेरे दूध की लाज रक्खी । (दुर्गा० १११)

- बिम्बसार : करुणामूर्ति ! हिंसा से रंगी हुई वसुन्धरा आपके चरणों के स्पर्श से अवश्य ही स्वच्छ हो जायगी उसकी कलंक-कालिमा धुल जायगी । (अजात० २१)

- हेमवती - वीर भाई, यही ठीक है । तुम्हारी बहन तुमसे यही आशा रखती है । क्या राजपूतानियां अपने भाई-बेटों को धर्म युद्ध में नहीं भेज देतीं ? क्या उससे उन्हें दुख नहीं होता ? होता तो है, पर कर्तव्य उन्हें बढ़ावा देता है । तो क्या केवल दुख के भय से, कर्तव्य के इस युद्ध में जाने से मैं तुम्हें रोकूंगी ? चलो भाई ! सारा जीवन ही एक युद्ध है । (जय० ४७)

- उच्च वर्ग के पात्रों में कुछ पात्र पद तथा उच्चकुल के कारण उच्चवर्ग के माने गये हैं तथा कुछ पात्र पूज्यनीय माने जाते हैं जिनका स्थान भी उच्च वर्ग के पात्रों में

ही है जैसे ऋषि-मुनि, गौतमबुद्ध आदि । इन पात्रों की भाषा में गहनता तथा गम्भीरता है । भाषा में अधिक शुद्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है । विदेशी, शब्दों का प्रयोग तो बिल्कुल नहीं हुआ है, तद्भव तथा देशज शब्दों की संख्या भी अत्यल्प है । इनकी भाषा में कोई नई भी भावना नहीं है ।

- गौतम : शीतलवाणी - मधुर व्यवहार - से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन् ,संसार-भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं । वाक् संयम की पहली सीढ़ी है ।

  (अजात० ३०)

- दाण्ड्यायन : मेरी आवश्यकताएँ परमात्मा की विभूति -प्रकृति पूरी करती है । उसके रहते ब दूसरों का शासन कैसा ? समस्त् आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति, प्रभु की दी हुई है । मृत्यु के द्वारा वही उसको लौटा लेता है । जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दम्भ नहीं ।

  (चन्द्र० ८५)

- भगवान बुद्ध - कोई किसी को बचा नहीं सकता, भद्रे । जहाँ आग की लपट है, उसके निकट ही पानी का झरना है। अशान्ति के कंटक-कानन में ही शान्ति की चिड़ियों का घोंसला है । उस झरने, उस घोंसले को खुद खोजना होता है । दूसरा, ज्यादा से ज्यादा, रास्ता-भर बता सकता है ।

  (अजात० ११०)

उक्त वर्ग के पात्रों द्वारा अभिधा शैली अधिक व्यवहृत हुई है, परन्तु अभिधा में भी शब्दों का यौगिक या योगरूढ़ रूप अधिकतर प्रयुक्त हुआ है । लक्षणा तथा व्यंजना का क्लिष्ट या गूढ़ रूप भी इनकी भाषा में है । इनकी भाषा में शब्द व्यवस्था संयत तथा वर्णों में गंभीरता, कभी-कभी क्लिष्टता भी आ गयी है । मुहावरों

तथा कहावतों का व्यवहार अत्यल्प है । उनकी तुलना में सूक्तियाँ या उपदेशात्मक वाक्य अधिक है ।

कुछ उच्चवर्ग के पात्र हैं, जो उच्च पद तथा वंश से संबंधित हैं, परन्तु अपनी चरित्र के कारण वे उच्च नहीं हैं । इन पात्रों की भाषा अन्य उच्च वर्ग के पात्रों से कुछ भिन्न है, वे अपशब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं तथा उनकी भाषा में गंभीरता का अभाव है । इस प्रकार के पात्रों की भाषा प्रसाद के नाटकों में, बद्रीनाथ भट्ट की कृति तथा भारतेन्दु के "अंधेर नगरी" में है ।

निम्न वर्ग की भाषा -

नाटकों में निम्न वर्ग की भाषा भी दो प्रकार की है - एक उन पात्रों की भाषा, जो उच्च वर्ग के पात्रों से मिलती - जुलती है, दूसरी उन पात्रों की भाषा, जो उच्च वर्ग से भिन्न भाषा को अपनाते हैं । इन दोनों निम्न वर्ग के पात्रों की भाषा की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं । ये पात्र उच्च वर्ग के प्रति सदैव विनम्र तथा आदर सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों, जगदीश चन्द्र माथुर, तथा ~~[illegible]~~ मोहन राकेश व सुरेन्द्र वर्मा में निम्न वर्ग के पात्र उच्च वर्ग के पात्रों की भांति तत्सम शब्द प्रधान भाषा का प्रयोग कर रहे हैं परन्तु आदरसूचक तथा विनम्रतायुक्त शब्दों के अधिक व्यवहार से उनकी भाषा में भिन्नता प्रकट हो रही है । इसके साथ-साथ उनकी भाषा में कुछ दीनता व संकोच की भावना भी है, जो कि उच्च वर्ग की भाषा में नहीं है । निम्न वर्ग की भाषा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

- जहाँपनाह, जहाँपनाह की खिदमत में मरुमंडल के दीवान अधारसिंह हाजिर हुए हैं । (कुणा० ५०)

- दासी को आज्ञा मिलनी चाहिए ; वह तो प्रतिक्षण श्रीचरणों में रहती है । (अजात० ५०)

- खुदावन्द निआमत । एक परदेश की गानेवाली बहुत ही अच्छी बीबी के दरवाजे पर हाजिर है । वह चाहती है कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए । जो इरशाद हो बजा लाऊँ । (मीरा० २८)

- अलका : क्षमा चाहती हूँ, मेरा यह अभिप्राय नहीं था ------ और प्रमाण के लिए तो मैं कह भी नहीं रही । इतना ही कह रही हूँ कि ------- । (लहरों० ७८)

कुछ नाटकों में निम्न वर्ग के पात्रों की भाषा उच्च वर्ग के पात्रों से बिलकुल भिन्नता लिए हुए है। इनमें निम्न वर्ग के पात्र देशज, गंवारू तथा तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं । भाषा में शब्दों के प्रयोग पर कोई ध्यान नहीं रहता केवल अभिप्राय स्पष्ट करना मुख्य उद्देश्य है -

- मुन्नी : (छटकते हुए व कृतज्ञता भरे स्वर में) जी बाप की बड़ी किरपा है साब । आप जाना ------- (अंजो पृ० ६९)

- गंगाराम : भीतर बहुत काम पड़ा है, मइया । (माया० ४३)

- कमाई : (बिस्तर बटोरता हुआ) पाप है --- इस कूप में ! (मुक्ति० ६६)

- नौकर : नहीं समझा हुजूर ! (अमृत० १४)

निम्न वर्ग के पात्रों की भाषा की एक और विशेषता है कि वे उच्चवर्ग के लोगों को प्रसन्न करने के लिए अपनी भाषा में उनके लिए हुजूर, साहब जैसे संबोधन शब्द बार-बार प्रयुक्त करते हैं जो कि उनकी आदत में भी शुमार हो गया है ।

- नौकर : आते ही होंगे हुजूर । (अमृत० १४)

इन पात्रों ने तद्भव शब्दों की तुलना में उर्दू अरबी -फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी के शब्दों को अधिक अपनाया है ।

- सुधीर : नहीं पसन्द करते, वहीं न --- ।" डियर आंट --- डैडी, दीदी, मेरी सुराही को ज़रा ज़रा ठण्डा दीजियेगा और हाँ, उसके टैंक में पानी भी भरवा दीजिये--- थैंक्यू ।

(मादा० ६)

इन अत्याधुनिक पात्रों की भाषा में औपचारिक शब्द अधिक व्यवहृत हुए हैं । भाषा में व्यंग्यात्मकता भी है ।

- पाठा : सॉरी । आई वाज़ ऑनेस्ट । एब्सर्डिटी ? मैं सपनों में खो गयी थी ।

(अमृत० ५५)

- अरविंद : नहीं-नहीं, मुझे इस तरह छूना अच्छा नहीं लगता --- प्लीज़ --- चलिए किसी डाक्टर को दिखाते हैं । --- । मुझे इस तरह--- प्लीज़ --- ।

(मादा० २६)

- रीता : (परेशान होकर) गुड गॉड । मुझे माफ़ कीजियेगा, मैं सोच में खो रही हूँ ।

(युगे ,पृ० ७३-७४)

दूसरे शिक्षित वर्ग के वे पात्र हैं, जिनमें कुछ पुरानी परंपराओं को माननेवाले हैं तथा कुछ स्वतन्त्र विचारों वाले हैं । इन पात्रों ने ऐसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें तत्सम तथा उर्दू-अरबी-फ़ारसी के शब्दों का आधिक्य है, उसकी तुलना में अंग्रेज़ी शब्द कम है । तद्भव तथा देशज शब्दों का व्यवहार भी इनकी भाषा में अपेक्षाकृत ब अल्प है । इन पात्रों की भाषा में शब्दों के प्रयोग में सतर्कता है । इनकी व्यंग्यात्मकता कम है ।

- प्रदीप : वही तो मैं कहता हूँ । कैंट को यदि कुछ कहते साहब: नाम से दिया जाता तो क्या उसका कुछ बदल

जायगा ? नाम बदल जाने से गुण और दोष नहीं बदल जाते । बदल सकते तो आज तक बुरी चीज़ के अच्छे नाम रख दिये जाते । नहीं माताजी, मैं इस ढोंग में विश्वास नहीं करता ।

(सुगि० ५८-५९)

- श्रीमती राजेन्द्र : आज आप ख०आर० सभा की कंसर्ट देखने जायेंगे या नहीं । मेरा ख्याल है, यह कंसर्ट अत्यन्त सफल रहेगी । मिस शास्त्री और मिस उषा भी नृत्य में भाग ले रही हैं ।

(स्वर्ण० ५८)

- मैंने इन सब खुदाई फौजदारों के तकादों का एक ही हल निकाल रखा है । उन सब के केस टॉप प्रायर्टी (Top Priority) पर रखते हैं, पर उनकी अर्ज़ियाँ और सिफारिशें फाइलों के नीचे दबी रहती हैं और कभी ऊपर नहीं निकलतीं ।

(दीप० ६५)

- उमाशंकर : इसीलिये साम्यवाद का तूफान उमड़ा चला आ रहा है । आप लोगों की अभी नहीं समझ में आता किसी दिन रूस की हालत होगी --- सब कहा जाएगा --- गरीबों ने ज़ुल्म किया, लूट लिया --- फूँक दिया --- मार डाला । वह नौबत क्यों आने पाए, आप लोग पहले ही सम्भल जाइए ।

(मुक्ति० १२२)

इन पात्रों का शब्द - भण्डार काफी विकसित होने के कारण शब्दों के पर्याय रूप भी काफी मिलते हैं । ये पात्र औपचारिक शब्दों का भी प्रयोग अधिक करते हैं । इन शिक्षित पात्रों की भाषा में अभिधा का यौगिक तथा योग-रूढ़ अधिक मिलता है । लक्षणा तथा व्यंजना का भी इनकी भाषा में प्रयोग अन्य पात्रों की तुलना में अधिक हुआ है । यों कि नाटककार ने पात्रों के बौद्धिक स्तर को देखते हुए करवाया है ।

<u>अशिक्षित वर्ग की भाषा</u> : अशिक्षित पात्र अधिकतर गँवारू, देशज तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

- माली - (गिड़गिड़ाकर) का जानी सरकार, पड़ाका होई ।
  रामधई हम तो दैन्हानहिं मा ।

(कुर्ग० २७)

अशिक्षित वर्ग की भाषा में औपचारिक शब्दों का प्रयोग लगभग नहीं है । अशिष्ट शब्द शिक्षित पात्रों की तुलना में काफी ज्यादा है । अभिधा का शब्द भी इनकी भाषा में मिलता है । शिक्षित पात्रों की तुलना में भाषा में उग्रात्मकता अधिक है ।

<u>जाति तथा धर्म के अनुसार भाषा का प्रयोग</u> - कुछ नाटकों में पात्रों की भाषा जाति तथा धर्म अथवा वातावरण के अनुरूप बोली गई है । जैसे हिन्दू पात्रों ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होने के कारण शुद्ध हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है । इसके उदाहरण देखिये -

- कालिदास : यह हरिणशावक इस पार्वत्य-भूमि की सम्पत्ति है, राज-पुरुष । और इसी पार्वत्य-भूमि के निवासी हम इसके स्वजातीय हैं । तुम यह सोचकर भूलकर रहे हो कि हम इसे तुम्हारे हाथ में सौंप देंगे । ---- मल्लिका, इसे अन्दर ले जाकर तल्प पर या किसी आस्तरण पर ------

(आषाढ़० १६)

- शुक्राचार्य : सरस्वती पार किसी झाड़ी में छिपे-छिपे कोई वन चण्डिका का आह्वान कर रहा है । हमारे ब्रह्मावर्त की धरती पर यही पिशाची चढ़ बैठी है । धरती उन्मत्त हो गई है और उसने अपना सारा रस अन्दर खींच लिया है ।

(प०रा० ६८)

- शाल्व : संसार में स्त्री भी एक विचित्र वस्तु है । इसकी आँख की दायीं ओर स्नेह की नदी बह रही है, दूसरी ओर भय और तिरस्कार की लहरें उठी हुई हैं । पुतली में आकर्षण और चितवन में वारुणी की उत्तेजना है ।

(विश० ४२)

इन पात्रों की भाषा में वातावरण के अनुसार परिवर्तन भी आ गया है जैसे मुसलमान पात्र अथवा बंगाली, मुसलमान व अंग्रेज पात्र किसी हिन्दू अथवा अन्य भाषाभाषी पात्र से वार्तालाप कर रहा है, तो उसकी भाषा में परिवर्तन आ गया है । वह कुछ अंग्रेजी या कुछ उर्दू की भाषा का प्रयोग न करके मिश्रित भाषा का प्रयोग करता है अथवा उस पात्र की ही भाषा बोलता है तो उसके बोलने के ढंग में परिवर्तन आ गया है जो स्वाभाविक है । इस प्रकार के उदाहरण भी देखिए -

- बंगाली - (खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला बहुत ठीक है । हमारा विचार कि भारतदुर्दैव हम लोगों का सिर पर आ पड़ै ओर उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है । किन्तु प्रश्न इही है हमलोग उसका दमन करने शकता कि हमारा बोजबल के बाहर का बात है ।

(भारत०ना० ७८)

एक पठान का संवाद देखिये जो हिन्दी में अपने भाव स्पष्ट करता है अन्य भाषाभाषी होने के कारण वह हिन्दी को ठीक से नहीं बोल पा रहा है ।

- सरकार, हमारा आगे से ज्यादा पठान मारा गया ।
  हमलोग आपका दीदार वास्ते सब कट मरेगा ।

(झांसी० १०५)

"झांसी की रानी" में कहीं-कहीं नाटककार ने अंग्रेज पात्र द्वारा शुद्ध हिन्दी को बुलवाया है, जो कि अनमेल लगता है । कुछ पात्रों से उनके क्षेत्र विशेष की भाषा का भी प्रयोग करवाया है । जैसे ग्रामीण पात्रों ने ग्रामीण परिवेश में रहने के कारण ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया है ।

- बन्नू - हाय मोर करम, फाटगा । का मन्दवा अंजोर तौ देखबे नाहीं कीन । मुंह से बोलिये नाहीं फुटत है । हजूर उजोर अंजोर का कुछ करत है । गरीबे पर निगाह रहे हुजूर । हुजूर मुसक्या है ।

(उजा० १०८)

- ग्रामीण : बबुवा , हम सब पढ़े लिखे नाहि न । पढ़इया के लंगोलाय नाहि न । ऊ ठहरे पढ़वार, हम ठहरे छोटवार । छोटन के कहना माने के परत है ।

(बकरी पृ० ३४)

- माली - (गिड़गिड़ाकर) का बानी सरकार, फाटका खोई । रामधाई हम तो देखा नाहि ना ।

(दुर्गा० २७)

बुन्देलखण्ड की ग्रामीण स्त्रियाँ बुन्देलखण्डी भाषा का प्रयोग करती हैं ।

- मैं बखिया पीसत रहीं, दो-दो तीन-तीन घटका मैं कुआ से पानी भर के आउत, रोटी बनउत, अब और का करी ?

(झांसी, पृ० ३०)

ब्रजवासी गांव की स्त्रियाँ ब्रज की भाषा का बुलवाती है ।

- सखी, यह कहा कही है हम तो याको प्रेम देखि बिन मोल की दासी होय रही है और तू याही ताहि बिके जात छाँटि रही है।

(श्रीचन्द्रा० पृ० २५)

" अंधेर नगरी " में पात्र महन्त है । अतः उनकी भाषा सधुक्कड़ी बोली गई है ।

<u>व्यवसाय के अनुसार पात्रों की भाषा</u> - कुछ नाटकों में पात्र जिस व्यवसाय में कार्य कर रहा है, वैसी ही भाषा का प्रयोग करता है । भाषा देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि किस व्यवसाय का पात्र बोल रहा है ।

मछलीवाली की भाषा -

मछलिया ले मछरी ।

मछलिया एक टके के बिकाय ।

लाख टका के वाला जोबन, गांहक सब ललचाय ।

नैन मछरिया रूप जाल में, देखतहि फँसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया मिले बिना अकुलाय।।
(कबीर० ६)

एक चूरनवाले की भाषा -

मेरा चूरन जो कोई खावे,
तो वह स्वस्थ तुरन्त हो जावे,
चूरन जिसने मेरा खाया,
उसने कानून का फल पाया,
मिट्टी बनती हीरा पन्ना,
पत्थर होता अच्छा सोना।
(कांस्पी० ७४)

चाटवाला किस प्रकार बोल-बोलकर बेच रहा है -
चाटवाला : चाट चट-पटी मसालेदार। पानी के बताशे,
दही-बड़े।
(बंबी० ७२)

व्यवसायी वर्ग की भाषा में तुकबन्दी ध्वन्यात्मकता अधिक है तथा अतिशयोक्ति पूर्ण कथन की अधिकता है। डुग्गी पीटनेवाला व्यक्ति एक विशेष प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है -

- खल्क भगवान का, मुल्क विलायत के बादशाह का, हुक्म कंपनी सरकार का। आज से फ्रांसीसी अंग्रेजी इलाके में मिला ली गई। सब लोग कर और लगान को दें। कानून के मीजर वही और कानून नहीं।
(कांस्पी० ७८)

- डुग्गी की आवाज : नगर के नागरिकों, नगर के नागरिकों, आपको होशियार किया जाता है कि बाघ-भालू का खतरा है। जो जहाँ है वहीं खड़ा हो जाये, खड़ा हो तो बैठ जाये, बैठा हो तो लेट जाये। चारों तरफ से खतरा आ सकता है।

पुलिस के अफसर की भाषा -

> - सि- रपोट लिख दो नहीं तो १८२ में तुम्हारा चालान कर देंगे कि तुमने झूठी रपट लिखाई, पंडित जी की गवाही करा देंगे तुम कहीं के न रहोगे ।
>
> (मा०स्तु०पृ०७४)

पात्रानुसार भाषा का प्रभाव नाटक की स्वाभाविकता, रोचकता तथा सफलता पर काफी पड़ता है । नाटककारों ने पात्रों की भाषा के प्रयोग में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखा है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनाथ भट्ट , जी०पी०श्रीवास्तव के नाटकों में तथा हरिकृष्ण प्रेमी के "रक्षाबन्धन" वृंदावनलाल वर्मा के नाटक में पात्रों की जाति एवं धर्म के अनुसार भाषा प्रयुक्त हुई है । इन नाटककारों ने मुसलमान पात्रों से उर्दू, हिन्दू पात्रों से हिन्दी बुलवाई है । वातावरण के अनुकूल उनकी भाषा में परिवर्तन भी किया है जो स्वाभाविक प्रतीत होता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "भारतदुर्दशा" में बंगाली पात्र से तथा वृंदावनलाल वर्मा ने पठान पात्र द्वारा जो हिन्दी बुलवायी है, उसमें भाषा काफी सफल रही है । देश के अनुकूल "झांसी की रानी" तथा "श्री चन्द्रावली" में भाषा व्यवहृत हुई है । जी०पी०श्रीवास्तव ने ग्रामीण पात्रों से ठेठ ग्रामीण तथा वकील से अदालत की भाषा बुलवायी है । कहीं-कहीं इन नाटककारों ने अस्वाभाविकता भी ला दी है जैसे बद्रीनाथ भट्ट ने "दुर्गावती" में वातावरण को देखते हुए मुसलमान पात्र से शुद्ध हिन्दी तथा हिन्दू पात्र से शुद्ध उर्दू फारसी का प्रयोग करवाया है । इन पात्रों की भाषा की कोई छाप उन पर नहीं रहने दी है, जो कुछ खटकता है । इसी प्रकार वृंदावन लाल वर्मा ने अंग्रेज पात्रों द्वारा शुद्ध हिन्दी का कहीं-कहीं व्यवहार करवाया है जो अनुचित लगता है ।

कुछ नाटककारों ने पात्रों की भाषा एक ही रखी है । पात्रों के जाति व वर्ग के अनुरूप भाषा को रखना उचित नहीं समझा । कथावस्तु को देखते हुए भी भाषा का यह दृष्टिकोण अपनाया है । इस प्रकार की भाषा

जयशंकर प्रसाद , हरिकृष्ण प्रेमी के " रक्षा" ,जगदीश चन्द्र माथुर , उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी , सुरेन्द्र वर्मा तथा मोहन राकेश के " लहरों के राजहंस " व आषाढ़ का एक दिन तथा अश्क के " जय पराजय " में प्रयुक्त हुई है । इन नाटकों में पात्रों की भाषा में बहुत सरल संकेत मिलता है, जिससे उनके वर्ग का आभास होता है । नाटक की भाषा के विषय में प्रसाद के विचार हैं - " मैं तो कहूँगा कि सरलता और क्लिष्टता पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार भाषा में होगी ही और पात्रों के भावों और विचारों के ही आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए ।[1] अश्क के नाटकों " स्वर्ग की झलक" तथा " अंजो दीदी" व विष्णु प्रभाकर , सत्येन्द्र शरत्, गोविन्द वल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण लाल व लक्ष्मी नारायण मिश्र तथा प्रसाद नारायण मिश्र, कुमारदास और विपिन कुमार अग्रवाल ने भाषा में व्यावहारिकता लाने का प्रयत्न किया है । इन नाटककारों की कृतियों में शिक्षित अशिक्षित तथा स्त्री-पुरुषों की भाषा को कृत्रिमता से काफी बचाया है । अश्क ने भाषा के विषय में लिखा है -" आज के नाटक की भाषा उर्दू- हिन्दी आसान ज़बान ही हो सकती है । न संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, न अरबी-फ़ारसी मिश्रित उर्दू ।"[2]

" स्वर्ग की झलक" के प्रथम संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि" नाटक की भाषा को शिक्षित लोगों की भाषा के अधिक समीप रखने का प्रयास किया है ताकि कृत्रिम प्रतीत न हो । इसलिए अंग्रेज़ी के शब्द अनिवार्य रूप से आ गये हैं और भाषा दुरूह और क्लिष्ट नहीं ।[3]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कृति " बकरी" में जो पात्र जिस वर्ग तथा समाज से संबंधित है, उसी उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करवाया है । ग्रामीण पात्र गँवारू भाषा का प्रयोग करते हैं । पुलिस विभाग के कर्मचारियों की भाषा में पुलिस विभाग की भाषा की छाप है ।

१- काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ७६ ।

२- पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी : भूमिका, पृ० ३२ ।

३- स्वर्ग की झलक - उपेन्द्रनाथ' अश्क' - प्रथम संस्करण ।

" इस [illegible] में भी पात्र परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं जैसे एक स्थल पर जादू का खेल दिखा रहे हैं तो जादूगर जिस प्रकार की भाषा बोलते हैं उसी भाषा को बोलते हैं । कहीं तो अशिक्षित पात्रों, की तरह और कहीं शिक्षित पात्रों की भाँति भाषा का प्रयोग करते हैं । नाटक में सजीवता लाने के लिए भावानुकूल भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इससे उस नाटक का चित्र खिंच जाता है ।

प्रसंगानुसार भाषा

प्रसंग के अनुसार भाषा के प्रयोग का प्रभाव नाटक की सफलता तथा असफलता पर काफी पड़ता है। किसी भी विषय या प्रसंग को लिया जाय तो प्रत्येक में भाषा का अपना अलग अलग स्वरूप होता है। यदि साहित्य में प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग नहीं होगा तो सफल अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। जैसे यदि प्रेम के प्रसंग में माधुर्य गुण युक्त भाषा का प्रयोग न करके ओजमयी या व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग करें तो उसी प्रेम का भाव न व्यक्त होकर रोष या आवेश की अभिव्यक्ति होने लगेगी।

नाटकों में भी प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग नाटककारों ने किया है। वीररसानुकूल प्रसंगों में जोश, उत्साह, आवेश व संघर्ष आदि भाव के प्रकटीकरण में ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है। ऐसे प्रसंगों में भाषा में कठोरता तथा रूक्षता के दर्शन होते हैं। भाषा में अत्युक्तिपूर्ण वाक्यों की अधिकता है। काव्यात्मकता तथा आलंकारिकता को स्थान नहीं मिला है। कहावत तथा मुहावरों को इन प्रसंगों में महत्व मिला है जो भाषा में सजीवता लाते हैं। कुछ उदाहरण ऐसे प्रसंगों के प्रस्तुत हैं -

- जाओ वीरो आज अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए प्रलय की भांति राठौर सेना पर टूट पड़ो। नगर के द्वार खोल दो। जहाँ कोई राठौर मिले मृत्यु के घाट उतार दो। सब ओर हमारे आक्रमण का शोर मचा दो। आज अपने प्रिय राघव की मृत्यु का देश की दासता की बेड़ियों में जकड़ने का अत्याचारों का सब का खूब बदला लो।

(बप० १३८)

सेनापति! देखो उन कायरों को रोको। उनसे कह दो कि आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिन्ता नहीं। उन्हें बता देना होगा कि भारतीय ललना

जानते हैं । बादलों से पानी बरसने की जगह रक्त बरसे, सारी सेना छिन्न भिन्न हो जाये, रुधिर विरल हो, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परन्तु एक पग भी पीछे हटना महीश्वर के लिए असंभव है ।

(चन्द्र० १०२)

उग्र भावों के प्रसंग में आक्रोशपूर्ण भाषा प्रयुक्त हुई है । ऐसे प्रसंगों में वाक्य प्राय: छोटे तथा वेगपूर्ण आये हैं, कहीं कहीं लम्बे वाक्य भी आ गये हैं तो उन्हें खंडित करके बल देकर बोला गया है । यथा -

- पाताल फोड़कर निकलेगी सेना । आसमान से बरसेगी सेना । मेवाड़ के वीरों को प्राणों का मोह ! आज मैं यह क्या देख रही हूँ । लड़ते लड़ते मर जाना या विजय प्राप्त करना, राजपूत तो यही दो बातें जानते हैं । यह हीन शब्द उन्होंने किससे सीख लिया ? यदि प्राणों का इतना मोह है तो चूड़ियाँ पहनकर घर बैठो, लाओ यह तलवार मुझे दो । (रक्षा०)

इन आवेश के प्रसंगों में कहीं-कहीं व्यंजना द्वारा तीखापन लाया गया है ।

प्रेम के प्रसंग में भाषा का स्वरूप बिल्कुल भिन्न हो गया है । इसमें भाषा माधुर्य गुण युक्त व्यवहृत हुई है । भाषा में स्निग्धता तथा रसात्मकता है । ऐसे प्रसंगों में भाषा में आलंकारिकता अधिक आ गयी है तथा विशेषण भाषा को संपन्न बनाने में अधिक सहायक हुए हैं । वाक्य भी प्राय: छोटे रखे गये हैं ताकि अधिक प्रभाव डाल सकें जहाँ वाक्य लम्बे हो गये हैं वहाँ खंडित करके बोले गये हैं ।

- प्रियतम ! यह भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय, विलास के उपकरणों के साथ प्रस्तुत है, उन्मुक्त आकाश के नील-नीरव मंडल में दो बिजलियों के समान क्रीड़ा करते-करते हम लीन तिरोहित हो जायें । (स्कन्द० १५६)

तुम सौन्दर्य में उर्वशी को लज्जित करनेवाली हो - और मेरी आँखों के लोभ मधु-लोभी भ्रमरों ने तुम्हारे सौन्दर्य के आकर्षण का अनुभव न किया हो ऐसी भी बात नहीं है, लेकिन अंजनी मैंने तुम्हारे कंठ में - तुम्हारे चरणों की गति में, भारती के दर्शन कर उसके चरणों में अपने हृदय का पुष्प अर्पित किया है । (उपमा० ६४)

रम्य प्रकृति के चित्रण में भी कोमल कान्त पदावलियों ~~[illegible]~~ को महत्व मिला है । ऐसे प्रसंगों में भी भाषा अलंकारिकता तथा आध्यात्मिकता से बोझिल है । ऐसे प्रसंगों में विशेषण द्वारा भाषा को प्रभावपूर्ण बनाया गया है । जैसे -

- आसमान से बातें करनेवाले हरे भरे पहाड़, कल-कल, छल-छल करते हुए नाचते कूदते जानेवाले झरने, समंदर से होड़ करनेवाले तालाब, बहिश्त के बगीचों को मात करनेवाले, घने जंगल । कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बखेर दी है ।   (रसा० २३)

- एक विस्तृत अमराई - आम की हर डाल मंजरियों से लदी झुकी, भौंरे जिन पर गुंजार कर रहे, पछुआ-हवा जिनसे खिलवाड़ कर रही- आम के पेड़ों के बीच की [illegible] में सरसों की फूली क्यारियाँ - बेलों से लिपटी लताओं से जहाँ-तहाँ बन गई कुंजें - पूरब की किरणों से अभी सोना नहीं गया है - मंजरियों, पत्तों, फूलों पर की ओस की बूँदें उनके स्पर्श से चमचम कर रहीं - चिड़ियों की चहचह में दूर से सुनाई पड़नेवाली कोयल की कुहू -   (अम्ब० १)

ऐसे वर्णनात्मक स्थलों पर वाक्य प्रायः लम्बे व्यवहृत हुए हैं । हास्य-व्यंग्यपूर्ण प्रसंगों में भाषा का कुछ भिन्न स्वरूप मिलता है । ऐसे प्रसंगों में लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियों द्वारा भाषा को तीक्ष्ण तथा प्रभावशाली बनाया गया है । भाषा अतिशयोक्ति पूर्ण तथा अलंकृत भी प्रयुक्त हुई है । भाषा में मुहावरों तथा कहावतों को अधिक स्थान मिला है । व्यंग्यात्मक स्थलों पर भाषा में वाक्पटुता तथा वक्रता के दर्शन होते हैं, साथ ही तीखापन तथा कठोरता भी है । हास्य व्यंग्यपूर्ण स्थल की भाषा का स्वरूप देखिए -

- मोटा भाई बना - बनाकर मूँड़ लिया । एक तो कुछ ही वक्त तब पढ़िया के लाड़, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया, बराबरी का झगड़ा उठा, बांय-बांय गिनी गई वर्णमाला कंठ कराई, बस हाथी के दांत दिख ही गए । मन की मैना ऐसी भागी कि कहीं में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली ।

(भारत०भाग० २८)

हास्य की पुष्टि के लिए लाए हुए प्रसंगों में भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण तथा व्यंजनायुक्त है।

> - अल्लाहरक्खा मैंर कहाई नौकरी लागे मूठ होली। धक-धक-धक धक मार मछियाए के पिटपिटऊ डेर के पिन्हि। नीयर चिराग नटियी हुसै बहसियाहन। हुआ हमार उम्कवा किन्ची नाहीं बचा। घर घर लाइए। कलम पाटू-पाटू लिखिस। राम दोहाई - का कहा है का कहा कि आप कहीं भदयां का हुजूर कहै। हुआ मैंड़ी के आप कहीं गदहा तथा बछड़ पुना लिखिन।
>
> (उल्ट० २३)

उपर्युक्त हास्य व्यंग्यपूर्ण प्रसंगों में अधिकांशत: तत्सम शब्दों का अभाव है क्योंकि इनसे भाषा में गंभीरता आ जाती है। तत्सम शब्दों की तुलना में ऐसे स्थलों पर तद्भव, देशज शब्द अधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति कर रहे हैं।
हास्य व्यंग्य का एक और उदाहरण प्रस्तुत है -

> - शिष्टाचार को यों कह लो, कि फैशन का प्रतीक है। उधर आपकी शादी हुई उधर आपके गले में शिष्टाचार का जुआ पड़ा। ये आपकी सास है - इनके सामने शिष्टता से यों मुस्कराओ मानो आपके सारे दांत झड़ गये हैं। ये आपके ससुर है - इनके सामने विनम्रता से ऐसे बैठो, मानो आपकी कमीज़ मोतियों की है। ये आपकी पत्नी हैं, आचार व्यवहार, सदाचार और शिष्टता की मौसी।
>
> (बैसी० ४९-५०)

कभी-कभी हास्य की पुष्टि के लिए तत्सम की अधिकता भी लायी गयी है। गहन, गम्भीर विषयों पर चर्चा करते हुए नाटकों में शुद्ध व गंभीर भाषा अधिकतर रखी गयी है। ऐसे स्थलों पर भाषा में शब्दों का क्रम सुव्यवस्थित है। तत्सम शब्दों को गंभीरता लाने के लिए प्रधानता दी गयी है। व्यंजना तथा आलंकारिकता का अभाव है। मुहावरों तथा लोकोक्तियों को भी स्थान नहीं मिला है, उनके स्थान पर सूक्तियां तथा उपदेशात्मक वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। इनमें गंभीरता तथा कहीं-कहीं शुद्ध क्लिष्टता का भी समावेश हुआ है। यथा -

- मातुलीन - शांत युवक । इस गतिशील जगत में परिवर्तन पर आश्चर्य । परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन प्रलय हुआ । परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है । स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ट शान्ति मरण है । प्रकृति क्रियाशील है । समय पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुंजी है । पुरुष उदास किया जाता है, उत्पीड़ण होता है । स्त्री आकर्षण करती है । यही वह प्रकृति का चेतन रहस्य है ।

(स्कंद० २९)

मुसलमानी संस्कृति के गंभीर पक्ष पर चर्चा करते हुए भाषा में उर्दू फ़ारसी के कुछ शब्दों का प्रयोग किया गया है -

- कुरान शरीफ में लिखा है कि - उससे बढ़कर जालिम कौन हो सकता है, जो किसी को खुदा की इबादत गाहों- मंदिरों में इबादत करने से रोकता है, उनके मंदिरों को तोड़ने की कोशिश करता है । जो लोग ऐसे जुल्म करते हैं, वे वाकई इस लायक नहीं कि खुदा की इबादत गाहों में पैर रखें । याद रखो ऐसे आदमियों की दुनिया में बदनामी होती है और उन्हें दूसरी दुनिया में बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है ।

(रक्षा० ५५)

दार्शनिक विषय पर चर्चा करते हुए भाषा में गंभीरता लाई गई है -

- + + लेकिन ज्यादातर मानव मन [illegible] की तरह होता है, जो शुरू में कलकल - छलछल करता, तरंगों से खुलता, फेनों से भरा, कभी इधर, कभी उधर भटकता बहकता, चक्कर काटता, गिरता मरता अन्ततः नदी या नद में परिणत हो, अपनी गति से आप ही क्षुब्ध अपनी उठाई हुई लहरों से आप ही पीड़ित होकर हाहाकार आर्तनाद कर उठता है और त्राहि त्राहि करता किसी सागर में अपने को खो देता है । हाँ, यहाँ भी भाग्य पर निर्भर है कि वह प्रशान्त सागर प्राप्त करता है या फिर किसी क्षीर-सागर की कुक्षि में ही खाया जाता रहता है ।

(अम्ब०१००)

नाटकों में अदालत से संबंधित किसी विषय पर चर्चा हुई है, तो उसमें भाषा का स्वरूप सामान्य भाषा से बिलकुल भिन्न हो गया है । ऐसे प्रसंगों में अदालत के शब्द भाषा में व्यवहृत हुए हैं । तत्सम शब्दों के स्थान पर विदेशी शब्दों की प्रधानता रही है जिसमें उर्दू-फारसी के शब्द प्रमुख हैं । वार्तालाप अभिधा शैली में है । आलंकारिकता , लक्षणा, व्यंजना को यहाँ स्थान नहीं मिला है । ऐसे नाटकों की भाषा में एक विशेष प्रकार का अदालती लहजा मिलता है ।

न्यायालय में अपराध के विषय में जो भाषा बोली गई है वह यहाँ प्रस्तुत है -

- मैं माधव पर चोरी का इल्जाम लगाता हूँ । उसने मोहनदास को शराब में बेहोश कर उसकी जेब से कामिनी के जेवर चुरा लिए हैं। मैं न्यायालय से विनती करूँगा कि उसके नाम वारंट निकाल कर उसे गिरफ्तार किया जाय । उसकी तलाशी ली जाय, शायद कभी चोरी का माल बरामद हो सकेगा ।

(अंगूर० ६४) .

अदालत में सजा सुनाते हुए जज जिस भाषा को कहता है, वह भाषा एक कानूनी भाषा है ।

- सिपाही सार्वजनिक संपत्ति लूटने के आरोप में इस औरत को दफा [illegible] चोरी के आधीन दो साल सख्त कैद की सजा दी जाती है । साथ ही पाँच सौ रुपया जुर्माना । न देने पर छः महीने की कैद बामशक्कत ।

(बकरी २८)

कानून के विषय में चर्चा करते हुए कानूनसे संबंधित शब्द अधिकतर आये हैं । इस भाषा में हिन्दी के तत्सम शब्दों की न्यूनता तथा उर्दू फारसी के शब्दों की अधिकता मिलती है ।

- आजकल का कानून ही ऐसा है । इसमें सजा उसको नहीं दी जाती जो अपराध करता है --- सजा तो केवल उसको होती है जो अपराध छिपाना नहीं जानता । बस --- यही कानून है । आज यह मुकदमा कबूल कर गया कि उसके मरवाने का इन्तजाम यह कर गया कि उसके मरवाने का इन्तजाम यह कर

गया है । अगर वह मारा गया और मैं चाहूँ भी कि वही सजा दूँ तो मौका नहीं मिलेगा ।

(सिन्दूर० ३५-३६)

मुकदमे के प्रसंग में एक स्थल पर अदालत की भाषा को अच्छी उभारकर प्रस्तुत किया है-

- मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं रतनकांत वल्द रामपति सिंह ---- का रहनेवाला हूँ । ता० पांच दिसम्बर दिन रविवार को छठा दिन रहते मैं अपना धान देखने गया था कि बाग नंबर १३१ के पश्चिम आराजी नं० १३३ में रोपा गया है देखने गया । एक मनु ... जो वकालत करते हैं मुझसे बातें करने लगे थे मैं पीछे से एक साथ मुझपर चार लाठियाँ पड़ीं मैं घबराकर मुड़ पड़ा । श्री मनोहर मुझे बातों में फंसाए हुए थे उछलकर कई कदम पीछे हट गये और बोल उठे " मारो सालो अब क्या देखते हो ।" मैंने देखा आठ आदमी लाठियाँ ले साथ खड़े हैं, एक ही साथ आठ लाठियाँ ऊपर उठीं और मुझ पर गिरीं । मैं वहीं गिर पड़ा । गिरने पर मुझे कितनी लाठियाँ लगीं कह नहीं सकता ।

(सिन्दूर० १४४-१४५)

विवाह के स्थल पर भाषा वैसी ही प्रयुक्त हुई है जैसी विवाह में होती है -

- हे वीर ! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके इस हस्त को ग्रहण करती हूँ । आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिए । आपको मैं और मुझको आप आज से पत्नी -पति भाव करके प्राप्त हुए हैं ।

(मुक्ति० ३२)

इसमें तत्सम शब्द प्रधान भाषा को रखा गया है । भाषा गंभीर तथा सुव्यवस्थित है।

राजनीति से संबंधित विषयों पर वार्तालाप करते हुए भाषा अभिधा शैली प्रधान प्रयुक्त हुई है । भाषा में किसी प्रकार की आलंकारिकता या काव्यात्मकता नहीं है, बल्कि भाषा सीधी-सादी तथा व्यावहारिक प्रयुक्त हुई है । देश, समाज ,राष्ट्र आदि शब्द जो राजनीति से संबंधित हैं वे भाषा में बार-बार प्रयुक्त हुए हैं । यथा

कई बार नाटककारों ने प्रसंगानुसार भाषा में स्वाभाविकता का अतिक्रमण भी कर दिया है जिससे इन स्थलों की भाषा में सहजता तथा स्वाभाविकता नष्ट हो गई है । जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भाषा की काव्यात्मकता कहीं-कहीं खटकती है । 'स्कंदगुप्त' में मातृगुप्त की भाषा जो भावुक स्थिति में प्रयुक्त हुई है, उसमें काव्यात्मकता अधिक होने के कारण भार से भाव दबकर रह गये हैं । उदाहरण -

- उस हिमालय के ऊपर प्रभात सूर्य की सुनहली प्रभा से आलोकित बर्फ का पीले पोखराज का-सा एक महल था उसमें नवनीत की पुतली झाँक कर देखती थी । वह हिम की शीतलता से सुसंगठित थी । सुनहली किरणों को जलन हुई । तप्त होकर महल को गला दिया । पुतली ! उसका मंगल हो, हमारे अश्रु की गर्म्य शीतलता उसे सुरक्षित रखे । कल्पना की भाषा के पंख गिर जाते हैं, मौन-नीड़ में निवास करने दो । छेड़ो मत मित्र ।
(स्कंद० २०)

प्रेम प्रसंगों की भाषा में कल्पना तथा अनुभूति की अधिकता से कहीं-कहीं भाषा विषय से हट गयी है उसमें संगति नहीं रह गयी है । भाषा के सामने भाव क्षीण पड़ गये हैं । यथा -

- तब मुझे अपने मुख चन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं उस अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्रमालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा को लाँघ जाऊँ और तुम्हारा सुरभि निःश्वास मेरी कल्पना को [illegible] आलिंगन करने लगे ।
(ध्रुवा० ५२)

- जब फूलों की हंसी कलियों की मुस्कराहट से उलझती है, तब उस हंसी में, उस मुस्कराहट में तुम ही झाँक जाती हो । भौंरा जब फूल पर मंडराकर गुनगुनाने लगता है तब मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि वह तुम्हारा ही नाम लेकर कोई गीत गा रहा है । तुम मेरे हृदय की कमल हो और उन प्यासी आँखों की तरह ।
(विशा० ५६)

- ये मनुष्यता के लिए अभिशाप हैं - शांति को भस्मसात् करनेवाले दावानल हैं, प्रेम के कुसुम को कुचल डालने वाले उन्मत्त पशु हैं, देशाभिमान राष्ट्रीयता , जातीयता, वंश गौरव और न जाने भिन्न-भिन्न कृत्रिम भावना का नशा पिलाकर मनुष्यता को रणोन्मत्त कर रक्त की नदियां प्रवाहित करनेवाले पिशाच हैं । वारुणी ! तुम मेरी आँखों के आगे से हट जाओ । (रदा०१४)

भाषा में वाक्य की दीर्घता भी प्रसंग के अनुरूप नहीं है । प्रसंगानुसार भाषा नाटक की कथा से ही प्रवाहित हुई है । ऐतिहासिक नाटकों में भाषा अधिकतर ओज तथा माधुर्यगुण वाली प्रयुक्त हुई है । प्रसाद गुणयुक्त भाषा अपेक्षाकृत कम व्यवहृत हुई है । वीरता, आवेश ,रोष आदि के प्रसंग में भाषा में ओज है तथा शृंगार ,शोक, वात्सल्य के स्थलों पर भाषा में कोमलता है । हास्य व्यंग्यपूर्ण स्थलों पर भाषा प्रसादगुण युक्त है । ऐसे प्रसंगों में लक्षणा व्यंजना शक्तियों को महत्व मिला है । गंभीर विषयों के विन्यास में भाषा साहित्यिक तथा क्लिष्ट भी हो गई है । इस प्रकार की भाषा का प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नीलदेवी नाटक में जयशंकर प्रसाद के सभी नाटकों में, हरिकृष्ण प्रेमी के " रक्षा बंधन", छाया में , उदयशंकर भट्ट की रचना " विद्रोहिणी " अम्बा" उपेन्द्रनाथ अश्क के " जय पराजय", में हुआ है । जयशंकर प्रसाद तथा हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में कहीं-कहीं भाषा का स्वरूप खटकता भी है । जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भाषा की काव्यात्मकता तथा अलंकृति से विषय प्रायः दब गया है, अतः भाषा और विषय में संगति नहीं रह जाती है। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में गंभीर विषय के विन्यास में कभी-कभी भाषा में गंभीरता कम हो गयी है तथा ओज आ गया है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के " अंधेर नगरी " में हास्य व्यंग्य के प्रसंगों की अधिकता के कारण भाषा सरल तथा प्रसादगुणमयी रखी गई है । रोष के स्थल कम होने के कारण भाषा में ओजकता कम है ।" श्रीचन्द्रावली " में भाषा की मधुरता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है क्योंकि कथा का विषय ही प्रेम है । इसमें भाषा में रूपात्मकता अलंकृति तथा काव्यात्मकता गुण मिलते हैं ।" भारत दुर्दशा" में व्यंग्यात्मक स्थलों पर लक्षणा व्यंजना वाली भाषा द्वारा प्रभावशाली अभिव्यक्ति की गई है । आन्तरिक शोक को प्रकट करनेवाले स्थलों पर भाषा

भावुकता पूर्ण कथा गढ़ दी गई है ।

भारतेन्दु जी की भाषा के विषय में मिश्र बन्धुओं ने एक पत्रिका में लिखा है" भाषा माधुर्य, प्रसाद, अर्थव्यक्ति, कान्ति, सुकुमारता आदि सद्गुणों को धारण किये हुए है । + + + भारतेन्दु ने चलती-फिरती हंसती बोलती, मंजी हुई कसीली चमत्कार भाषा की ऐसी उत्कृष्ट शैली निकाली जिसे अन्य लेखकों ने दोनों हाथों से स्वीकारा ।"[1]

बद्रीनाथ भट्ट तथा वृंदावनलाल वर्मा की ऐतिहासिक रचनाओं "दुर्गावती तथा झाँसी की रानी" में उत्साह, आवेग तथा रोष के प्रसंग अधिक आये हैं, जिनमें भाषा में ओजत्व है । शोक तथा हास्य व्यंग्य के प्रसंग इनमें कम है अत: वात्सल्य तथा प्रसादगुण युक्त भाषा कम प्रयुक्त है । कहीं-कहीं व्यंग्य में व्यंजना का बहुत तीक्ष्ण प्रयोग मिलता है । शोक तथा वात्सल्य की अभिव्यक्ति में कोमलकान्त पदावलियाँ आयी है । प्रसाद के नाटकों की तुलना में इन नाटकों में काव्यात्मकता तथा अलंकृति कम है । विषय तथा प्रसंग के साथ भाषा की संगति लायी गयी है ।

रामवृक्ष बेनीपुरी का "अम्बपाली" भाषा की दृष्टि से उत्तम नाटक है । इसमें भाषा प्रसंगानुकूल सशक्त तथा प्रभावपूर्ण बन पड़ी है । इस कृति में विषयानुसार मुख्य दो प्रकार की भाषा मिलती है । प्रेम प्रसंगों तथा अन्य भावुकतापूर्ण स्थलों पर भाषा में मधुरता है । गूढ़ विषयों पर चिन्तन करते हुए गंभीर भाषा का चयन किया गया है ।

जी०पी० श्रीवास्तव के प्रहसन "उलट फेर" में हास्य के प्रसंगों की प्रधानता है । इसके अतिरिक्त प्रेम तथा आवेग की स्थितियाँ भी आयी हुई हैं । इस नाटक के प्रत्येक प्रसंग की भाषा में एक आक्रोश है, चाहे वह किसी प्रसंग की हो । यह सब प्रायः नाटक की कथावस्तु के कारण है क्योंकि अधिकांशत: स्थितियों में आवेग तथा रोष है ।

१- साहित्य संदेश पत्रिका : भारतेन्दु अंक, अक्टूबर-नवम्बर, १९५०
(भारतेन्दु की गद्य भाषा - प्रो० विनय मोहन शर्मा का लेख) ।

अश्क के नाटकों में 'अंजो दीदी' तथा 'स्वर्ग की झलक' में हास्य व्यंग्य के स्थल अधिक हैं जिनमें भाषा व्यंग्य विनोदपूर्ण लिये हुये वक्रता तथा व्यंजनात्मकता है । आवेश तथा रोष के प्रसंग में भाषा में ओजस आ गया है । नाटक में व्यावहारिकता लाने के लिए सरल ,सुबोध तथा बोलचाल की भाषा को महत्व दिया गया है ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी अपनी रचनाओं में भाषा को यथाशक्ति सजीव रखा है । वात्सल्य, प्रेम तथा भावुकतापूर्ण स्थलों पर माधुर्य मयी भाषा तथा जहाँ आवेशपूर्ण स्थल आये हैं, वहाँ भाषा में ओजगुण को रखा गया है। व्यंग्य के स्थलों पर व्यंजना का तीखा प्रयोग भी किया गया है । मिश्र जी ने भाषा में प्रसंगानुकूल स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया है, अतः उनके नाटकों की भाषा में अलंकारिकता तथा काव्यात्मक सजावट कम मिलती है । भाषा के विषय में उनका कहना है "जिस स्वाभाविकता के साथ हम अपने घर में रहते हैं, उसी स्वाभाविकता के साथ हमें रंगमंच पर रहना है - अथवा दूसरे शब्दों में रंगमंच और हमारे स्वाभाविक निवास में कोई विशेष अंतर नहीं व्यक्त होना चाहिए । कला का काम है जीवन को जगा देना । इस कारण इस युग में रंगमंच की स्वाभाविकता पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है ।"[1]

जगदीश चन्द्र माथुर ने भी प्रसंगों के अनुकूल भाषा की ओर दृष्टि रखी है । उनके नाटकों में अधिकतर भाषा में छोटे वाक्यों को महत्व मिला है । ~~उत्साह~~ ,आवेश तथा उत्साह के प्रसंगों में भाषा में ओजस्विता है । प्रेम तथा वात्सल्य में भाषा में मधुरता है । उनके नाटकों में काव्यात्मकता अधिक है । विषयानुसार भाषा क्लिष्ट, भावात्मक तथा व्यंजनात्मक है ।

मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' में भाषा काव्यात्मक तथा गंभीर है । प्रेम के प्रसंगों में प्रसाद के नाटकों से भिन्न भाषा उन्होंने रखी है । भाषा माधुर्यगुण युक्त अवश्य है,

---

१- 'मुक्ति का रहस्य' भूमिका' में मुक्तिवादी क्यों हूँ ।

परन्तु अलंकारपूर्ण कम है। प्रसाद के नाटकों की भाँति इनके नाटकों में भी प्रत्येक प्रसंग में तत्सम शब्द अधिक व्यवहृत हुए हैं, परन्तु इनसे क्लिष्टता नहीं आने पायी है। भाषा का यह रूप नाटककार ने कथा के देशकाल को देखते हुए रखा है।

समस्यापूर्ण तथा सामाजिक नाटकों में आये हुए आकुलता, विषाद झुंझलाहट वाले के प्रसंगों में भाषा आक्रोशपूर्ण बोली हो गई है। भाषा में तीखापन तथा व्यंग्य अधिक मिलता है। इन नाटकों में भाषा को सामान्य जीवन के निकट ही बनाकर रखा गया है। इस प्रकार की भाषा आधे अधूरे, घुग्घी क्रान्ति तथा भूर की बेटी में मिलती है।

मादा कैक्टस, अमृतपुत्र तथा ढोलन में नाटककारों का ध्यान विषयानुकूल भाषा लिखने की ओर नहीं दिखाई देता। प्रायः सभी विषयों पर इनमें एक सी ही भाषा मिलती है। इनकी तुलना में "रस गंधर्व" में प्रेम, हास्य व्यंग्य तथा साधारण स्थलों को दृष्टि में रखकर नाटककार ने माधुर्य, हास्यपूर्ण तथा सामान्य बोलचाल की भाषा को महत्त्व दिया है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की रचना बकरी तथा सुरेन्द्र वर्मा के "नायक खलनायक विदूषक" तथा सेतुबन्ध में भाषा प्रसंगों को देखते हुए रखी गई है। बकरी में आवेशात्मक स्थलों पर भाषा में व्यंग्य तथा ओजपूर्ण है। सुरेन्द्र वर्मा ने भी आवेश के कुछ स्थलों पर भाषा में व्यंजना का तीखा प्रयोग किया है। इन्होंने विषय के अनुरूप माधुर्य गुण युक्त भाषा को "सेतुबंध" में प्रयुक्त किया है। "नायक खलनायक" विदूषक की भाषा में व्यावहारिकता की ओर दृष्टि अधिक रखी गई है जिससे इसकी भाषा में साहित्यिकता कम आ पाई है और बोल चाल की जीवंत तथा प्राणवान भाषा का ही अधिक प्रयोग हुआ है।

सातवाँ अध्याय

आलंकारिक शैली

शब्दशक्ति

शैली विज्ञान की दृष्टि से शब्द शक्तियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । इन शब्द शक्तियों से भावाभिव्यक्ति में बहुत सहायता मिलती है । नाटकों में अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना तीनों शब्द शक्तियों के द्वारा भावाभिव्यंजना की गयी है । अभिधा द्वारा मुख्यार्थ का बोध कराया है । सभी नाटकों में प्रधान रूप से अपनाया गया है । लक्षणा का भी नाटकों में कम चमत्कार नहीं है, इस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ प्रकट किया है । भाव की अधिकता तथा आवेशात्मकता को प्रकट करने में इसका बड़ा योगदान रहा है । व्यंजना शक्ति द्वारा नाटकों में व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराई गयी है । इसमें प्रायः गूढ़ या सांकेतिक अर्थ लिया गया है ।

नाटककारों ने अभिधा, लक्षणा, व्यंजना के चमत्कार को प्रदर्शित करने में कई दृष्टिकोण अपनाये हैं ।

पात्रों के अनुसार भी शब्द शक्तियों की व्यवस्था नाटकों में की गई है । नाटकों में अभिधा को प्रमुख रूप से अपनाया गया है क्योंकि सामान्यतः व्यवहार में इसी शक्ति को अपनाया जाता है । इस अभिधा शक्ति के प्रयोग में भी पात्र को दृष्टि में रखते हुए भिन्नता रखी गयी है ।

अशिक्षित, ग्रामीण तथा निम्न वर्ग के पात्रों द्वारा अभिधा का मृदु रूप अधिकतर व्यवहृत कराया गया है, ऐसा प्रयोग पात्रों के बौद्धिक स्तर को दृष्टि में रखकर किया गया है । इन पात्रों से प्रायः एक से ही शब्दों का बार-बार प्रयोग करवाया है -

- महाराज ! गुलाम का कोई कसूर नहीं (कीर० १६)
- अब चलकर महारानी जी के सामने कुछ बढ़-बढ़कर बातें मारे (दुर्गा० ८६)

महाराज, महारानी शब्द का अभिप्राय राजा, रानी से लिया गया है । नाटकों में ग्रामीण पात्रों द्वारा अधिकतर एक ही अभिधा शब्द द्वारा अभिव्यक्ति हुई है ।

- बाबू जी ! जी बाबू पास वाले मकान में रहते हैं (मा०स०प्र०३०)

इनमें एक ही शब्द द्वारा दो व्यक्तियों के विषय में संकेत किया है, ऐसा प्रयोग नाटककार ने वर्ग विशेष के शब्द प्रयोग को दर्शाने के लिए किया है ।

- मेम साहब, मैं साब को लाना ---- (अंधो० ६८)

नाटक में निम्न वर्ग के पात्र द्वारा मेम साहब ,साब शब्दों का प्रयोग बार-बार हुआ है, क्योंकि इनके पास शब्दों की अल्पता होने के कारण इनको दूसरा शब्द शीघ्र सूझता नहीं, दूसरा कारण यह भी है कि, इन पात्रों की दृष्टि शब्द-प्रयोग की ओर कम और भाव सम्प्रेषण की ओर अधिक रही है ।

कविता का रूढ़ रूप उच्च तथा शिक्षित वर्ग के पात्रों द्वारा भी व्यवहृत हुआ है, परन्तु उनके उच्च मानसिक स्तर को देखते हुए उनके शब्दों के पर्याय रूप प्राय: सुझाए हैं क्योंकि इन पात्रों के पास शब्द भण्डार की अधिकता है साथ ही ये पात्र एक ही शब्द की बार-बार आवृत्ति नहीं करना चाहते हैं । जैसे -

- अरविंद ! ---- कमल ---- पीत । भ्रमर । (पाषाण०५५)
- मेरी आवश्यकताएँ परमात्मा की विभूति - प्रकृति पूरी करती है । उसके रहते दूसरों का शासन कैसा ? समस्त आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति प्रभु की दी हुई है । (चन्द्र० ८५)
- मुझे निपट ब्राह्मण ही न जान । तुझे बताता हूँ कि कैसा विप्र हूँ मैं - (दश० १२६-१३०)
- तुम राजपुत्र हो, क्षत्रिय हो, अभिमन्यु हो (रक्षा० ३२)
- हे सूर्य भगवान , हे भुवन भास्कर । (कोणार्क ७८)
- + + कहीं तुम इस हृदय में बैठ पाते तो देखते इसमें कितनी वेदना है, कितनी व्यथा है । (कब० ५३)
- कितने अमृत, कितने अशिष्ट हो तुम सोम । (रश० २३)
- भगवान आशुतोष, एकलिंग के अवतार (कब० १५)
- मुझे तुमसे प्यार है, इश्क है । चाहे तब तू ---- + + (पाषाण० ५३)

इन उच्च तथा शिक्षित वर्ग के पात्रों द्वारा नाटककारों ने जहाँ एक ही अभिव्यक्ति कई बार करवायी है, वहाँ शब्दों की आवृत्ति न करके, उनके पर्याय रूपों को व्यवहृत किया है । ऐसे प्रयोग द्वारा पात्रों के उच्च बौद्धिक स्तर को भी प्रकट किया है ।

नाटकों में अभिधा शक्ति का ऐसा प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ,प्रताप नारायण मिश्र, जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, मणि मधुकर के नाटकों में अधिकतर हुआ है ।

नाटककारों ने कहीं-कहीं कथन को गूढ़ बनाने के लिए, अभिधा का अनेकार्थी रूप प्रयुक्त किया है । अभिधा का ऐसा प्रयोग नाटककारों ने प्राय: शिक्षित तथा उच्च वर्ग के पात्रों द्वारा कराया है, क्योंकि इन पात्रों में ही शब्दशक्ति के ऐसे प्रयोग का सामर्थ्य है । नाटकों में व्यवहृत हुए कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है ।

- कहीं एक काँटे को निकालते-निकालते दूसरा काँटा पैर में न गड़ जाए ।
(दुर्गा० ७९)

इसमें काँटे के दो अर्थ लिए गये हैं । एक अर्थ काँटे से तथा दूसरा अर्थ बाधा या मुसीबत से लिया गया है ।

- मल्लिका कभी मधु की आवश्यकता पड़ ही जाय तो संकोच नहीं करना ।
(आषाढ़० ६१)

इसमें 'मधु' से अभिप्राय 'सहायता' से भी लिया गया है ।

- नहीं , मैं सपने से परेशान हूँ । (अम्बा० २४)

'सपनों' से 'मुरादें' की भी अभिव्यक्ति हुई है ।

- एक मूर्ख श्वान बार-बार भूखे सिंह को चुनौती देता है ।
(अम्बा० १६)

इस वाक्य में श्वान और सिंह का दूसरा अभिप्राय निर्बल तथा बलवान से भी है ।

- हाँ, अबला हूँ इसी से कुछ न कर सकी । (बि०सा० ८८)

इसमें 'अबला' का 'स्त्री तथा निःशक्त' दोनों से ही अर्थ लिया है ।

अभिधा का प्रकरण रूप नाटकों में काफी व्यवहृत हुआ है । इसमें नाटककारों ने अपनी

" काफ़ी ख़राब करने" अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए" क्या बिगाड़ सकेंगी" का प्रयोग हुआ है ।

- वैसे ही मर भी न गयी । (कालि० ७४)

" मर भी न गयी" का लक्षणार्थ प्रकट हुआ है ।
अत्यधिक प्रसन्नता" को प्रकट करते हुए भी फूला जाता है का लक्षणा मूलक व्यवहार किया है -

- घर की ऐसी मर्यादा फूला जाता है । (शीलनृप० ४७)

प्रयोजनवती लक्षणा को भी इन पात्रों की भाषा में स्थान मिला है, परन्तु उनके द्वारा नाटककारों सामान्य लक्षणों शब्दों का प्रयोग करवाया है गूढ़ का नहीं । जैसे- गदहा, उल्लू शब्द को" मूर्ख" अर्थ को व्यक्त करने हेतु प्रयुक्त किया है -

- इस गदहा जौहर को देखते नाही भैया । (उ०ट० १०८)
- हमें कोई उल्लू नहीं बना सकता । (अजीत० ३५)

शिक्षित और उच्च वर्ग की भाषा में रूढ़ लक्षणा की तुलना में प्रयोजनवती लक्षणा को अधिक महत्व दिया है । ऐसा प्रयोग नाटककारों ने पात्रों के बौद्धिक स्तर को देखकर किया है । क्योंकि इस वर्ग के पात्रों में इस शब्द शक्ति के प्रयोग का सामर्थ्य अधिक है । लक्षणा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

-" अधिकारवादी व्यक्ति" के स्थान पर" सिंह" का लक्षणामूलक प्रयोग किया है।
- बहुत अच्छा !!! उन्होंने सिंह सुनते बहुत अच्छा कहा । (मीठ० २४)

कहीं-कहीं" बिल्ली" को" घातक प्राणी" के अभिप्राय से लक्षणा रूप में व्यवहृत किया है।
- सावधान । मैं भूखी बिल्ली हो रही हूँ (बनास० १०५)

- मन भी एक चट्टान है (दुर्गा० ४३)

" चट्टान की दृढ़ता" की अभिव्यक्ति हुई है ।
" कोमल स्वभाव" को प्रकट करने हेतु कली, स्वर्गीय कुसुम का लक्षणामूलक व्यवहार हुआ है
- वह वन की कली थी (कोणार्क २५)

- परन्तु मालविका । तात वह स्वर्गीय कुसुम । (पन्द्रु० १७२)

'दिव्य गुणों' के प्रदर्शन हेतु भी उपमानों को माध्यम किया है । गौरी दुर्गा से उपमान व्यंजित हुआ है ।

- वह गौरी ही नहीं दुर्गा भी है । (लम्बा० ७४)

'दुष्प्रवृत्तियों' वाले प्राणी के लिए कुत्ते अभिधा का लक्षणामूलक प्रयोग हुआ है ।

- कुत्ते । टुकड़े का जोगी । (स्वांग० ४६)

'उद्दण्ड प्रवृत्ति' को व्यक्त करने के लिए 'तूफान' का उपमान प्रयुक्त हुआ है -

- अरे यह तूफान है, तूफान (मादा० ३४)

'दुष्ट स्त्रियों' के लिए 'चुड़ैल तथा डाकुना' अभिधा शब्द को लक्षणा रूप में व्यवहृत किया है ।

- मैं उस चुड़ैल का मुंह नहीं देखना चाहता । (अंगूर० ७५)

- वहो डाकुना, दरवाजे पर मेरी राह तकती दिखाई दे रही है ।
(अंगूर० १२३)

व्यंजना शक्ति को नाटककारों ने दोनों वर्ग के पात्रों द्वारा व्यवहृत करवाया है, परन्तु इसकी प्रधानता उच्च तथा शिक्षित वर्ग की भाषा में रही है । निम्न तथा अशिक्षित वर्ग के पात्रों के द्वारा प्रायः सामान्य कोटि की तथा सरल व्यंजना की गयी है। शब्दों के वैपरीत्य अर्थ से व्यंजना प्रायः उनके द्वारा की गयी है । जैसे -

- तू पण्डिताइन बनि के सान छांटि रही है । (शीचन्द्रा० २५)

इसमें ग्रामीण तथा अशिक्षित स्त्री को 'पंडिताइन' कहकर व्यंग्य प्रकट किया है । इसी प्रकार दुष्ट तथा झगड़ालू प्रवृत्ति वाली स्त्री को महामाया कहकर व्यंजना की अभिव्यक्ति की है -

- अरी महामाया तो उस बिचारे ने क्या कहा है । (कार्ति० ७४)

व्यंजना के गूढ़ रूप को इन पात्रों द्वारा व्यक्त कराया है - .

- तो हाँ क्या साध्य है किस खेत की मूली ? (उत्कट० ६७)

शिक्षित तथा उच्चवर्ग के पात्रों द्वारा व्यंग्य का साधारण तथा गूढ़ रूप दोनों व्यवहृत हुआ है ।

साधारण व्यंग्य के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- कहाँ उपनायिका बन के आ गईं । (भारत०प्र०७४)

यहाँ उपनायिका की ... पहुँचानेवाली के प्रति व्यंग्य हुआ है ।

' कुबुद्धि' को ' धर्मबुद्धि' कहना तीक्ष्ण व्यंग्य है -

- वाह ! बड़ी धर्मबुद्धि बनी है । (स्कंद० ६८)

आगन्तु व्यक्ति को ' साधु' कहकर व्यंग्य को उभारा है -

- और देखने में कितने साधु लगते हैं (अम्ब० ७२)

पुरुषों की लोलुपता के प्रति व्यंग्य भी गूढ़ शब्दों में हुआ है ।

- पुरुष अंत से लोलुप होते हैं विशेषतः स्त्रियों के संबंध में, मृत्यु के संबंध में, मृत्यु शय्या पर भी सुन्दर स्त्री उनके लिए सब से बड़े लोभ की चीज हो जाती है । (सिन्दूर० ५६)

व्यंग्य का गूढ़ रूप भी इन पात्रों द्वारा व्यक्त हुआ है । जैसे -

- हर दिव्य वस्तु क्षणिक होती है, राजनर्तकी । (अम्ब० ८८)

इसमें राजनर्तकी के असीम सौन्दर्य के प्रति व्यंग्य किया है ।

- लीजिए । इसकी अच्छी पूजा कीजिए । (अजात०२३)

- हाँ पूजो , पर झूठी है । (करी ३६)

' मारने के लिए' , ' पूजा' शब्द व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

पात्रों के अनुसार शब्द शक्तियों के प्रयोग की ओर कुछ नाटककारों की रुचि अधिक रही है जिनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी (रक्षा बन्धन में) लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, वृन्दावन लाल वर्मा, सत्येन्द्र सिन्हा आदि नाटककार हैं ।

जयशंकर प्रसाद, सी०पी० श्रीवास्तव , हरिकृष्ण प्रेमी (शपथ में) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मोहन राकेश तथा सुरेन्द्र वर्मा ने सब पात्रों से शब्द शक्तियों का प्रयोग लगभग एक सा कराया है ।

विपिन कुमार अग्रवाल तथा कृष्णाचार्य की दृष्टि शब्द शक्तियों के ऐसे प्रयोग की ओर कम रही है ।

विषय तथा प्रसंग के अनुरूप भी शब्दशक्तियों की व्यवस्था नाटककारों ने की है । सामान्य विषयों पर चर्चा करते हुए, अभिधा को नाटककारों ने अधिकार

अपनाया है । जैसे -

- आज आप एस०आर० मल्ल के कंसर्ट देखने जाएँगे या नहीं । मेरा ख्याल है, वह कंसर्ट अत्यन्त सफल होगी । मिस अंजलि और मिस उमा भी नृत्य में भाग ले रही हैं । (स्वर्ग० ५८)
- माई एम सो सॉरी डियर । हां, मेरी डियर मीट माई डैडी रैवरेण्ड मनी । डैडी , यह रीता है । मेरी नई पत्नी । इसके पिता ब्राह्मण हैं और ये डच । (सुगो० ७८)
- नहीं याद करते, यही न ---- । ' डियर आंटी' --- मेरी दीदी, मेरी मुर्गियों को जरा खाना डलवा दीजियेगा । और हाँ, उनके टैंक में पानी भी भरवा दीजिये --- (मादा० ६)

कानून तथा राजनीति से संबंधित विषयों पर चर्चा करते हुए नाटककारों ने अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति की है, क्योंकि लक्षणा तथा व्यंजना द्वारा अभिव्यक्त विषय को देखते हुए असंगत प्रतीत होती । नाटकों में ऐसे विषयों पर विचार प्रकट करते हुए अभिधा प्रयोग के उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

- मैं माधव पर चोरी का इल्जाम लगाता हूँ । उसने मौकलदास की दुकान में सेंध लगा कर उसकी जेब से कामिनी के जेवर चुरा लिए । मैं न्यायालय से विनती करूँगा कि उसके नाम वारंट निकाल कर उसे गिरफ्तार किया जाय । उसकी तलाशी ली जाय, शायद अभी चोरी का माल बरामद हो सकेगा । (अंगूर० ६४)
- शिवाजी सार्वजनिक संपत्ति हड़पने के आरोप में इस अदालत की दफा एकसौ बीसी के आधीन दो साल सख्त कैद की सजा दी जाती है । साथ ही पांच सौ रुपया जुर्माना । न देने पर छ: महीने की कैद बामशक्कत । (बकरी० २८)

उपर्युक्त अदालत की भाषा में अभिधा शब्दशक्ति अधिक उपयुक्त रही है, क्योंकि अभिधा ही सर्वसाधारण की भाषा में अधिकांशत: व्यवहृत होती है । सभी बात सर्वसाधारण की समझ में आ सके इसलिए भी अभिधा को महत्व दिया है ।

उपर्युक्त कोटि के प्रसंगों में अभिधा शक्ति को गोविन्द वल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने नाटकों में महत्व दिया है ।

राजनीति से संबंधित विषय पर वार्तालाप करते हुए अभिधा शब्द को प्रधानता दी है । ऐसे प्रसंगों में अभिधा को लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने नाटक में व्यवहृत किया है।

- साम्यवाद की लहर आ रही है ---- देश की सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति होगी --- राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की --- धनी गरीब --- यह बात मिटनेवाली है, अब तो वह युग आ रहा है जिसमें मनुष्य के समान अधिकार और समान कर्तव्य होंगे --- स्वामी और सेवक, पूंजीपति और मजदूर ---- इन बातों में पड़कर दुनिया बहुत बिगड़ चुकी है । (मुक्ति० ७८)

ओजपूर्ण प्रसंगों में नाटककारों ने कथन को प्रभावशाली बनाने के लिए लक्षणा को भी अभिधा के साथ व्यवहृत किया है । जैसे -

- तुमने तो अनोखे भाव किये । मस्तक पर बाण लगने पर भी तो मूर्छित हुए । लेकिन तुम्हारी मूर्च्छा ने भी शिविरों में बिजली दौड़ा दी और शत्रु को लौट जाना पड़ा । (कोणार्क ६१)

- इस भूमण्डल में कोई भी शक्ति मुझे अटल प्रण से नहीं हटा सकती। प्रिये, तुम्हारे लिए मैं संसार को लात मार सकता हूं जिसके सांपों की दाढ़ों पर नाच सकता हूं । (वि० ७४१)

उपर्युक्त लक्षणा शब्दों के स्थान पर यदि अभिधा को रखा जाता तो कथन इतना प्रभावपूर्ण न बन पाता ।

ओजपूर्ण स्थलों पर लक्षणा द्वारा अभिव्यक्ति को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ,जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी , हरिकृष्ण प्रेमी और जगदीश चन्द्र माथुर ने अधिक अपनाया है ।

नाटककारों ने दार्शनिक तथा रहस्यपूर्ण विषयों पर वार्तालाप करते हुए भाषा में गूढ़ता रखी है जिसकी अभिव्यक्ति में लक्षणा को अधिक उपयोगी समझा है वैसे भी लक्षणा में अभिधा की तुलना में अधिक प्रभावित करने की शक्ति है ।

- लेकिन ज्यादातर मानव-मन फरने की तरह होता है, (अम्ब० १७)

इसमें "फरना" को चंचलता की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है ।

- कोई किसी को क्या नहीं समझा सके । जहाँ आग की लपट है, उसी निकट ही पानी का फरना है । अशान्ति के कंटक-कानन में ही शांति की चिड़िये का घोंसला है । उस फरने उस घोंसले को कुछ समझना होता है । (अम्ब० ११०)

"आग की लपट" सांसारिक कष्ट" तथा" पानी का फरना "" परलोक" के लिए प्रयुक्त हुआ है ।" कंटक कानन" संसार की और शांति की चिड़िये का घोंसला" ईश्वर के निवास की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

- आर्यपुत्र । मुझे तो विश्वास है कि नीला पर्दा उसका रहस्य छिपाये है, + + + (अजात० ८२)

" नियति" के लिए" नीला पर्दा" शब्द का लक्षणामूला प्रयोग हुआ है ।

जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में दार्शनिक व रहस्यपूर्ण विषय को देखते हुए लक्षणा का प्रयोग मुख्यत: हुआ है ।

नाटककारों ने प्रेम, प्रसंगों में लक्षणा की सहायता अधिक ली है क्योंकि अभिधा की तुलना में इसमें भाव की अधिक सशक्त अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है ।

- जब मुझे अपने मुख चन्द्र को निर्निमेष देखने दो + + + + + + तुम्हारा सुरभि नि:श्वास मेरी कल्पना को आलिंगन करने लगे । (अजात० ४२)

- अहा, पृथ्वी पर उतरा हुआ चन्द्रमा कितना मोहक है । (चि०आ० ३०)

" चन्द्र" को" अतीव सौन्दर्य" और" सुरभि" को" सुगंधित" अभिप्राय को प्रकट करने के प्रयोजन से प्रयुक्त किया है ।

" अत्यन्त रूपवती" स्त्री को चन्द्रमा शब्द से सम्बोधित किया है इसमें" चन्द्रमा" का लक्ष्यार्थ है ।

रूप वर्णन करते हुए" सुकुमार व्यक्तित्व" की अभिव्यक्ति के लिए" कली" शब्द का चयन किया है ।

- वह वन की कली थी । (कोणार्क २४)

जहाँ क्रोध की आवेगात्मक स्थिति नहीं है, शब्दों को मुहावरों में व्यवहृत किया है । घृणा की अधिकता जहाँ व्यंजित नहीं हुई है वहाँ अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति की गई है । जैसे -

- मगर दौलत मुझे कमीने से ज्यादा नफरत है । (अंगूर० २६)

वेदना की अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अभिधा की आवृत्ति की है तथा उसी साथ पर्याय रूप की व्यवस्था की है । उदाहरण -

- हाय ! मार दिया, मेरे भाई को मार दिया, किसने हत्या की ? (चंद्र की ओर देखकर) तुमने इसे मारा, तुमने मेरे भाई को छुरा भोंका ? (जय० १२६)

वात्सल्य का प्रदर्शन अभिधा में लक्षणा की तुलना में कम प्रभावशाली रहा है -

- मैं यह कैसे भूल गया कि कमल-नेत्र सुमनों का पिता भी है ? इधर आओ राम ! इधर आओ लक्ष्मण ! मेरे निकट ! तुम्हें हृदय से लगा लूँ ! (दश० ३६)
- आओ बेटी, मैं तुम्हें देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । अहा, क्या सुन्दर भोला मुख है । (वि०न०२०)

निर्वेद के भावों को सर्वग्राह्य बनाने के लिए अभिधा शैली में भावों को व्यक्त किया है ।

- मृत्यु के बाद कौन किसे बुलाता है, बहिन ! संसार के नाते संसार में ही रह जाते हैं । मनुष्य मरकर मनुष्य योनि में ही आता है यह भी तो कोई बात नहीं । तब तुम मर कर अपने स्वामी को पा सकोगी । इसका भी तो विश्वास नहीं । (अपरा० १३४)

भावातिशयता को प्रकट करते हुए नाटककारों ने अधिकतर लक्षणा को महत्त्व दिया है, क्योंकि अभिधा की तुलना में यह अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई है । क्रोध में दुष्प्रवृत्तियों वाले मनुष्यों को कुत्ते से पुकारा है । इनमें 'कुत्ता' शब्द का लक्ष्यार्थ है । उदाहरण -

- नीच है ब्राह्मण की शिक्षा । शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते ! (चन्द्र० ६८)
- दूर हो भागो कुत्ते ! (रक्षा० ८)

'क्रूर व्यक्ति' के लिए 'कसाई' शब्द को लक्षणा रूप में प्रयुक्त किया है -

- हत्यारे कसाई के कसाई (कारी० ५०)

हृदय के टुकड़े आँखों की ज्योति , घर के उजाले से लक्ष्यार्थ प्रकट हुआ है, जो सन्तान के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

- मैंने अपने हृदय के टुकड़े को अपने हाथों भस्म कर डाला, अपनी आँखों की ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले स्वयं अंधकार में परिणत कर दिया । (अम्ब० ११७)

लक्षणा द्वारा भावाभिव्यक्ति में जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी , उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क (जय पराजय में) के नाटकों में अधिक अपनाया गया है ।

निर्वेद के भावों में गूढ़ तत्वों को प्रकट करते हुए प्रायः लक्षणा को महत्व दिया है । जैसे -

- मुझे इस लाश को उतारना पड़ेगा, भगवान । या तो यही पीला वस्त्र उतार सकता है (अम्ब० ११३)

- मुर्दों की भाँति जीना कौन पसन्द कर सकता है ? (रक्षा० ६४)

" लाश , मुर्दों को" निराश जीवन" और" पीलावस्त्र" को" वैराग्य" के अर्थ में प्रयुक्त किया है ।

- जिसने एक बार प्रकाश की किरण देख ली, उसकी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं ,(अम्ब० १११)

" ईश्वर प्राप्ति का मार्ग" को" प्रकाश की किरण" से अभिप्राय लिया है । सांसारिकता से विरक्ति की इच्छा करते हुए" वैराग्य" को" अनन्त विश्राम" शब्दों द्वारा प्रकट किया है । इसमें लक्ष्यार्थ द्वारा अभिव्यक्ति हुई है ।

- महाराज जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है । (ध्रुवस्वा० ३६)

जयशंकर प्रसाद तथा रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में इस भाव की व्यंजना को करने में लक्षणा अधिक प्रयुक्त हुई है । क्रोध तथा हास्य व्यंग्य के भावों की अभिव्यंजना में व्यंजना शब्द शक्ति को अधिक महत्व मिला है । इस शक्ति द्वारा तीक्ष्ण प्रभाव डाला गया है । क्रोध में व्यंजना के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

" मिलॉर्ड" को" बम्भोलेश" कहकर ऐसा व्यंग्य किया है ।

जगदीश चन्द्र माथुर तथा लक्ष्मी नारायण लाल ने मुख्यतः किया है ।
कहीं-कहीं नाटकों में शब्द शक्तियों के प्रयोग से कथन सर्वसामान्य की समझ से बाहर भी हो गया है । प्रसाद के स्कन्दगुप्त तथा चन्द्रगुप्त नाटकों में ऐसे कथन व्यवहृत हुए ।
उदाहरण -

> - उस हिमालय के ऊपर सवेरे सूर्य की सुनहली प्रभा से आलोकित बर्फ का पीले पोखराज का सा महल था, उसमें नवनीत की पुतली झांक कर देखती थी । वह हिम की शीतलता से सुसंगठित थी । सुनहरी किरणों को जलन हुई तप्त कर महल को गला दिया । (स्कंद० २०)

इसमें अतीत के सरस दिनों का स्मरण किया है जिसमें मातृगुप्त अपनी प्रिया के साथ सुखद जीवन व्यतीत करने की कल्पना कर रहा है । इस कथन को साहित्य में अधिक रुचि लेनेवाला ही समझ सकता है ।
रहस्यपूर्ण विषयों पर चर्चा करते हुए नाटककार ने ऐसी शब्द व्यवस्था की है, जो जनसामान्य की समझ से परे भी हो सकती है ।

> - + + + इस गतिशील जगत में परिवर्तन पर आश्चर्य ! परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन - प्रलय - हुआ !! परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है । स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ट शांति मरण है । प्रकृति क्रियाशील है । समय पुरुष और स्त्री का गेंद लेकर दोनों हाथ से खेलता है । पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुंजी है । पुरुष उछाल दिया जाता है । उत्क्षेपण होता है । स्त्री आकर्षण करती है । यही जड़ प्रकृति का रहस्य है ।(स्कंद० २१)

अभिधा को सभी नाटककारों ने प्रधान रूप में अपने नाटकों में अपनाया है । लक्षणा तथा व्यंजना को भी नाटकों में इन्हें अपनाया गया है, परन्तु उनके प्रयोग में अंतर मिलता है । कुछ नाटककारों ने लक्षणा द्वारा अभिव्यक्ति को अधिक महत्व दिया है जिनमें जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, प्रमुख नाटककार हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र जी०पी०श्रीवास्तव, गोविन्द वल्लभ पन्त, लक्ष्मी नारायण मिश्र, वृंदावन लाल वर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर व

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में अपेक्षाकृत लक्षणा शक्ति को कम अपनाया गया है । विपिन कुमार अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस के नाटकों में लक्षणा अन्य नाटककारों की तुलना में काफी कम व्यवहृत हुई है क्योंकि इन नाटककारों ने सामान्य तथा जन-सामान्य की भाषा में अधिक रुचि ली है ।

व्यंजना शब्द शक्ति को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत दुर्दशा' तथा 'अंधेर नगरी' में जी०पी० श्रीवास्तव के 'उलट फेर' उपेन्द्र नाथ अश्क के 'अंजो दीदी' व 'स्वर्ग की झलक' नाटकों में अधिक महत्व मिला है । जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, गोविन्द वल्लभ पन्त, रामवृक्ष बेनीपुरी , हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, मणि मधुकर ने भी व्यंजना द्वारा अभिव्यक्ति की ओर रुझान दिखाया है, परन्तु इनके नाटकों में व्यंजना की मात्रा कम रही है । लक्ष्मी नारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, प्रताप नारायण मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने व्यंजना को अन्य नाटककारों की तुलना काफी कम स्थान दिया है । व्यंजना शब्द शक्ति के प्रयोग की ओर सब से कम रुचि मुद्राराक्षस, विपिन कुमार अग्रवाल, विष्णु प्रभाकर तथा सुरेन्द्र वर्मा की रही है ।

अलंकार

अलंकार कविता का विषय है, परन्तु गद्य में भी उसका कम महत्व नहीं है । नाटकों में अलंकारों को न केवल 'अलंकृति के लिए ही प्रयुक्त किया है बल्कि इनसे अन्य अभिव्यक्तियाँ भी हुई हैं ।

नाटकों में मुख्य दो प्रकार के अलंकार शब्दालंकार तथा अर्थालंकार को नाटककारों ने व्यवहृत किया है । शब्दालंकारों द्वारा शब्दों के चमत्कार और अर्थालंकारों द्वारा अर्थों के चमत्कार को प्रदर्शित किया है ।

शब्दालंकारों में अनुप्रास अलंकार को नाटकों में अधिक स्थान मिला है । अनुप्रास अलंकार के कई रूप नाटकों में व्यवहृत हुए हैं । वृत्यानुप्रास अलंकार द्वारा नाटकों में प्राय: भाव से सरसता लायी गयी है । जैसे -

- किसको, क्या, कितना, कहना चाहिए इतनी समझ तो आपको होनी ही चाहिए । (मादा० ३१)

- मुझे क्या मालूम था कि तुम झोंके की तरह आओगे और तूफान की तरह चले जाओगे । (संधी० ७८)

- बस हम जिये जाते हैं, जिये जाते हैं, जिये जाते हैं, पर साल जिये जाते हैं। (अमृत०१३०)

- + + कहाँ चल के बैठोगे , तू मुझको है न मेरी अच्छी है न, बड़ी अच्छी है न ? (अयु० 33)

अन्त्यानुप्रास द्वारा अभिव्यक्ति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (अंधेर नगरी श्री चन्द्रावली) जयशंकर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, मणि मधुकर के नाटकों में अधिक हुई है। हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, वृंदावन लाल वर्मा, सत्यव्रत सिन्हा, सर्वेश्वर दयाल ने भी इस अलंकार के प्रयोग में रुचि ली है, परन्तु इनके नाटकों अपेक्षाकृत कम व्यवहृत हुआ है ।

आकस्मिक भावों के प्रकटीकरण में नाटककारों ने वीप्सा अलंकार को महत्व दिया है । इस अलंकार द्वारा अधिकतर आश्चर्य ,घृणा, हर्ष, शोक आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है । आकस्मिकता को व्यक्त करने के लिए एक ही शब्द विस्मय के साथ कई बार व्यवहृत हुआ है । जैसे -

आश्चर्य में -

- अरे दौड़ो लोगों ! खून ! खून ! खून ! (उलट० ८२)
- नहीं-नहीं तुम नहीं । (माधव० ४)
- न न न न , ऐसा न कहो। (स्कन्द० २६)
- शिव-शिव ! ऐसा न कहिए (दुर्गा० ७५)
- हरे ! हरे ! कैसा घोर अधर्म होने लगा है ! (कुणी० ५०)
- राम-राम ! तुम क्या कहते हो ? (अंगूर० ११)

घृणा में -

- छि: छि: यह तेरे कैसे विचार हैं ! (भारत० भा० ३७)
- झूठे ! झूठे !! झूठे !! झूठे को नहीं चाहूं विश्वासघातक ! (श्रीचन्द्रा० ३८)

हर्ष में -

- उर्र, उर्र, व उर्र ! जी मिल गई, मिल गई । (बकरी० २९)

- वाह ! वाह !! खूब !!! मन रीझ गया है, (कर्फ्यू० ५३)

शोक में -

- हाय-हाय बिचारी फूल-सी बच्ची । (धुँ० २५)
- हाय ! हाय !! हमारी कमाई गई !!! (कर्फ्यू० ७८)

नाटकों में वीप्सा अलंकार द्वारा भावाभिव्यक्ति नाटकों में सर्वत्र हुई है । परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (चन्द्रावली में) श्री व्यौ० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, वृन्दावन लाल वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मणि मधुकर के नाटकों में इसकी अधिकता है । इन नाटककारों की तुलना में जयशंकर प्रसाद, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मी नारायण लाल, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर तथा उपेन्द्र नाथ अश्क ने कम महत्व दिया है । मोहन राकेश वीप्सा अलंकार के प्रयोग के पक्ष में अधिक नहीं रहे हैं । गोविन्द वल्लभ पन्त, सत्यव्रत सिन्हा तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी भावानुसार इस अलंकार को अपनाया है परन्तु इसकी अधिकता इनके नाटकों में भी नहीं होने पायी है । विपिन कुमार अग्रवाल ने इस अलंकार की ओर कम रुचि रखी है, इनकी तुलना में मुद्राराक्षस ने नाटकीय कथा को देखते हुए इस अलंकार को कुछ अधिक अपनाया है ।

कथन में गूढ़ता या रहस्यात्मकता लाने के लिए नाटककारों ने श्लेष अलंकार को प्रयुक्त किया है, जिसमें एक शब्द से कई अर्थ व्यक्त हुए हैं । जैसे -

- कहीं एक काँटे को निकालते-निकालते दूसरा काँटा पैर में न गड़ जाए ।
(धुआँ० ७६)

इसमें 'काँटे' के दो अर्थ लिए हैं पहला काँटे से लिया है । दूसरा अर्थ 'एक मुसीबत समाप्त करते-करते दूसरी न आ जाए' प्रकट किया है ।

- मल्लिका कभी मधु की आवश्यकता पड़ ही जाय तो संकोच नहीं करना ।
(आषाढ़० ६१)

उपर्युक्त वाक्य से एक तो सामान्य अर्थ प्रकट हुआ है दूसरा अर्थ जीवन की कटुता से जब व्याकुल हो जाओ तो मेरी सहायता ले सकती हो' व्यक्त किया है ।

- बरखा का दिन है, कोई भी हो सकता है ? (आषाढ़० १०५)

इस वाक्य में गूढ़ार्थ लिया है जिसमें नाटककार ने श्लेष प्रयोग अधिक उचित समझा है । वाक्य का दूसरा अभिप्राय "दुर्दिन में कुछ भी हो सकता है, कोई भी मेरे घर आ सकता है" प्रकट किया है ।

- एक भूखे श्वान चार-चार भूखे सिंहों को चुनौती देता है ।
(उपप० १६)

उपर्युक्त वाक्य में दूसरा अर्थ एक निर्बल व्यक्ति चार-चार बहादुरों का मुकाबला कर रहा है" लिया है ।

- दूध देकर विषधरों को न पालें । (कथ० २१)

इस वाक्य का दूसरा अभिप्राय" सहारा देकर घातक व्यक्तियों" को न रखें" मुख्य है ।

- सारे नक्षत्र जिस अंधकार को हटा नहीं सके उसे एक ही सूर्य ने कैसे
दूर कर दिया । (दश० ६२)

उपर्युक्त वाक्य से एक सामान्य अर्थ लिया है, दूसरा अर्थ राम तथा राजाओं के पक्ष में लिया है सारे राजा जिस संताप को दूर न कर सके उसे आसानी से राम ने दूर कर दिया ।

- अमृत के सरोवर में स्वर्ण-कमल खिल रहा था, भ्रमर बंशी बजा रहा था ।
(स्कंद० १६)

इसमें एक तो प्रकृति का सामान्य अर्थ व्यक्त हुआ है दूसरा अर्थ" प्रिय का मन प्रिया के साथ सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने की मधुर कामनाएँ कर रहा है" व्यक्त हुआ है ।

श्लेष अलंकार द्वारा अभिव्यक्ति की ओर बद्रीनाथ भट्ट, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्र नाथ अश्क , उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा मोहन राकेश का रुझान अधिक रहा है । जगदीश चन्द्र माथुर के" दशरथ नन्दन" नाटक में भी इस अलंकार को अपनाया गया है ।

शब्दों की आवृत्ति से अर्थ चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नाटककारों ने यमक अलंकार की सहायता ली है । जैसे -

- क्या किसी नवाब के ऐसे नवाब है ? (उपप० ३०)

इसमें दोनों नवाबों का अलग-अलग अर्थ है । एक नवाब से" मुए" अर्थ लिया है दूसरे नवाब से " मान्य " अर्थ लिया है ।

इसमें चरण तथा कमलों में एकरूपता लायी गयी है कि चरण निश्चित रूप से कमल के समान कोमल है ।

- मैं तुम्हारे चेहरे का दर्पण हूँ । (उत्त० ७०)
- पति के द्वारा लाई गई पराधीनता रूपी नदी की बाढ़ को रोकने के लिए पत्नी बाँध बन जायगी, उस मूसलाधार वृष्टि को रोकने के लिए वह छत्र बन जायगी । पति की लगाई आग के लिए पत्नी प्रलय काल की वृष्टि बन जायगी । (पुना० ७७)

पहले वाक्य में व्यक्ति तथा दर्पण में एक रूपता व्यक्त हुई है ।
दूसरे वाक्य में पत्नी और बाँध, छत्र, वृष्टि में एकरूपता प्रकट की गई है । रूपक अलंकार द्वारा पत्नी के रूपों में निश्चितता लायी गयी है कि पत्नी के ये वास्तविक रूप हैं ।

- अरे यह तो कालिदास है । (औटन० ३५)

कालिदास तथा इसमें कोई भेद नहीं है । इसकी अभिव्यक्ति रूपक अलंकार द्वारा की गई है -

- हाकाल ! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ । (अजात० १०५)

इसमें सिंहनी तथा पात्री में कोई भेद नहीं है । कथन में दृढ़ता लाने के लिए रूपक अलंकार की व्यवस्था की है ।
रूपक अलंकार द्वारा भावाभिव्यक्ति की ओर बद्रीनाथ भट्ट, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्र नाथ अश्क , रामवृक्ष बेनीपुरी , मोहन राकेश , जगदीश चन्द्र माथुर की रुचि अधिक रही है । प्रताप नारायण मिश्र, मणि मधुकर का रुझान भी इस अलंकार की ओर रहा है ।

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक की तुलना में अन्य अलंकार काफी कम व्यवहृत हुए हैं ।

नाटकों में कई बार नाटककार, कल्पनाओं में अधिक विभोर हो गये हैं, जिससे ऐसे स्थलों पर नाटककार वास्तविकता से परे भी हट गये हैं और उन्होंने प्रतिभा के बल पर उत्कण्ठा से उपमान की कल्पना की है । ऐसी स्थितियों में उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा अभिव्यक्ति की है । उदाहरण -

- सखी, देख वसन्त भी वन की किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर उन्हें जीतने को अपनी सेना भिजवाई है ।
(श्रीचन्द्रा० ३३)

प्रशंसा करते हुए, परिचय देते हुए और स्तुति करते हुए नाटककारों ने उल्लेख अलंकार को अधिकतर अपनाया है । बद्रीनाथ भट्ट, बी०पी० श्रीवास्तव, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्र नाथ अश्क, वृंदावन लाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, गोविन्द वल्लभ पंत, सुरेन्द्र वर्मा तथा मणि मधुकर ने अपने नाटकों में उल्लेख अलंकार को प्रयुक्त किया है ।

कहीं-कहीं नाटककारों अपने कथन के स्पष्टीकरण में कथन से मिलते-जुलते उदाहरणों को व्यवस्थित किया है, जिसमें उदाहरण अलंकार के दर्शन हुए हैं ।

- जैसे श्रीकृष्ण जी ने सुदामा के तंदुल स्वीकार किये थे, वैसे ही आप मुझ गरीब की यह भेंट स्वीकार करने की कृपा करें । (दुर्गा० ५२)
- मेवाड़ पर भय का साम्राज्य है और समस्त प्रदेश इस तरह सहम गया है जैसे बाज को उड़ते देखकर पक्षी सहम जाते हैं । (जय० १११)
- सुनो मुझे तुम अपने अस्तित्व में लीन कर लो जैसे गंगा ने यमुना को कर लिया है । (सप्त० ४)
- जैसे सागर के ज्वार को बाधित नहीं किया जा सकता , वैसे ही नई पीढ़ी की आकांक्षाओं को भी अपनी सुविधा के अनुसार नहीं मोड़ा जा सकता । (युग० ६२)
- वे दिल में मेरे दर्द किया , उस दर्द में वे अनुराग किया, जैसे फूलों में गंध छिपी पत्तों में मधुर राग किया । (अंगूर० ३६)

नाटककारों अधिकतर कथन की पुष्टि में उदाहरण अलंकार का चुनाव किया है । बद्रीनाथ भट्ट, उपेन्द्र नाथ (जय पराजय में) हरिकृष्ण प्रेमी, विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर, मणि मधुकर के नाटकों में इस अलंकार को अधिक महत्व मिला है।

नाटकों में पूर्व घटित घटना अथवा पूर्वानुभूत वस्तु के वर्णन में अधिकतर स्मरण अलंकार को चुना गया है । जिसमें पात्र को पूर्व घटित घटना अथवा वस्तु के समान वस्तु को देखकर सुनकर उसे पूर्व की घटना या वस्तु का स्मरण हो जाता है । जैसे -

- जब मैं इन मूर्तियों में बनी रास-चौकड़ी को देखता हूँ तो मुझे याद

जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी ,सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सुरेन्द्र वर्मा तथा लक्ष्मी नारायण लाल ने अनन्वय अलंकार द्वारा भाव प्रकट किये हैं ।

नाटकों में कई बार ऐसी असमंजस्य की स्थिति आ गई है, जिसमें पात्र कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा है वह संदेह में घिरा है । ऐसी स्थितियों में नाटककारों ने संदेह अलंकार द्वारा भाव व्यक्त किए हैं ।

- तुम देवी हो या स्त्री । (भारत० पृ० ६६)
- कि मैं किस पर अधिक मुग्ध हूँ --- तुम्हारी सुन्दरता पर या तुम्हारी चातुरी पर । (लहरों ० ६२)
- युवक । मेरे शत्रु मांस-चर्म और रक्त को किसी ने चन्द्र समझा, किसी ने कमल और किसी ने गुलाब, किन्तु वास्तव में मैं क्या हूँ यह तुम्हीं बता सकोगे । (समय० ४३)

संदेह अलंकार को प्रताप नारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश (लहरों के राजहंस) में अधिक महत्व मिला है ।

कहीं-कहीं नाटककार ने वस्तु का यथार्थ रूप पाठक के सम्मुख अंकित करना चाहा है ताकि पाठक को वस्तु अथवा दृश्य की ऐसी अनुभूति होने लगे मानो उसके सामने है वहां अभिव्यक्ति में स्वाभाविक अलंकार को महत्व दिया है । आकर्षण व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने में स्वाभाविक वर्णन किया है -

- वह बांका - बांका छैला घुंघराले बाल, आंखों में रस, होंठ के ऊपर नई मीसें, चौड़ी छाती फुलाये, उल्टे मुट्ठों वाली भुजाएं दिखाता, मस्ती में झूमता हुआ (अम्ब० १२)

वर्षा ऋतु में प्रकृति का यथार्थ चित्रण करने में स्वाभाविक अलंकार का योगदान रहा है-

- भूमि चारों ओर हरी-हरी हो रही है । नदी नाले, बावली तालाब सब भर गए । पक्षी डाल पर छोटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं । बीर बहूटी और जुगनूं पारी-पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं । नदियों के करारे धमाधम टूटकर गिरते हैं । सर्प निकल-निकलकर अशरण से इधर-उधर भागे फिरते हैं ।

(नीलदेवी० ३३-३४)

युद्ध के दृश्यों को रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता अतः स्वाभाविक वर्णन द्वारा ही उसको सजीव बनाया है ।

- जब वे दोनों हाथों से तलवारें घुमाती हुई भूखी सिंहनी की भाँति शत्रु-सेना पर टूट पड़ी तो हमारी सेना के हृदय में न जाने कहाँ से अद्भुत साहस उमड़ पड़ा । राजपूत 'जय एकलिंग' की ललकार भगवान शंकर के गणों की भाँति शत्रु सेना पर टूट पड़े । (रक्षा० ८२)

स्वाभावोक्ति अलंकार को यथार्थ चित्रण हेतु नाटककारों ने अपनाया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (श्रीचन्द्रावली में) रामवृक्ष बेनीपुरी, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश (लहरों के राजहंस) उपेन्द्र नाथ अश्क के नाटकों में इसको अधिक महत्व मिला है ।

मानसिक उन्मत्तता से ग्रस्त दशा को प्रकट करने के लिए असंगति अलंकार को प्रयुक्त किया है । जैसे -

- --- यह अँधेरा मुझसे नहीं ओढ़ा जाता (लहरों० १००)
- मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता । (लहरों० ६१)
- अब वोट दुख रहे हैं फिर पद और कुर्सी दुखेंगी । (बकरी० ४७)

इसमें अँधेरा, विश्वास के साथ ओढ़ना असंगति है । वोट, पद और कुर्सी के साथ 'दुखना' शब्द का प्रयोग असंगति को व्यक्त कर रहा है ।
पात्र के मक्की के स्वभाव को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से भी असंगति अलंकार को प्रयुक्त किया है ।

- इतना पानी क्यों पिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई ? (अंधेर० १४)

असंगति अलंकार को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'अंधेर नगरी' तथा मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' नाटक में अपनाया गया है ।

पात्रों की मानसिक उथल-पुथल को व्यक्त करने में प्रहेलिका अलंकार का चुनाव किया है । इसमें पात्र मानसिक अव्यवस्था में स्वयं ही प्रश्न कर रहा है और स्वयं ही उत्तर दे रहा है । उदाहरण -

- लेकिन सोच, वैशाली में यह मातम क्यों है ? क्योंकि वह हार चुकी है । (अम्ब० ८५)
- जो उस प्राण का घातक है, उस अमृत का शोषक है, उस मर्यादा का ध्वंसक है, क्या ऐसा निर्लज्ज पापी जिन्दा रहेगा ? कभी नहीं । कभी नहीं । कभी नहीं । --- (प०रा०१७)

- खड़े-खड़े सोच क्या रहे हो ? कि डोरियाँ पत्तियों में उलझी है या पत्तियाँ डोरियों में ? (लहरों० ३०)

इसमें पात्र स्वयं ही प्रश्न कर रहा है और स्वयं ही उत्तर दे रहा है।

रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर (पहला राजा में) मोहन राकेश (लहरों के राजहंस में) प्रतीक्षा अलंकार द्वारा अभिव्यक्ति की है।

- तुम्हें याद है एक बार हमने यहाँ इसी कमरे के फर्श पर प्यार किया था - उस वक्त हमने कल्पना की थी कि काला डाक्टर भी साथ है और तुम एक साथ मुझे और उस काले डाक्टर को प्यार कर रही हो - (तिल० २३)
- झोंपड़ी ही तो थी, पिता जी यहीं मुझे गोद में बिठाकर राज मंदिर का सुख अनुभव करते थे। ब्राह्मण थे, ऋत और अमृत जीविका से संतुष्ट थे। (चन्द्र० ५७)

स्मरण अलंकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (श्रीचन्द्रावली में) जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, उपेन्द्र अश्क , जगदीश चन्द्र माथुर (कोणार्क में) हरिकृष्ण प्रेमी, मुद्राराक्षस , सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में अधिक प्रिय रहा है।

कई बार नाटककारों को उपमेय की तुलना के लिए कोई उपमान नहीं उचित लगा है, वहाँ अनन्वय अलंकार द्वारा अभिव्यक्ति की है जिसमें उपमेय तथा उपमान एक ही वस्तु है। उदाहरण -

- <u>भोजन भोजन</u> है (ना०अर्णव० ६६)
- यही कि <u>कवरी कवरी</u> है , देवी नहीं (कवरी ३४)
- बरगद बरगद है बेटा, पीपल पीपल है, रेड़ रेड़। (कवरी० ३६)
- फिर <u>जवानी</u> ही <u>जवानी</u> की काट है (बन्द० ३०)
- मैं <u>कुत्ते</u> को <u>कुत्ता</u> ही बनाना चाहता हूँ। (चन्द्र० ७४)

जयशंकर प्रसाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सुरेन्द्र वर्मा तथा लक्ष्मी नारायण लाल ने अनन्वय अलंकार द्वारा भाव प्रकट किये हैं।

नाटकों में कई बार ऐसी असमंजस्य की स्थिति आ गई है, जिसमें पात्र कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा है वह संदेह में घिरा है। ऐसी स्थितियों में नाटककारों ने संदेह अलंकार द्वारा भाव व्यक्त किए हैं।

- तुम देवी हो या स्त्री (भारत०ध्रु० ६६)

- कि मैं किस पर अधिक मुग्ध हूँ ---- तुम्हारी सुन्दरता पर या तुम्हारी चातुरी पर । (लहरों० ६२)
- युवक ! मेरे हाड़ माँस- चर्म और रक्त को किसी ने चन्द्र समझा, किसी ने कमल और किसी ने गुलाब, किन्तु वास्तव में मैं क्या हूँ यह तुम्हीं बता सकोगे । (उपय० ४३)

श्लेष अलंकार को प्रताप नारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, मोहन राकेश (लहरों के राजहंस) में अधिक महत्व मिला है ।

विभावना अलंकार को नाटकों में अत्यल्प स्थान मिला है जहाँ बिना किसी कार्य के फल को प्रकट किया है, वहाँ ये अलंकार प्रयुक्त हुआ है ।

- बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
  कर बिनु करम करइ विधि-नाना ।। (कदा० २८)
- आप तो बिना पिये ही बहक गये । (सेतु० १०)

जगदीश चन्द्र माथुर तथा सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में इस अलंकार को महत्व मिला है ।

कई बार नाटकों में अलंकारों का प्रयोग भाषा को अलंकृत तथा प्रभावशाली बनाने की बजाय असुन्दरता ला रहा है । जैसे -

- माँ की माँ की माँ की माँ की माँ की माँ की माँ की (कल्की०१६)
- बस, फूल, फूल, फूल । दिन फूल, रात फूल, सुबह फूल, शाम फूल । (अम्बा० १०)

कहीं कहीं क्रोध में अलंकार का प्रयोग भाव की सफल अभिव्यक्ति नहीं कर रहा है ।जैसे-

- ईंटों से अपना माथा फोड़,पत्थरों से कमर तोड़ । (रस० ३२)

इसमें अन्त्यानुप्रास में 'ड़' के प्रयोग से 'क्रोध' का आवेश कम हो रहा है ।
उपमा अलंकारों में कई बार समानता प्रकट करने के लिए उपमानों का चुनाव अटपटा लगा है। जैसे -

- आपका न्याय जयपुर सप्लाई स्कीम के जूस की तरह शुद्ध है, प्यारे है । (रस० ४१)
- इसके दाँत तरबूज के बीजों की तरह निकल कर गिर चुके होंगे । (रस०३७)
- गँवारों की स्त्रियों की माँग की तरह ऊँचे महाराज की इतनी अकड़ ? (विक्र० ५६)

कहीं-कहीं अनुचित उपमा भी है -

- ताड़ की तरह मोटी वह (रस० ५६)

ताड़ की तरह लम्बी" उपमा दी जाती है उसके स्थान" ताड़ की तरह मोटी " उपमा दी है -

- उसकी आँखें बेवकूफों जैसी थी (लिङ० १०)

" बेवकूफों की आँखों" में कोई विशिष्टता तो होती नहीं जो नाटककार ने बेवकूफों से तुलना की है।

उदाहरण अलंकार के प्रयोग में भी नाटककार ने जो कथन की पुष्टि में उदाहरण दिया है वह कुछ मेल नहीं खाता।

- राजकुमारी, आज हम खेल के भाग खुल गये। ऐसे खुल गये, जैसे पकने पर पपीता खुल जाता है। (रस० ७२)

अलंकारों का ऐसा प्रयोग उदयशंकर भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, मणि मधुकर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस ने अपने नाटकों में किया है।

भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने तथा शैली को उदात्त बनाने के उद्देश्य से नाटकों में अधिकतर अलंकारों का सहारा लिया गया है। नाटककारों ने भिन्न भिन्न अलंकारों को अपने नाटकों में महत्व दिया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में अनुप्रास अलंकार सब से प्रिय प्रतीत रहा है।" नील देवी" में अनुप्रासात्मक शैली की प्रधानता है।" श्री चन्द्रावली" में स्मरण, उत्प्रेक्षा, स्वाभावोक्ति अलंकार इनके अन्य नाटकों की तुलना में अधिक व्यवहृत हुए हैं। श्लेष, यमक, वीप्सा, अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक, वक्रोक्ति, अलंकारों द्वारा भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भाव प्रकट किए हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की तुलना में प्रताप नारायण मिश्र के नाटकों में अलंकारों को कम महत्व मिला है। मिश्र जी ने सामान्य बोलचाल की भाषा को अधिक महत्व दिया है, जिसमें आलंकारिकता कम आ पायी है। अनुप्रास तथा उपमा अलंकार प्रधान रूप में आया है। इनके अतिरिक्त यमक, रूपक, श्लेष, संदेह, पुनरुक्तिवदाभास तथा वीप्सा को अपनाया है।

प्रताप नारायण मिश्र की तुलना में बद्रीनाथ भट्ट ने अलंकारों द्वारा भावाभिव्यक्ति में अधिक रुचि ली है। इनके नाटक में उपमा अलंकार को स्थल स्थल पर प्रयुक्त किया है, कुछ नवीन उपमान शब्द भी रखे गये हैं। उपमा के अतिरिक्त अनुप्रास, वीप्सा, यमक, श्लेष, उदाहरण, अलंकारों को प्राय: उक्तियों में व्यवहृत किया है।

जयशंकर प्रसाद नाटककार के साथ-साथ कवि भी हैं, अतः उनकी नाटकीय भाषा भी अलंकारों से सजी हुई है। प्रसाद के नाटकों में अलंकारों के प्रयोग का दूसरा कारण भावुक पात्र हैं । विशेषतया स्त्री पात्र तथा कवियों द्वारा अलंकृत भाषा व्यवहृत हुई है । इनके नाटकों में अनुप्रास-मयी भाषा की छटा स्थल-स्थल पर दिखाई देती है । इसके अतिरिक्त उपमा के नवीन प्रयोग मिलते है, जिसमें नये-नये उपमान व्यवहृत हुए हैं । रूपक स्मरण, अतिशयोक्ति, वीप्सा , उत्प्रेक्षा, उल्लेख को भी इनके नाटकों मे स्थान मिला है ।

जी० पी० श्रीवास्तव ने प्रसाद की तुलना में अलंकारों की ओर कम रुचि ली है । इनके नाटक की भाषा आलंकारिक न होकर बोलचाल की साधारण भाषा है , जिसमें चमत्कार के दर्शन कम होते हैं । फिर भी इनका नाटक अलंकारों से अछूता नहीं है । अनुप्रास अलंकार प्रधान रूप में आया है । वीप्सा , उपमा अलंकारों में भी नाटककार ने काफी रुचि ली है । उपमा अलंकार मे नये उपमानों को भी प्रयुक्त किया है । अतिशयोक्ति उल्लेख तथा रूपक की भी सहायता अभिव्यक्ति मे ली गई है।

रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट के नाटकों में भावुक प्रकृति के पात्रों द्वारा नाटककारों ने आलंकारिक भाषा को बुलवाया है । उपमा अलंकार को इन नाटककारों ने स्थल-स्थल पर स्पष्टता लाने हेतु रखा है । रामवृक्ष बेनीपुरी ने अनुप्रास , उल्लेख, स्मरण, श्लेष, स्वाभावोक्ति, अनन्वय , अलंकारों को मुख्यतः प्रयुक्त किया हैं । उदयशंकर भट्ट के नाटक में प्रेम प्रसंगों में संवाद कलापूर्ण काव्यमय तथा आलंकारिक हो गये हैं । इन्होंने उत्प्रेक्षा , अतिशयोक्ति, अनुप्रास अलंकारों द्वारा भाव अधिकतर व्यक्त किए हैं । हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में अलंकारों के प्रयोग से भाषा बोझिल नहीं हुई है । इन्होंने अवसरानुसार उत्प्रेक्षा , श्लेष, यमक, अनन्वय, उल्लेख, उदाहरण अलंकारों को व्यवस्थित किया है । इन नाटककारों की तुलना में उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, गोविन्द वल्लभ पन्त ने भाषा की स्वाभाविकता की ओर अधिक

दृष्टि रखी है, आलंकारिकता या काव्यात्मकता की ओर कम । अत: अलंकारों को इन नाटकों में कम स्थान मिला है । साधारण अलंकारों को इन नाटककारों ने प्रयुक्त किया है । उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा , वीप्सा, अतिशयोक्ति अलंकार , लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में अनुप्रास, वीप्सा, उपमा, उल्लेख अलंकार को तथा गोविन्द वल्लभ पन्त के नाटक में अनुप्रास, वीप्सा, उत्प्रेक्षा ,उल्लेख, स्मरण अलंकारों को चुना है ।

जगदीश चन्द्र माथुर के दशरथ नन्दन नाटक में उनके अन्य नाटकों की तुलना में अलंकारों की भरमार है। अनुप्रास अलंकार की ओर माथुर जी का रुझान अधिक दिखता है । इसके अतिरिक्त रूपक, वीप्सा, यमक, श्लेष विभावना, उल्लेख, स्मरण अलंकारों द्वारा अभिव्यक्ति की गई है ।

वृंदावन लाल वर्मा ने अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति अलंकारों से भाषा को अलंकृत किया है । उत्प्रेक्षा और उल्लेख का गिने-चुने स्थलों पर प्रयोग हुआ है ।

मोहन राकेश अलंकारों के प्रयोग के पक्ष में कम रहे है । इनके नाटकों में अनुप्रास, वीप्सा, स्मरण, असंगति, रूपक, श्लेष अलंकारों को अधिक महत्व मिला है । असंगति अलंकार को लहरों के राजहंस में व्यवहृत किया है ।

आधुनिक नाटकों मे अधिकतर नाटक यथार्थवादी या प्रतीकवादी है । जिसमें अलंकृत भाषा को नाटककारों ने उपयुक्त नहीं समझा है, भाषा सरल तथा व्यावहारिक प्रयुक्त हुई है । इस प्रकार की अभिव्यक्ति सत्यव्रत सिंहा, विष्णुप्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, मुद्राराक्षस, विपिन कुमार अग्रवाल तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने की है । इन नाटककारों ने अनुप्रास, उपमा, वीप्सा अलंकारों को प्रधान रूप में अपनाया है । अनन्वय अलंकार को सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने, पुनरुक्तिवदाभास को मुद्राराक्षस ने, विष्णुप्रभाकर ने उदाहरण अलंकारों द्वारा गिने-चुने स्थलों पर अभिव्यक्ति की है ।

पर अभिव्यक्ति की है ।

मणिमधुकर तथा सुरेन्द्र वर्मा ने इन नाटककारों से कुछ अधिक रुचि अलंकारों के प्रयोग में ली है । मणिमधुकर ने पात्रों की प्रकृति तथा स्थितियों को देखते हुए अलंकारों की व्यवस्था की है । उपमा अलंकार , अलंकारों में मुख्य रहा है । इसके अतिरिक्त उल्लेख, अनुप्रास , स्मरण, उदाहरण, श्लेष, अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा अलंकार मुख्य रहे है ।

सुरेन्द्र वर्मा ने अनुप्रास , उपमा, उल्लेख , अनन्वय, विभावना अलंकारों को अधिक महत्व दिया है ।

आरम्भिक नाटकों की तुलना में आधुनिक नाटकों मे अलंकारों का प्रयोग काफी अल्प हो गया है क्योंकि, अधिकांशत: आधुनिक नाटकों मे भाषा को बोलचाल की तथा स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया है, और बोलचाल की भाषा मे उतना चमत्कार नहीं है जितना साहित्यिक भाषा मे, अत: अलंकारों की स्थिति आधुनिक नाटकों में कम हो गई है ।

बिम्ब

बिम्ब नाटककार की कल्पनाओं तथा अनुभूतियों को पाठक या दर्शक के सम्मुख प्रस्तुत करने का माध्यम है । बिम्ब योजना मे कल्पनाओं का बड़ा योगदान है । नाटककार की कल्पना की सुदृढ़ता पर ही बिम्ब की स्वाभाविकता तथा सौन्दर्य निर्भर है । बिम्ब शैली का महत्वपूर्ण अंग है । हिन्दी नाटकों मे नाटककारों ने बिम्ब योजना मे भिन्न-भिन्न दृष्टि रखी है ।

नाटककारों ने अपने नाटकों के कथानक को दृष्टि में रखते हुए भी बिम्ब स्थापित किए है। ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, पौराणिक नाटकों में नाटककारों ने युद्ध तथा प्रेम की मुख्य दो प्रवृत्तियां रखी हैं , इन प्रवृत्तियों को दृष्टि मे रखते हुए बिम्ब भी, युद्ध दृश्य के तथा प्रेम भाव के प्राय: रखे हैं।

नाटकों में युद्ध के दृश्यों को सजीव बनाने के लिए बिम्बों का सहारा लिया है । रंगमंच पर युद्ध के दृश्यों को प्रदर्शित करना असम्भव हो जाता है , अतः नाटककारों ने किसी पात्र द्वारा युद्ध के दृश्य का वर्णन इस प्रकार कराया है,ताकि दर्शक या पाठक को ऐसी अनुभूति होने लगे मानो सामने दृश्य देख रहा है । युद्ध से सम्बन्धित बिम्ब के उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

- जब वे दोनों हाथों से तलवार घुमाती हुई भूखी सिंहनी की भांति शत्रु सेना पर टूट पड़ीं, तो हमारी सेना के हृदय में न जाने कहां से अद्भुत साहस उमड़ पड़ा । राजपूत जय एकलिंग को कहकर भगवान शंकर के गणों की भांति शत्रु सेना पर टूट टूट पड़े ।(रक्षा० ८२)

- ... तुमने और मैंने उनकी बेरहमी के जाल में तड़पती मछलियों की भांति आश्रमवासियों को बचाया हम लोग तड़ित की भांति काले बादलों को चीर टूट पड़े । देखते ही देखते कौसियों को तुमने धराशायी किया । (प०रा० ५१)

युद्ध के बिम्बों को जयशंकर प्रसाद बद्रीनाथ भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, वृंदावन लाल, जगदीश चन्द्र माथुर ने(पहला राजा में) ने महत्व दिया है ।

ऐतिहासिक, राष्ट्रीय व पौराणिक नाटकों में देशप्रेम भी व्यक्त हुआ है । देश प्रेम को व्यक्त करने के लिए नाटककारों ने पात्रों द्वारा प्रकृति की प्रशंसा में बिम्ब स्थापित कराये हैं । प्राकृतिक बिम्बों में अधिकांशतः नाटककारों ने आकाशीय , जलीय बिम्बों का चयन किया है।

आकाशीय बिम्बों में बादल , बिजली, तारों के बिम्ब नाटककारों को अधिक प्रिय रहे है । - जैसे

- पानी के मोतियों की माला पहने हुए बादल अपनी मौज से घूमते हैं, बिजली बादलों के प्रेम से दिल में उल्लास

झलक झलकती है, (वि०अ०५४)

- तारों से भरी हुई काली रजनी का नीला आकाश - जैसे कोई विराट गणितज्ञ निभृत में रेखा गणित की समस्या सिद्ध करने के लिए बिन्दु दे रहा है । (चन्द्र०११५)

जलीय बिम्बों में, गंगा नदी के बिम्ब अधिकतर नाटकों मे प्रयुक्त हुए हैं ।

- वही पुलकित पावन गंगा की तरंगों का आलिंगन करने जैसा झूम रही है, तरंगे पवन के स्पर्श से उन्मादिनी सी होकर ऊपर को उछल रही है कहीं ऊंचा और कहीं नीची, मानों आनन्द के उभार में शिथिलता झलक पड़ती हो । (वि०अ०२८)

- तरनि - तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए ।
झुके कूल सों जल परसन - हित मनहु सुहाए ।।
किंधौ मुकुर मे लखत उझकि सब निज-निज सोभा ।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ।।
(श्रीचन्द्रा०४५)

प्रकृति के कई तत्वों का एक साथ भी बिम्ब देश प्रेम को प्रकट करने के संदर्भ मे खींचा गया है । सम्पूर्ण प्रकृति के बिम्ब अधिकांशतः नाटकों मे प्रयुक्त हुए हैं । जैसे -

- आसमान से बातें करने वाले हरे भरे पहाड़, कल-कल, छल-छल करते हुए नाचते - कूदते जाने वाले झरने समंदर से होड़ करने वाले तालाब, बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग घने जंगल कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बिखेर दी है ।(रजा०२३)

- सामने ऊंचे, लम्बे हरियाले पहाड़, सिर पर विशाल नीलाम्बर और नीचे निर्मल जल-राशि, फिर इन सब को स्वर्णदान देती हुई बसन्त के सूर्य की स्नेहमयी धूप । (जय०४४)

उपर्युक्त कोटि के बिम्बों को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (श्री चन्द्रावली) जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के (जय पराजय में) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के (श्री चन्द्रावली) नाटक में इसको महत्त्व मिला है। श्री चन्द्रावली नाटक यद्यपि प्रेमकथा का नाटक है, परन्तु इसमें भी प्रकृति के गुणगान द्वारा नाटककार के देशप्रेम के भाव व्यक्त हुए हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'श्री चन्द्रावली' नाटक में, नाटक की प्रेम-कथा को देखते हुए बिम्ब प्रयुक्त किये गये हैं। इसमें प्रेम के विरह पक्ष के भाव मुखरित हुए हैं। जिनका सम्बन्ध वर्षाऋतु से अधिक रहता है अतः नाटककार ने ऐसे बिम्बों की योजना की है। उदाहरण -

- सखी देख बरसात भी अबकी किस धूमधाम से आई है, मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवायी है। धूम से चारों ओर घूम घूम कर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निशान उड़ाए लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते गरज गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा सा कुछ अलग पुकार पुकार कर गा रहे हैं। (श्रीचन्द्रा० ४५)

सामाजिक समस्यामूलक यथार्थवादी और प्रतीक वादी नाटकों में नाटककारों ने अधिकांशतः दृश्य, और घटनाओं के बिम्ब प्रस्तुत किए हैं।

- यहीं बैठे बैठे झपकी आ गई . . . बड़ा डरावना सपना देखा है . . . अभी अभी . . . दो काले आदमी (और से साँस लेकर) शैतान की तरह डरावना खम्भे की ओर हाथ उठाकर इससे भी ऊँचे थे . . . हाँ इससे भी ऊँचे . . . काले, लम्बे - लम्बे दाँत ओंठ के बाहर हो गये थे, बड़े बड़े बाल (सिन्दूर० १२६)

- अब मैं वह चित्र बनाऊंगी – भागता हुआ सफेद घोड़ा । उसके पीछे नन्हे – नन्हे बच्चे दौड़ रहे हैं । बहुत तेज हवा चल रही है । उससे भी तेज बारिश हो रही है । घोड़ा दुम दबाये भाग रहा है . . . . गैलप . . . गैलप बच्चे उससे तेज भाग रहे हैं। बच्चे उसे घेर लेते है, उसे पकड़ना चाहते हैं । घोड़ा गुस्से मे पागल हो जाता है । वह बच्चों पर एकाएक टूट पड़ता है ।

(मादा०२६)

न्यायालय की घटना को साक्षात् करने के उद्देश्य से बिम्ब रूप में प्रयुक्त किया है । इसमें घटना का रूप बड़ी कुशलता से प्रकट किया है ।

- अल्लाउद्दन केर लड़ाई ओकरें आगे भू होइगै । कक–कक–कक–कक मार बहसियाए के चिटपिटलाल ढेर के दिहिन । ओकर चिरागअली कुछ बहसियाइन । मुला हमार उकिलवा किन्हों नहीं दावा । घर घर होइस । कलम पकड़ पकड़ लिखिन । राम दोहाई असलड़ा असलड़ा है कि काव कही भइया अस वकुर बड़े । मुला पंडों के काव कही गदहा तना बइठ सुना किहिन । (उल्ट० 23)

डा० पी० श्रीवास्तव, प्रतापनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मी नारायण लाल, गोविन्द बल्लभ पन्त, विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस, मोहन राकेश के नाटकों मे उपर्युक्त कोटि के बिम्ब व्यवस्थित हुए हैं ।

रूप को प्रकट करने वाले नाटकों मे सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं । रूप बिम्ब को प्रायः नाटककारों ने प्रेम, हास्य के भाव को साकार बनाने के लिए प्रयुक्त किये है । नाटककारों ने प्रायः शरीर के कई अवयवों का बिम्ब एक साथ प्रस्तुत किया है । – जैसे :

- वह बाँका - बाँका छैला, घुंघराले बाल, आँखों मे रस, होंठ के ऊपर मसें भीगी, चौड़ी छाती फुलाए, उलटे पुट्ठों वाली भुजाएं हिलाता , मस्ती मे भूमता जाता हुआ, कामदेव का सखा ।(अम्बा० १२)

- बीस वर्ष का स्वस्थ, सुन्दर, सम्मोहक शरीर, चन्द्रमा-सा मुख, कमल - सी आँखें, कमान सी भौंहे, घने , काले, नीलम से चमकीले बाल ।(सिंदूर० १२)

- राष्ट्रसंघ मे जब तक फैसला होगा, तब तक यह रूप शिखा कुम्हला चुकी होगी । इसके दाँत तरबूज के बीजों की तरह निकल कर गिर चुके होंगे । गालों मे बन चुके होंगे खाई खंदक और कमर कमान की तरह टेढ़ी हो चुकी होगी ।(रूप० ३६)

नाटककारों ने भाव की अनुभूति को सशक्त बनाने के लिए बिम्ब मे बाँधा है । सामान्य रूप में भी भाव की अभिव्यक्ति हो सकती थी, परन्तु उसके द्वारा पाठक या दर्शक को भाव की अनुभूति अधिक नहीं हो सकती थी । नाटकों मे भाव प्रदर्शन वाले बिम्ब प्रस्तुत है ।-

- एक दिन उन्होने मुझे प्यार किया था, समुद्र की तरह उमड़कर मुझे अपनी लहरों मे लीन किया था । किन्तु दूसरे ही क्षण मे सूने बालू के तट पर पड़ी कराह रही थी ।(रक्षा० १५)

प्रेम के संयोग तथा वियोग पक्षों की अनुभूति बिम्ब द्वारा कराई है ।

नाटककार ने पीड़ा की दशा को अपनी कल्पना की कुशलता से इस प्रकार व्यक्त किया है, जिससे पाठक या दर्शक उसका अनुभव करने लगे ।

- एक तो दर्द के मारे नींद नहीं आती , यदि कदाचित आई तो बोझ का बोझ सीने पर होता है । साँस घुटने लगती है, कलेजा फूटने लगता है - चिल्लाना चाहती हूं, आवाज नहीं

निकलती घिग्घी बंध जाती है । व्याकुलता की पराकाष्ठा में जब नींद टूटती है, तो बिछावन तकिया सब तर-बतर पाती हूं ।(अम्ब०११२)

- अशान्ति की आग में बेचैनी से उबलते जल-कुण्ड में मछली की तरह तड़प रही हूं ।(वि०अ०२९)

इसमें पीड़ा को नाटककार ने मानों अनुभूति के आधार पर व्यक्त किया है ।

भय या घबराहट के भाव को प्रकट करने में भी नाटककारों ने बिम्ब का सहारा लिया है । जैसे -

- इनमें हृदय ऐसे काँप रहा है जैसे दो शेरों से भयभीत मृग।(जय०३८)

मनोव्यथाओं के प्रकटीकरण में भी नाटककारों ने सजीवता लाने के उद्देश्य से भावों को उनके स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त किया है ।-

- कौन था वह व्यक्ति जिसके सामने पड़ते ही टूटे बाँध की तरह भावनाओं का ज्वार उमड़ पड़ता , सारे बंधनों की श्रृंखला और मर्यादाओं की अर्गला कच्चे धागे के समान टूट जाती ... पाँव काँपते , होंठ थरथराते, गला रुंध जाता .... और अन्दर का सारा उत्ताप घुमड़कर आँखों की राह बह निकलता।

(सेतु०१९)

भावों के प्रकटीकरण में बिम्ब विधान को जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, सुरेन्द्र वर्मा तथा मोहन राकेश ने महत्व दिया है ।

संवेदनों की दृष्टि से भी नाटककारों की बिम्ब विधान दृष्टि में भिन्नता के दर्शन होते हैं । नाटकों में चाक्षुष बिम्बों को तो सर्वत्र

अपनाया गया है । चाक्षुष बिम्बों द्वारा नाटककारों ने पाठक को यह अनुभव कराया है जैसे वह सामने वह दृश्य या चित्र देख रहा है । नाटकों में व्यवहृत हुए बिम्ब उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं ।

- वृषभकंध उर बाहु बिसाला ।
  चारु जनेऊ माल मृगछाला ।
  कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे।
  धनु सर कर कुठारु कल काँधे । (दश० ११६)

- देवव्रत के बाणों की बौछार देखकर तेज हवा मे पत्तों की तरह उसकी पिंडलियाँ काँप रही थी । एक हाथ आगे करके पीछे की ओर भाग रहा था । एक हाथ मे बिना डोरी की कमान तूफान में आई नाव की तरह भौंहे खा रही थी । मुँह पिचक गया था, दाँत चिपक गए थे । घिग्घी बंध गयी थी । अन्त मे हाय री अम्मा कहकर वह गिरपड़ा ।(वि०अ० ४६)

स्पर्शपरक बिम्ब द्वारा नाटककारों ने मुख्यत: भावों की अनुभूति कराई है । नाटकों मे इन बिम्ब को काफी कम स्थान मिला है ।

- प्यासी और मादक आँखों की कोर से उस नव युवक ने मेरे हृदय में बिजली लरजा दी है (वि० अ० ३८)

- आकाश का क्षितिज तक फैला हुआ सुकुमार नीलापन जैसे आँखों की नमी सोख लेना चाहता है । उपत्यकाओं की गहरी हरीतिमा तप्त माथे को कोमलता से छूती है । वायु के पार दर्शी आर्द्र भौंहे मानो सारी क्लान्ति हर लेने को आतुर ..... उन्मत्त पुष्पलतायें चारों और सुरभि बिखेर देती हैं ।(सेतु० २८)

स्पर्शपरक बिम्बों को उदयशंकर भट्ट , हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीशचन्द्र माथुर तथा सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों मे स्थान दिया है ।

बिम्बों में स्वाभाविकता लाने के लिए वस्तु से सम्बन्धित ध्वनि को श्रावण बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है ।

- घोड़ा भाग रहा है गैलप ... गैलप बच्चे उससे तेज भाग रहे हैं ।(माधा०२६)

- कल-कल, छल-छल करते हुए नाचते-कूदते जाने वाले झरने ।(रक्षा०२३)

- भैरव के श्रृंगीनाद के समान हुकार से शत्रु-हृदय कंपा दो (स्कंद०४६)

श्रावण बिम्बों को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद , उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटकों मे व्यवस्थित किया है ।

बिम्बों की अभिव्यक्ति का आधार भी नाटकों में भिन्नता लिए है । बिम्बों में अलंकारों को अधिकतर नाटककारों ने प्रधान रूप मे अपनाया है। बिम्बयोजना में शब्दालंकारों का उतना महत्व नहीं है जितना अर्थालंकार का है । नाटककारों ने अलंकारों में उपमा अलंकार को प्रधानता दी है, इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति उदाहरण को भी प्रयुक्त किया है । अलंकारों द्वारा बिम्ब निर्माण के उदाहरण प्रस्तुत है । -

- जब वे दोनो हाथों से तलवारें घुमाती हुई भूखी सिंहनी की भांति शत्रु सेना पर टूट पड़ी ।(रक्षा०७२)

- दीपशिखा - सी जलती वे सुन्दर मादक आँखें ।(अम्ब०४१)

- कहीं पुलकित - पवन गंगा की तरंगों का आलिंगन करके कैसी झूम रही है, तरंगे पवन के स्पर्श से उन्मादिनी सी होकर ऊपर को उछल रही है, कहीं ऊँची और कहीं नीची, मानो आनन्द के उभार मे शिथिलता भलक पड़ती हो ।

(वि०अ०२६)

- आसमान से बातें करने वाले हरे-भरे पहाड़, कल-कल, छल-छल करते हुए नाचते-कूदते जाने वाले झरने, समंदर से होड़ करने वाले तालाब, बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग, इतने जंगल कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत बिखेर दी है।(रुपा0 २३)

- उन सबको जोड़कर माँ का जो चित्र बनता है, वह बहुत उदास... जैसे इतने अंधकार की पृष्ठभूमि में सहस्रों दीपमालाओं से आलोकित निर्जन राज प्रसाद ।।(स्तु0 १८)

बिम्ब को सरल व सर्वग्राह्य बनाने के प्रयोजन से अभिधा द्वारा भी नाटककारों ने इसकी अभिव्यक्ति की है । - जैसे

- एक विस्तृत सघन अमराई - आम की हर डाल मंजरियों से लदी झुकी, भौंरे जिन पर गुन्जार कर रहे, बसंती हवा जिनसे खिलवाड़ कर रही है - आम के पेड़ों के बीच की जमीन में सरसों की फूली हुई क्यारियाँ-वृक्षों से लिपटी लताओं से जहाँ-तहाँ बन गईं कुंजें ।(अम्बा0 १)

- भूमि चारों ओर हरी हरी हो रही है ! नदी नाले, बावली-तालाब सब भर गये । पक्षी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं । बीर बहूटी और जुगनू पारी पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं । नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिरते हैं । सर्प निकल निकल कर आरण्य से इधर उधर भागे फिरते हैं । (श्रीचन्द्रा0 ३३-३४)

- पिछले बसंत में आम कैसे बौराये थे । पेड़ों की डालियाँ अपने-आप धरती पर झुक जाती थीं ।(लहरों0 २६)

बिम्ब विधान में अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, जी0पी0 श्रीवास्तव, रामवृक्ष बेनीपुरी, विपिन कुमार अग्रवाल, गोविन्द वल्लभ पन्त, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, मणि मधुकर, मोहन राकेश, मुद्राराक्षस , विष्णुप्रभाकर ने महत्व दिया है ।

रहस्यात्मक व दार्शनिक बिम्बों मे नाटककारों ने भाषा में गूढ़ता रखी है, जिसमें शब्दों से लाक्षणिक अभिव्यक्ति हुई है । मानव जीवन के रहस्य को झरने के बिम्ब द्वारा स्पष्ट किया है ।-

- ज्यादातर मानव मन झरने की तरह होता है, जो शुरू में कल-कल - छलछल करता, तरंगों से युक्त, फेनों से भरा, कभी इधर, कभी उधर भटकता बहकता, चक्कर काटता, गिदयाँ भरता, अन्ततः नदी या नद मे परिणत हो, अपनी गति से आप ही झुब्ध अपनी उठाई हुई लहरों मे आप ही थपेड़े खाकर हाहाकार, आर्तनाद कर उठता है और त्राहि -त्राहि करता किसी सागर मे अपने को खो देता है ।(अम्बा० १०६)

हास्यपूर्ण बिम्बों मे भी नाटककरों ने लक्षणा द्वारा अभिव्यक्ति की है :-

- वही ताड़का, दरवाजे पर मेरी तावली दिखाई दे रही है । उसके हाथ मे कलछुल भी है और चीमटा भी । आते द्वार पहुँचते ही जरूर उन दोनो का मेरी खोपड़ी के ऊपर ताँडव नृत्य होगा ।(अंगूर ० १२३)

- राम दोहाई, असमंजस उठ खड़ा है कि काव कही भइया जस कूकुर लड़े । मुआ पंडो के काव कही गदहा तना बइठ सुना किहिन।

(उलट० २१)

लक्षणा द्वारा अभिव्यक्ति को जयशंकर प्रसाद, जी०पी०श्रीवास्तव, रामवृक्ष बेनीपुरी, गोविन्द वल्लभ पन्त ने प्रायः अपनाया है ।

प्रतीक द्वारा बिम्ब विधान को कम नाटककारों ने महत्व दिया है । प्रसाद के नाटकों मे प्रतीकों का बिम्ब योजना में काफी महत्वपूर्ण स्थान रहा है । धूमकेतु के बिम्ब इनके सभी नाटकों में हैं । बद्रीनाथ भट्ट तथा

मोहन राकेश के नाटकों में भी बिम्ब योजना में प्रतीक सहायक हुए हैं। मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' में सूखा सरोवर ..... पत्रहीन वृक्ष और धूल भरा आकाश के बिम्बों में प्रतीक द्वारा अलका की मनोदशा को व्यक्त किया है। आधे अधूरे में, अधटूटा टी सेट, धूल की जमी पर्तें, निरर्थक बातें, तनावपूर्ण तथा छिन्न-भिन्न होते हुए परिवार का चित्र सामने आता है। सुरेन्द्र वर्मा ने भी 'सेतुबन्ध' में प्रतीक द्वारा बिम्ब स्थापित किये हैं जैसे तपती दोपहर में किसी बालक की कातर पुकार बालक को प्रेमी का प्रतीक मानकर प्रयोग किया है। आधुनिक नाटककारों में लक्ष्मीनारायण लाल, मुद्राराक्षस तथा विपिनकुमार अग्रवाल ने अलंकारों को बजाय प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति की शैली में अधिक रुचि ली है।

नाटककारों ने बिम्ब विधान को प्रभावशाली बनाने के प्रयोजन से इनमें मुहावरों द्वारा अभिव्यक्ति की है। सामान्य भाषा की तुलना में ये मुहावरात्मक अभिव्यक्ति बिम्ब को स्पष्ट करने में अधिक सहायक हुई है।

- कक-कक-कक-कक बघासियाए के लिटपिट लाल ढेर थे दिखिन। (जनट० २३)

- अदालत में भी अच्छे हाथ साफ किये। फैशन ने तो किस और टोटल के इतने गोले मारे कि बंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया। (भारत०भा० २८)

मुहावरात्मक अभिव्यक्ति को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जी०पी० श्रीवास्तव ने अपने नाटकों में अधिक महत्व दिया है।

कई बार बिम्ब विधान में नाटककार की कल्पना अनुपयुक्त लगी है - जैसे

- उसकी आँखें बेवकूफों जैसी थीं और भूखानी बेतुके ढंग से नुकीली थी। (सिल० २३)

आँखों का बिम्ब खींचने में 'सेवकूपों जैसी' कहने से आँखों का स्वरूप किस प्रकार का है यह प्रकट नहीं हो पा रहा है ।

'बादलों का हवा में झूलना' नाटककार ने अटपटा बिम्ब प्रस्तुत किया है।-

- अम्बा को देख कर ऐसा मालूम होता है मानों हवा पर झूलते हुए बादलों की तरह मुँह लटकाए अशोक वाटिका में सीता बैठी हो।

(वि०ब०४०)

बिम्ब प्रयोग की ओर नाटककारों की दृष्टि अलग-अलग रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में श्री चन्द्रावली में बिम्बों की अतिशयता है । इसमें नाटककार ने प्रकृति, ऐन्द्रिय, भाव को व्यक्त करने वाले बिम्बों को अधिक महत्व दिया है । भारत दुर्दशा और अन्धेर नगरी में,बिम्बों की परिकल्पना की गई है । अंधेर नगरी में, बाजार के दृश्य को नाटककार ने ऐसा प्रस्तुत किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानों व्यक्ति बाजार में खड़ा है । इनके नाटकों में अलंकार अभिव्यक्ति में सहायक हुए हैं । भारत दुर्दशा में लक्षणा द्वारा भी अभिव्यक्ति हुई है । अभिधा को भी बिम्बात्मक अभिव्यक्ति के लिए कई स्थानों पर चुना है ।

प्रसाद के नाटकों में बिम्ब अधिक प्रिय हुए हैं । नाटककार ने दृश्य, घटनाओं , भावों सभी को बिम्ब द्वारा प्रकट किया है । इनके बिम्ब अन्य नाटककारों के बिम्बों से अलग व विशिष्ट कोटि के हैं । प्रकृति, ऐन्द्रिय, पार्थिव, मनोस्थिति , व्यक्तित्व को वर्णित करने वाले बिम्ब इन्होंने प्रयुक्त किये हैं । प्रतीकों तथा अलंकारों द्वारा बिम्बों की अभिव्यक्ति हुई है । प्रसाद के नाटकों की तुलना में बद्रीनाथ भट्ट ने अपने नाटक 'दुर्गावती' में बिम्बों की व्यवस्था कम की है । इनके नाटक में मनोव्यथाओं, परिस्थितियों तथा दृश्य को प्रकट करने के लिए बिम्ब स्थापित हुये हैं । इन्होंने अलंकारों को बिम्ब में प्रधान रूप से अपनाया है, प्रतीक तथा लक्षणा की अल्पता है । चाक्षुष बिम्बों को नाटककार ने प्रधानता रखी है । प्रतापनारायण मिश्र ने बिम्ब योजना में अलग दृष्टि रखी है । इन्होंने बिम्ब को अधिक महत्व नहीं दिया है, वैसे भी बिम्बों की अभिव्यक्ति में अभिधा को अधिकतर

अधिकतर अपनाया है । इन्होंने मनोव्यथा को व्यक्त करने वाले तथा रूप, दृश्य को प्रकट करने वाले बिम्बों को मुख्यत: रखा है । स्थूल बिम्ब योजना अधिकतर की है ।

प्रसाद के नाटकों की भांति उदयशंकर भट्ट के नाटक विद्रोहिणी अम्बा में प्राकृतिक बिम्ब मिलते हैं, जिसमें नदी, आकाश, पवन के बिम्ब मुख्य हैं , परन्तु इनके नाटक में प्रसाद के नाटकों से भिन्न उपकरण प्रयुक्त हुए है । रूपदर्शन अन्तर्जगत को प्रदर्शित करने वाले, चरित्र को व्यंजित करने वाले बिम्बों का प्रयोग इन्होंने किया है। बिम्बात्मक अभिव्यक्ति में इन्हों ने अलंकारों प्रधानता दी है । रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी प्राकृतिक सौन्दर्य के बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, इनके बिम्ब बड़े आकर्षक, विशद तथा चित्रोपम बन पड़े हैं । प्रसाद के नाटकों की भांति दार्शनिक, रहस्यात्मक बिम्बों में उन्होंने लक्षणा प्रतीक का अभिव्यक्ति में सहारा लिया है । अलंकार अभिव्यक्ति में अधिक सहायक हैं । रूप प्रदर्शन में भी बिम्बों का चुनाव किया है।

जी०पी० श्रीवास्तव ने अपने नाटक में बिम्बों को हास्य के उद्देश्य से रखा है, इन्होंने हास्यपूर्ण घटनाओं, दृश्यों के चित्र खींचे हैं । लक्षणा तथा अलंकारों को बिम्बों के वर्णन में महत्व दिया है।

हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा ने भी बिम्ब योजना में रुचि ली है, रूप, घटना, तथा भावों को व्यंजित करने वाले बिम्ब मुख्यत: इनको प्रिय रहे हैं । चाक्षुष तथा स्पर्शपरक बिम्बों को इन्होंने अपनाया है । अलंकार बिम्बों को अभिव्यक्ति में प्रधान रूप में रहे हैं ।

जगदीश चन्द्र माथुर ने भी बिम्बों को अपने नाटकों में काफी महत्व दिया है।इनके नाटक 'पहला राजा' में गोरूपा धरती का बिम्ब नाट्यकृति को अद्भुत अर्थ अनुरंजित करता है । पहला राजा के विषय में गोविन्द चातक ने कहा है पहला राजा भावना का नहीं, प्रतीकों, बिम्बों और अन्योक्ति का विचार और विश्लेषण का नाटक मात्र बन कर रह जाता है । 'दशरथ नन्दन' में भी बिम्बों की भरमार है, इसमें प्रकृति ,व्यक्तित्व,

शौर्य, सौन्दर्य के बिम्बों को मुख्यत: रखा है । कोणार्क में इनके अन्य नाटकों की तुलना में बिम्ब कम हैं । अलंकार, प्रतीक मुख्यत: बिम्बात्मक अभिव्यक्ति में आये हैं ।

सामाजिक, समस्यामूलक नाटकों में, नाटककारों ने मिलते-जुलते बिम्बों का चुनाव किया है । इनमें रूप प्रदर्शित करने वाले तथा घटनाओं, दृश्यों को सजीव करने वाले बिम्ब व्यवहृत हुए हैं । इस कोटि के बिम्बों को उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, गोविन्दवल्लभ पन्त, विष्णुप्रभाकर ने महत्व दिया है । इन नाटककारों ने बिम्बात्मक अभिव्यक्ति में अलंकारों का चुनाव अधिक किया है व लक्षणा पर कम। इन नाटककारों ने चाक्षुष बिम्बों को अधिकतर अपनाया है। मोहन राकेश ने'आधे अधूरे' नाटक में बिम्बों में प्रतीकों को महत्व मिला है ।

मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन तथा लहरों के राजहंस'नाटकों में अलंकारों की बजाय प्रतीकों की प्रधानता रही है । इन्होंने प्रेम भाव को प्रकट करने वाले तथा पात्रों की मनोदशा की व्यन्जना करने वाले बिम्बों को प्रयुक्त किया है । इनके नाटकों में दृश्य और श्रव्य बिम्बों का सार्थक प्रयोग हुआ है । नाटक बिम्बों से बोझिल नहीं होता है।

आधुनिक नाटक तिलचट्टा, मादा कैक्टस तथा लोटन में नाटककारों ने प्रतीक द्वारा चित्रों को स्थापित किया है । तिलचट्टा नाटक में अधिकतर बिम्ब तिलचट्टे को लेकर प्रस्तुत किये हैं, तिलचट्टे के माध्यम से व्यक्ति के यौन कुण्ठाओं से ग्रस्त अशिष्ट मन के चित्र प्रस्तुत किये हैं । मादा कैक्टस में नये तथा पुराने मूल्यों तथा विचारों के संघर्ष से उत्पन्न समस्याओं के चित्र खींचे हैं ; लोटन में जिन्दगी की आंशिकता को प्रस्तुत किया है।

सुरेन्द्र वर्मा ने मनोभावों को प्रकट करने वाले बिम्बों में रुचि ली है । बिम्बों में अलंकारों को अधिक महत्व मिला है।

रस गंधर्व की रचना, मणि मधुकर ने सामान्य नाटकों से हटकर की है। इसमें उन्होंने कई कोटि के बिम्बों को प्रस्तुत किया है। रूप वर्णन करने वाले, प्रकृति के सौन्दर्य को वर्णित करने वाले तथा हास्य को उत्पन्न करने वाले बिम्ब मुख्य रूप से आये हैं, जिसमें अभिव्यक्ति का माध्यम, लक्षणा तथा अलंकारों को बनाया है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अभिधा द्वारा अपने नाटक में अभिव्यक्ति कराई है। इसमें नाटककार ने दलित वर्ग पर अधिकारी तथा उच्च वर्ग के लोगों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों की झांकी प्रस्तुत की है। आधुनिक नाटक अमृत पुत्र में सत्यव्रत सिन्हा सामायिक सामाजिक और सरकारी कार्यालयों के जीवन को आक्रान्त करने वाली परिस्थितियों के चित्र खींचे हैं। इसमें युग की विसंगतियों का चित्रण हुआ है।

आधुनिक नाटकों में अधिकतर जन सामान्य की जिन्दगी का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया गया है क्योंकि, आधुनिक नाटककार युग बोध से विशेष प्रभावित हुआ है।

प्रतीक

प्रतीक एक प्रकार से प्रतीति चिन्ह है। प्रतीक लाक्षणिक भाषा की आत्मा है। जिन शब्दों को हम अभिधा द्वारा नहीं स्पष्ट कर पाते उसके लिए प्रतीक का सहारा लेते हैं। नाटकों में भी नाटककारों को जहाँ अभिधा रूप उपयुक्त नहीं लगा है, वहाँ उन्होंने प्रतीकों का चुनाव किया है।

नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग तो काफी हुआ है, परन्तु उनके प्रयोग में विविधता के दर्शन होते हैं।

कई बार नाटककार ने प्रतीक द्वारा अभिव्यक्ति में सांकेतिकता लानी चाही है, परन्तु उससे भाषा में गूढ़ता न आ जाय इससे भी बचना चाहा है, वहाँ परम्परागत प्रतीकों का सहारा लिया है, ताकि भाषा सर्वसामान्य की समझ से परे न हो जाये। परम्परागत प्रतीकों में सामान्य प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। इस कोटि के प्रतीकों को बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, प्रतापनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, विष्णुप्रभाकर, सुरेन्द्र वर्मा आदि नाटककारों ने अपनाया है। इन नाटककारों ने ऐसे प्रतीकों का प्रयोग किया है, जो सामान्यतः व्यक्ति व्यवहार में लाते रहते हैं। बद्रीनाथ भट्ट के नाटक में काँटा को बाधा का, ताले को बंधन का, फूल को कोमलता का, दीपक को मार्ग दर्शक का तथा चट्टान को अटलता का प्रतीक मान कर प्रयुक्त किया है। जी०पी०श्रीवास्तव ने भी साधारणतः प्रयोग में लाई जाने वाले प्रतीकों को चुना है। -जैसे गदहा को मूर्खता का, चिरई को निर्बल प्राणी तथा शेर को बलवान का प्रतीक मान कर व्यवहृत किया है। प्रतापनारायण मिश्र ने देवी को दिव्यता का, हरी-भरी को नवयौवना का प्रतीक मानकर प्रयुक्त किया है। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में भी परंपरागत प्रतीक इसी प्रकार के हैं।- जैसे जंजीर, बेड़ियाँ, पिंजरा को बंधन का प्रतीक माना है। हिरनी को चंचलता का, चट्टान को दृढ़ता का, सूर्य को चेतना तथा आशा का प्रतीक माना है। बहुमूल्य वस्तु के प्रतीक रूप में अमृत-फल को प्रयुक्त किया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी इन नाटककारों से मिलते-जुलते प्रतीकों को अपने नाटकों में अपनाया है। उदाहरण - तराजू को न्याय का, गंगा को पवित्रता का जंजीर को बंधन का, माला को वैराग्य का प्रतीक माना है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी धूल, घड़ी, काँटा, विष, मशीन आदि शब्दों का परम्परा से प्रयुक्त होने वाला अर्थ दिया है। वृंदावनलाल वर्मा के नाटक झाँसी की रानी में भी दीपक, फौलाद, शेर, सियार, कुमकुम, रोली सामान्य प्रतीक व्यवहृत हुए हैं। विष्णु प्रभाकर के नाटक में भी प्रतीकों के प्रयोग में कोई नवीनता नहीं है, चारदीवारी को बंधन का, महाचंडी, महामाया, महाकाली आदि को शक्ति का प्रतीक माना है। इसके अतिरिक्त सिन्दूर,

धूल, कालिख आदि शब्द भी प्रतीक रूप में आये हैं । सुरेन्द्र वर्मा के प्रतीक परम्परागत तो हैं , परन्तु अन्य नाटककारों की तुलना में कुछ भिन्नता लिए हुए हैं । इन्होंने श्वेत स्तम्भ, लाल स्तम्भ, पीले स्तम्भ , नीले स्तम्भ को चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के प्रतीक रूप में रखा है । अंधकार को अवसाद का, बालक को सच्चे पुण्यों, निर्जन राजप्रसाद को म्लान उदास व्यक्तित्व का प्रतीक माना है । कुमकुम अबीर को मांगलिक वस्तु के प्रतीक रूप में व्यवहृत किया है । रामवृक्ष बेनीपुरी ने कुछ परम्परागत प्रतीकों को चुना है जैसे गंगा को पवित्रता का, काँटों को दुख का, पीले वस्त्र को वैराग का प्रतीक मानकर प्रयोग किया है।

रहस्यवादी प्रतीकों को भी नाटकों में महत्त्व मिला है । ये प्रतीक जयशंकर प्रसाद के नाटकों में अधिक प्रिय दीखते हैं । रामवृक्ष बेनीपुरी तथा उदयशंकर भट्ट ने भी इस कोटि के प्रतीकों को महत्व दिया है। रहस्यवादी प्रतीकों का कथन इन नाटककारों ने प्रसंगों को देखते हुए किया है। रहस्यात्मक स्थलों पर कथन में गंभीरता लाने के लिए इन प्रतीकों को व्यवस्थित किया है । जयशंकर प्रसाद के नाटकों में प्रतिमा का हँसना, धूमकेतु, उल्कापात आदि अपशकुनों के प्रतीक हैं । रामवृक्ष बेनीपुरी ने कुररी, कोयल, बुलबुल को प्राणों के प्रतीक रूप में, आनन्द की रसधारा को ईश्वर भक्ति के प्रतीक रूप में महत्व दिया है । भँवर को सांसारिक माया मोह का प्रतीक माना है । संसार के लिए कंटक कानन तथा परमतत्व के लिए शांति की चिड़िया शब्द को प्रतीक रूप में अपनाया है। उदयशंकर भट्ट ने धूमकेतु, बादल, जीवन-मरण गिने-चुने इस कोटि के प्रतीकों को महत्व दिया है। मोहन राकेश ने लहरों के राजहंस में कुछ इस कोटि के प्रतीक आये हैं जैसे घर सांसारिकता का तथा वास्तविक घर परमतत्व के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भावों की अभिव्यंजना में भी प्रतीकों का सहारा नाटककारों ने लिया है । मोहन राकेश के नाटकों में प्रतीक भावों की व्यंजना हेतु प्रयुक्त हुए हैं । आषाढ़ का एक दिन में मेघ की आकृति, दीपक, रेशमी वस्त्र, कुम्भ, वायु, वृक्ष, उपत्यकाएं , हरिण शावक आदि प्रतीक भावों से

जुड़े हैं । गहरा अंधेरा, मेघ, बिजली की कौंधना आदि भी प्रतीक रूप में भावों से संबंधित हैं । लहरों के राजहंस में,सूखा सरोवर, पत्रहीन वृक्ष, धूम भरा आकाश अलका की मनोदशा के प्रती क हैं । जयशंकर प्रसाद ने भी पात्र की आंतरिक अनुभूति को चित्रण के लए प्रतीकों का सहारा लिया है जैसे प्रणय भाव को व्यक्त करने के लिए बसंत, मकरंद कोकिल को प्रतीक रूप में चुना है। उदयशंकर भट्ट के विद्रोहिणी अम्बा नाटक मे प्रणय के प्रसंग में चन्द्रमा, मछली आदि को प्रतीक रूप मे व्यवहृत किया है।

कई नाटककारों ने पात्रों के चरित्र की विशिष्टता को देखते हुए उनको प्रतीक रूप मे प्रस्तुत किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारत दुर्दशा में,पात्रों को प्रतीक रूप मे बड़ी सजीव ढंग से रखा है । महाराष्ट्री, बंगाली, एडिटर, भारत, भारत भाग्य , निर्लज्जता, आशा, मदिरा आदि सभी प्रतीक वादी पात्र हैं । आलस्य, आशा , निर्लज्जता, मदिरा आदि दुर्वृत्तियों के प्रतीक है। भारत दुर्देव को क्रूरता का, भारत को भारत वासी का तथा भारत भाग्य को एक महान आत्मा का प्रतीक बनाया है । नीलदेवी नाटक में अब्दुलशरीफ को अधिकारी वर्ग के रूप मे प्रस्तुत किया है, जो अनुचित कार्यों के द्वारा अपने अधिकार प्रकट कर रहा है। चपरगट्टू, पीकदान अली पात्रों को यवनों की कायरता का, सूर्यदेव , सोमदेव को क्षत्रियवर्ग के प्रतीक रूप मे रखा है । जयशंकर प्रसाद ने भी पात्रों की प्रवृत्तियों को देखते हु ए उनको प्रतीक रूप दिया है । ध्रुवस्वामिनी नाटक में कुबड़ा, बौना, हिजड़ा पात्र कायरता तथा पौरुषहीनता के प्रतीक हैं । गूंगी दासी रहस्यमय वातावरण को प्रतीक है । भेड़िया, सर्प, भेड़ आदि घातक प्राणियों के प्रतीक कुटिल पात्र हैं । जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक 'पहला राजा' में भी पात्र प्रतीक रूप मे आए हैं । इसमे स्वतंत्रता के बाद के शासन को देखते हुए प्रतीकात्मक प्रयोग किया है । इसमें सुविधाभोगी तथा उपेक्षित वर्ग को प्रतीकात्मक रूप मे रखा है। इन्होंने कवष को प्रजा का प्रतीक बनाया है, उर्वी को पृथ्वी का, सूत तथा मागध को चापलूसों का प्रतीक प्रस्तुत किया है । दस्यु विदेशी आक्रमणकारियों के और मुनि वर्ग सुविधाभोगी वर्ग के प्रतीक

हैं। मोहन राकेश ने भी पात्रों की प्रवृत्तियों को देखते हुए उनको प्रतीक रूप दिया है। मल्लिका को प्रेयसी, प्रेरणा और आशा का प्रतीक, कालीदास सृजनशील शक्तियों का और विलोम को दुष्ट-आक्रमण शक्तियों का प्रतीक बनाया है। लहरों के राजहंस में गौतम बुद्ध वैराग्य के प्रतीक हैं। नंद निवृत्ति और वैराग्य से प्रभावित मनुष्य है। सुन्दरी प्रवृत्ति व भोग की प्रतीक है। श्यामांग को नन्द के अन्तर्मन का प्रतीक माना है। मृग को भी नन्द का प्रतीक माना है। मादा कैक्टस मे लक्ष्मी नारायण लाल ने नये और पुराने मूल्यों का संघर्ष प्रस्तुत किया है। इनके नाटक के पात्र अरविंद और आनन्दा नए मूल्यों के तथा दद्दा पुराने रूढिवादी विचारों तथा मर्यादाओं के प्रतीक हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' नाटक दलित अधिकारी वर्ग के संघर्ष का नाटक है। इसमें ग्रामीण पात्र, दलित वर्ग के या शोषित वर्ग के प्रतीक हैं और सिपाही दुर्जनसिंह, सत्यवीर, कर्मवीर आदि अधिकारी वर्ग के प्रतीक हैं जो स्वार्थवश झूठे आरोपों द्वारा अपना उल्लू सीधा करते हैं। युग युगे क्रान्ति में, विष्णु प्रभाकर ने पात्रों को उनके युग का प्रतीक बनाया है जैसे - कल्याणसिंह रामकली रूढिवादी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। कलावती, शारदा, विमल, प्यारेलाल आधुनिकता के प्रतीक हैं। जैनेट, सुरेखा, अनिरुद्ध, रिता अत्याधुनिक विचारों वाले है जो आधुनिकता मे रहकर अपनी मार्यादा को भूल गये हैं। तथा रूढिवादिता के कट्टर विरोधी हैं। रस गंधर्व और अनुत्पुत मे, मणि मधुकर व सत्यव्रत सिन्हा ने पात्रों को आधुनिक उलझनपूर्ण तथा रूढियों के प्रति विद्रोह करने वाले व्यक्तित्व के प्रतीक रूप मे प्रस्तुत किया है।

आधुनिक नाटककारों ने अपने नाटकों मे नयापन लाने के लिए प्रतीकों को नयारूप दिया है। मोहन राकेश के नाटकों मे प्रतीकों के नवीन रूप काफी मिले हैं। लहरों के राजहंस मे, दर्पण अहंकार का कैश काम भावना का तथा स्वप्न कल्पना के प्रतीक हैं। झूला मन की चंचलता को, जंगल वैराग्य को और हवा गौतम के प्रभावों की प्रतीक बनकर आये हैं।

आधे अधूरे में भी प्रतीकों का नया रूप प्रयुक्त हुआ है । जैसे फाइलों को महेन्द्रनाथ के अतीत का प्रतीक , फाइलों पर से उठने वाली धूल को उसके व्यक्तित्व के प्रभाव का प्रतीक प्रदर्शित किया है। मैग्जीन की तस्वीरें थोथी कल्पनाओं को प्रतीक हैं । कैंची - चिन्तन की प्रतीक है जिसकी बक-बक में, तर्क-वितर्क में थोथी कल्पनाएं समाप्त हो जाती हैं । पनीर का डिब्बा एक रहस्य का प्रतीक है । आधुनिक प्रतीकात्मक नाटकों में प्रतीक योजना का नवीन रूप सामने आया है । जो आधुनिक युग के रूप को देखकर प्रयुक्त किया है । विपिन कुमार अग्रवाल के लौटन नाटक मे डाकघर स्थिरता जड़ता का प्रतीक है और उसमें कार्य करने वाले कर्मचारी निराशा तथा जड़ता के प्रतीक हैं । डाकगाड़ी गति और जीवन परिवर्तन का प्रतीक है । पटरी नियम का प्रतीक है। तिलचट्टा नाटक में मुद्राराक्षस ने मानव जीवन की यथार्थता को स्वीकृति किया है । तिलचट्टा को मानव मन की दुष्टवृत्तियों और दुर्वासनाओं का प्रतीक माना है जो आधुनिक युग के घुटन सीलन वाले अनुकूल वातावरण को पाकर प्रकट हुआ है । मादा कैक्टस मे आधुनिक मूल्यों के अनुसार विवाह को बच्चों के घरौंदे का रूप माना है ।

कई बार नाटकों मे अनावश्यक प्रतीकों का मोह नाटक को दुरूहता की कोटि मे ले जाता है । प्रतीकों की अधिकता के कारण नाटक जनसामान्य की समझ से बाहर का भी हो सकता है। विपिन कुमार अग्रवाल का नाटक लौटन तथा मुद्राराक्षस का तिलचट्टा नाटक इसी कोटि के हैं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि नाटकों में प्रतीक का स्वरूप निरंतर बदलता गया है । आधुनिक नाटकों में तो चौंकादेनेवाली प्रतीकात्मकता के दर्शन हुए हैं । इस प्रतीकात्मकता से नाटक सर्वसामान्य की समझ से बाहर भी हो सकते हैं ।

आठवाँ अध्याय

रस

प्रतीक्षा करना, व्याकुल होना, उसाँसे लेना, चिन्तता, आकाश की ओर देखना इत्यादि अनुभाविक क्रियायें है । संचारी भावों में आवेग, रोमांच, चिन्ता, मोह, वितर्क, दैन्य प्रयुक्त हुए हैं ।

युद्ध के दृश्यों अथवा विपक्षी से मुकाबला करनेवाले दृश्यों में वीर रस आया है । पात्र के शौर्य प्रदर्शन के लिए व युद्ध के दृश्य को स्वाभाविक बनाने के लिए रस योजना दृश्य में भी की है ।

- युयु : भूल गए कि तुमने और मैंने उनकी बेरहमी के जाल में तड़पती मछलियों की भांति आशावादियों को बचाया । क्रुद्ध तड़ित की भांति उन काले बादलों को चीर कर टूट पड़े । वैसे ही वैसे वीरियों को तुमने धराशायी किया । ----
बहन, अर्जुन की वह प्रत्यंचा मचल रही है, और तूणीर में से बाण निकलने को आकुल है । ---- मैं युद्ध करूँगा । (पन्द्रा०५८:

इस कथन में स्थायीभाव उत्साह है आश्रय युयु तथा आलम्बन शत्रु है । उद्दीप्त करने वाले तत्वों में शत्रु का पराक्रम है । अनुभाव में रोमांचित होना, लाली होना, शौर्य व्यक्त करनेवाली घटनाएँ बताना, चेतावनी देना आदि क्रियायें है । गर्व, रोमांच, आवेग , उग्रता आदि स्थायीभाव के साथ संचारीभाव प्रयुक्त हुए हैं ।

- विक्रम - राजमाता महारानीजी काल भैरवी की भांति दोनों हाथों में तलवार लिये शत्रु सेना को खेत की तरह काट रही है । उनका संपूर्ण शरीर लोहू से लथपथ हो गया । (रक्त०६६)

इसमें स्थायीभाव उत्साह है। आश्रय महारानीजी है तथा आलम्बन शत्रु सेना, शत्रु सेना का आक्रमण उद्दीपन के रूप में है । शत्रु सेना को काटना, तलवारें चलाना अनुभाव है । आवेग, आवेश संचारी भाव प्रयुक्त हुए हैं ।

- निश्चय ही ऐसा होगा । (म्यान से तलवार निकालकर) महा-
काल के उस बिजली के समान चमकनेवाले अस्त्र की शपथ खाकर

- अम्बपाली - (सहसा उसी चेहरे पर विषाद छा जाता है, आँखें भर आती हैं, गला भर्रा जाता है) भगवान , मत सताइए । आपने किया क्या है ? दिन-रात छाती छोड़ी-छोड़ी तंग आ चुकी । जब तक कहीं रहती हूँ उसी बोझ से कंधा भी टूटता, मन घुटता रहता है । एक तो दर्द के मारे नींद नहीं आती, यदि कदाचित आई, तो भी वह बोझ सीने पर होता है । सांस घुटने लगती है, कलेजा फटने लगता है - चिल्लाना चाहती हूँ, आवाज नहीं निकलती, घिग्घी बंध जाती है । व्याकुलता की पराकाष्ठा में जब नींद टूटती है तो चिल्लाकर तकिया इधर उधर पटकती हूँ । भगवान , भगवान मुझे बचाइए - (अपनी हथेली में मुंह ढककर हिचकियाँ लेती है)

(अम्ब० ११२)

आलम्बन रक्तध्वज की मृत्यु शोक को उद्दीप्त करती है । मृत्यु के उपरान्त होने वाले कष्ट उद्दीपन हैं । शोक से व्याकुल होकर भगवान से सहायता लेना, निराश होना, विलाप करना , बेचैन होना, नींद न आना, असहनीय कष्ट हो जाना, हिचकियाँ लेना , गला भर्रा जाना , आँखें भर आना आदि अनुभाविक क्रियायें हैं । शोक की व्याकुलता विषाद, आवेग, मोह , दैन्य, निर्वेद आदि संचारी भावों द्वारा व्यक्त हो रही है ।

नाटकों में मनोरंजन की दृष्टि से बीच-बीच में हास्य रस को स्थान दिया है । किसी दृश्य को हास्यपूर्ण बनाकर प्रस्तुत करना भी हास्य रस की पुष्टि कर रहा है । भारतेन्दु जी ने भी कहीं-कहीं हास्य के दृश्यों में रस योजना की है -

- मोटा भाई बना-बनाकर मूड़ लिया । एक तो खुद ही यह सब पंडिया के ताऊ, उस पर फुटकी चढ़ी, सुखानन्द हुए, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धांय-धांय गिनी गई, वर्णमाला कंठ कराई , बस हाथी के खाए कैथ हो गए । धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली ।

(भा०दु०ना० २८)

क्रियायें हैं । उग्रता आवेग, जिसमें संचारी भाव स्थायी भाव के साथ आते हैं । इस नाटक में अन्य रस के तत्व तो अधिक उभरे हैं परन्तु स्थायीभाव क्रोध का भाव कसमसाहट तथा झुंझलाहट रूप में आया है जिससे रस, रस न उभरकर भाव प्रतीत हुआ है । नाटकों में कथावस्तु को देखते हुए भी रस योजना की कमी है ।
ऐतिहासिक राष्ट्रीय, पौराणिक तथा सांस्कृतिक नाटकों में वीर तथा श्रृंगार रस को मुख्यत: रखा है । इन नाटकों की कथा राजवंशों की है, जिसमें मुख्य रूप से दो प्रवृत्तियां मिलती हैं । एक युद्ध करने की प्रवृत्ति दूसरी विलासिता की प्रवृत्ति । युद्ध के प्रसंगों में उत्साह प्रदर्शित करने के लिए वीर रस तथा विलासिता के प्रदर्शन में श्रृंगार रस को रखा है । इस प्रकार की रस योजना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "नीलदेवी" नाटक में हुई है, जिसमें वीर रस प्रधान है । जयशंकर प्रसाद के ध्रुवस्वामिनी, स्कंदगुप्त तथा चन्द्रगुप्त नाटकों में वीर तथा श्रृंगार रस को प्रमुख रूप से रखा है । "अजातशत्रु" में वीर रस प्रधान तथा श्रृंगार रस गौण रूप में आया है । बद्रीनाथ भट्ट ने भी "दुर्गावती" में वीर रस को अधिक महत्व दिया है । उपेन्द्रनाथ अश्क के "जय पराजय" में भी श्रृंगार और वीर रस को प्रधान रूप में प्रयुक्त किया है । "अम्बपाली" नाटक में भी श्रृंगार रस प्रमुख रहा है । उदयशंकर भट्ट की 'विद्रोहिणी अम्बा' कृति में तत्कालीन प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखते हुए वीर तथा श्रृंगार रस प्रमुख बनाकर लाया गया है । "झांसी की रानी" में वृंदावन लाल वर्मा ने कथा को देखते हुए वीर रस को प्रधान रखा है । जगदीश चन्द्र माथुर ने भी अपनी कृतियों "कोणार्क" "पहला राजा तथा दशरथ नन्दन में श्रृंगार रस को नियोजित किया है । "पहला राजा" तथा "दशरथ नन्दन" में वीर रस को भी महत्व दिया है ।

इन ऐतिहासिक राष्ट्रीय पौराणिक तथा सांस्कृतिक नाटकों में अन्य रसों में रौद्र, करुण, हास्य आये हैं । अनुचित बातों तथा असहनीय घटनाओं के विरोध को रौद्र रस द्वारा प्रकट किया है । कष्टकारी स्थितियों तथा अनिष्ट में भावों को करुण रस द्वारा प्रकट किया है । नाटकों में मनोरंजन की दृष्टि से हास्य रस को नियोजित किया है । शान्त, भयानक तथा वात्सल्य रस की इनमें अल्पता मिलती है । वीभत्स रस तो केवल "स्कंदगुप्त" में कापालिक प्रकरण में मिलता है ।

सामाजिक समस्यामूलक तथा वैयक्तिक नाटकों में रस परिपाक बहुत कम मिलता है क्योंकि इनमें नाटककार की दृष्टि समस्यापूर्ण स्थितियों के प्रकटीकरण में रही है। क्रोध में झुंझलाहट, कड़वाहट तथा आक्रोश द्वारा अभिव्यक्ति अधिक मिली है। इन नाटकों में इस प्रकार रौद्र के स्थायीभाव क्रोध का रूप तो मिलता है, परन्तु उग्ररूप रूप जैसा रसों में परिलक्षित हुआ है वैसा नहीं है । कष्टकारी तथा अनिष्टकारी घटनाएँ भी इन नाटकों में घटित हुई हैं जिनमें करुण भाव द्वारा अभिव्यक्ति हुई है । इन नाटकों में रौद्र तथा करुण रस का शास्त्रीय दृष्टि से निर्वाह नहीं हुआ, किन्तु रचना में रस की झलक दिखाई देती है । इन नाटकों में लगातार झुंझलाहट क्रोध आदि भाव की अनुभूति करते हुए दर्शक उकता न जाये इसलिए इनमें हास्य रस को महत्त्व दिया है । अन्य रसों की तुलना में हास्य रस का प्रभावपूर्ण प्रयोग किया है । हास्य रस को अश्क के नाटक " स्वर्ग की झलक तथा अंजो दीदी " में मुख्यतः अपनाया है । करुण तथा क्रोध के भाव अश्क के नाटक अंजो दीदी तथा स्वर्ग की झलक" लक्ष्मी नारायण मिश्र के" मुक्ति का रहस्य तथा सिन्दूर की होली ", गोविन्द वल्लभ पन्त के" अंगूर की बेटी" तथा मोहन राकेश के" आधे अधूरे" नाटक में आये हैं । सिन्दूर की होली तथा मुक्ति का रहस्य में प्रेम, मुक्ति का रहस्य तथा अंजो दीदी में वात्सल्य के भाव मिलते हैं, परन्तु वात्सल्य तथा श्रृंगार रस की योजना शास्त्रीय दृष्टि से नहीं हुई है ।

" आषाढ़ का एक दिन" तथा" लहरों के राजहंस" में कथा को दृष्टि में रखते हुए श्रृंगार रस को प्रमुख रखा है । अन्त में करुण रस आया है । लहरों के राजहंस" में विस्मयपूर्ण दृश्यों तथा क्रोध के प्रसंगों में विस्मय तथा क्रोध के भाव की झलक मिलती है ।

कुछ आधुनिक नाटकों में रस परिपाक हुआ ही नहीं है । ये नाटक प्रतीकवादी तथा यथार्थवादी नाटक हैं । इनमें नाटककार की दृष्टि यथार्थ चित्रण की ओर रही है रस की ओर नहीं । पाश्चात्य प्रभाव के कारण भी इनमें रस योजना नहीं रही है । भाव तो इन नाटकों में आ गये हैं, परन्तु रस परिपाक नहीं हुआ । इस कोटि के नाटकों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का" बकरी", मुद्राराक्षस का तिलचट्टा, विपिन कुमार अग्रवाल का" लोटन" सुरेन्द्र वर्मा के नाटक

' विदुर्थ' तथा नायक खलनायक विदूषक है ।' रस गंधर्व तथा अनुरूप एकांकी नाटकों की कोटि के हैं जिनमें नाटक की विसंगतियों को प्रधान रूप में रखा है, अत: इन नाटकों में नाटक के प्राण रस को महत्व नहीं दिया है । नाटक अनुभूति से बिल्कुल भी न हट जाय इसलिए इन नाटकों में भावों को स्थान दिया है ।

कई नाटकों में नाटककारों ने रस को महत्व दिया है, परन्तु उनके नाटकों में उसका सफल चित्रण नहीं हो पाया है जैसे प्रताप नारायण मिश्र के' भारत दुर्दशा' नाटक में श्रृंगार रस को नाटककार ने रखा है लेकिन शास्त्रीय दृष्टि से रस परिपाक नहीं हो पा रहा है । जुगे जुगे क्रान्ति' में भी श्रृंगार रस की छटा मिलती है, परन्तु वहाँ भी नाटककार सफलता पूर्वक उसको नहीं प्रकट कर पाया है ।' उलट फेर' नाटक में नाटककार ने हास्य रस की योजना करनी चाही है । इसमें अवांछनीय वार्तालापों तथा क्रियाकलापों के कारण मनोरंजन तो हो जाता है लेकिन रसानुभूति नहीं हो पाती ।' दुर्गावती' नाटक में भी हास्य पूर्ण स्थल आये हैं, परन्तु हास्य रस की पुष्टि नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि कहीं-कहीं उसका आगमन रौद्र रस के साथ हुआ है । नाटकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समसामयिक नाटककारों की दृष्टि रस की ओर अधिक रही है, क्योंकि उन्होंने रसानुभूति तथा भावानुभूति को नाटक का मुख्य उद्देश्य माना है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक श्री चन्द्रावली में वियोग की सभी दशाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । इस प्रकार वियोग श्रृंगार रस को महत्व दिया है ।' नीलदेवी में वीररस की प्रधानता है इसके अतिरिक्त रौद्र, करुण तथा हास्य भी अवसरानुकूल रखा है । ' भारत दुर्दशा' में भारत की करुण कथा है, जिसमें करुण रस को महत्व मिला है इसके अतिरिक्त उत्साहपूर्ण कार्यों के प्रदर्शन में वीर रस है ।' अंधेर नगरी' हास्य रस पूर्ण रचना है । रस योजना की दृष्टि से इनके सभी नाटक सफल सिद्ध हुए हैं, क्योंकि इन्होंने रस के तत्वों को दृष्टि में रखकर रचना की है ।

भारतेन्दुयुगीन नाटककार प्रताप नारायण मिश्र के' भारत दुर्दशा' रसपरिपाक इतना अच्छी प्रकार से नहीं हुआ है जितना कि भारतेन्दु जी के नाटकों में हुआ है । इनके नाटक में करुण तथा रौद्र रस मुख्य है । श्रृंगार रस को भी नाटककार रखना चाहता था परन्तु उसका प्रयोग सफल नहीं रहा । प्रताप नारायण

मिश्र की तुलना में जयशंकर प्रसाद तथा हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में रस अधिक प्रभावशाली बनकर आये हैं। इन नाटककारों ने अपने नाटकों में वीर तथा शृंगार रस को अधिक महत्व दिया है। इन रसों के अतिरिक्त प्रसाद के नाटक 'अजातशत्रु' तथा 'चन्द्रगुप्त' में शान्तरस तथा स्कन्दगुप्त में वीभत्स रस आया है। अजातशत्रु में वात्सल्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। अद्भुत, करुण भयानक तथा रौद्र रस की भी अवतारणा हुई है। हास्य रस की अवतारणा अजातशत्रु में विदूषक द्वारा तथा ध्रुवस्वामिनी में हिजड़ों तथा बौने के वार्तालाप से हुई है। हरिकृष्ण प्रेमी ने भी हास्य, करुण, रौद्र रस को अवसरानुकूल अनुभूति को प्रबल बनाने के लिए रखा है। उपेन्द्र नाथ अश्क के 'जय पराजय' नाटक में भी वीर तथा शृंगार रस को प्रमुखता दी है। इसके अतिरिक्त भयानक, करुण, तथा वात्सल्य रसों की भी छटा मिलती है।

बद्रीनाथ भट्ट की ऐतिहासिक रचना 'दुर्गावती' में भी वीर रस की प्रधानता मिली है। वीर के साथ करुण तथा रौद्र रस भी प्रयुक्त हुए हैं। हास्य रस का सफल परिपाक इस नाटक में नहीं हो पाया है। कभी-कभी गंभीर स्थिति में हास्य उत्पन्न करना चाहा है, जो रस योजना में सफल सिद्ध नहीं हुआ।

रामवृक्ष बेनीपुरी के 'अम्बपाली' तथा उदयशंकर भट्ट के 'विद्रोहिणी अम्बा' में रसों के प्रयोग में सफलता मिली है। अम्बपाली में शृंगार रस को प्रधानता दी है तथा उसके साथ करुण रस की भी अवतारणा की है। शान्त रस की भी स्थितियाँ मिलती हैं। परन्तु उनमें पूर्ण निर्वेद भाव न आने के कारण रस में नहीं नियोजित हो पाया है।

उदयशंकर भट्ट की दृष्टि अपने नाटक में रस की अपेक्षा नाटक के उद्देश्य पर अधिक रही है, फिर भी रसों का कुशलतापूर्वक प्रयोग मिलता है। इन्होंने वीर तथा शृंगार रस को मुख्य रस के रूप में रखा है, इसके अतिरिक्त करुण वात्सल्य को भी अवसरानुकूल रखा है, परन्तु इनके स्थल अल्प हैं।

जगदीश चन्द्र माथुर ने 'कोणार्क' नाटक में करुण रस को अधिक महत्व दिया है। करुण के साथ रौद्र, शृंगार तथा वात्सल्य का कुशलता से समावेश किया है। इनके 'दशरथ नन्दन तथा पहला राजा' में भी रसों की

सफल योजना हुई है ।" दशरथ नन्दन" में रौद्र, वीर, वात्सल्य, शृंगार तथा अद्भुत रस" पहला राजा" में रौद्र , शृंगार, वीर, अद्भुत रस अवतरित किये हैं ।

वृन्दावन लाल वर्मा ने अपनी ऐतिहासिक रचना में अन्य ऐतिहासिक नाटकों की भाँति वीर रस को मुख्य माना है, व बीच-बीच में रौद्र, करुण, अद्भुत रस की धारायें बहाई हैं । करुण रस का हृदयस्पर्शी प्रयोग हुआ है । उन्होंने नाटक का प्रारंभ वीर रस में तथा अन्त शान्त रस में अगाध सागर में किया है।

वी० पी० श्रीवास्तव ने हास्य रस की योजना का प्रयास किया है, परन्तु उसमें सफलता नहीं मिली है । इनके नाटक में हास्यपूर्ण दृश्यों से विनोद तो हो जाता है परन्तु रसानुभूति नहीं होती ।

मोहन राकेश के नाटक" आषाढ़ का एक दिन" तथा" लहरों के राजहंस" में अनन्य प्रेम तथा करुणा के भाव सर्वत्र मिलते हैं । इन नाटकों में शृंगार तथा करुण रस की अनुभूति होती है ।" लहरों के राजहंस" में कहीं-कहीं अद्भुत रौद्र, रस की झलक भी मिलती है ।" आधे अधूरे" नाटक को आधुनिक समस्या पूर्ण नाटकों की कोटि का रखा है जिसमें रौद्र रस की झलक मिलती है । कहीं-कहीं करुण का पुट मिलता है । विष्णु प्रभाकर ने" युगे युगे क्रान्ति" में रौद्र रस के प्रदर्शन का काफी प्रयास किया है । अन्य प्रकार के शृंगार रस के प्रदर्शन में इनको सफलता नहीं मिली है ।

कुछ सामाजिक तथा समस्यामूलक नाटक हैं जिनको रसपूर्ण भी नहीं कहा जा सकता और न ही रसहीन कहा जा सकता । इसका कारण यह है कि इन नाटकों में नाटककारों ने यथार्थपूर्ण चित्रण की ओर अधिक दृष्टि रखी है रस की ओर कम । इस प्रकार रस तो आये हैं परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से रस परिपाक नहीं हुआ है । इन नाटकों में उपेन्द्र नाथ अश्क के नाटक" स्वर्ग की झलक" तथा अंजो दीदी तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र के" मुक्ति का रहस्य तथा सिन्दूर की होली" गोविन्द वल्लभ पन्त का " अंगूर की बेटी" नाटक है । अश्क के नाटकों में हास्यरस की प्रधानता है, रौद्र रस भी आया है । मिश्र जी के नाटकों में रस निर्धारण कठिन है फिर भी रौद्र, वात्सल्य, करुण तथा शृंगार के दर्शन होते हैं । पन्त जी ने रौद्र रस को प्रमुखता दी है ।

कुछ आधुनिक नाटककारों की कृतियों में पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव मिलता है, जिनमें यथार्थवादी तथा प्रतीकवादी धारणा मिलती है, रस की नहीं । इन नाटककारों में सत्यव्रत सिन्हा, मणि मधुकर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा विपिन कुमार अग्रवाल हैं । इनके नाटकों में भाव अवश्य मिलते हैं परन्तु रस योजना नहीं मिलती ।

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में भाव तो मिलते हैं, परन्तु रस योजना के अन्य तत्वों को नहीं रखा गया है । अतः रस परिपाक नहीं हुआ ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि दिन प्रतिदिन नाटकों में रस का प्रयोग क्षीण होता जा रहा है क्योंकि आज का नाटककार यथार्थ वस्तु के प्रदर्शन की ओर अधिक झुका है मनोरंजन या आनन्दित करने की ओर कम । यह सब प्रभाव समाज के बदलते रूप के कारण भी हुआ है ।

नौवाँ अध्याय

शैली चिन्ह

शैली चिन्ह

शैली चिन्हों का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । साहित्य की स्पष्टता में इनका बड़ा योगदान है । आरंभिक नाटकों में अंग्रेजी के प्रभाव से विविध शैली चिन्हों का आगमन हुआ, परन्तु उनके प्रयोग में उतनी व्यापकता नहीं आ पायी जिसके कारण साहित्य में अस्पष्टता बनी रही । द्विवेदीयुग से शैली चिन्हों का विकास होता गया, जिसका प्रभाव आज के नाटकों में स्पष्टता से प्रकट होता है ।

नाटककारों ने अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए भिन्न-भिन्न शैली चिन्हों को अपनाया है । अनेक शब्द पदबंध अथवा वाक्य जिन स्थलों पर एक हो गये हैं, उन्हें यति देने के लिए अल्प विराम चिन्हों को महत्व दिया गया है, जैसे -

- किसको, क्या, कितना कहना चाहिए । (माधा० ३१)
- अरे यहाँ की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहाँ गए ? (भारत भा० २३)
- हे राजन, हे नरेश्वर, हे भूपति, हम आपकी स्तुति करते हैं ।
  (प० रा० ४५)
- निःशब्द, निःसहाय अकेला । (वि०अ० ७६)
- एक दाँत पीसकर, हाथ उठाकर, शिखा खोलते हुए चाणक्य का अनुयायी बन जाऊँगा । (स्कंद० १०८)
- कुमार गुप्त, आज हूणों ने पश्चिम की ओर, चार पहाड़ी के पास, एक नया मोर्चा बनाया है । (कांसी० ४ ६३)
- कहो दीदी, तुम कुल्फी लोगी, दही-बड़े खाओगी, मूँग के लड्डू, चाट या कोई चीज़ ? (कोणा० ७६)

- दस पैसे के सिक्के तो बाज़ार से गायब हो गये हैं, मैं कहाँ से लाऊँगा ? (छोटन २५)
- अब सब हमारी देख-रेख में रहेगी, पुलिस और ब पल्टन की देखरेख में रहेगी । (बकरी) २७)

ये अल्प विराम चिन्ह अर्ध विराम के समान रंगमंच पर प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि इनमें यति का समय अर्ध विराम की भाँति होती है । अपने कथन के तारतम्य को बनाये रखने के लिए प्राय: नाटककारों ने पूर्ण विराम चिन्ह के स्थान पर अर्ध विराम को रखा है, यथा -

- उद्दाम और उन्मुक्त प्रेम की आग में जो एक दिन मेरा परित्राण बन गयी थी ; उसी परित्राण के विपरीत से मेरी कथा का उद्गम हुआ, (कोणार्क २३)
- मेरे यहाँ रहने से उन्हें अपने भावों को छिपाने के लिए बनावटी व्यवहार करना होगा ; पग-पग पर अपमानित होकर मेरा हृदय भी सह नहीं सकेगा । (ध्रुव ० ४६)
- लेकिन सहदेव का अभ्यासी मन बार-बार उसके अंग-संचालन को, उसकी एक-एक गति, मुद्रा और हावभाव को दुर्योधन और रावण की कपट बुद्धि, क्रूरता और पाखण्ड के साथ जोड़ रहा था ; उसके स्वर में उन्हें छल की वही अनुगूंज सुनाई दे रही थी ; उसके माथे की वक्र रेखाओं में वे वही कुटिलता और उसकी आँखों में पाप की वही छाया देख रहे थे । (ना०अ०वि० ७३)
- तुम नहीं जानती --- तुम उन्हें दूर ही से प्यार की नज़रों से देख सकती हो ; चाहो तो उन्हें पास बिठाकर सपनों के संसार बना सकती हो ; उनकी चमक से अपनी आँखें सजा सकती हो ; पर जीवन के सत्य में पीस, उन्हें किसी काम में ला सकोगी, इसकी आशा नहीं । (स्वर्ण० ५१)

रंगमंच पर ये अर्द्ध विराम चिन्ह पूर्ण विराम का कार्य करते हैं, क्योंकि इनकी यति पूर्ण विराम के समान हो जाती है।

वाक्य में निश्चित ठहराव की सूचना पूर्ण विराम चिन्ह द्वारा दी गयी है।

- अच्छा, कल्लू पानिये को पकड़ लाओ। (अंधेर० १५)
- नहीं, शायद आप आफिस में जाकर यह प्रतिज्ञा कर चुके। (अंगूर १०८)
- हमलोग भिखारी हैं। (सिद्ध० ३६)
- चलिए, आपको शिविर के भीतर पहुँचा दूँ। (चन्द्र० ९१)
- कोई भी प्रसन्न नहीं, एक व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं, वरन्तु भी नहीं। (जय० ६८)
- मैं तो अपना सब कुछ छोड़कर तुम्हें सुखी करना चाहता हूँ।(सिंदूर०८७)
- अब गुफा में चलकर अपनी योजना पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। (अजय ५७)

प्रश्न-सूचक चिन्ह भी एक प्रकार से पूर्ण विराम है, परन्तु प्रश्नात्मक कथन के स्पष्टीकरण के लिए इसका व्यवहार हुआ है -

- क्यों साहब, आपके यहाँ छड़ी की बहादुरी चलती है? (रक्षा० ७०)
- इन शब्दों के अर्थ का तुम सचमुच जानती हो? (कुँ०   )
- इस श्यामा रजनी में चन्द्रमा की सुकुमार किरण सी तुम कौन हो (अजात० १०८)
- माँ, तुम सोच सकती हो आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ? (आषाढ़०२३)
- कहाँ जा रहा है? (मुक्ति० ६७)
- शरणागत स्वामी के सामने आ जाए, तो क्या हो? (कुणा० ८३)
- वाह! तुमलोग अभी तैयार भी नहीं हुई? (सन्य० १३)

नाटकों में प्रश्न चिन्ह प्रयुक्त करने से अभिनय में काफी सहायता मिलती है। कई नाटककारों ने भावाभिव्यक्ति की स्थिति को लगातार प्रश्नात्मक वाक्यों द्वारा प्रकट किया है, जिसमें भाव की अभिव्यक्ति में प्रश्नात्मक चिन्हों का काफी योगदान रहा है। उदाहरण -

- ये लोग ? ---- कहाँ जा रहे हैं ? ---- कौन हो ? कहाँ जाते हो ?
  क्यों ? कहाँ ? कैसे ? किससे ? किसके लिए ? (माया० ६२)
- हं : कटकटन ! हमें नहीं ? (क्रमशः दूर होती हुई आवाज़)
  कटकटन ! हमें नहीं ? - हमें नहीं ? (अमृत० ७०)
- किसकी ? ---- किसने ? कब ? मैं तो नहीं ---- जानता -- क्या ?
  (सिन्दूर० ३३)
- (चमककर) चन्द्रावली आई ? क्या कुछ संदेसा लाई ? कहो,
  कहो प्रान प्यारे ने क्या कहा ? क्यों बड़ी देर लगाई ?
  (श्रीचन्द्रा० २५)

भाव की आवेगात्मकता में एक स्थिति ऐसी आती है, जब कुछ शब्द बोलने के बाद पात्र आगे बोलने में असमर्थ हो जाता है । ऐसी स्थितियों को नाटककार ने स्थानपूरक चिन्ह द्वारा व्यक्त किया है ।

- शैलेन्द्र ! विश्वास ! पैसी नहीं ---- और भयानक ---
  (अजात० ६४)
- रोहिणी --- नहीं---- नहीं----न----ही---- (सिन्दूर० १३०)
- आर्य चिलीप, आप -------- ! (आजाद ४३)
- परन्तु, कुमारी ------ ! (विक्र० २५)
- क़सम कुरान की ! मैं ----- अच्छा ----- (उद्भ० १२)
- हैं, बीबी भी ------- (रक्षा० ८२)
- इसकी ज़बान जिस तरह रुक गयी है, उससे---- ! (आपे० ७८)
- अम्बपाली से सरोकार नहीं - उफ़ , अम्बे ---- (अम्ब० ५५)

कई बार संकोच असमंजस्य की स्थिति में पात्र कुछ शब्द कहकर मूक हो जाता है, ऐसी स्थिति में भी वाक्य की अपूर्णता की सूचना स्थानपूरक चिन्ह द्वारा दी है जैसे-

- (लजाकर) अब तुम तो भाभी ------ (स्वर्ग० ८७)
- लेकिन नई बीबी ------- (कैदो० ६६)
- हुज़ूर ------ (फांसी० ६५)

कोष्ठकों का नाटककारों ने अनेक स्थितियों में व्यवहार किया है । कथन में निहित भावों की सूचना कोष्ठक में रखे शब्दों द्वारा दी है ।

- (चौंककर) आप ? (उद्धार० ४१)
- (घबराकर) क्या, क्या ? (मिल० १६)
- (भय और आवेश में) तुम्हें किसी ने कुछ कह दिया क्या ?(सिन्दूर६०)
- (घृणा से) तुम्हीं लोगों ने । (रा० १६)
- (व्यंग्य से) महाशय । (संधी० ७४)
- (संतुष्ट होकर) आप अन्य पुरुषों में विश्वास रखते हैं क्या साहब ? (अमृत० ८१)

कथन तथा अभिनय की स्पष्टता के लिए पात्रों की क्रियाओं को नाटककारों ने कोष्ठकों में प्रयुक्त किया है, जिससे पाठक को पात्र की क्रियाओं का चित्र खिंच जाता है तथा रंगमंच पर अभिनीत करने में काफी सहायता मिलती है । उदाहरण प्रस्तुत है -

- (घबराकर काँपने लगती है) पर हुजूर ---- (कारी २१)
- (उठकर दोनों हाथ फैलाकर आदाब बजा लाते हुए) सिटी मजिस्ट्रेट सी आपकी सेवा में प्रस्तुत है । (संधी० ६८)
- (लगातार अन्न को मरोड़कर मोरी में रखते हुए) अच्छा तुम यह बताओ कि तुम्हें अच्छा क्या लगता है । (स्वर्ण० २८)
- (पुकारती हुई आती है) माताजी, माताजी आपने सुना(कुल०४१)
- (हाथ छुड़ाने की असफल कोशिश करते हुए) अरे, मैं क्या ले भागूँगा । (लौटन० ४२)

पात्रों के आगमन, गमन, पटाक्षेप पर परिवर्तन तथा रंगमंचीय सज्जा का संकेत कोष्ठकों के मध्य रखे शब्दों में दिया है जैसे -

- जी आया । (जाता है) (बड़० १५)

- तुम्हारे कल्याण के लिए " बकरी जाति प्रतिष्ठान ", " बकरी संस्थान, " 'बकरी सेवा संघ", " बकरी मण्डल" बहुत सी संस्थाएँ बनानी हैं ।
(बकरी २९)

- बाहर खड़ी " दैनिक " , " आज " के प्र० संपादक मि० रघुनन्दन आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । (स्वर्ग० ८५)

कभी-कभी नाटककार जिस शब्द को अधिक उभारना चाहता है उसको उद्धरण चिन्ह का प्रयोग कर रहा है ।

- उसकी क्या बुरा लगा साहब --- आप भी " माडरन " होंगे (माधा०८)
- दरअसल उस राम को " सोने में सुहागा " मिल गया है ।(दुर्गा०२४)

किसी के कथन को उसी के शब्दों में उद्धृत करने में भी इनका व्यवहार किया है -

- उसने मुझे अपनी छाती पर बैठाकर कहा -'बाबू मेरे मर जाने पर किसी चीज़ के लिए किसी से हाथ न जोड़ना ।" (मुक्ति० ५५)
- आपने कहा थी --- " इन बुड्ढों के लिए अब कौन नारियल लायेगा ?'
(नय० ४१)
- माता जी कहा करती थी -" शीघ्र मृत्यु है, मृत्यु ।" (कैदी० ७६)
- शास्त्र कहता है -" स्त्री को पति के प्रति कुछ कहने का अधिकार नहीं है ।" (विक्रम० ३३)
- "आगे चले बहुरि रघुराई " (उल्ट० ९३)

इकहरे तथा दोहरे उद्धरण चिन्हों के लिए नाटककारों ने कोई विशेष विचार नहीं रखा है ।

विवरण देते हुए ,उद्धृत वाक्य के पूर्व तथा एक विचार के मध्य दूसरे विचार आने पर निर्देशक चिन्ह द्वारा उसका स्पष्टीकरण किया है ।

- इतनी सी बात है --- एक तो नगर भर के न्याय के डर से कोई पुटाता ही नहीं । (अन्धेर० २१)
- यहाँ जीवन के कई आकर्षण हैं - शिकारगाहें, पहिंराजघ और तरह-तरह की विलास भूमियाँ । (जाजाड़ ४०-४१)

- तू कितने साल का हुआ रे, बहरूपा ! (लम्ब० १४)

अल्प विराम चिन्ह के स्थान पर पूर्ण विराम भी कहीं-कहीं खटकता है ।

- बेटा आगे थी अपनी अम्मा की । फिर मैं उस हरामजादे की खबर लेती हूँ । (ऊसट० ७१)
- उलटे मेरा मुँह चिढ़ाती है । चिढ़ा ले। (लम्ब० ११)

एक वाक्य को दो में विभाजित करने के लिए विराम चिन्ह प्रयुक्त हुआ है । ऐसे चिन्हों का व्यवहार न करना अभिनय में असुविधा उत्पन्न करता है, क्योंकि ऐसे चिन्ह संवादों को समझाने में बहुत सहायक होते हैं । कुछ इस प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जिनमें चिन्हों न प्रयुक्त होने से कथन में अस्पष्टता आयी है ।

- मैंने क्या लड़कियों का ठेका लिया है जिन लोगों ने उनको संसार में बुलाया है वह उनकी चिन्ता करें मैं क्यों अपने गले उनकी आफत मोल लूँ । (भारत० प्र० ४)
- गुरु जी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिए यह मैंने न सुना । (अंधेर० २२)
- मेरी माँ कहा करती थी कि मेरे पिता ऐसे ही भूले-भटके बहुत दूर से चलकर उनके गाँव पहुँचे थे, भटकते हुए। (छोटन०२८)
- यू अन्डरस्टैण्ड ! मिकनीर पैट की बेयर पैट लुनाटिक घट कम होम वहाँ के भी नहीं हैं । (अनुत० ३५)
- कहीं आप उस नंगे साधु के पास तो नहीं जाने लगे जो जोर जोर से बोलकर शोरगुल करता है और मूर्ति की पूजा को पाप बताता है । (भूले० १५)
- देश-विदेश के राजकुमारों को सूचित किया जाता है कि मैं धारानगरी के यशस्वी राजा भोज की सुयोग्य कन्या आज स्वयंवर के लिए प्रस्तुत हूँ । (रत्न० ३०)

उपर्युक्त कथनों में लम्बे-लम्बे वाक्यों में किस स्थल पर रुकना है, यह प्रकट नहीं हो पा रहा है। इसके विपरीत कई बार अधिक शैली चिन्हों का व्यवहार भाषा के सौन्दर्य को ठेस पहुंचाता है। जैसे -

- बेबी - नहीं - नहीं, देव - दे विल गेट किल - नहीं, देव - नहीं - (रो पड़ती है।) (तिल० २५)

- सच ! ······ यह है वह पैसे। (टेकुआ बजाते हुए) टी .... की टी .... की, वाह ! .... टी की , टीकी, वाह ! ····· है इसी तरह बजाकर ताल दे ···· मैं पूरा टुबस्ट करूंगा। (मादा० ३८)

- किन्तु यह भयानक काली रात, आंधी का यह अट्टहास, यह घनगर्जन, यह प्रलय का शोर, मेरा हृदय धड़क रहा है। (जय०११५)

- ---- माँ का सुकुमार व्यक्तित्व, माँ का मधुर स्वभाव, माँ के कलात्मक संस्कार, माँ की परिष्कृत रुचियाँ ---- यह सब क्या आसानी से कहीं देखने को मिलता है ? (सेतु० १८)

- यहाँ है श्यामल कुंज, घने कोटर, लताओं की माला पहने हुए ऊँचे-नीचे, हरी भरी बहारें, वसन्त की चाँदनी, शीतकाल की धूप और मीठे कूजन तथा उल्लास कूजक बालिकाएँ, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएँ हैं। (कुं० १३१)

- सुन्दर, सुन्दर , मेरी प्यारी काशी की यह दुर्गति ! यह दुर्गति !! मेरे जीते जी !!! मेरी आँखों के सामने !!!!
(कांसी०१०२)

बोलने में प्रत्येक पदबंध के उपरान्त कुछ विराम होता है, परन्तु साहित्य को लिखने में प्रत्येक पदबंध के बाद चिन्ह लगाने से भाषा का सौन्दर्य नष्ट हो रहा है।

शैली चिन्हों के प्रयोग में कुछ चिन्हों का सभी नाटककारों ने प्रयोग किया है जैसे

पूर्ण विराम, विस्मयबोधक, प्रश्नवाची तथा कोष्ठक व योजक चिन्ह । इनके अतिरिक्त अन्य चिन्हों को कुछ नाटककारों ने महत्व दिया है, और कुछ ने नहीं ।

भारतेन्दु तथा प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्ट व जी० पी० श्रीवास्तव ने अल्प तथा पूर्ण विराम को प्रधानता दी है । विस्मयादिबोधक, योजक, अर्ध-विराम कोष्ठक चिन्ह, प्रश्नात्मक अपेक्षाकृत अल्प है । प्रताप नारायण मिश्र की कृति में तो प्रश्नवाचक तथा विस्मयादिबोधक चिन्हों का काफी अभाव है । कोष्ठक चिन्ह भी दो-तीन स्थल पर आये हैं । स्थानापूरक, उद्धरण निर्देशक तथा संक्षेप चिन्हों का इन नाटककारों ने अत्यल्प चुनाव किया है । आरंभिक तथा अविकसित होने के कारण इन नाटककारों द्वारा शैली चिन्हों के प्रयोग में काफ़ी त्रुटियां भी हुई हैं । इनकी तुलना में प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी की कृतियों में शैली चिन्हों का व्यवहार बढ़ गया तथा त्रुटियां भी अल्प होती गईं । अल्प विराम, पूर्ण विराम, योजक चिन्ह तथा विस्मयादिबोधक चिन्हों की इनकी कृतियों में भरमार है । पूर्ण विराम की तुलना में प्रश्नात्मक चिन्ह कम है, अर्ध-विराम की संख्या भी अल्प है । स्थानापूरक चिन्ह भट्ट जी तथा बेनीपुरी की रचनाओं में प्रसाद की अपेक्षा अधिक है । उद्धरण, निर्देशक तथा संक्षेप चिन्हों को कम अपनाया है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में योजक चिन्ह, अल्प तथा पूर्ण विराम चिन्हों का आधिक्य है । विस्मयबोधक चिन्ह अवसरानुकूल प्रयुक्त हुए हैं । प्रश्नवाचक चिन्ह, पूर्ण विराम की तुलना में कम है । उद्धरण, संक्षेप चिन्हों की अपेक्षा कोष्ठकों को अधिक महत्व दिया है । गोविन्द वल्लभ पन्त ने अल्प विराम, पूर्ण विराम, विस्मयबोधक तथा उद्धरण, योजक व कोष्ठक और स्थानापूरक चिन्हों को चुना है, परन्तु अर्ध विराम को कहीं स्थान नहीं दिया ।

कुछ नाटककारों ने विस्मयबोधक चिन्ह को प्रधान रूप में रखा है, जिनमें वृंदावन लाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व मणि मधुकर हैं । स्थानापूरक चिन्ह माथुर जी ने कोणार्क तथा

फलता राधा में स्थल-स्थल पर मिलती है, उनकी तुलना में लक्ष्मी नारायण लाल के 'मादा-कैक्टस' में ये चिन्ह कुछ कम हैं। वर्मा जी ने अर्ध, पूर्ण तथा अल्प-विराम कोष्ठक, प्रश्नवाचक स्थानपूरक चिन्हों का अधिक व्यवहार किया है। माथुर जी की रचनाओं में अल्प तथा पूर्ण विराम चिन्हों की अधिकता है। कोष्ठकों को भी अभिनय के संकेत के लिए प्रयुक्त किया है। योजक चिन्ह समास तथा पुनरुक्त शब्दों में व्यवहृत हुए हैं। उद्धरण चिन्ह कुछ ही स्थलों पर आये हैं। लक्ष्मी नारायण लाल ने प्रश्नवाचक चिन्हों की तुलना में पूर्ण विराम को कम महत्व दिया है। स्थानपूरक तथा योजक चिन्ह यत्र-तत्र है। उद्धरण तथा संबोध चिन्हों की काफी कमी है, अर्ध- विराम को नाटककार ने छुआ ही नहीं है। सर्वेश्वर दयाल ने स्थान-पूरक अल्प विराम प्रश्नात्मक ,पूर्ण विराम तथा कोष्ठक चिन्हों को प्रायः रखा है। उद्धरण चिन्ह अल्प है। मणिमधुकर ने उद्धरण चिन्ह को कम महत्व दिया है। अल्प, पूर्ण विराम, योजक चिन्ह , प्रश्नवाचक, स्थानपूरक तथा कोष्ठक चिन्हों अधिकतर प्रयोग हुआ है।

मोहन राकेश व लक्ष्मी नारायण मिश्र की नाट्य कृतियों में स्थानपूरक चिन्ह काफी प्रिय हुआ है, मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' में इसका प्रयोग काफी मिलता है। अर्ध-विराम को मोहन राकेश ने नहीं रखा है। मिश्र जी ने भी अर्ध-विराम को कम अपनाया है। राकेश जी की रचनाओं में अल्प विराम तथा पूर्ण विराम का बाहुल्य है। इसके अलावा योजक चिन्ह,विस्मयबोधक कोष्ठक तथा प्रश्नवाचक चिन्ह भी अवसरानुकूल रखे गये हैं। मिश्र जी ने उद्धरण संबोध चिन्ह कम रखे हैं। अल्प विराम , कोष्ठक प्रश्नवाचक चिन्ह अधिकांशतः प्रयुक्त हुए हैं।

सत्यव्रत सिन्हा ने पूर्ण अर्ध तथा अल्प विराम, स्थान पूरक, विस्मय बोध तथा योजक चिन्हों का अधिकतर प्रयोग किया है। संबोध तथा कोष्ठक चिन्ह उनकी तुलना में काफी अल्प है।

विष्णु प्रभाकर की कृति में में अल्प, पूर्ण विराम, प्रश्नवाचक, उद्धरण तथा योजक व कोष्ठकों से भाषा को सजाया गया है।

स्थान पूरक चिन्ह को प्रधान रूप में सुरेन्द्र वर्मा ने अपनाया है । अर्द्ध विराम तथा उद्धरण चिन्हों की ओर उनकी दृष्टि कम रही है । प्रश्नवाचक पूर्ण विराम, अल्प विराम व कोष्ठक विस्मयबोधक चिन्हों का अधिकतर प्रयोग मिलता है ।

विपिन कुमार अग्रवाल तथा मुद्राराक्षस अधिक चिन्ह-प्रयोग के पक्ष में नहीं हैं । इन्होंने प्रश्नवाचक ,अल्प विराम, पूर्ण विराम, स्थानपूरक तथा कोष्ठक व विस्मयबोधक, योजक चिन्हों को व्यवहृत किया है ।

ऐसी चिन्हों का प्रयोग प्राचीन नाटकों की तुलना में आधुनिक नाटकों में काफी बढ़ गया है तथा उनके प्रयोग में त्रुटियों की भी निरंतर अल्पता आती गई है । फिर भी आधुनिक नाटकों में कहीं-कहीं अल्प विराम का अभाव मिलता है ।

दसवाँ अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक युग तक के नाटकों का विस्तृत विवेचन करने पर यह स्पष्ट होता है कि,आधुनिक नाटकों की शैली, अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता और नाटकीय तत्वों के उचित प्रयोगों की दृष्टि से अधिक प्रभावपूर्ण रही है । आधुनिक नाटकों में भी सामाजिक नाटकों की शैली इस कोटि की है । इन नाटकों की सफलता के कई कारण हैं,एक तो इनके लेखन काल तक नाट्य साहित्य काफी विकसित हो चुका था अतः साहित्य के विकसित होने के कारण नाटककारों के भाषा भंडार में वृद्धि हुई जो उन नाटकों में शैली की विविधता तथा नाटकीय शैली में नया रूप लाने में सहायक हुआ । दूसरा कारण नाटककारों की शैक्षिक योग्यता भी आरंभिक नाटककारों की तुलना में अधिक रही है जिसका प्रभाव उनके नाटकों पर पड़ा । सामाजिक नाटकों के लेखनकाल तक नाट्य साहित्य की भूल व त्रुटियाँ काफी सामने आ गयी थी जिससे इन नाटककारों ने अपने नाटकों को बचाया यह भी नाटकीय शैली की सफलता का कारण है । आधुनिक प्रभावपूर्ण शैली के रूप लक्ष्मीनारायण मिश्र,उपेन्द्रनाथ अश्क, गोविन्द वल्लभ पन्त, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश के [आधे अधूरे] सामाजिक नाटकों में व्यवहृत हुई है । इन नाटककारों ने नाटकीय भाषा को जीवन में निकटता व गहराई से देखकर व्यक्त किया है । ये नाटककार, नाटकों में उसी शैली को अपनाने के पक्ष में हैं जिससे नाटकीयता में बाधा व कृत्रिमता न आ पाये । इन्होंने नये नये शब्दों को व्यवस्थित किया, जिससे नाटकों में नई शब्द शैली का विकास हुआ । वाक्यों की दीर्घता से नाटक को परे कर उनमें संतुलन लाने का प्रयास किया । भाषा को साहित्यिकता व क्लिष्टता से बचाकर जीवन की यथार्थता से जोड़ा है । प्रसंगानुसार व पात्रानुसार भाषा को नाटक की स्वाभाविकता बनाये रखने हेतु अपनाया है । भाषा को आलंकारिकता से बोझिल नहीं होने दिया है, वे उसी सीमा तक अलंकारों को अपनाने के

पक्ष में रहे हैं, जिससे नाटक की व्यवहारिकता बनी रहे । शब्द शक्तियों व प्रतीकों केरूप को सर्वसामान्य की समझ का बनाने के ओर इनकी दृष्टि रही है । नाटकों में रस योजना की परम्परा को तोड़कर भाव द्वारा दर्शकों को आनन्दित करने का प्रयास इन्होंने किया है । नाटक में स्पष्टता लाने हेतु शैली चिन्हों की ओर भी इनकी दृष्टि काफी रही है । नाटकीय तत्वों में प्राय: उन तत्वों से परहेज किया है जो पुरानी नाटकीय शैली में अस्वाभाविक सिद्ध हुए हैं । स्वगत कथन शैली तथा गीतों की योजना की स्वाभाविकता की ओर इनका ध्यान रहा है । स्वगत कथन शैली का इन नाटककारों ने प्राय: बहिष्कार किया है । गीत योजना भी जीवन की यथार्थता को देखकर हुई है । इनके नाटकों में भी कुछ भाषिक त्रुटियाँ है, उसके बाद भी शैली की दृष्टि से ये अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए हैं । लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों में आयी त्रुटियों के विषय में कहा है कि उन्होंने नाटकों में भाषा का त्रुटिपूर्ण प्रयोग उसी प्रकार कराया है जैसे कि मनुष्य अपने बोलने में अक्सर करता है ।

आधुनिक नाटकों में, कुछ ऐसे भी नाटक हैं जिसमें सामाजिक नाटकों की भांति शैली प्रयुक्त हुई है, परन्तु कुछ ऐसे तत्व आ गये हैं जिसके कारण वह उतने प्रभावशाली नहीं हो सकते जितने सामाजिक नाटक हैं । इसमें लक्ष्मीनारायण लाल, विपिन कुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस के प्रतीकात्मक नाटक व मणि मधुकर और सत्यव्रत सिन्हा के एब्सर्ड नाटक हैं । ये नाटककार स्वगत कथन शैली., गीत योजना, शैली चिन्हों का प्रयोग, भाषा की क्लिष्टता व आलंकारिकता में स्वाभाविकता लाने के पक्ष में रहे हैं व इन्होंने पूर्व के नाटकों की भूलों को भी सुधारा है, परन्तु कुछ ऐसे प्रयोग किए हैं जिससे नाटकीय शैली अप्रभावक बन गयी है । प्रतीकात्मक नाटकों में प्रतीकों की अधिकता से नाटक दुरूह तथा चौंका देने वाले बन गये हैं, जो दर्शकों को आनन्दित करने के बजाय विचलित कर सकते हैं । एब्सर्ड नाटकों में सफल नाटकीय शैली से हटकर कुछ प्रयोग हुए हैं, इसमें कथनों की

दीक्षा को पुनः अपनाया है, अश्लील शब्दों का व्यवहार आरम्भिक नाटकों की भाँति हुआ है जो उपयुक्त नहीं लगता है । सत्यव्रत सिन्हा की, अपने नाटक में भाषा के उतार चढ़ाव पर दृष्टि नहीं रही है। भाषा में सर्वत्र एक ही लहजा है पात्रानुसार भाषा के प्रयोग में असावधानी दिखी है जैसे उर्दू न समझने वाली स्त्री से कहीं कहीं उर्दू के क्लिष्ट शब्द कहलवायें हैं । संवादों को इनके नाटकों में सफलता नहीं मिल पायी है ।

वृंदावन लाल वर्मा, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने नाटकों में शैली की स्वाभाविकता की ओर काफी ध्यान रखा है । वृंदावन लाल वर्मा ने सामाजिक नाटकों की भाँति शैली को अपनाया है, परन्तु इनके नाटक में भी कुछ स्थल अटपटे लगे हैं जैसे अंग्रेज पात्र से शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करवाना । मोहन राकेश तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने वाक्यों को संयत, संतुलित तथा प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास किया है, फिर भी इनके नाटकों में कुछ तत्व बाधक लगे हैं । मोहन राकेश के नाटक "लहरों के राजहंस" में प्रतीकों की अधिकता से दुरूहता की भी सम्भावना है । "आषाढ़ का एक दिन" में आये संस्कृत के क्लिष्ट शब्द व श्लेषपूर्ण प्रयोग जन सामान्य की समझ से परे भी हो सकते हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने हास्य की सृष्टि हेतु कुछ अटपटी गीत योजना की है । छोटे वाक्यों तथा भाषा की स्वाभाविकता को बनाये रखने का नाटककार ने निरन्तर प्रयास किया है । नाट्य शैली को यथार्थ व सर्वग्राह्य बनाने की ओर इनकी दृष्टि रही है । सुरेन्द्र वर्मा ने नाटकों की भाषा को सर्वत्र एक रूप में रखा है । नाटकों की कथा को दृष्टि में रखते हुए संस्कृतनिष्ठ भाषा को अपनाने के पक्ष में ये रहे हैं। प्रसंगानुसार लम्बे व छोटे संवादों को चुना है । भाषा में आलंकारिकता तो है, परन्तु उसमें किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं आयी है ।

उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक उस समय में लिखे गये हैं जब उच्च व महान कोटि के नाटककारों द्वारा हिन्दी में समृद्ध नाट्य परम्पराओं का प्रचलन हो चुका था तथा नाटकों के गुण-दोषों का निश्चय हो चुका है, जिसके कारण इनके नाटकों में वे दोष प्रायः नहीं आ पाये हैं जो आरम्भिक नाट्य शैली में थे। इन नाटककारों ने संवादों को संक्षिप्त, नाटकोचित तथा प्रभावशाली बनाने की कोशिश की है। आलंकारिकता से भाषा बोझिल न हो, इस पर भी इन्होंने दृष्टि रखी है। उदयशंकर भट्ट ने तो शैली में नवीनता लाने हेतु नवीन उपमाओं को व्यवहृत किया है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने नाटक में शैली को यथार्थ रूप में रखने का प्रयत्न किया है, फिर भी कुछ व्याकरणगत त्रुटियाँ आ गयी है। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में कुछ बातें शैली की दृष्टि से खटकती है। इन्होंने दार्शनिक व गम्भीर विषयों पर चर्चा करते हुए उक्तियों में अधिक स्वाभाविकता नहीं रखी जितनी होनी चाहिए। गीतों की दीर्घता इनके नाटकों में अखरने लगी है। "रक्षा बन्धन" में एक दृश्य का अंत गीत से किया है तो दूसरे दृश्य का आरम्भ गीत से हुआ है जो ठीक नहीं लगा। जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में संवादों की सरलता तथा स्वाभाविकता पर पूर्ण दृष्टि रखी है। शब्दों का चयन नाटकों में कथानक के अनुरूप हुआ है। इन्होंने "पहला राजा" नाटक में कहीं बोल चाल की भाषा को कहीं काव्यात्मक भाषा को व्यवस्थित किया है, जिसने भाषा की स्वाभाविकता को कम किया है। इसमें प्रयुक्त प्रतीक रूप सर्वसामान्य की समझ से परे भी हो सकते हैं। इन सब असंगतियों के बाद भी इनके नाटक उपयुक्तता की कोटि में हैं।

आरम्भिक नाटकों की शैली में, आधुनिक नाटकीय शैली की तुलना अस्वाभाविकता के अधिक दर्शन हुए हैं। इनमें शैली की अस्वाभाविकता के कई कारण हैं। इन नाटकों का रचना काल वह था, जब नाटकों का प्रारम्भ

ही हुआ था । अतः नाटककारों को नाटक की त्रुटियों, स्वाभाविकताओं अस्वाभाविकताओं का ज्ञान नहीं था। न ऐसे नाट्य साहित्य भी इतना परिपक्व नहीं था, जिससे नाट्य रचना में कुछ सहायता मिलती, इसी कारण इन नाटकों पर नाटक की बजाय उपन्यासों की शैली का प्रभाव बना रहा । आरम्भिक नाटकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक अपने कालके नाटकों की तुलना में अवश्य उत्कृष्ट कहे जा सकते हैं, परन्तु नाट्य साहित्य की दृष्टि से उनमें काफी दोष है । इनके नाटकों में विस्मयादिबोधक शब्दों की अधिकता है, तत्कालीन वातावरण के कारण अश्लील शब्दों को स्थान मिला है, जो खटकता है । कथनों की दीर्घता, स्वगत कथन का प्रयोग तथा वाक्य-विन्यास की शिथिलता इनके नाटकों में प्रायः मिली है । पात्रानुकूल भाषा के तो ये पक्ष में रहे हैं, परन्तु कहीं-कहीं पात्रों की भाषा में दुरूहता प्रकट हुई है । जैसे "नीलदेवी" में कहीं-कहीं मुसलमान पात्र से उर्दू के दुरूह शब्दों को बुलवाया है ।

चिन्हों के प्रयोग का इनके नाटकों में अभाव रहा है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समसामायिक नाटककार प्रताप नारायण मिश्र के नाटक "भारत दुर्दशा" पर भारतेन्दु जी की नाट्य शैली का प्रभाव मिलता है। इन्होंने ने भी कथन की दीर्घता, स्वगत कथन, लम्बे वाक्यों को व्यवस्थित किया है । प्रायः वाक्यों की दीर्घता नाटक की गति में बाधक सी लगती हैं । नाटक कहीं कहीं उपन्यास सा प्रतीत होने लगा है । व्याकरण संबंधी दोष से इनका नाटक भी नहीं बच पाया हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने भी अपने नाटक में चिन्हों का अभाव रखा है जिससे प्रायः उक्तियों में अस्पष्टता की सम्भावना हो गयी है । इन्होंने भाव को व्यक्त करने का पूरा प्रयास किया है, परन्तु भाषा की स्थिति पर कम ध्यान रखा है ।

प्रसाद के नाटकों पर उनके अध्ययन तथा बौद्धिक व्यक्तित्व की छाप है । संस्कृत के अध्ययन का प्रभाव इनके नाटकों में प्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ

शब्दों के प्रयोग से प्रकट हुआ है । प्रसाद भाषा को पात्रानुकूल रखने की बजाय भावानुकूल रखने के पक्ष में रहे हैं । नाटकों में संस्कृतनिष्ठ शब्दों की अधिकता, भाषा की दुरूहता, अलंकृति की अतिशयता से भाषा का स्वरूप दब गया है प्रतीकों में गूढ़ता भी व्यक्त हुई है । भाषा का यह स्वरूप अभिनय की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकता । इनके नाटक पठन की दृष्टि से अधिक उपयोगी है । चिन्हों का प्रयोग, भारतेन्दु युग के नाटकों की तुलना में, इनके नाटकों में अधिक हो गया है । प्रसाद के समसामायिक नाटककार बद्रीनाथ भट्ट की नाट्य शैली पर तत्कालीन नाटकों का प्रभाव दिखता है । इनके नाटक में भाषा सम्बन्धी उतार-चढ़ाव का अभाव है । लम्बे कथन, स्वगत कथन तथा पद्यात्मक संवादों की अधिकता से संवादों का सौन्दर्य तिरोहित हो गया है । भाषा के दोष इनके नाटक में भी आये हैं । मुसलमान पात्र अकबर से शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करवाना तथा ग्रामीण पात्रों से बातचीत करते हुए राजकर्मचारी द्वारा क्लिष्ट भाषा का प्रयोग अनुपयुक्त लगा है । एक स्थल पर पृथ्वीराज ने अपनी जाति के कायरपन तथा आत्मग्लानि को छंदोबद्ध भाषा में व्यक्त किया है, जो असंगत लगा है । व्याकरण सम्बन्धी भूलें तथा चिन्हों का अभाव इनके नाटकों में दिखता है । जी०पी० श्रीवास्तव ने अपने नाटक में हास परिहास की सृष्टि मुख्यतः की है, जिसमें नाटककार की दृष्टि भाव-सम्प्रेषण की ओर अधिक रही है, भाषा की स्वाभाविकता की ओर कम । अशिष्ट शब्दों की अधिकता, लम्बे वाक्यों तथा कथनों से नाटक की स्वाभाविकता कम हुई है । गीत योजना कहीं-कहीं बड़ी बेतुकी है जैसे अदालत में गीत योजना ।

नाटककारों की नाट्य शैलियों को देखते हुए यह कह सकते हैं कि, आरम्भिक नाटकों की शैली, विविधता न होने के कारण तथा नाटक सम्बन्धी दोषों के कारण अधिक स्वाभाविक तथा प्रभावशाली नहीं हो

हो पायी । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर प्रसाद के समसामयिक नाटकों तक काफी नाट्य सम्बन्धी त्रुटियाँ व अस्वाभाविकताएं थी । प्रसाद के बाद नाटकों में काफी परिवर्तन तथा परिवर्धन आया है, जिसका प्रभाव उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि नाटककारों की शैली में प्रकट हुआ है । इसके बाद भी निरन्तर नाटककारों का नाटक की स्वाभाविकता तथा शैली के आकर्षण की ओर प्रयास बना रहा । आधुनिक नाटकों में स्वाभाविकता, शैली की विविधता तथा नाट्य सम्बन्धी तत्वों के उचित प्रयोग की ओर नाटककारों की दृष्टि काफी रही है, जिसका परिणाम आधुनिक सफल नाटक है ।

संकेत चिन्ह

नाटक	संकेत
अजातशत्रु	अजात०
अमृत पुत्र	अमृत०
अम्बपाली	अम्ब०
आधे अधूरे	आधे०
आषाढ़ का एक दिन	आषाढ़०
अंगूर की बेटी	अंगूर०
अंजो दीदी	अंजो०
अंधेर नगरी	अंधेर०
उलट फेर	उलट०
कोणार्क	कोणार्क
चन्द्रगुप्त	चन्द्र०
जय पराजय	जय०
झाँसी की रानी	झाँसी०
तिलचट्टा	तिल०
दशरथनन्दन	दश०
दुर्गावती	दुर्गा०
ध्रुवस्वामिनी	ध्रुव०
नायक,खलनायक, विदूषक	ना०ख०वि०
नील देवी	नील०
पहला राजा	प०रा०
बकरी	बकरी
भारत दुर्दशा (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित)	भारत०भा०
भारत दुर्दशा (प्रतापनारायण मिश्र रचित)	भारत०प्र०
मादा कैक्टस	मादा०
मुक्ति का रहस्य	मुक्ति०
युगे युगे क्रान्ति	युगे०
रस गंधर्व	रस०
रक्षा बंधन	रक्षा०
लहरों के राजहंस	लहरों०
लोटन	लोटन
विद्रोहिणी अम्बा	वि०अ०
शपथ	शपथ
श्रीचन्द्रावली	श्रीचन्द्र०
स्कंदगुप्त	स्कंद०
स्वर्ग की झलक	स्वर्ग०
सिन्दूर की होली	सिन्दूर०
सेतुबन्ध	सेतु०

पुस्तक सूची

हिन्दी नाटक

उदयशंकर भट्ट	विद्रोहिणी अम्बा	द्वितीय संस्करण
उपेन्द्रनाथ अश्क	जय पराजय	सातवाँ संस्करण
उपेन्द्रनाथ अश्क	अंजो दीदी	पहला अंक
उपेन्द्रनाथ अश्क	स्वर्ग की झलक	प्रथम संस्करण
गंगा प्रसाद श्रीवास्तव	उलट फेर	तृतीया वार
गोविन्द बल्लभ पन्त	अंगूर की बेटी	तृतीयावार
जयशंकर प्रसाद	चन्द्रगुप्त	अठारहवाँ संस्करण
जयशंकर प्रसाद	स्कन्दगुप्त	प्रथम संस्करण
जयशंकर प्रसाद	अजातशत्रु	सत्ताईसवां संस्करण
जयशंकर प्रसाद	ध्रुव स्वामिनी	बाईसवां संस्करण
जगदीश चन्द्र माथुर	कोणार्क	प्रथम संस्करण
जगदीश चन्द्र माथुर	पहलाराजा	संस्करण 1969
जगदीश चन्द्र माथुर	दशरथ नन्दन	प्रथमसंस्करण
प्रताप नारायण मिश्र	भारत दुर्दशा	संस्करण 1959
बद्रीनाथ भट्ट	दुर्गावती	प्रथमावृत्ति
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	श्री चन्द्रावली	पंचम संस्करण
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	नील देवी	संस्करण 1926
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	अंधेर नगरी	संस्करण 1926
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भारत दुर्दशा	प्रथम संस्करण
मणि मधुकर	रस गंधर्व	संस्करण 1975
मुद्रा राक्षस	तिलचट्टा	प्रथम संस्करण
मोहन राकेश	आषाढ़ का एक दिन	संस्करण 1958
मोहन राकेश	लहरों के राजहंस	संस्करण 1973
मोहन राकेश	आधे अधूरे	छात्र संस्करण
रामवृक्ष बेनी पुरी	अम्बपाली	संस्करण 1947

लक्ष्मीनारायण मिश्र	सिन्दूर की होली	संस्करण 20 अप्रैल 1934
लक्ष्मी नारायण मिश्र	मुक्ति का रहस्य	संस्करण 1974
लक्ष्मीनारायण लाल	मादा कैक्टस	नया संस्करण 1972
विष्णु प्रभाकर	युगे युगे क्रान्ति	दूसरा संस्करण
विपिन कुमार अग्रवाल	लोटन	प्रथम संस्करण 1974
वृन्दावन लाल वर्मा	झाँसी की रानी	द्वितीय संस्करण
सत्यव्रत सिन्हा	अमृत पुत्र	प्रथम संस्करण
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	बकरी	प्रथम संस्करण
सुरेन्द्र वर्मा	सेतुबन्धु	प्रथम संस्करण
सुरेन्द्र वर्मा	नायक, खलनायक, विदूषक	प्रथम संस्करण
हरिकृष्ण प्रेमी	रक्षा बन्धन	संस्करण 1970
हरिकृष्ण प्रेमी	शपथ	प्रथम संस्करण

सैद्धान्तिक ग्रंथ

- - - - - -

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	रस मीमांसा	संस्करण 1950
ओम प्रकाश गुप्त	मुहावरा मीमांसा	संस्करण 1960
कन्हैयालाल पोद्दार	संक्षिप्त अलंकार मंजरी	संस्करण 1994 वि०
कामता प्रसाद गुरु	हिन्दी व्याकरण	संस्करण 1978 वि०
कृष्ण कुमार	गद्य संरचना:शैली वैज्ञानिक विवेचन	प्रथम संस्करण।
देवीशंकर	अभिव्यक्ति विज्ञान	संस्करण 1974
देवेन्द्र नाथ शर्मा	अलंकार मुक्तावली	संस्करण 1951
नगेन्द्र	शैली विज्ञान	संस्करण 1976
परिपूर्णानन्द वर्मा	प्रतीकशास्त्र	संस्करण 1964
भोलानाथ तिवारी	शैली विज्ञान	संस्करण 1977
रमाशंकर शुक्ल रसाल	रस छंदालंकार	संस्करण 1955
रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव	शैली विज्ञान और आलोचना की नई भूमिका	संस्करण 1972
विद्यानिवास मिश्र	रीति विज्ञान	संस्करण 1973

सुरेश कुमार	शैली और शैली विज्ञान	संस्करण 1976
सुरेश कुमार	शैली विज्ञान	प्रथम संस्करण 1977
डा० हरदेव बाहरी	व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण	तृतीय संशोधित संस्कार

हिन्दी आलोचनात्मक ग्रन्थ

उमेश चन्द्र मिश्र	लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक	संस्करण 1959
ओम प्रकाश शर्मा	आधुनिक नाटक	संस्करण 1972
गिरीश रस्तोगी	हिन्दी नाट्य साहित्य और विवेचन	संस्करण 1967
गिरीश रस्तोगी	आधुनिक हिन्दी नाटक	संस्करण 1968
गिरीश रस्तोगी	मोहन राकेश और उनके नाटक	संस्करण 1976
गोविन्द दास	नाट्यकला मीमांसा	" 1935
गोविन्द चातक	नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर	
गोविन्द चातक	प्रसाद के नाटक सृजनात्मक धरातल और भाषिक चेतना	" 1972
जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	" 1955
जगदीशचन्द्र माथुर	नाटककार अश्क	" 1954
जगदीश शर्मा	मोहन राकेश की रंगसृष्टि	" 1975
जयदेव तनेजा	लहरों के राजहंस विविध आयाम	" 1975
दशरथ ओझा	हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास	1954
दिनेश उपाध्याय	हमारी नाट्य परम्परा	प्रथम संस्करण
निर्मला हेमन्त	आधुनिक हिन्दी नाटककारों के नाट्य सिद्धान्त	संस्करण 1973
पद्मसिंह शर्मा	वृन्दावन लाल वर्मा-व्यक्तित्व और कृतित्व	1958
परमेश्वरी लाल गुप्त	प्रसाद के नाटक	1956

पुष्पा बंसल	मोहन राकेश का नाट्य साहित्य	संस्करण	1976
बच्चन सिंह	हिन्दी नाटक	"	1958
मुरारी लाल उप्रेती	हिन्दी में प्रत्यय विचार	"	1964
रमेशचन्द्र जैन	हिन्दी समास रचना का अध्ययन	"	1964
राजेन्द्र सिंह गौड़	हमारे नाटककार	"	2010 वि0
विश्वप्रकाश दीक्षित	नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी	"	1960
विश्वप्रकाश दीक्षित	आषाढ़ का एक दिन वस्तु और शिल्प		
वीरेन्द्र सिंह	हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास	"	1964
वेदव्रत शर्मा	निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन	प्रथम संस्करण	1977
शान्ति गोपाल पुरोहित	हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन	"	1964
शान्ति मल्लिक	हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास		1971
सुन्दलाल शर्मा	हिन्दी नाटक का विकास	"	1977
सुरेश कुमार	शैली विज्ञान और प्रेमचन्द्र की भाषा	"	1978
सुरेश चन्द्र शुक्ल	प0 प्रताप नारायण मिश्र जीवन और साहित्य	अनुसंधान प्रकाशन	
सुरेशचन्द्र शुक्ल	हिन्दी नाटक और नाटककार	"	1977
सुधा कालरा	हिन्दी वाक्य विन्यास		

पत्रिकायें

नटरंग	अंक 18
नटरंग	अंक 21
सप्तसिन्धु	अंक 6,10
सारिका	मार्च 1973

English Books

Alan Warner - A short Guide to English Style - English language book society, 1964.

G.W. Tunur - Stylistic - Pelican book 1973.

Graham Hough (Ed) - Style & Stylistic - Routledge 1969.

Glen A love michael Payne - Contemporary Essays on style - Scott forseman & company 1969.

Roger Fowler - Essays on style & language - Routledge 1966.